युगद्रष्टा भगतसिंह

और उन के मृत्युंजय पुरखे

लेखिका

वीरेन्द्र सिन्धु, एम० ए०

सम्पादिका : सजीवनी

भूमिका

माननीय श्री यशवन्तराव चह्वाण

भारत के केन्द्रीय गृह-मन्त्री

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला ग्रन्थांक–२६८
सम्पादक एवं नियामक
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series Title No 263

YUGDRASHTA BHAGAT SINGH
AUR UNKE MRITYUANJAY PURKHE

(Historical Memoirs)

VIRENDRA SINDHU M A

Bharatiya Jnanpith
Publication

First Edition 1963

Price Rs 15 00

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रधान कार्यालय
९ अलीपुर पार्क प्लेस कलकत्ता २७

प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग वाराणसी ५

विक्रय-केन्द्र
३६२०/२१ नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली ६

प्रथम संस्करण १९६८
मूल्य १५ ००

सन्मति मुद्रणालय
वाराणसी–५

अ । नु । क्र । म

● ●

संघर्षो का निमन्त्रण

संघर्षो और वलिदानो के विना कोई देश उन्नति नही कर सकता। देश के लिए सघर्षो और वलिदानो की प्रेरणा नयी पीढियों को मिलती है वीरो के, शहीदो के जीवन से। इस ग्रन्थ मे ऐसे पाँच वीरो के जीवन और वलिदानो की कहानी है, जिन्हो ने देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किया। यह एक रोमाचकारी तथ्य है कि एक ही वंश मे ये सव जन्मे और इस वंश की तीन पीढियाँ देश की स्वतन्त्रता के लिए अगारो से खेलती रही।

सरदार अर्जुन सिंह ने क्रान्ति की धूनी जगायी। सरदार स्वर्ण सिंह अँगरेजी अत्याचारो का शिकार हुए। भगत सिंह अपनी अद्भुत जीवन-क्षमता और मरण-कला के कारण वलिदान का प्रतीक हो गये। उन के पिता सरदार किशन सिंह की पूरे जीवन की संघर्ष-साधना प्रेरक है, तो उन के चाचा सरदार अजीत सिंह का भारतीय स्वतन्त्रता के लिए जीवन-भर जूझना, लगभग चालीस साल विदेशो मे भटकना और फिर १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्रता के दर्शन करते ही मृत्युजयी रूप मे ससार से विदा होना अद्भुत भी है, अनुपम भी। सर्वश्रीमती जयकौर, विद्यावती, हरनाम कौर और हुकम कौर के मूक कष्ट-सहन ने इस वंश की वीर-गाथा को और भी मर्मस्पर्शी वना दिया है।

यह भी प्रसन्नता की वात है कि इस वीर-गाथा को उसी योद्धावंश की एक वेटी वीरेन्द्र सिन्धु ने लिखा है। अपनी वात उन्हो ने विवेचन और विश्लेषण के रूप मे कही है। उन के लेखन का यह कौशल है कि व्यक्तियो की कहानी युग की प्रामाणिक कहानी वन गयी है। उन की लगन, मेहनत, योग्यता और लेखनशैली ने ग्रन्थ को इतिहास की गम्भीरता और साहित्य के सौन्दर्य से एक साथ मण्डित कर दिया है।

मुझे विश्वास है कि देश के युवक-युवती, वे विद्यार्थी हो, नागरिक हो, सैनिक हो, इस वीर-गाथा को नये सघर्षो और वलिदानो का निमन्त्रण मान कर देशभक्ति और राष्ट्रीयता की गहरी भावना से यह स्वीकार करेंगे कि देश को स्वतन्त्रता पाने में जितना वलिदान हुआ है, उसे वचाने और पनपाने मे उस से भी अधिक सघर्ष और वलिदान की आवश्यकता है।

मैं इन वीरो को अपनी श्रद्धाजलि भेंट करता हूँ और नयी पीढियो को सघर्षो का यह निमन्त्रण देने के लिए वीरेन्द्र सिन्धु की सराहना करता हूँ।

— *यशवन्तराव चह्वाण*
भारत के केन्द्रीय गृहमन्त्री

उन की रोमांचक स्मृतियों में

भारतीय क्रान्तिकारियों की प्रथम पंक्ति में एक से एक चमकदार व्यक्तित्व हैं। उन में लोकमान्य तिलक हैं, सावरकर हैं, अरविन्द हैं, रासबिहारी बोस हैं, त्रैलोक्य चक्रवर्ती हैं, मास्टर दा सूर्यसेन हैं, मौलाना महमूद उल् हसन हैं, श्यामजी कृष्ण वर्मा हैं, राजा महेन्द्र प्रताप हैं, लाला हरदयाल हैं, शचीन्द्रनाथ सान्याल हैं, चन्द्रशेखर आजाद हैं, करतारसिंह सराबा हैं, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस हैं और और भी बहुत से हैं, पर उन में सूफी अम्बाप्रसाद अपनी जगह अद्भुत हैं।

१८५८ में उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद नगर में एक सम्पन्न घर में उन का जन्म हुआ, सिर्फ बायां हाथ, दायां उगा ही नहीं, जन्म से ही अपंग, पर इस अपंग ने संसार की महाशक्ति अँगरेजी साम्राज्य का अंग भंग कर दिया और इस एक हाथ से कलम भी चलायी, पिस्तौल भी। कलम से जो अक्षर लिखे वे भारतीय विद्रोह का विजयगान बन गये और पिस्तौल से जो धड़ाके किये, वे आज भी इतिहास के खामोश पृष्ठों में सुनाई पड़ते हैं।

पत्रकार ऐसे कि रियासतों के रेजीडेण्टों की गोपनीय फाइलों की नकलें छापें, आत्मज्ञानी ऐसे कि ईरान में १९१५ में उन्हें गोली मारने के लिए अँगरेज सैनिक उन की कोठरी में आये, तो पालथी मारे समाधि में लीन उन का शव मिला, प्रतापी ऐसे कि डाट दें, तो अँगरेज अफसर दरवाजे में पैर रखने की हिम्मत न करें, पर इस सब के साथ ऐसे आत्म निर्लिप्त कि सरदार अजीत सिंह की तेजस्विता देखी, तो अपनी सम्पूर्ण शक्ति उन्हें सौंप दी और बड़े होने पर भी उन के पीछे हो गये।

मैं उन पृष्ठों को, जिन में उन के प्यारे साथी सरदार अजीत सिंह की भी जीवन गाथा है और बाद में उन के अधूरे कार्य को पूरा करने वाले भगत सिंह की भी, पूज्य सूफी साहब की रोमांचक स्मृतियों के अतिरिक्त और किसे समर्पित करूँ?

— वीरेन्द्र सिन्धु

महान् क्रान्तिकारी सूफी अम्बाप्रसाद

अध्ययन के द्वार पर

पिस्तोल और बम कभी इन्कलाब नहीं लाते,
बल्कि इन्कलाब की तलवार
विचारों की सान पर तेज होती है !
—भगत सिंह

- सरदार अर्जुन सिंह ने साहस कर अन्धविश्वास और परम्परावाद की जड़ता से बन्द अपने घर के द्वार खोल दिये और ऊबड़-खाबड़ मार्ग को साफ कर अपने आँगन मे यज्ञवेदी बना दी ।
- सरदार किशन सिंह ने उस द्वार से आँगन तक के क्षेत्र को लीप-पोत कर उस यज्ञवेदी पर एक विशाल हवन-कुण्ड प्रतिष्ठित कर दिया ।
- सरदार अजीत सिंह ने उस हवन-कुण्ड मे समिधाएँ सजा, उन पर एक दहकता अगारा रख दिया ।
- सरदार स्वर्ण सिंह ने उसे झपक कर लपट मे बदल दिया ।
- बस फिर क्या था, लपटें उठी और खूब उठी ।
- सरदार अजीत सिंह उन लपटो के लिए नये ईंधन की तलाश मे दूर चले गये और जल्दी लौट न सके ।
- वे लपटें बुझ जाती, पर सरदार किशन सिंह उन के अंग-रक्षक बने रहे, उन्हे बचाये रहे ।
- भगत सिंह ने इधर-उधर ईंधन की तलाश न कर अपने जीवन को ही ईंधन बना झोका और लपटो को पूरी तरह उभार कर इस तरह उछाल दिया कि वे देश-भर मे फैल गयी, देश का हर आँगन एक हवन-कुण्ड बन गया ।
- भारत-माता के इन पाँच पुत्रो की जीवन और कर्मगाथा ही इस ग्रन्थ का विषय है ।

सरदार अर्जुन सिंह के बडे-पुरखे महाराजा रणजीत सिंह की सेना मे थे । राजा रणजीत सिंह अँगरेजो की कपट रणनीति के अन्तिम शिकार थे । उन के बाद उन की महारानी जिन्दा और उन के पुत्र कुँवर दिलीप सिंह के साथ अँगरेजो ने जो व्यवहार किया, वह अँगरेज राजनीति का एक बहुत ही गन्दा पृष्ठ है । इस सब ने उन पुरखो मे जो विद्रोही घृणा जगा दी थी, वह पारिवारिक धरोहर के रूप मे सरदार अर्जुन सिंह

को मिली। यह धरोहर ही थी, जो परिवर्तन की प्यास मन पर उन्हें सामाजिक क्रांति के यज्ञ-मण्डप में ले आयी।

हम कमजोर हैं, अलग-अलग हैं, निहत्थे हैं। इन के विरुद्ध वे शक्तिशाली हैं, संगठित हैं, सशस्त्र हैं। हम उन का कुछ नहीं कर सकते, कुछ नहीं बिगाड़ सकते। १८५७ में प्रयत्न करके हम ने देख तो लिया। क्या हुआ सिवाय इस के कि हम और पिटे और पिसे और अपमानित हुए॥

वे अब शासक हैं, हम अब शासित हैं। उन्हें अब शासक रहना है, हमें अब शासित रहना है। गुलामी, गुलामी और गुलामी, बस यही हमारा भाग्य है, यही हमारा भविष्य है।

देश की परिस्थितियाँ और अँगरेजों की कूटनीतिक चालों से जब सारा देश हीनता के इस अवसाद में डूबा हुआ था, तो देश के पुनरुत्थान की सब आशाएँ समाप्त हो गयी थीं। कोई देश गिरकर उठता है स्वदेशाभिमान और जातीय गर्व के प्रकाश में पनपे आत्मगौरव से, पर हीनता की उस घनी आँधी में स्वदेशाभिमान और जातीय गौरव के दीपक कहाँ जल सकते थे? ऋषि दयानन्द के आत्मतेज की बलिहारी कि उन्हों ने नयी पृष्ठभूमि की खोज की और अतीत गौरव की उपजाऊ भूमि में स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान के वृक्ष रोपे। शीघ्र ही इन पर जागरण और उद्बोधन के पुष्प महक उठे और देश विचार-क्रांति से उद्बुद्ध हो उठा। सरदार अर्जुन सिंह ने ऋषि दयानन्द को देखा तो आकर्षित हुए, उन का भाषण सुना तो प्रभावित हुए और बातचीत की तो पूरी तरह उन के हो गये। सरदार अर्जुन सिंह इस विशाल देश के पहले सिख नागरिक थे, जो इस विचार क्रांति में भागीदार हुए। उन में धुन थी, देशभक्ति थी, आस्था थी, कर्मठता थी, वे शीघ्र ही अपने क्षेत्र में इस विचार-क्रांति का यज्ञ मण्डप बन गये।

सरदार अर्जुन सिंह के घर तीन पुत्र जन्मे—सरदार किशन सिंह, सरदार अजीत सिंह, सरदार स्वर्ण सिंह।

सरदार किशन सिंह का व्यक्तित्व समुद्र की तरह विस्तृत और गहरा था। लोकमान्य तिलक से लेकर महात्मा गांधी तक के सब आन्दोलनों में उन्हों ने पूरे जोश से हिस्सा लिया। दूसरी दिशा में जो विद्रोह और क्रान्ति के तूफान उठे, चाहे वह लार्ड हार्डिंज पर फेंके बम का मुकदमा था, चाहे पगड़ी सँभाल जट्टा की पहली किसान क्रांति, चाहे जेलों में मानवीय अधिकारों का संघर्ष और चाहे गदर आन्दोलन, वे उन सब के भी सहयोगी-सलाहकार रहे।

सरदार अजीत सिंह ने अपना सार्वजनिक जीवन आरम्भ तो किया कांग्रेस के आन्दोलन से, पर शीघ्र ही उन का विकास एक नयी दिशा में बदल गया। देश में चाफेकर-बन्धुओं के द्वारा पूना में २२ जून १८९७ को प्लेग-कमिश्नर मिस्टर रैण्ड और लेफ्टिनेण्ट मिस्टर आयर्स की हत्या कर सशस्त्र विद्रोह (जिसे बोलचाल में आतंकवाद कहा गया है) की नयी नींव रखी गयी थी। सरदार अजीत सिंह ने

उस धारा से स्वतन्त्र देशव्यापी जन-क्रान्ति (१८५७ के गदर की पूर्णता) की नीव रखी। उन का व्यक्तित्व इतना प्रचण्ड था कि यह नीव शीघ्र ही एक भवन का रूप लेने लगी।

इस भवन का नक्शा कितना विशाल था, इस का अनुमान इसी से लग सकता है कि सरदार अजीत सिंह ने अपनी क्रान्ति-सस्था 'भारतमाता सोसायटी' के द्वारा प्रथम विश्व-युद्ध का (जव किसी दूसरे के स्वप्न मे भी वह न आया था) यथार्थ अनुमान कर अपने सहकर्मी लाला हरदयाल को अमेरिका, सूफी अम्वाप्रसाद को अफगानिस्तान-ईरान, सरदार निरजन सिह को ब्राजील और इसी तरह कई दूसरे साथियो को दूसरे देशो मे भेजने का निश्चय किया कि ये लोग विदेशो मे सशस्त्र शक्ति का सगठन करे, जो युद्ध के समय भारत के भीतर उभरी शक्ति से आ मिले। स्वय सरदार अजीत सिंह भारत मे ही रहे और यही सेनाओ और राजाओ को साथ ले कर जन-क्रान्ति की तैयारी करें। परिस्थितियाँ ऐसी हुई कि सरदार अजीत सिह को भी विदेश जाना पडा। वहाँ उन्हो ने ३९ साल तक भारतीय क्रान्ति की ज्वाला जलायी और दोनो विश्वयुद्धो मे सव से पहले आजाद हिन्द सेना का सगठन किया।

सरदार स्वर्ण सिंह भारतमाता सोसायटी के द्वारा क्रान्ति की रोशनी घर-घर पहुँचाने वाले मशालची थे। वाणी और कलम दोनो उन के अस्त्र थे। जेल की यातनाओ ने उन्हे तोड दिया और वे २३ वर्ष की भरी जवानी मे शहीद हो गये।

सरदार किशन सिह के घर जन्मे भगत सिंह। उन की मृत्युजयी वीरता का जन-मानस पर ऐसा सिक्का वैठा कि आतकवादी धारा को अपने चाचा सरदार अजीत सिंह-द्वारा स्थापित जन-क्रान्ति की धारा मे वदल देने का उन का ऐतिहा-हासिक कार्य सव की आँखो से ओझल ही रह गया। देश की नयी पीढी को यह वताया ही नही गया कि भारत का प्रथम सविधान सरदार अजीत सिंह ने ही लिखा था और देश की नयी पीढी को यह भी नही वताया गया कि सरदार भगत सिह ही इस देश मे समाजवाद के प्रथम उद्घोषक थे।

युग वीत गये सरदार अजीत सिंह के कार्य को और युग वीत गये भगत सिह के कार्य को, पर उन के कार्यो का पूर्ण चित्र हमारे राष्ट्रीय साहित्य मे प्रस्तुत ही नही हुआ। यह तव तक सम्भव नही था, जव तक कोई सरदार अर्जुन सिंह से ले कर भगत सिंह तक के युग को अपने मे न पचा ले। यह काम आसान नही था, पर मुझे औरो की अपेक्षा एक सुविधा थी कि मेरा जन्म इसी क्रान्ति-जनक वश मे हुआ है। मुझे जहाँ घर मे सुरक्षित साहित्य का लाभ उठाने की सुविधा थी, वहाँ परिवार के सदस्यो की स्मृतियो के अद्भुत भण्डार का लाभ उठाने की भी औरो से अधिक सुविधा थी। साहित्य मे विखरे टुकडो और खण्डित सकेतो मे पहले जो कुछ लिखा गया, वह भी मुझे सुलभ था।

इस सब को मिला कर मैंने अपने देश की क्रांति के इन अग्रदूतों की कहानी इस ग्रंथ में प्रस्तुत की है। इस प्रकार पगड़ी सँभाल जट्टा के ठीक साठ साल वाले सरदार अजीत सिंह और अपनी शहादत के सत्तरवें साल वाले सरदार भगत सिंह अपने राष्ट्र की नयी पीढ़ी में आ बैठे हैं। यह मैं सोच-समझ कर ही कह रही हूँ क्योंकि मैंने हर क्षण यह सावधानी रखी है कि ये लोग इन पृष्ठों में अपने जीते जागते रूप में पाठकों को मिलें, उन की पाषाण प्रतिमाएँ ही पाठकों के सामने प्रतिष्ठित न हों। मेरा विश्वास है कि आप इन पृष्ठों में क्रान्ति के इन कर्णधारों से बातें करेंगे, उन के कामों में रस लेंगे, उन के साथ हँसेंगे, उन के साथ रोएँगे और इस प्रकार वर्तमान में ही अतीत के उस क्रांतिकारी संघर्ष में मानसिक रूप से हिस्सेदार होंगे।

सरदार अर्जुन सिंह, सरदार किशन सिंह, सरदार अजीत सिंह, सरदार स्वर्ण सिंह और भगत सिंह अपने क्षेत्र में अपने ढंग पर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की क्रान्ति साधना करने वाले रणबांकों की इन के कार्यों की कहानी कहना ही मेरा उद्देश्य था, पर ज्यों ज्यों मैं उन के कामों की गहराई में उतरी, मुझे अनुभव हुआ कि श्रीमती जय कौर, श्रीमती विद्यावती, श्रीमती हरनाम कौर और श्रीमती हुकम कौर को इस कहानी से अलग रखना इतिहास के साथ तो अन्याय होगा ही, अमानवीय भी होगा।

ठीक है कि क्रांति की वेदी पर चढ़े तो ये वीर ही, पर उस वेदी की लपटों से उन की सहधर्मिणियाँ क्या ही क्या सब से अधिक सन्तप्त नहीं हुईं? ठीक है कि सब को दूर से क्रान्ति की मशाल ही दिखाई देती है और वे हाथ भी जो मशाल को थामे रहते हैं, पर उस मशाल को रौशन तो रखते हैं तिल-तिल जलने वाले वे दाने ही, जो कोल्हू में पिस कर उस मशाल की लौ को प्रकाश देने के लिए अपना तेल दे अपने को निःसत्व कर देते हैं! इसी अनुभूति ने उन्हें भी इस कहानी में प्रतिष्ठित कर दिया है। पहले विचार था कि भगत सिंह के बाद परिवार में जो क्रान्ति-साधना हुई है उसे भी यहीं कहूँ, पर भगत सिंह तक पहुँचते-पहुँचते ही इतने पृष्ठ हो गए और दूसरे कई विचार भी सामने आए, तो उस सामग्री को दूसरी पुस्तक के लिए रख लिया।

इतना तो स्पष्ट है ही कि यह एक ही वंश के लोगों की गाथा हो कर भी किसी वंश की गाथा नहीं है, यह तो उन युगों की ही गाथा है। नामों का महत्व तो यही है कि वे प्रतीक हो गए हैं अपने युगों के। इन पृष्ठों में जो जो मैंने नाम लिए हैं उन का यह मतलब नहीं कि उस काल के कार्यों के वे ही सर्वेसर्वा थे। कौन कहेगा इस पर हाँ, पर हाँ वे प्रमुख थे, प्रेरक थे, निमित्त थे, तो उन के नाम से बात कहना होती है। उदाहरण के लिए मैंने भगत सिंह को समाजवाद का प्रथम उद्घोषक कहा है। स्पष्ट है कि क्रिया आन्दोलन में वे इस परिणाम पर पहुँचे कि समानता ही समाज के सब रोगों की दवा है, उस में श्री सुखदेव, श्री भगवती चरण बोहरा, श्री विजय कुमार सिन्हा और श्री शिव वर्मा आदि साथियों का पूरा दल था। भगत सिंह ने ऊँचे स्वर में उच्च स्थान से

ऊँचे विश्वास के साथ, उस की घोषणा की, इस लिए वे ही उस का प्रतीक हो गये। साण्डर्स-वध का प्रस्ताव भगत सिंह का था, साण्डर्स का वध भी भगत सिंह ने (राजगुरु के साथ) किया था, पर हम सब जानते है कि उस की व्यूह-रचना श्री चन्द्रशेखर आजाद ने की थी। असेम्बली मे बम फेंकने का प्रस्ताव भगत सिंह का था। बम फेंके भी भगत सिंह ही थे, पर उस की व्यूह-रचना मे पार्टी के अनेक साथियो ने तर्क-वितर्क किया था और तब वह योजना पूर्ण हुई थी।

सशस्त्र क्रान्ति की चर्चा करते समय कुछ लेखको ने उन युगो को, जिन की चर्चा इस ग्रन्थ में है अजीत सिंह-युग और भगत सिंह-युग कहा है, पर मैं ने इसे ग्रहण नही किया। मैं ने १९४७ मे बँटवारे के दुःख झेले है, इस लिए मै बँटवारे मे विश्वास नही करती और इतिहास को भी उस के सम्पूर्ण रूप मे ही देखती हूँ। मेरा मन तो भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास को हिंसा-अहिंसा के टुकडो में भी बाँट कर नही देखता। मै अपनी जगह स्पष्ट हूँ कि राष्ट्र की स्वतन्त्रता मे हिंसा ने अपना काम किया है और अहिंसा ने अपना। यही नही, दोनो ने एक-दूसरे को काफी दूर तक प्रभावित भी किया है। इन मे एक ही धारा को पकड कर भारत की स्वतन्त्रता का सच्चा इतिहास लिखा जा सकता है, मुझे इस मे विश्वास नही है।

अपनी गाथा को आगे बढाने के लिए मैंने अनेक विश्लेषण किये है और अनेक निष्कर्ष निकाले है। विद्वानो की आलोचना से वे झूठे या गलत सिद्ध हो जायें, तो सब से पहले और सब से अधिक प्रसन्नता मुझे होगी। मेरा उद्देश्य अपने निष्कर्ष समाज पर थोपना नही, अन्तिम निष्कर्षो की खोज का भाव पैदा करना है। विचार-विमर्श से जो नये निष्कर्ष स्थापित होगे, मै उन्हे तुरन्त स्वीकार कर लूँगी, मुझे अपनी सीमा का ज्ञान है और अपने ज्ञान की सीमा का पता भी।

यह कोई शोध-ग्रन्थ ही नही है, यह तो बोध ग्रन्थ है, जो भगत सिंह और उन के पुरखो की जीवन-गाथा पूरे रूप में पहली बार देश की नयी पीढी के सामने रख, उन से कहता है कि देश की स्वतन्त्रता लाने के लिए यह सब हुआ था और उसे बचाने के लिए भी यह सब आवश्यक है। मुझे इतिहास-लेखक होने का दावा नही है। हाँ, इतिहास की पवित्रता को पूरी तरह सुरक्षित रखते हुए मै ने तो जीवन ही ग्रहण किया है। इस से नयी-पीढी के युवक-युवती उलझने मे बचेगें और बलिदान की उस भावना को ग्रहण करेंगे, जो स्वयं इतिहास की रचना करती है, इतिहास को नया मोड देती है और एक कमजोर आदमी को भी जुझारू बनाती है।

इन पृष्ठो मे जो फूल चुने गये है, वे बाग-बाग के है। मै उन फूलो की विधाता होने का श्रेय नही ले सकती, क्यो कि उन्हे न मैं ने सीचा है, न पनपाया है। मै ने तो उन्हे इस गुलदस्ते मे लगा दिया है। स्मृतियो के इन फूलो मे सत्य और सत्त्व इतिहास

का ह, उन स्मृतियों के सरोकार का है निन्न मेरा है। दूसरे शब्दों में स्वण गान का
ह, गहाव और कहीं-कहीं जडाव भरा ह।
नम्रता के साथ इतना अवश्य कह सकती हूँ कि राष्ट्र की स्वतन्त्रता के
इतिहास में सरदार अजुन सिंह सरदार किशन सिंह सरदार अजीत सिंह और
सरदार स्वण सिंह का जो दान है उसे नताओ ने हो नही इतिहास लेखकों न भी
लगभग भला दिया है और भगत सिंह पर भी जिन्हा न लिखा है उन के पास उन
के व्यक्तित्व का कोई पूण चित्र न था। इस स्थिति में उन का पूण प्रतिमा का सजन
किसी के लिए सम्भव ही न था। भगत सिंह सशस्त्र क्रान्ति के प्रतीक हो गय और
उन का चित्र घर घर में पहुँच गया। इस म स्पष्ट है कि उन के प्रति जनता के
मन में ऊचा भाव है पर इस से इनकार नही किया जा सकता कि यह ऊचा भाव
उन के बलिदान के प्रति आदर मूलक है। मेरा प्रयत्न रहा है कि यह ऊचा भाव
यथाथ पर आश्रित हो कर ठोस बन जाय। दूसरे शब्दों में देश की नयी पीढ़ी
उन के नाम से नही उन के कामों से प्रेरणा ले और सोच कि ऐसा तो हमें भी
करना चाहिए हम भी कर सकते हैं।
देश की नयी पीढी को आदश अनुप्राणित करते हैं। वे यादगार जीवित व्यक्तियों
के जीवन हों या इतिहास के। स्वतन्त्रता के बाद स्वतन्त्रता के अभिलाषा सजित ऐसे
रूप में नयी पीढी के सामने आये कि उस के आदश न बन सके। इस से भी बड़ा
दुर्भाग्य यह हुआ कि नयी पीढी के सामने स्वतन्त्रता के लिए किये गये सघर्षों और
बलिदानों का इतिहास भी प्रस्तुत न हो सका। परिणाम यह हुआ कि उस का प्रेरणा
के स्रोत ही सूख गये। स्वतन्त्र भारत के जीवन का यह एक बहुत कड़वा सत्य है कि
हम ने अपने इतिहास के साथ गद्दारी की है अपने शहीदों के साथ गद्दारी की है। इस
का ज्ञान तो मुझे था पर साक्षात्कार हुआ १९६३ से १९६८ तक के समय में जब मैं
इस ग्रन्थ की तयारी और लेखन में जुटी रही। विचार और घटना की एक एक कड़ी
जोड़ने में मुझे महीनों लग जाते पर कड़ी न मिलती। लम्बा पत्र-व्यवहार करना पड़ता
और उन लोगों से सम्पक साधना पड़ता, जिन की स्मृतियाँ ही उस इतिहास का एक
मात्र अभिलेखागार (नेशनल आरकाइव्ज) है। यह देख कर मन दु ख से भर जाता है
कि ये स्मृतियाँ भी अब अस्त-व्यस्त होती जा रही है। इन अस्त-व्यस्त कड़ियों को जोड़ने
मे मुझे उसी तरह सतक परिश्रम करना पडा है जसे टूटी हड्डियों को अपनी जगह
बठाने में करना पड़ता है। क्रान्तिकारियों को सघष का जो जीवन स्वतन्त्रता से पहले
और उपेक्षा एव आत्म-हनन का जो जीवन स्वतन्त्रता के बाद जीना पड़ा है उस में
किसी का मानसिक रूप से पूण स्वस्थ रहना असम्भव है। ऐसा मालूम होता है कि
इतिहास का भी कुछ महत्व है राष्ट्र के लिए वह स्मरणीय और संग्रहणीय है इसे
मानना तो दूर सोचने से भी हम ने इनकार कर दिया है। मेरे कतव्य का तकाजा है
कि मैं अँधेरे जगल के अकेले दीप की तरह अन्तरात्मा की प्रेरणा से जीवन के ७-८ वष

चुपचाप क्रान्तिकारियों के इतिहास की टिप्पणियाँ तैयार करने मे लगाने वाले आदरणीय पत्रकार श्री फूलचन्द जैन (मिलाप भवन, सब्जी मण्डी, दिल्ली) का स्मरणीय नाम यहाँ लूँ। आठ घण्टे रोज वे राष्ट्रीय अभिलेखागार मे लगाते रहे है और क्रान्तिकारियो के सम्बन्ध मे वहाँ की दुर्लभ फाइलो मे जो उल्लेख हैं, उन की सक्षिप्त टिप्पणियाँ और सन्दर्भ नोट करते रहे हैं। इन टिप्पणियो से उन का घर ही छोटा अभिलेखागार हो गया है। उन के पास ५–७ हजार पृष्ठो की सामग्री है।

जब उन्हो ने मुझे बताया कि इन पृष्ठों मे १५००० क्रान्तिकारियो के सम्बन्ध मे जानकारी है, तो मैं स्तब्ध रह गयी। क्या इतने बलिदानी इतिहास की उपेक्षा कर कोई देश महान् हो सकता है? फिर यह उपेक्षा सिर्फ क्रान्तिकारी इतिहास की ही तो नही हुई? दादाभाई नौरोजी के कार्यो को हम ने कहाँ सग्रहीत किया है? बग-भग का विवरण कहाँ है? छोडिए इन सब को, ससार की सब से बडी क्रान्ति—'अँगरेजो, भारत छोडो' (१९४२) का कोई इतिहास हमारे पास है? क्या इतिहास की यह उपेक्षा राष्ट्र के लिए घातक नही है? बहुत नम्रता के साथ कहूँ कि जो कुछ अगले पृष्ठो मे है, वह इस समय न लिखा जाता, तो फिर कभी लिखा ही नही जा सकता था!! मुझे प्रसन्नता है कि इन पृष्ठो मे सरदार अजीत सिंह की विस्मृत विशिष्टता, सरदार किशन सिंह की उपेक्षित विशालता और भगत सिंह की बलिदानी चकाचौध मे छिपी युग-प्रवर्तकता आ गयी हैं और आतकवाद एवं क्रान्ति की मध्यरेखा भी चिह्नित हो सकी है।

मेरे परिश्रम की सार्थकता इसी मे है कि देश की नयी पीढी के युवक-युवती देश-भक्ति के रग मे रग जायें और देश के नव निर्माण मे अपना भाग अदा करने के लिए श्री अजीत सिंह सत्यार्थी के शब्दो मे सोचे—

"सम वन मस्ट वीप, सो दैट अदर्स मे लाफ,
सम वन मस्ट सफर, सो दैट अदर्स मे सेव,
सम वन मस्ट डाई, सो दैट अदर्स मे लिव।"

अर्थात् किसी एक को रोना चाहिए जिस से दूसरे अनेक हँस सकें, किसी एक को यातना भोगनी चाहिए, जिस से दूसरे अनेक सुरक्षित हों, किसी एक को मरना चाहिए, जिस से दूसरे अनेक जीवित रहे।

हमारा सकल्प हो कि वह एक हम होगे और वे अनेक हमारे देशवासी। इसी मे हमारी तरुणाई की शोभा है, इसी मे हमारे भारत का उज्ज्वल भविष्य है।

— वीरेन्द्र सिन्धु

भगत निवास ० प्रद्युम्न नगर,
सहारनपुर, उत्तर प्रदेश
२८ सितम्बर १९६८.

मेरा मस्तक नत है

देश का बँटवारा हुआ। लाखों उजड़े और उखड़े। हमारा परिवार भी उन में था। जब दूसरे लोग जेवर रुपये और कीमती सामान बाँधने की चिन्ता में थे मेरे चाचा जी (सरदार कुन्दार सिंह) वे समाचार पत्र कागज कापियाँ और पुस्तकें बाँध रहे थे जिन में उन लोगों के जीवन और कार्यों की चर्चा थी जिन का इस ग्रन्थ में विकास हुआ। उस के बाद भी वे इस सामग्री का उपयोग करने की बराबर प्रेरणा देते रहे। इस ग्रन्थ के लेखन के समय भी तथ्यों सन-संवतों और घटनाओं की कड़ियों के मिलान में मुझे उन के स्मृति भण्डार का सहारा बराबर मिलता रहा।

आदरणीय श्री नमिचरण मित्तल से मेरी लेखन प्रवृत्ति को आरम्भ में प्रोत्साहन मिला और भगत सिंह के सम्बन्ध में सामग्री संग्रह करने की भावना भी। तभी से यह आन्दोलन बना कि भगत सिंह और दूसरे लोगों के सम्बन्ध में जो चीज जहाँ मिला संग्रह की। यह क्रम १९६४ से चला और ग्रन्थ के पूर्ण होने तक चलता ही रहा। इसी बीच में सब श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल भगवान दास माहौर राजाराम शास्त्री, विजय कुमार सिन्हा सत्यदेव विद्यालंकार काशीराम जतीन्द्र नाथ सान्याल यशपाल श्रीमती शान्ता बन्देव प्राणनाथ मेहता एडवोकेट दीवानाथ सिद्धान्तालंकार रतनलाल बसल अजय घोष रामचरण लाल जयचन्द्र कपूर चन्द्रगुप्त विद्यालंकार डॉ० एच० चन्द्रा आचार्य नरेन्द्रदेव महात्मा गाधी जवाहरलाल नेहरू श्रीमती सुभद्रा जोशी डॉ० पट्टाभि सीतारमैया आसफ अली, लाला पिण्डीदास, लाला जसवन्त राय बाबा सोहन सिंह भकना शिव वर्मा योगेश चटर्जी बालकृष्ण शर्मा नवीन डॉक्टर सत्यपाल रणजीत सिंह एडवोकेट कुमारी लज्जावती और श्री वीरेन्द्र के उन संस्मरणों और सूक्तियों का संग्रह हुआ जिन से इस ग्रन्थ के विवरण विश्लेषण और निष्कर्ष पुष्ट भी हुए और अलंकृत भी।

इन के साथ ही सवश्री लाला किरणचन्द्र दास मास्टर चरणजीत सिंह, जयदेव गुप्ता सरदार कुल्बीर सिंह सरदार रणवीर सिंह पजनौया माता विद्यावती जी, बीबी अमर कौर प्रोफेसर जगमोहन सिंह और कन्हैया जन के अध्ययन और स्मृति भण्डार के उपहारों से भी तथ्यों के परिष्कार और जीवन गाथाओं के संस्कार में ऐसी सहायता मिली जिस के बिना कल्पना निश्चित था। नवभारत टाइम्स' के सम्पादक अक्षय कुमार जैन और ज्योतिषाचार्य और लेखक श्री केदार नाथ प्रभाकर ने

हर थकान में, नया जीवन और विकास के सम्पादक श्री अखिलेश जी ने हर व्यवस्था मे और कलाकार सरदार तारा सिंह ने फोटोग्राफी मे सदा सहृदय सहयोग दिया।

अपने आध्यात्मिक पिता और मार्गदर्शक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के सम्बन्ध मे शब्दो के द्वारा कुछ कहना असम्भव है। उन के विना इस ग्रन्थ का ऐसे परिपुष्ट रूप मे निर्मित होना असम्भव था। १७ मई १९६७ को जब ग्रन्थ का लेखन आरम्भिक स्थिति मे ही था, उन्हे भयकर रक्तस्राव हो गया। विशेषज्ञोको आश्चर्य है कि उनका जीवन वच कैसे गया। आघात इतना प्रचण्ड था कि ग्रन्थ पूर्ण होने के समय तक भी वे अपने लेखन-सम्पादन के कार्य आरम्भ नही कर सके। इस स्थिति मे भी उनका सतर्क मार्ग-दर्शन मुझे सतत मिलता रहा। इस सीमा तक कि ग्रन्थ मे ऐसा कुछ भी नही है, जिस पर उन के परिश्रम, प्रतिभा और प्रोत्साहन की छाप न हो। भारतीय ज्ञानपीठ की अध्यक्षा श्रीमती रमा जैन का आशीर्वाद और मन्त्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन का स्नेह ही है, जिस से ग्रन्थ के प्रकाशन की ऐसी सुन्दर व्यवस्था सम्भव हुई। राष्ट्रीय साहसके प्रतिनिधि और केन्द्रीय गृहमन्त्री आदरणीय श्री यशवन्तराव चह्वाण ने अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी मगल-वचन लिखने की कृपा की। और अनेक राजनीतिज्ञो, साहित्य-साधको और जीवन साधको ने प्रसन्नतापूर्ण साधुवचनोंसे मेरी झोली भर दी। हृदय की भावना शब्दो मे कैसे कहूँ ?

इन सब के प्रति मेरा मस्तक कृतज्ञता और आदर से नत है।

— वीरेन्द्र सिन्धु

'यह तो क्रान्ति का वेद है'

साधना ० सिद्धों की दृष्टि मे

• महामहिम दादा साहेब चिन्तामणि पागे, राज्यपाल पंजाब—

इतिहास देश की नयी पीढ़ियों को अतीत से जोड़ता है इस नाते वह एक पाठ है। इतिहास वर्तमान के प्रयत्नों को दिशा देता है इस तरह वह एक प्रेरणा है। यह ग्रन्थ इतिहास के दोनों लक्ष्य पूरे करता है।

• पूज्य श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर, सरसंघचालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ—

हुतात्मा भगत सिंह और उनके अनुपमेय राष्ट्रभक्त पूर्वजों की जीवनगाथा, उन्हीं के वंश में उत्पन्न लेखिका यह अपूर्व संयोग है। ग्रन्थ की प्रामाणिकता सजीवता और प्रेरणा निःसंदिग्ध है।

• श्री सूरजभान उपकुलपति पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़—

वीरों की प्रेरक कथा के साथ ही यह ग्रन्थ १९०३ से १०५० तक के महत्व पूर्ण राष्ट्रीय युग की मार्मिक ऐतिहासिक घटनाओं का विश्वसनीय भण्डार भी है।

• श्री रामकरन सिंह उपकुलपति मेरठ विश्वविद्यालय—

यह ग्रन्थ प्रकाश की तरह प्रत्येक देशवासी को प्रिय होगा। लेखिका के प्रति मैं सम्मान प्रकट करता हूँ।

• श्री जगजीवनराम, केन्द्रीय खाद्यमन्त्री और दलितों के नेता—

वीरेन्द्र सिंधु ने इस ग्रन्थ के रूप में वह कार्य कर दिखाया जो १९०८ से १९६८ के मध्य भारत की किसी भी भाषा में नहीं हो सका था।

• प्रोफेसर वी० के० आर० वी० राव, केन्द्रीय यातायात जहाजरानी-मन्त्री—

इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन से सम्बन्धित ऐतिहासिक दस्तावेजों के अभाव को पूर्ण करता है।

• श्री अटलबिहारी वाजपेयी, अध्यक्ष भारतीय जनसंघ—

ग्रन्थ सुरक्षा प्रवाहपूर्ण और आज के युग है और ऐसी अनेक घटनाओं और तथ्यों को प्रकट करता है जो अभी तक विस्मृति के गर्त में दबे पड़े थे।

• श्री मनमोहन स्नातक पत्रकार और कांग्रेस-नेता—

इतिहास और साहित्य का सुन्दर संगम है यह ग्रन्थ। इसने सारी इतना सजीव पूर्ण है कि लगता है कि हम उस युग को फिर देख रहे हैं।

० डॉ० यशवन्तसिंह परमार, मुख्यमन्त्री हिमाचल प्रदेश—

ग्रन्थ प्रशंसा के योग्य है। इस की वास्तविक प्रशसा यह होगी कि प्रत्येक युवक-युवती इसे पढे।

० श्री सीताराम केसरी, संसद्-सदस्य (कॉग्रेस)—

इस ग्रन्थ की लेखिका सामान्य प्रशंसा की नही, राष्ट्रीय सम्मान की हकदार है।

० श्री नारायणस्वरूप शर्मा, संसद्-सदस्य (जनसंघ)—

इतिहास की धुँधली और दुर्गम गहराइयो मे उतरने का लेखिका ने जो गम्भीर और सतर्क काम किया, वह ग्रन्थ के हर पृष्ठ पर सजीव रूप मे झलकता है।

० श्री प्रकाशवीर शास्त्री, संसद्-सदस्य (निर्दल)—

ओझल इतिहास को नयी पीढी की आँखो तक पहुँचाने के इस सत्प्रयास का अभिनन्दन।

० डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु, लेखक, समीक्षक, राजनीतिज्ञ—

यह ग्रन्थ इतिहास के ऐसे पृष्ठ हमे देता है, जो अब तक न लिखे जाते, तो फिर कभी न लिखे जाते।

० श्री ठाकुरप्रसाद सिंह, लेखक और प्रशासक—

राज-परिवारो की चकाचौध मे वलिदानी परिवारो की उपेक्षा इतिहास की भूल रही। मूल्याकन की विधि वदलने की चुनौती स्वीकार किये विना भूल का परिहार सम्भव नही। वहन वीरेन्द्र सिन्धु ने इस ग्रन्थ मे इसी चुनौती को स्वीकारा है। इतिहास इन का आभार मानेगा।

० श्री सूर्यनारायण व्यास, महान् ज्योतिषी, लेखक और पत्रकार—

यह तो क्रान्ति का वेद है। जनता श्रद्धा से पढेगी और इस की अर्चना करेगी।

० श्री लक्ष्मीविलास विड़ला, लेखक, अर्थशास्त्री और उद्योगपति—

इतिहास की घटनाओ का क्रम असन्दिग्ध। राष्ट्रीय दृष्टि से ग्रन्थ अमूल्य।

० श्री द्वारका प्रसाद मिश्र, लेखक, पत्रकार, पूर्व मुख्यमन्त्री म० प्र०—

अभी तक प्रामाणिक विवेचन अप्राप्य था। वह वहुत ऊँचे स्तर पर पूर्ण हो गया है।

० श्री कमलापति त्रिपाठी, लेखक, पत्रकार उ० प्र० कॉग्रेसाध्यक्ष—

स्वतन्त्रता-सग्राम के इतिहास मे विस्मृत एव अपूर्ण पृष्ठो का यह सयोजन है।

० श्री हरदेव जोशी, राष्ट्रचिन्तक एवं राजस्थान के उद्योगमन्त्री—

विषय की दूसरी पुस्तको से श्रेष्ठ, सुरुचिकर और प्रभावपूर्ण ग्रन्थ।

० डॉ० भगवानदास माहोर, क्रान्तिकारी, लेखक और प्राध्यापक—

इस लेखनी की शक्ति और प्राणवान सौन्दर्य से वहुत प्रभावित हूँ।

• श्री श्रीकृष्ण सरल, भगतसिंह महाकाव्य के प्रणेता—
राष्ट्र का इतिहास रक्ताक्षरों से लिखने वालों का यह स्वर्णाक्षरों से लिखा इतिहास है।

• श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, मान्य लेखक और पत्रकार—
लेखिका की ऐतिहासिक संवेदनशीलता के कारण ग्रन्थ इतिहास होकर भी साहित्य का नक्षत्र बन गया है।

• श्री यादवराव, प्रबन्ध सम्पादक 'तरुण भारत'—
क्रान्ति इतिहास के लिए जिस संगठित प्रयास की आवश्यकता है, यह ग्रन्थ उसका सफल श्रीगणेश है।

• श्री दिनेश सिंह, केन्द्रीय वाणिज्यमन्त्री—
इतिहास के दुर्लभ तथ्यों को एक ही स्थान पर प्रस्तुत करने में लेखिका किसी भी अन्य की अपेक्षा अधिक सफल हुई।

• श्री सुरेन्द्रमोहन घोष क्रान्तिकारी, पूर्व उपनेता कां० पार्लामण्टरी कमेटी—
क्रान्तिकारी इतिहास के अनेक अनलिखे पृष्ठों का लिखित रूप है यह ग्रन्थ।

• मा० चरणनाथ सिंह, स्वतन्त्रता-साधक, शहीद पूनक—
जीना हम हैं नहीं क्योंकि मृत्यु निश्चित है और मरना हमें आता नहीं क्योंकि हम मृत्यु से डरते हैं। यह ग्रन्थ जीने और मरने की कला सिखाता है। यह तो युग ग्रन्थ है।

• श्री वचनेश त्रिपाठी, सम्पादक 'राष्ट्रधर्म'—
युग बीतेंगे हम आप न होंगे पर यह ग्रन्थ तब भी प्रभावपूर्ण रहेगा।

• श्री चन्द्रभानु गुप्त पूर्व मुख्यमन्त्री और काँग्रेस नेता—
ग्रन्थ उस अभाव का पूरक है जो वर्षों से खटक रहा था और देशप्रेमका प्रेरक है।

• डॉ० बी० एल० आत्रेय विश्वविख्यात दार्शनिक—
भारत के राष्ट्रीय इतिहास को यह लेखिका का महत्वपूर्ण दान है।

• श्री विद्याचरण शुक्ल, केन्द्रीय गृह राज्यमन्त्री—
ग्रन्थ भारत के इतिहास-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने का अधिकारी है।

■

युगद्रष्टा भगत सिंह

और उनके मृत्युंजय पुरखे

१

क्रान्ति के अरुणोदय : सरदार अर्जुन सिंह

सरदार किशन सिंह
(पिता शहीद भगत सिंह)
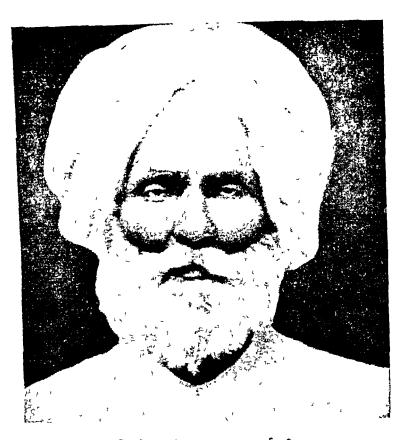
श्रीमती विद्यावती
माता शहीद भगत सिंह)
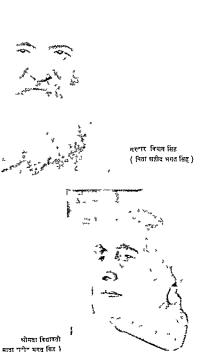
सरदार अजीत सिह : विदेश प्रवास से पूर्व

शहीद भगत सिंह की दादी

सरदार अजीत सिंह ब्राजील में

दसवर्षीय भगत सिंह   दुर्लभ चित्र

पहली गिरफ्तारी के समय
भगत सिंह
(दशहरा वमकाण्ड)

भगत सिंह
संसद् में वम फेंकने के समय

Freedom :—

Men! whose boast it is that ye
Come of fathers, brave and free,
If there breathe on earth a slave,
Are ye truly free and brave?
If you do not feel the chain
When it works a brother's pain,
Are ye not base slaves indeed,
Slaves unworthy to be freed?

Is true Freedom but to break
Fetters for our own dear sake,
And, with leathern hearts, forget
That we owe mankind a debt?
No! True Freedom is to share
All the chains our brothers wear,
And, with heart and hand, to be
Earnest to make others free!

They are slaves who fear to speak
For the fallen and the weak;
They are slaves who will not choose
Hatred, scoffing and abuse,
Rather than in silence shrink
From the truth they needs must think;
They are slaves who dare not be
In the right with two or three.

"James Russell Lowell"

9.59

भगत सिंह की अँगरेजी हस्तलिपि · जेल में लिखी डायरी से

आत्म विश्वास का उद्बोधन भी किया। इतिहास का कितना अद्भुत संयोग है कि कांग्रेस की स्थापना के दिनों में ही आर्यसमाज की स्थापना हुई और इस प्रकार देश में नव जागरण काल का आरम्भ हो गया।

अब देश के बौद्धिक वर्ग के सामने दो निमन्त्रण एक साथ थे — अंगरेजों के सहार से समाज में अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण यह कांग्रेस की राह थी और पूरे समाज को जाग्रत करना, उसे उभारना उठाना यह आर्यसमाज की राह थी। कितनी विचित्र बात है कि एक ही वृक्ष पर इन दो ही सार्थ ऐसा निमन्त्रणों का प्रभाव पड़ा। यह वृक्ष था हमारा वंश। इस से एक बात तो स्पष्ट है कि इस वंश का रक्त प्रबुद्ध था क्यों कि प्रबुद्ध रक्त प्रबुद्ध मानस ही बाहरी प्रभाव को इतना तेजी और तत्परता से ग्रहण कर सकता है। सरदार राम सिंह के तीन पुत्र थे — सरदार सुजन सिंह सरदार अर्जुन सिंह और सरदार मेहर सिंह। सब से छोटे भाई सरदार मेहर सिंह का जीवन एक साधारण किसान का जीवन रहा और वे युग के उफानों से अछूते रहे। सब से बड़े भाई सरदार सुजन सिंह अंगरेजों के साथ जा खड़े हुए, पदों पर बढ़े और पद से फैले। उन के पुत्र सरदार बहादुर दिलबाग सिंह ने उस युग की सरकार का सब से बड़ा तोहफा ओ॰ बी॰ ई॰ (ऑर्डर ऑव ब्रिटिश एम्पायर) का खिताब पाया और सरकार का दायाँ हाथ बन कर रहे। यह भी एक कहानी है।

लाहौर में कांग्रेस का जो अधिवेशन दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ उस में सरदार सुजन सिंह और सरदार अर्जुन सिंह दोनों भाई जालन्धर से प्रतिनिधि बन कर गये। दोनों ने अपने-अपने हाथों में झण्डे ले रखे थे और दोनों ही देहाती वेश में थे। जालन्धर स्टेशन पर जब वह ट्रेन पहुँची जिस से दादा भाई लाहौर जा रहे थे और दूसरे प्रतिनिधि भी तो जालन्धर के प्रसिद्ध वकील रायजादा भगतराम ने इन दोनों का परिचय दादा भाई से कराया। सब प्रतिनिधि सूट-बूट में होते थे उस युग में किसान प्रतिनिधि ये ही दो थे और कांग्रेस में ऐसे प्रतिनिधि पहली बार ही सम्मिलित हो रहे थे। इस लिए दादा भाई इन से मिल कर बहुत खुश हुए और इन दोनों को उन्हों ने अपने ही डिब्बे में बैठा लिया। लाहौर में भी ये दोनों अपने रंग ढंग के कारण सब का ध्यान आकर्षित किये रहे और दादा भाई बराबर इन की खोज-खबर लेते रहे।

इस से साफ है कि दोनों ही आरम्भ में सार्वजनिक जीवन में साथ थे, पर एक घटना ने दोनों के रास्ते अलग कर दिये। गाँव का एक दरजी बाहर गया था वहाँ से वह लौटा तो प्लेग साथ लाया। अंततः देखते देखते यह छूतिया रोग गाँव भर में फैल गया। अँगरेज कलक्टर ने हुक्म दिया कि जिन घरों में प्लेग के केस हैं उन्हें ढहा दिया जाय। सरदार अर्जुन सिंह इस के विरोधी थे। उन का कहना था कि बाद में उन घरों का बनाना गरीब किसानों के लिए असम्भव होगा और इस तरह वे लोग हमेशा के लिए उजड़ जायेंगे। यदि सरकार घर ढहाने का हुक्म देती है तो यह आश्वासन भी दे कि

वाद मे वह उन्हे वनवा देगी । कलक्टर इस पर तैयार न था । सरदार सुर्जन सिंह इस मामले मे कलक्टर के समर्थक हो गये और फिर ऐसे वहे कि सरकार-परस्ती ही उन का धर्म वन गया ।

सरदार अर्जुन सिंह ने ऋपि दयानन्द के दर्शन किये तो मुग्ध हो गये और उन का भापण सुना तो नव-जागरण की सामाजिक सेना मे भरती हो कर आर्य समाजी वन गये । वे उन थोडे से लोगो मे थे, जिन्हे स्वयं ऋपि दयानन्द ने दीक्षा दी थी, यज्ञोपवीत अपने हाथ से पहनाया था । यह सरदार अर्जुन सिह का सास्कृतिक पुनर्जन्म था । मास खाना उन्होने छोड दिया, शराव की वोतल नाली मे फेंक दी । हवन-कुण्ड उन का साथी हो गया और सन्ध्या-प्रार्थना सहचरी । उन का जीवन पूरी तरह वदल गया था और यह वदल एक क्रान्तिकारी छलॉग थी । इस छलॉग की शक्ति का सही अन्दाजा वे ही लगा सकते है जो उस युग की सामाजिक जकडन और राजनैतिक शून्यता एवं अवसाद को सही-सही आँक सकते है । यह काम सरल नही है, क्यो कि हमारी पीढा की वह दुलहिन जो विवाह के कुछ दिन वाद ही खुले मुँह नही, खुले सिर अपने पति के साथ हँसते-वोलते सिनेमा देखने जाती है, उस दुलहिन के जीवन का कैसे एहसास कर सकती है, जिस का मुँह तो दूर, उस के पति के अतिरिक्त, परिवार के ही दूसरे पुरुपो के द्वारा आँचल देखना भी पतन माना जाता था और उस की श्रेष्ठता की कसौटी यह थी कि उस की आवाज कोई न सुने, वह किसी की तरफ आँख उठा कर न देखे । सचमुच सरदार अर्जुन सिंह का आर्यसमाजी होना एक वडा क्रान्तिकारी कदम था । इसे यो समझा जा सकता है कि किसी हिन्दू का आर्यसमाजी हो जाना ही वडी वात थी, फिर सरदार अर्जुन सिंह तो सिख से आर्यसमाजी हुए थे । मन्दिर से ही आर्यसमाज का भवन काफी दूर था, पर वे तो गुरुद्वारे से चल कर आर्यसमाज भवन पहुँचे थे, जो और भी दूर था ।

वे पहले जाट सिख थे, जिन्हो ने वडे और मँझले बेटे किशन सिह और अजीत सिह को साईदास ऍंग्लो सस्कृत हाई स्कूल जालन्धर मे शिक्षा प्राप्त करने भेजा और स्वयं भी वही रायजादा भगतराम वकील के मुन्शी हो गये । उन्हो ने दीक्षा ले कर ही सन्तोप नही किया, अपने को इस योग्य भी वनाया कि दूसरो को दीक्षा दे सकें । उन्हो ने ऋपि दयानन्द के मिशन को पूरी तरह समझा और अपने विचारो को पूरी तरह उन के साँचे मे ढाला, उन्हो ने आर्यसमाज के साहित्य का वहुत गहरा अध्ययन किया । इस गहराई का पता इस से चलता है कि सनातनधर्मी पण्डितो के साथ मूर्त्तिपूजा और श्राद्ध-जैसे विपयो पर हुए कई शास्त्रार्थो मे वे ही आर्यसमाज के प्रमुख प्रवक्ता रहे और आर्य-समाज के उत्सवो मे दूर-दूर भापण देने के लिए जाते रहे । वे अपने क्षेत्र के प्रमुख आर्य-समाजी नेताओ मे गिने जाते थे । और हर काम मे उन की सलाह मानी जाती थी ।

सरदार अर्जुन सिह के व्यक्तित्व की दो विशेपताएँ थी । पहली, परिश्रमशीलता और दूसरी, सामाजिक सुधार की दृष्टि । वात को साफ करने के लिए मै कहना चाहूँगी

क्राति दृष्टि । व जीवन की जड़ता के घोर विरोधी थे और प्रगति के पूरे समर्थक । यह
कितनी बडी बात है कि उन्हो ने अपने ही परिश्रम से संस्कृत, हिंदी उर्दू फारसी और
गुरमुखी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था । और कचहरी एवं आर्यसमाज का काम
करते हुए ही व यूनानी हिकमत के सफल हकीम बन गये थे । तुरंत निर्णय करना और
फिर पूरी दृढ़ता के साथ उस निर्णय पर जमे रहना उन का स्वभाव था । वे जालंधर
म अच्छी जिंदगी जी रहे थे पर जब अंगरेजी सरकार ने बार (जंगली इलाका)
बसाने और वहा जा कर बसने वाले हर परिवार का पचास एकड़ (एक मुरब्बा)
जमीन देने की घोषणा की तो व लायलपुर जिले के बगा गांव म जा बसे और खेती के
साथ चिकित्सा का काम भी करने लगे । यह लगभग सन १९०० की बात है ।

सरदार अर्जुन सिंह हिकमत जानते थे इस कथन का कोई अर्थ नहीं । व एक
अच्छे हकीम थे यह भी साधारण परिचय है । उन की साधना की गहराई इस से बहुत
आगे थी । असल में जुट जाना काम के साथ पूरी योग्यता पूरी सामर्थ्य के साथ एक
रस हो जाना ही उन का व्यक्तित्व था उन का चरित्र था । एक वकील के मुंशी
होते हुए उन्हों ने यूनानी चिकित्सा-पद्धति पर किस हद तक काबू पा लिया था और
अपनी सिद्धि पर उन्हें कितना भरोसा था इसका पता एक संस्मरण से लगता है ।

महाराजा कपूरथला की चिकित्सा के लिए दिल्ली से हकीम अजमल खाँ पधारे ।
सरदार अर्जुन सिंह के मन की जिज्ञासा थी—हकीम जी राजा महाराजाओं का इलाज
करते हैं इसी लिए उन का इतना नाम है या सचमुच व एक महान हकीम हैं और
मुझ से ज्यादा जानते हैं ? व कपूरथला जा पहुंचे और दो दिन तक हकीम अजमल खाँ
से भिन्न भिन्न रोगों के सम्बन्ध में बातें करते रहे । शास्त्रार्थ करने में उन का नाम था
इस लिए बहुत बार इन बातों ने बहस का रूप ले लिया पर हकीम जी भी उन की
बातों में गहरी दिलचस्पी ले रहे थे इस लिए बातें जारी रहीं । तीसरे दिन सरदार
अर्जुन सिंह ने कहा सचमुच आप हिकमत के बादशाह हैं मैं आप का सिर झुकाता
हूं । हकीम साहब ने भी उन के ज्ञान की गहराई पर खुशी जाहिर की । इस के बाद
व बराबर हकीम जी से पत्र-व्यवहार कर अपना ज्ञान बढ़ाते रहे । ऐसा अद्भुत
व्यक्तित्व था सरदार अर्जुन सिंह का । वे अन्न के ही किसान नहीं थे ज्ञान के भी
किसान थे ।

लायलपुर का जमीन सोना उगलने वाली जमीन था । सरदार अर्जुन सिंह के
लिए बड़ी धरती धनवान बनने का पूरा अवसर था । आर्थिक दृष्टि से वे काफी आगे बढ़े भी
पर सिर्फ तब सोना उगलता है जब बाद सिर्फ उस का ही हो जाय—अपने को उस में
खपा दे । उन के लिए यह सम्भव न था । आज यहां जुलूस है कल वहां जलसा है
और परसों वहां कोई शास्त्रार्थ या मेला है । उन का एक पैर खेत में और दूसरा मंच
पर रहता था । उन का मूल वृत्ति परिग्रह की नहीं त्याग की थी । उन का संकल्प था
कि कुछ कर दिखाने का दावा ले कर देश भर में राष्ट्रीय चरित्र के विचारों का प्रचार करें

युगद्रष्टा भगत सिंह

मे जीवन लगायेंगे। और उन के पुत्र काम को सँभाल लेंगे, पर उन के बेटे जवान हुए तो उन्हो ने घर का नही देश का काम सँभाला और सरदार अर्जुन सिह को हाथ मे लेना पडा परिवार का पालन-पोषण और बेटो के मुकदमो की पैरवी। सन्यास लेने का सकल्प भी उन का था और पुत्रो को देश-भक्ति का पाठ भी उन्हो ने ही पढाया था। भविष्य कितना अज्ञेय है—मनुष्य क्या सोचता है, क्या हो जाता है। सरदार अर्जुन सिह अपने ही बोये खेत तो काट रहे थे, अकेले घर की देख-भाल करते हुए।

अँगरेज सरकार आर्यसमाज को फूटी आँखो भी देखना पसन्द न करती थी। बात ठीक भी थी। दीन-हीन और अज्ञानी समाज ही किसी का गुलाम रह सकता है, आत्म-विश्वास और अपने उज्ज्वल अतीत के ज्ञान से प्रकाशित समाज गुलाम नही रह सकता। दूरदर्शी अँगरेज खूब समझते थे कि आर्यसमाज का जागरण कल के उत्थान की भूमिका है, जिसे कुचलना सम्भव नही होगा। वे क्रान्ति के इस वृक्ष को अकुर मे ही कुचलना चाहते थे, पर उन की दिक्कत यह थी कि इस वृक्ष का तना धर्म का था और फूल-पत्ते समाज-सुधार के। धर्म पर आघात होते ही भारत की जनता जिस तरह १८५७ मे उबल पडी थी, उसे अँगरेज न भूले थे, न भूल सकते थे इस लिए वे बच कर ही उन पर आक्रमण करते थे।

फ्रान्स मे जब ईसाई धर्म का बुद्धिवादी प्रोटेस्टैण्ट रूप उभरा तो उस की स्थिति आर्यसमाज-जैसी थी। वहाँ के राजा ने, जो कैथोलिक ईसाई था, प्रोटेस्टैण्टो पर ऐसे और इतने अत्याचार किये, जिन का इतिहास मे कोई जोड नही। फ्रान्स के राजा का दृष्टिकोण भी वही था, जो भारत के अँगरेज शासको का कि जनता को समाज-सुधार के काम करने दिये गये, तो कल वह राजनैतिक सुधार भी माँगेगी पर भारत और फ्रान्स की स्थितियाँ अलग-अलग थी। फ्रान्स का राजा फ्रान्सीसी था और धर्म के एक स्वरूप पर आक्रमण करने के लिए उस के हाथ मे धर्म के ही दूसरे स्वरूप की तलवार थी। वह तलवार मे तलवार को काट सकता था, पर अँगरेज विदेशी थे और भारत की धर्मप्राण जनता उन के अत्याचारो से भडक सकती थी, इस लिए वे कूटनीति से काम लेते थे और फ्रान्स के राजा की तरह आर्यसमाज पर सीधा वार न कर धर्म को धर्म से लडाने का दावँ चलते थे। पटियाला का केस एक प्रयोगात्मक परीक्षण था।

देशी राज्यो के राजा अँगरेज गवर्नर जनरल के सामने बिल्ली थे, तो वहाँ की जनता के सामने शेर बबर थे। उन की इच्छा राज्य मे ईश्वर की इच्छा थी और उन का वचन कानून। वे खुले-आम जनता पर मन-माने अत्याचार कर सकते थे, किसी मे बोलने का दम न था। पटियाला के आर्यसमाजियो पर यह मुकदमा चलाया गया कि वे सिखो के गुरु ग्रन्थ साहब का अपमान करते हैं। अँगरेजो का खयाल था कि इस से दो काम एक साथ होगे सिखो और आर्यसमाजियो मे दुश्मनी हो जायेगी और रियासतो के क्षेत्र मे आर्यसमाज की जागरण-क्रान्ति का दीपक बुझ जायेगा। देश-भर मे इस मुकदमे का विरोध हुआ और जम कर इसे लडा गया। बचाव कमेटी मे सरदार अर्जुन

क्रान्ति के अरुणोदय : ····

सिंह भी प्रमुख थे। उन्हों ने दूसरे पण्डितों के साथ मिल कर हिन्दुओं के कई ग्रंथों और सिक्खों के गुरु ग्रंथ साहब के लगभग ७०० श्लोक पेश किये जो एक-जैसे थे और सिद्ध किया कि वेद और ग्रंथ साहब एक हैं, समान रूप से आदरणीय हैं। इस वक्तव्य ने सरदार अर्जुन सिंह की समाज निष्ठा पर विद्वत्ता का ऐसा रंग जमाया कि उन का व्यक्तित्व और भी चमक उठा।

लिखना उन की हॉबी भी थी आवश्यकता भी। काम से ज़रा फुरसत मिलती और वे कागज़ कलम ले कर बैठ जाते। लिखते और लिखते चले जाते। कौन पास आया, कौन चला गया, कहां कौन क्या बोला, इस का उन्हें भान ही न होता था। गांव के अनपढ़ वातावरण में बहुत बार फुसफुसाहटों में ये शब्द इधर से उधर आते जाते—जाने क्या सरदार जी हर वक्त क्या लिखते रहते हैं? यह सब आर्यसमाज के परिपत्र होते थे और छप कर दूर दूर तक बँटते थे। कई पुस्तकें भी उन्हों ने लिखी थीं। उन का बहुत सा साहित्य बाद की तलाशियों में पुलिस उठा ले गयी, फिर भी बहुत कुछ सुरक्षित था। दुःख है कि वह सब बँटवारे की भेंट हो गया और इस प्रकार उन के साहित्यिक रूप की कहानी अनलिखी ही रह गयी, हमारे गुरु साहबान बड़ा के परो थे उन का एक किताब थी।

अब वे किसान भी थे, हकीम भी थे, आर्यसमाजी नेता भी थे, पर दृष्टि उन की देश पर ही केंद्रित थी। कांग्रेस पूर्ण राजभक्ति के गीतों की धुन के साथ छोटी छोटी मांगों का अध्याय समाप्त कर राजभक्ति प्रकट करते हुए भी अधिकारों की मांग के युग में प्रवेश कर रही थी। भाषणों की टोन भी गरम हो गयी थी और जनता में आकर्षण भी बढ़ चला था। सरदार अर्जुन सिंह भी उधर झुक गये थे, पर निश्चय ही उस समय उन की आत्मा आर्यसमाज में केंद्रित थी और वे समाज का जीवन जी रहे थे। बंगा में उन्हों ने दो कुएँ बनवाये, एक सराय और एक गुरुद्वारा। राज मिस्त्रियों के साथ लग कर वे स्वयं भी चिनाई का काम करते थे। उन के चरित्र का एक विचित्र और विशिष्ट पहलू यह है कि आर्यसमाजी होने पर भी उन्हों ने बहुमत जनता का ध्यान कर गांव में गुरुद्वारा बनाने में पूरा सहयोग दिया, जब कि गुरुद्वारे में जा कर भी वे ग्रंथ साहब के सामने मत्था नहीं टेकते थे। कहते थे यह तो मूर्ति-पूजा की तरह ही पुस्तक-पूजा है। उस समय आर्यसमाज हर प्रकार के अंधविश्वास का विरोध कर रहा था। उन की दृष्टि में ग्रंथ की शिक्षाओं से लाभ उठाना विश्वास और उस की पूजा अंधविश्वास था। वे सनातनधर्मी पण्डितों के द्वारा धर्म-पुस्तकों पर चन्दन चावल चढ़ाने का भी इसी तरह विरोध करते थे।

इस के साथ यह भी स्मरणीय है कि गुरुद्वारों पर से पुराने दकियानूस महन्तों का प्रभाव हटाने के लिए जो आन्दोलन बाद में चला, उस से सहानुभूति और आन्दोलन के नेताओं के प्रति आदर प्रकट करने के लिए उन्हों ने भी काली पगड़ी पहन ली थी। वे कहीं रुके हुए न थे, प्रगति की हर धारा के साथ थे।

 युगद्रष्टा भगत सिंह

अपने हाथ से काम करने में उन की श्रद्धा थी। वडे परिश्रम से उन्हो ने आम का एक वहुत वडा वाग लगाया था। गरीवो का वे सहारा थे। उन का इलाज तो मुफ्त करते ही थे, पर आवश्यक हो तो दूध भी अपने घर से देते थे। मुकदमे से फँसे किसी गरीव आदमी के काम से वे शहर जाते, तो अपना खाना साथ ले जाते, जिस से उस पर जरा भी वोझ न पडे। इस लिए जहाँ तक सम्भव होता, वे पैदल ही पन्द्रह मील चल कर शहर जाते थे। उस युग मे मजदूरो को मजदूरी नही सिर्फ रोटी ही दी जाती थी, पर वे रोटी पर मजदूरी के पैसे रख कर ही देते थे। उन के इन गुणो की चर्चा दूर-दूर तक थी। कहावत-सी फैल गयी थी चारो ओर, अरे भाई, वडे सरदार जी तो पैसो की सब्जी देते हैं रोटियो पर।

छुआछूत मे उन का विश्वास नही था। अछूतो के साथ वे अपने परिवार वालो-जैसा व्यवहार करते थे। वे लोग भी उन्हे देवता की तरह पूजते थे। एक वार ग्राम वगा जिला लायलपुर से कुछ मेहमान ग्राम खासरिया जिला लाहौर गये। माता जी उन दिनो वहाँ थी नही। घर मे दस वर्ष की अमर कौर थी। घर का काम तो वह किसी-न-किसी तरह चला लेती थी, पर इतने सारे मेहमानो का खाना वनाना उस के वस से वाहर था, इस लिए उस ने एक हरिजन महिला को वुला कर खाना वनवा लिया। इस पर उन मेहमानों ने गाँव मे आ कर खूव हल्ला मचाया और उन के घडे कुएँ पर से उठवाने की वात चलायी। उन्ही दिनो गाँव मे जोहड खुद रहा था। गाँव-भर के पुरुप श्रमदान मे जुटे हुए थे। उन्हे खाना पहुँचाने की जिम्मेदारी सरदार अर्जुन सिंह ने ले ली। खाना जव तैयार हो गया तो उन्हो ने भगी के सिर पर लस्सी का एक मटका रखा, एक चमार के सिर पर दाल का मटका और एक दूसरे चमार के सिर पर रोटियो का टोकरा। जोहड के करीव पहुँच कर एक झाडी की आड़ मे तीनो से वह खाने का सामान रखवा लिया। सव को उन्हो ने रोटी दाल लस्सी परसी। जव, सव खा चुके तो पूछा—क्यो भाइयो, खाने का स्वाद तो नही विगडा ? सव ने खाने की तारीफ की तो वताया—यह खाना झगडू भगी, चेता और छज्जू चमार अपने सिर पर रख कर लाये थे। अव चाहो तो सारे गाँव के घडे कुएँ पर से उठवा दो। इस तरह उन के गाँव मे एक साथ छुआछूत दूर हो गयी।

उन्हे वहुत जल्दी गुस्सा आता था, पर जल्दी ही उतर भी जाता था। जिद्दी वे जरा भी न थे। एक वार उन्हो ने अपने कुछ खेतो मे तम्वाकू वो दिया। सिखो ने इसे अधर्म समझा। उन्हो ने कहा—तम्वाकू को गधे भी नही खाते, सुरक्षित रहता है, लागत कम है और नफा ज्यादा है, इसी से वोया है। उन की वात ठीक थी, पर जव उन्हो ने देखा कि दूसरे लोग इस से दु खी है, तो मान गये और अमृतपान (प्रायश्चित्त) कर लिया। सिद्धान्त और अनुशासन के मामले मे वे वेहद सख्त थे, पर सेवा-सहायता के मामले मे वेहद कोमल। वे ऊँचे दरजे के इन्सान थे। हर साल वे एक वडा यज्ञ करते थे। उस मे वहुत से भजनोपदेशक और विद्वान् आते थे। खूव धूमधाम रहती थी।

नक खतरे, वर्बादी और विध्वंस के खतरे, तो उन्हों ने यही नही कि वाधा नही डाली, खतरो के उस खेल को प्रोत्साहन दिया, उस मे सुख माना, उन्हे शान में झेला और उन पर गर्व किया। आ पडे विध्वंस के बीच वैठ कर शान्त रहना ही दुर्लभ है, पर यहाँ तो निमन्त्रण दे कर वुलाया हुआ विध्वस था।

एक पुत्र भरी जवानी मे शहीद हो गया, दूसरा देश से जलावतन् हो गया, तीसरा हथकडियो की चौसर और वेडियो की शतरज जीवन-भर खेलता रहा, पर जव उन के वडे पोतो जगत सिह और भगत सिह का यज्ञोपवीत सस्कार हुआ तो उन्हो ने एक को अपनी वायी भुजा मे, और दूसरे को दायी भुजा मे भर कर सकल्प किया—"मे अपने दोनो वशधरो को इस यज्ञवेदी पर खडे हो, देश की वलि-वेदी के लिए दान करता हूँ।" वाद मे उन्हो ने ही शिष्टाचार और राष्ट्रीय विचार की शिक्षा उन्हे दी। सव कहते थे—अपने वच्चो को सभ्य वनाना कोई सरदार अर्जुन सिह से सीखे।

कुजी की वात यह है कि वे स्वय वहुत सभ्य मनुष्य थे। मै कहना चाहती हूँ सभ्यता के सव से वडे गुण सहिष्णुता के वे भण्डार थे। वे जन्म से सिख थे, वाद मे आर्यसमाजी हो गये थे, पर उन की पत्नी श्रीमती जय कौर की श्रद्धा सिख धर्म मे अखण्ड थी। सरदार अर्जुन सिह ने उन से आर्यसमाजी होने की कभी ज़िद नही की और उन के धार्मिक कार्यो मे सदा आदर से, स्नेह से सहयोग दिया। यह आदर, यह स्नेह किस सीमा तक था?

जव उन के पोतो का यज्ञोपवीत हुआ, तो दोनो के सिर पर वाल थे। हिन्दू-प्रथा के अनुसार उन का मुण्डन होना था। नाई आ कर वैठा, तो श्रीमती जय कौर का सिख सस्कार विह्वल हो गया। केशो के प्रति उन मे सहज धर्म-भावना थी। उन्हो ने अपने पति से आग्रह किया—"और चाहे जो करो; पर इन के केश मत कटाओ।" वे मान गये—"अच्छा रहने दो, असली चीज तो विश्वास है।"

१९१५-१६ की वात है। जगत सिह को तेज वुखार था। वाद मे वह सरसाम (सन्निपात) मे वदल गया। डॉक्टर की दवा दी गयी। तो उन्हे वार-वार पेशाव आने लगा। हकीम तो वे थे ही। उन्हो ने सोचा : डॉक्टरी दवा की तेजी के कारण ही ऐसा हो रहा है और अपनी दवा दे दी। उस के कुछ समय वाद ही जगत सिह की मृत्यु हो गयी। सन्निपात उस युग मे मृत्यु का रूप ही माना जाता था। यह सम्भव है कि इस मृत्यु मे उन की दवा का कोई हाथ न हो, पर उन के मन मे इस का गहरा सदमा हुआ और उन्हो ने इस के वाद चिकित्सा का काम छोड ही दिया। एक खास परिवर्तन उन मे यह हुआ कि वच्चो के प्रति वहुत कोमल हो गये। यह कोमलता वहुत ही करुण रूप मे तव सामने आयी, जव भगत सिह पकडे गये, उन पर मुकदमा चला। फाँसी निश्चित ही थी। इस सम्भावना ने उन्हे तोड दिया। वे दीवार की तरफ मुँह किये अपनी चारपाई पर पडे रहते। उन्ही दिनो भगत सिह के किस्से विकने लगे थे, उस की पक्तियाँ गुनगुनाते और अकसर आँखो मे आँसू भर लाते। अपने एक

जवान बटे की मृ्यु पर व स्थिर रहे थे, दूसरे की जलावतनी पर गात पर भगत
सिंह के विछोह की कल्पना न ही उन्हें झकझोर दिया था। इस में उन के बुढ़ापे का
प्रभाव भी शामिल था ही।

फाँसी से २०–२२ दिन पहले जब भगत सिंह से मुलाकात के लिए परिवार के
लोग गये तो व भी गये थे। व वहाँ कोई बात न कर सके और कुछ दूरी पर खड़े हो
कर आँसू बहाते रहे।

फाँसी के बाद वे अक्सर देश भक्ति के गीत गाते और कभी-कभी आँखों से आँसू
भी पोछते—क्या वे शोकाश्रु थे? क्या वे हर्षाश्रु थे? क्या यह उन के यज्ञ की पूर्णा
हुति थी? क्या व अपने काय पर असतुष्ट थे? क्या वे खिन्न थे? म इन प्रश्नो की
डोर पकड़े विचारो के अतरिक्ष में जाने कहाँ से कहाँ तक घूम जाती हूँ और तब भीन
स्वर में अपनी सिमसिमाहट के साथ कोई नक्षत्र मुझ से कहता है—हाँ व शोकाश्रु थे
हाँ व हर्षाश्रु थे हाँ यह उन के यज्ञ की पूर्णाहुति थी जिस की समिधाए उन्हो ने
अपनी भरी जवानी म अपने हाथो हवन-कुण्ड में रखी थी, हाँ वे अपने काय पर सतुष्ट
थे—हाँ वे अपने काय पर खिन्न थे।

क्या नक्षत्र की वाणी में कोई विरोध है? नही कोई विरोध नही है सिर्फ इन्द्र
धनुषी विरोधाभास है। एक पक्ष है क्रातिकारी व्यक्तित्व का। एक पक्ष है कूटी मान
वता का। दोनो एक साथ है। यह कोई हीनता नही यह महानता है कि सरदार
अर्जुन सिंह अपने जीवन की दोपहरी में बलिदानो की होलियाँ जलाने और फाग खेलने
के बाद जीवन की सन्ध्या में क्रान्तिकारी भी थे और मनुष्य भी।

उस दिन उठ कर वे गाँव की दुकान पर अखबार पढ़ने गये तो वही गिर गये।
उन पर फालिज का आक्रमण हो गया था। जीभ तालू से जा सटी थी चलना-बोलना
असम्भव हो गया था। उन्हों ने लिख कर समझाया। फौरन सरदार किशन सिंह को
सन्देश भेजा गया। वे डॉक्टर बोधराज को ले कर आये, चिकित्सा की तयारी हुई
और उन्हो ने दवाई लेने से इनकार कर दिया। और लिख कर बताया कि इस उम्र म
फालिज होने पर आदमी ठीक नही होता और दवा लेने से लटकता रहता है। जिन्दगी
तभी तक जिन्दगी है जब तक वह किसी काम में लगने लायक है। नही तो वह बोझ
है। उन के यह शब्द मानवता के विश्वकोश में लिखने लायक हैं। जो बोझ आसानी
से फेंका जा सकता है उसे ढोते रहना दुनिया की सब से बड़ी बेवकूफी है।

फालिज से उन का तन टूट गया था पर मन उन का अब भी अटूट था। उन के
पत्र सरदार किशन सिंह ने जब उन पर दवाई लेने का जोर डाला और दवा उन के
मुँह की तरफ बढ़ायी तो उन्हो ने बलपूवक सरदार किशन सिंह को पीछे धकेल दिया।
वे बात कहना जानते थे बात पर अड़ना जानते थे। उन की बात जीवन भर बात
रही थी और अब अंतिम घड़ियों में भी उन की बात बात थी उन का निर्णय
निर्णय था।

जुलाई १९३२ मे उन की मृत्यु हो गयी और क्रान्ति का वह दीप बुझ गया जिस ने जीवन-भर अपने खून से क्रान्ति के नये-नये दीप जलाये थे। उन की हड्डियाँ सच-मुच अगर की बत्तियाँ बन कर इस तरह जली कि वे राख हो गयी, पर हमेशा के लिए अपनी महक छोड गयी।

सरदार अर्जुन सिंह की कहानी शानदार है और उस की सब से बडी शान यह है कि वे राष्ट्रीय क्रान्ति के सब से पहले दीपको में एक है, पर क्या दीपक बिना बाती के जल सकता है? नही जल सकता, तो बाती का महत्त्व स्पष्ट है। उन के जीवन मे बाती थी उन की पत्नी श्रीमती जय कौर। उन्हो ने उस युग की नारी हो कर भी, जिस मे दीवार से बाहर झाँकना भी साहस का काम समझा जाता था, अपने को पति के क्रान्तिकारी जीवन के साथ खडा किया और संघर्ष की लपटो के लिए अपने को तैयार कर लिया। यह परिवर्तन कोई साधारण परिवर्तन नही था। एक वीर नारी ही इतने बडे परिवर्तन के झटके को झेल सकती थी।

देह पतली दुबली थी, पर मन बेहद तेजस्वी था। काम की उन मे बेपनाह ताकत थी। थकना वे जानती ही न थी। घबराना जीवन की उस पुस्तक मे कोई अध्याय ही न था, जिस से वे जी रही थी। खतरे की सम्भावना उन्हे कँपाती न थी, उत्सा-हित करती थी। कष्ट और परेशानी उन के लिए अवसाद का नही, आह्लाद का ही कारण बनती थी। नयी परिस्थितियो मे ढल जाने की उन मे अद्भुत क्षमता थी। इसी लिए बदलती हुई परिस्थितियाँ उन्हे झकझोरती नही थी, नयी चमक देती थी। व्यक्तित्व की इस विशिष्टता से उन्हे एक सामाजिक क्रान्तिकारी की पत्नी, क्रान्तिकारी पुत्रो की जननी और क्रान्तिकारी पोतो की दादी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे अपने पति के साथ भारतीय राष्ट्र के उस बेजोड वंश की प्रवर्तक हुई, जिस की तीन पीढियाँ गुलामी की जजीरो को तोडने के लिए जान की बाजी लगा कर लडती रही और बाद मे भी अन्याय के विरुद्ध न्याय की पताका फहराना जिस का रक्त-धर्म हो गया।

सरदार अर्जुन सिंह वकील के मुन्शी से हकीम हुए तो वे नर्स क्या, अपने क्षेत्र की लेडी डॉक्टर हो गयी। हकीम जी नुस्खा लिखते, वे दवा बना कर देती, एनीमा का काम करती, पथ्य बताती। यह सब तो था ही, उन्हो ने टूटी हड्डियो को जोडना भी सीख लिया था। लोग रोते हुए उन के द्वार आते, हँसते हुए जाते। दुखती आँखो की चिकित्सा उन का तीसरा काम था। एक कहावत-सी फैल गयी थी आसपास दादी जय कौर को देखते ही दुखती आँखे खुल जाती है। उन की सफलता मे उन की सहानु-भूति का भी बडा हाथ था। वे सब से अपने बच्चो-जैसा ही व्यवहार करती थी। उन के काम और व्यवहार ने उन्हे बिना किसी चुनाव के ही गाँव की चौधरन बना दिया था। किसी के बेटे की शादी हो या बेटी की, निर्णय होते थे उन्ही की सलाह से। देने-लेने का जो नक्शा वे बना देती थी, उस मे जरा भी इधर-उधर न हो सकता था। बडा दबदबा था गाँव के सामाजिक जीवन मे उन का।

संघर्ष और सन्तुलन के अवतार सरदार किशन सिंह

२६ जनवरी १९४७ को स्वतन्त्र भारत का स्वतन्त्र सविधान लागू हुआ। यह राष्ट्रीय इतिहास के एक अध्याय की पूर्ति थी।

इस के ठीक एक साल चार महीने चार दिन वाद ३० मई १९५१ को सरदार किशन सिह ने सदा के लिए आँखे मूंद ली। यह भी राष्ट्रीय इतिहास के एक अध्याय की पूर्ति थी। सरदार किशन सिह भारत मे सशस्त्र क्रान्ति-प्रयत्नो का जीवित इतिहास ही तो थे।

मैं उन के जीवन को सक्षेप मे इस तरह कह सकती हूँ कि वे पैदायशी वागी थे, जन्मजात क्रान्तिकारी थे और जीवन के अन्तिम दिन तक क्रान्तिकारी रहे, पर सोचती हूँ कितना कठिन है यह जीवन। काँटो पर चलना और आग मे जलना भी उस की ठीक उपमा नही। हाँ, शायद जीवन-भर अगारो से खेलना इस जिन्दगी का चित्र तो नही, रेखाचित्र हो सकता है। अगारो मे जला डालने की शक्ति होती है, जरा चूके कि राख की ढेरी हो गये। सोना तो दूर आँख झपकने की भी यहाँ गुजायश नही। सुवह-शाम, शाम-सुवह चौवीस घण्टे संघर्ष! कितना कठिन है यह, फिर आगे वचे तो पीछे जले, पीछे वचे तो आगे जले। यानो यहाँ की चूक अचूक सर्वनाश ही है। जीवन का हर क्षण चौकन्ना, जीवन का हर क्षण चौकस, कितना संघर्ष, कैसा अद्‌भुत सन्तुलन! सचमुच संघर्ष और सन्तुलन के अवतार ही थे सरदार किशन सिह।

हमारा वंश किसान वश था। किसान का जीवन स्व-केन्द्रित होता है। उस का खेत ही उस की दुनिया है। वडो से सुना है कि दिल्ली मे शाही तख्त पर शाहो की अदला-वदली होती रहती थी और दिल्ली से तीन मील दूर किसान विना उस अदला-वदली मे कोई दिलचस्पी लिये अपने-अपने खेतो पर हल चलाते रहते थे। ऐसे वश मे सामाजिक क्रान्ति का पहला दीपक सरदार अर्जुन सिह ने जलाया था। सरदार किशन सिह के जीवन की विशेषता यह है कि उन्हो ने उस दीपक से रोशनी ले कर अपने को उस समय की मुलायम कांग्रेस राजनीति के आराम-पसन्द चक्कर से वचा कर उग्र राजनीति की होली जलाने वालो में ला खडा किया। आम तौर पर ऐसो

देश में गाया था। 'सहायक' नाम से एक राजनीति का जो दैनिक पत्र निकाला गया, सरदार किशन सिंह ही उस के सम्पादक थे। भारत माता सोसायटी के जलसों में अपने भाषणों से आग उगलना सरदार अजीत सिंह का काम था उस गाँव-गाँव में फैलाने लायक बनाना सरदार किशन सिंह का और गाँव-गाँव पहुँचाना सरदार स्वर्ण सिंह का काम था। तीनों भाई इस क्रान्तियज्ञ के ब्रह्मा, विष्णु महेश थे। १९०७ में अजीत सिंह को माण्डले (बर्मा) में नजरबन्द किया गया। अंगरेजी सरकार की कड़ी निगाह सरदार किशन सिंह पर थी पर सरदार किशन सिंह की तेज निगाह भी तो अंगरेजी सरकार पर थी। और अन्त में कड़ी निगाह हारी और तेज निगाह जीती। सरदार किशन सिंह नेपाल जा पहुँचे। सूफी अम्बाप्रसाद और महता नन्दकिशोर भी उनके साथ थे। नेपाल सरकार से सरदार किशन सिंह का पहले से सम्पर्क था। सरकारी कागजों से पता चलता है कि नेपाल में वे शाही मेहमान हुए और उन्हें वर्फ बाग के उस भवन में ठहराया गया जहाँ कभी लॉर्ड किचनर को ठहराया गया था। प्रधान मन्त्री महाराज चन्द्र शमशेर जंग बहादुर राणा उन के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए थे और उन्हों ने अपने पुत्रों को ज्ञान और प्रेरणा प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन उन के पास भेजने का नियम बना लिया था।

सरदार किशन सिंह नेपाल सरकार से भारत में क्रान्ति के लिए सेना और शस्त्रों की बात कर रहे थे। अंगरेजी सरकार को पता मिल गया। उस ने इन लोगों को वापस करने के लिए नेपाल सरकार पर जोर डाला। सरकार कमजोर थी मजबूर हो कर उन्हें वापस करने को तैयार हो गयी लेकिन यह मजबूरी कितनी गहरी थी इस का पता इस बात से चलता है कि नेपाल सरकार ने सम्मान और शान के साथ इन्हें पालकी में बैठा कर नेपाल की सीमा तक भेजा। भारत सरकार ने डी० एस० पी० मिस्टर फिलिप पर आक्रमण करने और सरकार के खिलाफ बगावत फैलाने के आरोप में उन पर मुकद्दमा चलाया। बाद में ऊपर के स्तर पर अँगरेजी सरकार की नीति में नया मोड़ आया। सरदार किशन सिंह को पचास हजार की जमानत पर छोड़ दिया गया। सरदार अजीत सिंह को माण्डले से रिहा कर दिया गया और चीफ कोर्ट ने सरदार स्वर्ण सिंह को छोड़ने का आदेश दे दिया। ये तीनों ही एक साथ जिस दिन छूटे उसी दिन घर में भगत सिंह ने जन्म लिया।

अंगरेजी सरकार सरदार अजीत सिंह को किसी बड़े चक्कर में फँसाने की तैयारी कर रही थी। सरदार किशन सिंह ने उन्हें देश से बाहर चले जाने का परामर्श दिया पर यह काम आसान न था। सरदार अजीत सिंह पर हर घड़ी खुफिया पुलिस की आँख थी और रास्ते का हर पेड़ उस का संवाददाता था। सरदार अजीत सिंह के घर से बाहर निकलते ही सारी मशीनरी हरकत में आ जाती थी। फिर यह तो उन के देश से बाहर जाने का मसला था। सरदार किशन सिंह की संगठन-शक्ति को सौ बार नमन कि खुली सड़कें अजीत सिंह के लिए गुप्त गुफाएं बन गयीं। अँगरेजी सरकार के

पहरेदार पहरे पर संगीन लिये जागते रहे और सरदार अजीत सिंह अकेले ही नही, सूफ़ी अम्बाप्रसाद, जिआउल हक़ और दूसरे कई साथियो के साथ कराची हो कर ईरान पहुँच गये। उस युग की डरावनी परिस्थितियो मे सरदार किशन सिंह का यह कारनामा निस्सन्देह एक बडा चमत्कार कहा-माना जायेगा।

इस तरह के चमत्कारो का प्रदर्शन उन्हो ने बहुत बार किया। इसी कारण उन के साथी उन्हे सूझ का बादशाह कहा करते थे और समझते थे कि जो काम कोई न कर सके उसे सरदार किशन सिंह कर सकते है। अनुभव भी इस का समर्थन करता रहता था। लॉर्ड हार्डिञ्ज पर दिल्ली मे बम फेंके जाने के बाद बगाल मे क्रान्तिकारी आन्दोलन के महान् नेता रासबिहारी बोस पर सरकार की आँख थी। उस की सर्वोच्च मशीनरी उन्हे गिरफ्तार करने पर जुटी हुई थी। उन का पता देने पर भारी इनाम की घोषणा तो थी ही, उन की मदद करने पर भयकर दण्ड भी निश्चित था। जब दिल्ली की तरफ पुलिस की निगाह से उन का बचना असम्भव हो चला, तो वे पजाब खिसक आये। वहाँ सरदार किशन सिंह के सिवा कौन था, जो उन्हे अपने साये मे छिपा ले! पहला सवाल मकान का था। अकेले परदेसी को भला कौन गृहस्थ किराये पर मकान देगा? अकेला मकान लेने पर पुलिस की निगाह पडने का डर था। सरदार किशन सिंह ने कपूरथला के श्री रामशरण दास को प्रभावित किया। वे इस बात पर तैयार हो गये कि उन की पत्नी रासबिहारी के साथ उन की पत्नी बन कर रहे। सोचती हूँ कैसा था वह युग, जिस मे लोग देश के लिए सब-कुछ करने को तैयार थे! रामशरण दास तो अभिनन्दनीय है ही, उन की पत्नी भी स्मरणीय है। उस ने बात खुलने पर सामाजिक लाछन का खतरा तो उठाया ही, लम्बी कैद का खतरा भी झेला। रासबिहारी का नाम पंजाबी ढंग का रख दिया गया, उन्हे पंजाबी वेश-भूषा पहना दी गयी, पजाबी पत्नी थी ही। पूरा रहन-सहन पंजाबी हो गया। पुलिस की निगाहो के नीचे सब काम होते रहे।

कामागाटा मारू काण्ड के विख्यात बाबा गुरुदत्त सिंह कई वर्ष फरार रहे। सरकार की गुप्तचर मशीनरी ने अपना पूरा जोर लगाया, पर उन का कही पता नही चला। इस विचार से सरकार को कभी-कभी सुख मिलता था कि बाबा जी शायद मर गये है। बाबा जी आनन्द से जी रहे थे और पूरी तरह सुरक्षित थे। सरदार किशन सिंह को उन की हर बात का पता था, क्यो कि सारी व्यवस्था स्वय सरदार किशन सिंह के ही हाथ में थी। अन्त मे जब गुरुद्वारा आन्दोलन चला, तो यह निश्चय हुआ कि बाबा जी ननकाना साहब मे गिरफ्तार हो। अवश्य ही यह भी सरदार किशन सिंह की ही सूझ का फल था और बाबा जी के गुप्त रूप से ननकाना साहब पहुँचने की व्यवस्था भी उन्हो ने ही की थी। सब ने माना कि यह सूझ गजब की रही, क्यो कि इस ने एक फरार बागी के केस को पूरे सिख-समाज का सार्वजनिक प्रश्न बना दिया और सरकार की राक्षसी प्यास पर बहुत-कुछ बन्धन लगा दिया।

एक थे और भारत माता सोसायटी की योजना के अनुसार अमेरिका गये थे। इस परिप्रेक्ष्य में यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि सरदार किशन सिंह का गदर पार्टी के भारतीय आन्दोलन से क्या सम्बन्ध रहा ?

भारत माता सोसायटी और गदर पार्टी का लक्ष्य एक था पर कार्य प्रणाली में गहरा अन्तर था। गदर पार्टी अमेरिका में बनी थी जहाँ राजनैतिक संगठनों के लिए पूरी स्वतन्त्रता थी और वहाँ की सरकार का विरोध खुले-आम करना एक साधारण प्रजातन्त्री घटना थी। इस के विरुद्ध भारत गुलाम था। यहाँ साधारण राजनैतिक चर्चा पर भी पाबन्दी थी। गदर पार्टी के जो हजारों लोग और नेता भारत में गदर करने के लिए आये वे अमरिका से भारत तक रास्ते के हर बन्दरगाह पर खुलेआम भारत में गदर करने का ऐलान करते चले आये। व लोग गोपनीयता से इतनी दूर थे कि उन्हों ने रास्ते से ही तार दे कर दैनिक 'अमृत बाजार पत्रिका' से पूछा— क्या भारत में गदर आरम्भ हो गया है ?

भारत पहुँचते ही बहुत से लोग पकड़ गये, जो कि स्वाभाविक भी था पर कमाल यह हुआ कि किसी तरह अंग्रेजों की निगाह से बच कर जो लोग भारत पहुँच गये उन्हों ने भी देश की परिस्थितियों को समझने से इनकार कर दिया। भारत में भी वे गदर पर भाषण देने लगे। करतार सिंह सराबा ने डी० ए० वी० कालिज लाहौर में गदर पर जो भाषण दिया उस में तारीख की भी घोषणा कर दी। सरदार किशन सिंह ने गदर आन्दोलन को सहारा दिया और शस्त्र खरीदने के लिए रुपये भी दिये यह सरकारी रिपोर्टों से भी सिद्ध है पर उन की सावधान क्रान्तिकारी बुद्धि इस तरीके का समर्थन कैसे कर सकती थी ? भारत माता सोसायटी का सारा आन्दोलन गया था और सरदार किशन सिंह उस के प्रमुख विधाता थे। उन्हों ने साफ कह दिया कि अंग्रेज सरकार युद्ध के कारण कितनी भी बुरी हालत में क्यों न हो यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। यह प्रथम विश्वयुद्ध के समय की बात है। करतार सिंह इस बात पर नाराज हुए और कहा— आप डरते हैं इसी से ऐसी बातें कह रहे हैं। सरदार किशन सिंह सचमुच डर रहे थे पर अंग्रेजों से नहीं अच्छे जानों से।

आखिर वही हुआ जो उन्हों ने कहा था। गदर आन्दोलन असफल हुआ और १९१५-१६ में उस के बिखरे नतीजों पर सरकार बुरी तरह टूट पड़ी—गिरफ्तारियों का ताँता लग गया। सरदार किशन सिंह ने दूरदर्शिता के भाव से लाहौर छोड़ दिया और बंगा में जा कर रहने लगे। गाँव में एक ईसाई पादरी भी रहता था। मैं यह कह हूँ कि किशन सिंह के चेहरे पर असाधारण आकर्षण था। शुरू से पादरी उन की ओर आकर्षित हुआ। बाद में वह उन के ज्ञान से प्रभावित हुआ। इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस उस के सम्बन्ध थे जो कि उस समय होने ही थे। इन्स्पेक्टर जनरल पुलिस ने पादरी से सरदार किशन सिंह के बारे में पूछा—टाइम लगा कि वे गाँव में बैठ कर क्या तूफान नहीं रच रहे ?

मुग्द्दा भगत सिंह

पादरी को सरदार किशन सिंह के राजनैतिक चरित्र का पता नहीं था। उस ने उन की बहुत तारीफ की और शेखी मे यह भी कह दिया कि आप जो कहे, मै किशन सिंह को उस पर तैयार कर सकता हूँ। एक दिन पादरी इन्स्पेक्टर जनरल के निमन्त्रण पर सरदार किशन सिंह को अपने साथ लाहौर ले गये। इन्स्पेक्टर जनरल ने सरदार किशन सिंह की बहुत तारीफ की और उन के सामने तीन बातें रखी। वे लाहौर मे न रहे, प्रेस-प्लेटफॉर्म का झमेला छोड दें और हैदराबाद मे एक ऊँचे पद पर काम करे। उस का कहना था कि वे चाहते है कि उन के गुणो की मुल्क मे पूरी कद्र हो और उन का पूरा उपयोग हो, जो कि इसी तरह हो सकता है।

सरदार किशन सिंह ने अपने भोलेपन का कोहरा पूरी तरह उस बडे अफसर के चारो ओर फैला दिया। तब कहा—"मुझे आप की गुणग्राहकता से बहुत सुख मिला। आप-जैसे अफसर ही मौजूदा हालात मे सही तरह काम कर सकते है। मुझे खुशी है कि मै आप से मिल सका। लाहौर मै ने छोड दिया है, प्रेस-प्लेटफॉर्म तो लाहौर के साथ ही है, गाँवो मे तो खेत ही सब कुछ है। हैदराबाद की नौकरी के लिए मै आप का शुक्रगुजार हूँ, पर मेरा स्वभाव है काम को पूरी ईमानदारी से करना। अपने स्वास्थ्य के कारण मै ऐसा नही कर सकता। इस हालत मे आप भी हैदराबाद जाने की राय नही देंगे, यह मुझे यकीन है।" इन्स्पेक्टर जनरल पूरी तरह मान गया कि सरदार किशन सिंह अब रिटायर्ड लाइफ जी रहे है और कतई खतरनाक नही है, पर उसे क्या मालूम था कि सरदार किशन सिंह आग का गोला नहीं कि छूते ही पहचाना जा सके, एक डायनामाइट है, जो लाख छूने मे ठण्डा हो विस्फोट मे घोर विध्वसक होता है। शायद प्रकृति ने क्रान्ति-विधाता बनने के लिए ही उन का विशेष उपकरणो से स्वयं निर्माण किया था। वे बमभोला नही थे, भोला बम थे।

क्रान्ति का पथ-विध्वस का पथ है। वह सीमेण्ट की सडक-सा नही, ऊबड-खाबड होता है। हर साँस पर खतरा खडा मिलता है, तो सकट अडा हुआ। रोम-रोम मे बचाव की वृत्ति आ बैठती है और छिपाव की भी। ऐसी परिस्थिति मे आदमी व्यवस्थापक कहाँ बन पायेगा? व्यवस्था चाहती है, कडी-कडी की शृंखला और शृखला बँधती है शान्त मन से, पर क्रान्तिकारी का तो एक पैर हमेशा जूते मे रहता है। ऐसी हालत मे क्रान्तिकारी का व्यवस्था-पटु होना बडी बात है। सरदार किशन सिंह मे यह बडी बात बहुत बडी मात्रा मे थी। बीच मे उन्हे एक बार मौका मिला, तो बीमे के काम से उन्हो ने इतने रुपये कमाये कि लखपति हो गये बात की बात मे। जमीन भी खरीद ली और परिवार के जीवन मे समृद्धि लहरा उठी।

इस से भी पहले एक बार वे स्टेशन पर यो ही घूमने गये और वहाँ उन्हो ने नमक की एक गाडी खरीद ली। हमारे वश मे कभी किसी ने व्यापार नही किया। इस दशा मे यह एक अद्भुत बात थी कि उन्हे नमक की गाडी (वैगन) खरीदने की बात सूझी और उस सूझ से उन्हो ने ५०० रुपये कमा लिये। सरदार किशन सिंह के चरित्र

को यह वात बहुत गहरी चमक के साथ पग करता ह कि उन म धन कमाने की शक्ति थी, बेपनाह याग्यता थी। उसे वे जानते भी थे और उन्हो ने आजमा कर देख भी लिया था। फिर भी व धन के लोभ से बच रहे और अपनी उस शक्ति को धन से बचा कर जन-सेवा के काम में लगा सके।

उन की उँगलियाँ चिकनी थी और मुटठी कमजार। वे कमा कर जमा करने की बीमारी से सवथा मुक्त थे। म ने एक दिन माता विद्यावती जी स पूछा— क्या सच के लिए आप को उन से पसे माँगन पडते थे?' उन्हा ने बताया— पसे काहे का माँगने थे। किसी चीज की कमी हो जरूरत हो तभी तो पसे माँगते। वे तो दिना कह ही ढेरा चीज ले आते थे। उन्हें थोडी-सी चीज खरीदना अच्छा ही नही लगता था। जेब में पसा हो, तो फिर उन्ह परवाह ही न हाती थी कि कल जेब मे पसा न हागा, तो क्या हागा। व आज के शाह थे कल के फकीर। आज जेब भरी ह तो बादशाह ह कल खाली ह ता सच्च फकीर की तरह शात प्रसन्न और सन्तुलित। उन की जीवनसगिनी का यह उत्तर किशन सिंह की जिन्दगी के अन्तपट हमार सामने खोलता ह। पहली बात तो यह ह कि जो आदमी खूब धन कमा सकता ह वह घार गरीबी क जीवन का स्वच्छा से वरण करता ह। दूसरी बात यह कि एक बार वह धन कमा कर दखता ह, उस मे सफल हाता ह और उस धन्ध को स्वय दूसर का साप दता ह फिर गरीबी में लौट आता ह। तीसरी बात यह कि एक-एक पस की तगी दख कर भाग कर उस का त्रास सह कर वह थलिया और तिजारिया के बीच में मखमली गद्दा पर बठता ह और फिर नगी चटाई पर लेटता ह पर उस के सन्तुलन में कोई कमी नही आता। उस का सघष-व्रत अखण्ड रूप म चलता रहता ह। इन सब बाना ना उन के जीवन क इस रूप को जब म याद करती हू तो मर मन में समाया उन के प्रति आदर पूर जार स लहराने लगता ह।

१९१५–१६ में उन के पिता घर की टूटी हालत स दुखी कर एक दिन गुस्स म उन स कहते ह— कुछ करते नही ता दाना समय खान क्या हा, व एक समय का खाना छोड दत ह और खाना पर रहन लगत ह। ऐसा हालत म उन की पत्नी अपन मायके स बिना बुलाय आ जाती ह। व गुस्स में भर उन स कहते ह— तुम क्या आयी यहाँ? जब मर ही खान का यहाँ अन्न नहीं ह ता म तुम्हार लिए कहाँ स लाऊगा?

इस के वर्षो बाद की बात ह—ढाब म एक समय भोजन का तक आना दना पडता था पर उन के पुत्र उस एक आन का बचान के लिए भी कई मील चल कर गाँव स राशन ले आत थे—ऐ आन का मजबूर हात थ।

ऐसा भी बहुत बार हाना था कि उन क पास [illegible] सा० आर० डा० का सिपाही एक-आध रुपय का आटा ला कर दना था तब घर में खाना पकता था। भगत सिंह पर मुकदम के दिना में बहुत बार [illegible] कि मकान के

मुद्रष्टा भगत सिंह

शहतीर और किवाड भी खर्च के लिए वेचने पडे ।

वे जीवन मे रक से राव भी हुए और राव से रक भी, पर राव हो कर इतराये नही और रक हो कर घवराये नही—दोनो दगाओ मे आदर्श के लिए जूझते रहे, क्या यह उन के समर्पित जीवन का पूजनीय चित्र नही है ? १९४७ मे भारत स्वतन्त्र हुआ और इस से आधी शताव्दी से भी अधिक पहले उन्हो ने देश-सेवा की राह मे कदम रखा था । यह आधी शताव्दी है दु ख-संकट सहने की, जेल जाने-आने की, गिरफ्तारियो की, मुकदमो की, फरारी की, फाँसियो की, विप्लवो की, पड्यन्त्रो की, भूख-प्यास की, मानसिक चोटो की और वीमारियो की । अगारो की इस भीड मे तो फौलाद पिघल जाये और चट्टान चटख जाये, पर कैसा व्यक्तित्व था सरदार किशन सिंह का कि न जला, न चटखा, न पिघला । क्यो ? क्या चीज थी वह, जिस ने उन्हे चटखने-पिघलने से वचाये रखा ? वह उन का अथाह सन्तुलन था । तभी तो मै ने उन्हे सघर्प और सन्तुलन का अवतार कहा ।

अव विश्लेपण-विवेचनसे उठे और उन की जिन्दगी का एलवम खोलें, जिस में जलते चित्र हैं, चीखते चित्र हैं, हँसते चित्र है, रोते चित्र हैं, अमृतवर्पी जीवन-संघर्पी चित्र है ।

एक केस मे दो साल की जेल काट कर सरदार किशन सिह आये । थोडे दिन वाद ही कई जगह तलाशियो मे क्रान्तिकारी साहित्य पकडा गया । सरकार के पास पहले से ही उस के गुप्तचरो की यह रिपोर्ट थी कि सूफी अम्वाप्रसाद क्रान्तिकारी साहित्य लिखते है और सरदार किशन सिंह उसे छपाते है, घर-घर पहुँचाते है । सूफी साहव विदेश चले गये थे और सरदार किशन सिह जेल मे थे । अँगरेज़ी सरकार ने गहरी जाँच-पडताल के वाद यह राय वनायी थी कि इन दोनो के मैदान मे न रहने से क्रान्तिकारी साहित्य का प्रचार वन्द हो गया है । यह राय अव पक्की हो गयी, जव सरदार किशन सिंह के जेल से वाहर आते ही क्रान्तिकारी परचे इधर-उधर मिलने लगे । इन परचो से नौजवानो मे अँगरेजो के खिलाफ गहरी नफरत और कडवा क्रोध पैदा होता था और वह कही-न-कही, किसी-न-किसी रूप मे फूट भी पडता था ।

सरकार अव विश्वस्त थी कि सरदार किशन सिंह ही इन परचो की जड मे है, वे ही यह चक्कर चला रहे है, पर सरकार जानती थी कि वे सगठन-शक्ति के माहिर हैं । उन्हे पकडना तो आसान है, पर अदालत मे उन के खिलाफ सवूत देना आसान नही है । सरदार किशन सिंह की संगठन-शक्ति का सूत्र यह था कि वे चारो तरफ ऐसे आदमी वैठा देते थे, जो उन के इशारे पर, निर्देशन पर पूरी चुस्ती और मुस्तैदी के साथ उन का काम करते रहते थे । इस के साथ ही यह भी कि इन आदमियो को वे इस तरह प्रशिक्षित (ट्रेण्ड) करते थे कि यदि पुलिस भेद पा कर हाथ डाले और ये उस के पजे की जकड मे आ जायें, तो डर कर भेद नही खोलते थे । इस हालत मे

चैन से सो सकेंगे। उन वेचारों को क्या पता था कि,

नूरे खुदा है कुफ़् की हालात पै खन्दाजन,
फूँको से यह चिराग बुझाया न जायेगा !

ईश्वर की महिमा पाप के लिए खड्‌गहस्त है इस लिए फूँक मारने से पुण्य का दीपक नही वुझेगा।

इतिहास ने वहुत वार ऐसा मजाक किया है कि फूँक मारे विना ही वडे-वडे दिये वुझा दिये हैं और कंकरी मार कर मनमूवो के किले ढहा डाले है। पुलिस-अफसरो का किला भी ऐसा ही निकला। इस स्पेशल अदालत के लिए जो जज चुने गये श्री हेयरसन, वे आयरिश थे। उन का देश आयरलैण्ड भी अँगरेजो के विरुद्ध अपनी आज़ादी के लिए लड रहा था। वंश और स्वभाव से भी वे सज्जन थे। सरदार किशन सिंह की स्थिति से वे मर्माहित हुए। उन की स्पष्टता, निर्भीकता, विद्वत्ता और सज्जनता से प्रभावित भी। उन्हो ने सरदार किशन सिंह को अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए सव प्रकार की सुविधाएँ तो दी ही, सद्‌व्यवहार भी दिया। सरदार किशन सिंह ने इन का पूरा लाभ उठाया और आरोपो की खूव धज्जियाँ उडायी। श्री हेयरसन ने उन की योग्यता की सदा प्रशसा की। अन्त मे उन्हो ने अपने फैसले मे कई मामले तो खत्म ही कर दिये, कई मे थोडी-थोडी सजा दे दी और कई मे सजा तो पुलिस के मन की ही दे दी, पर फैसला सन्देह की ऐसी भावना मे लिख दिया कि अपील करते ही टुकडे-टुकड़े हो जाये। सोचती हूँ, हमारे देश की आजादी मे वे कर्म तो है ही, जो राजनैतिक रूप में देशवासियो द्वारा किये गये है, पर वे कर्म भी तो हैं, जो नैतिक रूप मे शुद्ध मानवीयता के आधार पर विदेशियो द्वारा किये गये है। श्री हेयरसन का नाम भारत माता के सैनिको मे कौन लिखेगा, पर भारत माता के स्वयं सेवको की सूची मे उन का नाम लिखने मे किसे आपत्ति होगी ?

एक दूसरे मौके पर सरदार किशन सिंह ने अपनी क्रान्तिकारी सूझ-वूझ का परिचय दिया। अनारकली लाहौर मे ववर अकालियो ने एक थानेदार की हत्या कर दी। पता चला कि सरकार इस मामले में सरदार किशन सिंह को भी पकड़ना चाहती है। उन्हो ने उसी दिन कवड्डी खेलने के वहाने अपनी एक वाजू तोड ली और अपने ननिहाल (ग्राम खेड, होशियारपुर) चले गये। लाहौर मे अकेली विद्यावती जी रह गयी। जव पुलिस आयी, तो उन्हो ने कहा—"वे वहुत दिनो से कही वाहर गये हुए है।" कुछ दिनो वाद सरदार किशन सिंह रात मे घर आये। उन के सूत्रो ने खवर दी कि सरकार उन्हे गिरफ्तार करने पर तुली हुई है। वात यह थी कि सरकार सरदार किशन सिंह को योजनापूर्वक जाल विछाने की योग्यता और शक्ति से वेहद परेशान थी, भयभीत थी, आशकित थी और आतंकित भी। इस लिए उन्हें दवोचने का कोई मौका हाथ से न जाने देती थी। इस अवसर को भी वह क्यो खोती ? सरदार किशन सिंह तैयार हो गये, पर अपनी व्यवस्था के साथ। विद्यावती जी को उन्हो ने उन के मायके

भेज दिया घर का सामान बगा भेज न्यिा और स्वय पान्चे गये। उन के ढग से साफ
है कि वे लम्बे समय के लिए तयार हो कर गये। अगरेजा सरकार कभी भी वही
भी और कुछ भी कर सकती थी और वे कभी भी सब कुछ के लिए तयार थे।
इस घटना के बहुत वर्षों बाद की घटना ह। भगत सिंह पर मकदमा चल
रहा था। सरकार पूरी ताकत से मौत का घेरा डाल रही थी और सरदार किशन सिंह
पूरी ताकत से उस घेरे को तान्चे जा रहे थे। ऊपर कुछ न दीखता था पर भीतर ही
भीतर शीत-युद्ध के भयकर दाँव-पेच चल रहे थे। सरदार किशन सिंह की तेज़ निगाह
हर जज और हर गवाह पर ही नही हर कागज पर थी। सरकार शीत-युद्ध से थकने
लगी तो सीधी लडाई पर उतर आयी। सरदार किशन सिंह लुधियाना में भाषण देन
गये तो पुलिस ने आगे बढ कर जल्सा भग कर दिया और सरदार किशन सिंह को
फसाद कराने के अभियोग में फसा कर जेल भेज दिया।
इस घटना के वर्षों पहले की घटना ह जब उन के छोटे भाई सरदार स्वण
सिंह पर मुकदमा चला तो बीमारी के कारण अदालत में मुकदमे की परवा करन में
वे असमथ हो गये थे। इस हालत म वकील अनिवाय था पर काई स्थानीय वकील
तयार नही हुआ डर के कारण। तब सरदार किशन सिंह ने इस शहर से उस शहर की
यात्रा आरम्भ कर दी कि कहीं-न-कहीं तो कोई वकील मिलेगा ही। सरकार ने सरदार
किशन सिंह को पकड कर जेल में बद कर दिया। सरकार उन की सगठन शक्ति से
परिचित ही नही आतकित भी थी। उन की यह बहुत बडी बौद्धिक सफलता थी कि
इस हालत मे भी सरकार उन पर कोई बडा दाव नही चला सकी।
सरदार किशन सिंह की सगठन शक्ति का एक नमूना १९२४ में भी सामने
आया। अच्छा घुडसवार जसे घोडे को काबू में कर लेता ह वे तूफान को काबू में कर
लेते थे। उन में नेता के सगठन के दोनो गुण थे। वे स्वय रात दिन काम करते थ और
दूसरो को काम में जुटाने की और उन स अपने मन का काम लेने की तरकीब जानते
थे। सरकार ने आबियाना (पानी का कर) बढा दिया। एक तो टक्स देना कसे ही
किसी को अच्छा नही लगता था फिर उन दिनो किसान टूटी हुई जिदगी जी रह थे।
सब में असन्तोष था गुस्सा था पर जनता का असन्तोष और रोष तो बिजली ह। कोई
तार के द्वारा उसे बल्ब तक न पहुँचाये तो रोशनी कसे हो?
यह काम सरदार किशन सिंह का था। उन्हो ने तुरत जमीदारा लीग की
स्थापना की आबियाने का विरोध करने के लिए। पजाब में किसान ही जमीदार थे।
एक जल्सा किया। जल्सो के इतिहास में यह जल्सा अपने स्वरूप और परिणाम दोनो
दृष्टियो से अनुपम ह। जल्से के पण्डाल में प्रवेश पाने के लिए एक आना टिकिट रखा
गया था। इस एक आने से सात हजार रुपये इकट्ठे हो गये या या कहें कि एक लाख
बारह हजार लोग जल्से में शामिल हुए। इस का परिणाम यह हुआ कि सरकार ने यह
टक्स वापस ले लिया—लगाया ही नहा। उस समय अँगरेज सरकार अपना हर बात को

प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेती थी और जनता की हर माँग को विद्रोह समझती थी। इस स्थिति मे उस का बढ़ा क़दम, साधारण दवाव से तो पीछे नही हट सकता था!

वे लाख की भी जिन्दगी विता सकते थे और राख की भी। असल मे वे राजनीति के प्रह्लाद थे, जो शान्तभाव से जलते खम्भ से लिपट गया था। अथाह साहस के भण्डार थे वे। एक बार सरदार किशन सिंह पटवारी के पास बैठे बात कर रहे थे। उन का ताँगा बाहर खड़ा था। किसी बात से बिदक कर घोड़ी ताँगा लिये भाग खड़ी हुई। बचो-बचो का हल्ला सुन कर वे सड़क पर आये। उन्हो ने देखा, ताँगा लिये घोड़ी बेतहाशा भागी जा रही है और कुछ दूरी पर तीन बच्चे खेल रहे है। बच्चो का कुचल कर मर जाना निश्चित था। तेज़ दौड़ कर उन्हो ने घोड़ी की टाँगें पकड़ कर उसे ताँगे समेत उलट दिया। बच्चे बच गये, पर पायदान से टकरा कर उन का सिर फट गया और बहुत दिनो तक वे पड़े रहे। और कोई होता तो अपने इस काम पर सौ डींग हाँकता, पर वे खामोश रहे इस पर और कभी बोले भी तो यही, प्रभु का लाख-लाख शुक्र है कि बच्चे बच गये।

वे संघर्ष के पुजारी थे। बाहर रहते भी उन का संघर्ष जारी रहता था और जेल मे रहते भी। जेल का नाम सदा ही नरक की याद दिलाने वाला है, पर उस समय तो जेल सचमुच नरक का ही रूप था। अब तो क़ैदी लम्बी-चौड़ी बैरको मे रहते है। मतलब यह कि ताला बैरक के दरवाज़े पर लगता है। क़ैदी उस के भीतर घूमने-फिरने में स्वतन्त्र है। उस युग में यह बात न थी। क़ैदी की बर्थ (कब्रनुमा चबूतरा) के ऊपर लोहे का कब्र के ही साइज़ का पिंजरा रहता था। कैदी उस मे लेट तो सकता था, पर बैठते समय उसे सिर इतना झुकाना पड़ता था कि उठे हुए घुटनो से लगा रहे। इतना ही काफी नही समझा जाता था। कैदी के पैर मे पड़े लोहे के कड़े मे डाल कर लोहे की एक जंजीर उस पिंजरे के चौखटे के साथ जुड़ी रहती थी। एक भैंसे को काबू मे रखने के लिए भी जिस बाँध-जूड़ की ज़रूरत नही है, एक साधारण कैदी को उस बाँध-जूड़ मे रखा जाता था। कैदी का भी कोई अधिकार है, यह कहना तो प्रलय मचाना ही माना जाता, जब कि कुछ माँगना भी उस का अधिकार न था।

उस दिन जेलो के इतिहास मे हड़कम्प मच गया, जब सरदार किशन सिंह ने उस जंगले मे बन्द होने से इनकार कर दिया। छोटे जेलरों और उन के साथ प्रबन्ध में साझीदार क़ैदी-वार्डरो के घूँसे-डण्डे एक साथ उठे। ऐसा लगा कि कुछ क्षणो में सरदार किशन सिंह की हड्डियाँ काफी मुलायम हो जायेगी, पर समझदार जेलर ने उन्हें रोका— "जो अँगरेज़ लाटसाहब से नही दबता, तुम से दब जायेगा?" उन्हें बैरक से हटा कर कालकोठरी मे रख दिया गया, पर क्या संघर्ष समाप्त हुआ? यह कैसे हो सकता था? अन्याय के सामने सिर झुकाना सरदार किशन सिंह के स्वभाव के विरुद्ध था और जेल में न्याय के चुनने की मनाही थी। आज इस बात पर, तो कल उस बात पर, टक्कर होती ही रहती थी। एक जेल-आन्दोलन तो जेलों के इतिहास में स्मरणीय हो गया।

किशन सिंह ? किस यज्ञ-कुण्ड में जल गया था उन का स्व ? उन की साधना थी उन की अथाह देश भक्ति उन का यज्ञ-कुण्ड था—गुलामी के अपमान में जलता हृदय। भरा क्या है, मेरा देश इस गुलामी से बाहर निकले। स्व विहीनता के इस स्वभाव ने उन्हें एक राजनीतिज्ञ के रूप में तो आदरणीय बनाया ही एक ऊंचा मनुष्य भी बनाया। यही कारण है कि उन के राजनीतिक विरोधी यहाँ तक कि अंगरेज और हिंदुस्तानी सरकारी अफसर भी उन की इन्सानियत के कायल थे।

पंजाब असेम्बली के एक उपचुनाव में कांग्रेस ने उन्हें अपने टिकिट पर खड़ा करने की घोषणा की। इस सीट पर गदर पार्टी के बाबा सोहन सिंह भकना आदि श्री तेजा सिंह स्वतन्त्र को खड़ा करना चाहते थे। बात यह थी कि सरदार तेजा सिंह उस समय जेल में थे। सरदार किशन सिंह ने बिना किसी से सलाह किये अपना नाम वापस ले लिया और तेजा सिंह बिना विरोध मेम्बर हो गये। कांग्रेस के नेता डाक्टर सत्यपाल ने सुना तो वे नाराज हुए। सरदार किशन सिंह ने सरल भाव से कहा— तेजा सिंह के चुने जाने का मतलब है अंगरेज की नाक पर घूंसा लगना। यह बात हम सब के लिए महत्वपूर्ण है। मतलब यह कि हमारा दृष्टि उद्देश्य पर रहनी चाहिए व्यक्ति पर नहीं। वही प्रश्न—किस साधना से स्व निर्लिप्त हो गये थे वे ? किस यज्ञ-कुण्ड में जल गया था उन का स्व ?

इसी शृंखला का एक और संस्मरण है। १९३७ के चुनाव का स्वतन्त्रता के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। उस में रायबहादुर बसाखा सिंह ने अमृतसर में कांग्रेस को हरा दिया पर चुनाव पिटीशन में राय बहादुर हार गये। फिर से चुनाव होना था। कांग्रेस की आन दाव पर लगी हुई थी। रायबहादुर दुबारा मैदान में थे। चुनाव के विशेषज्ञों की राय थी कि सरदार किशन सिंह ही इस बाज़ी को जीत सकते हैं पर वे उत्सुक न थे। यह सुन कर उन्हें तयार किया गया व फील्ड में आ गये। अमृतसर बार एसासियेशन के प्रेजीडण्ट श्री केशवराम सीकरी ने उन्हें एक कार दी जिस से वे चुनाव क्षेत्र में सुविधा के साथ दौरा कर सकें। चार ही दिन में सरदार किशन सिंह की हवा बंध गयी—सब की जबान पर उन का ही नाम नाचने लगा। अन्तिम घड़ी में रायबहादुर की हिम्मत टूट गयी। सरदार किशन सिंह बिना मुकाबले मेम्बर चुन लिये गये। यह १९३८ की बात है।

कार अब श्री केशवराम सीकरी के द्वार पर खड़ी थी और सरदार किशन सिंह कह रहे थे—'आप ने मौके पर बड़ी मदद की काम हो गया यह हाजिर है आप की कार।'

'मेरी कार ? मेरी कहां है ? यह तो अब आप की है।" सीकरी साहब ने कार लेने से इनकार कर दिया— अब इस की मुझे नहीं आप को जरूरत है।' सरदार किशन सिंह ले आये कार और पहुँचे लाहौर प्रान्तीय कांग्रेस के दफ्तर में— यह कार सीकरी साहब ने कांग्रेस के चुनाव में दी थी। अब वे वापस नहीं ले रहे हैं

इस लिए यह कांग्रेस की हो गयी।" उन्हों ने यह बात कही और कार वहाँ छोड आये। समझदारो ने कहा—"पागल है सरदार साहब। मिली थी कार उन्हे, दे दी कांग्रेस को। अब ताँगे का भाडा भरते फिरेंगे।" बात को समझने वालो ने कहा—"आदमी क्या, फरिश्ता है सरदार किशन सिंह!" पुरानी साइकिल ही उन की कार थी, चाहे असेम्बली मे जा रहे हो, चाहे बाजार मे, चाहे किसी जलसे मे। ठीक भी है, जो आदमी बाँयें हाथ से कमा कर कार-कोठी बना सकता है, वह दूसरे की कार मे क्यो आसक्त हो? निर्धनता है, पर मजबूरी मे तो नही, यह तो व्रत का उपवास है, जो श्रद्धा से स्वीकार किया जाता है।

असेम्बली के मेम्बरों को अधिवेशन के दिनो मे बाईस रुपये प्रति दिन मिलते थे। अधिकाश सदस्य उन दिनो मे कही बाहर जाने से बचते थे, पर सरदार किशन सिंह अकसर जल्सो मे जाते रहते थे। एक बार श्रीमती गन्नो देवी अपने चुनाव के काम में पकड़ ले गयी और वे एक महीना बाहर ही रहे, यहाँ तक कि घर वालो को भी खबर न थी कि वे कहाँ है? बात वही है कि उन्हो ने राजनीति को कभी लाभ का साधन नही बनाया, वह सदा उन के लिए त्याग, सहन और बलिदान का निमन्त्रण रही। उन के व्यक्तित्व की बहुत बडी विशेषता उन का विवेक था, जो कभी मटमैला नही हुआ। उन के साथ वह एक ऐसा दीपक था, जो कभी बुझा नही, जिस ने कभी झपका नही खाया। उन के विवेक की सब से कडी अग्नि-परीक्षा उन के लाडले बेटे भगत सिंह के फांसी के समय हुई।

फाँसी से पहले अन्तिम मुलाकात की बात है। कहने मे कुछ नही लगता, सुनने में भी कुछ नही लगता और लिखने मे ही क्या लगता है अन्तिम मुलाकात, सिर्फ दो शब्द है, पर इन मे कितनी छुरियाँ चुभी है, कितने अँगारे दहक रहे है, इसे वही अनुभव कर सकता है, जिसे पता हो कि अन्तिम मुलाकात होती क्या है? जवान, भले और महत्त्वपूर्ण बेटे का चेहरा यह जानते हुए देखने जाना कि फिर वह कभी देखना नसीब न होगा। पैर पहाड हो जाते है, रास्ता दिखाई नही देता, बोल मुँह से नही निकलता, कलेजा मुँह को आने लगता है, मन घबराता है, दिल की धडकन बेहद बढ जाती है और हर कदम पर कई-कई बिच्छू डंक मारने लगते है। ऐसे मे सन्तुलन आदमी मे क्या, देवता मे नही रहता, पर सरदार किशन सिंह किस धातु के बने थे कि २४ मार्च १९३१ को बेटा फाँसी पर चढेगा और वे २३ मार्च की दोपहर अपने माता-पिता आजन्म जला-वतन मझले भाई की पत्नी और जीवनमुक्त छोटे भाई की विधवा और अपनी भग्न-हृदय पत्नी के साथ जेल के दरवाज़े पर पहुँचे। उन की स्थिति उस डॉक्टर-जैसी थी, जिस के आस-पास रोगी-ही-रोगी हो और रोगी भी खतरनाक हालत के। उस की परेशानी को कौन समझे, कौन देखे, जब कि उसे ही सब की परेशानी को समझना है, देखना है, अपने को भूल कर सब को सँभालना है।

जेल का दरवाजा देखते, लाँघते सरदार किशन सिंह का जन्म बीता, पर आज

ादमी का जाग रहा था। वह थे सरदार किशन सिह। उन्होने विद्यावती जी से हा—"दोपहरी ढल रही है, भीड को यहाँ से हटाना चाहिए, नही तो गोली चल ायेगी और एक भगत सिह के साथ न जाने कितने भगत सिह देने पड़ेगे।"

फाँसी के तख़्ते की ओर जिस का बेटा बढ रहा है, वह माँ उसे बिना देखे, ःसे उठे, कैसे चली जाये ? भावुकता सब को घेर रही है, यथार्थ सिर्फ सरदार किशन सह के साथ है—"उठो, जल्दी करो, एक-एक पल कीमती है, पागल मत बनो, समझो क तुम यहाँ से चलोगी, तभी कोई यहाँ से हिलेगा।" भावुकता हारी, यथार्थ जीता। गत सिह के दादा-दादी, चाचियाँ, माता-पिता आगे-आगे चले, पीछे-पीछे भीड चली। चाहते थे लोग अपने घर जायें, भीड तितर-बितर हो, पर भीड का एक भी आदमी उन से अलग न होना चाहता, होने को तैयार न था। जलूस चला जा रहा था। नारे थे, भीड थी, जलूस तो था ही, पर किस का जलूस था यह ? यह जलूस था एक महान् पिता के महान् विवेक का, जो इस समय नगर के पुत्रो को बचाने के लिए अपने पुत्र से दूर ले जा रहा था, जिस से उन का बेटा चुपचाप फाँसी पर चढाया जा सके और उस की आहुति की आग और किसी को न जलाये। मै इतिहास का पण्डित नही हूँ, पर शायद इतिहास ने किसी पिता का ऐसा जलूस नही देखा।

मोरी दरवाजे पहुँच कर वे रुक गये। जलूस जलसे मे बदल गया। सरदार किशन सिह भाषण देने लगे, पर क्या कोई अगारो पर खडे हो कर भाषण दे सकता है ? सरदार किशन सिह जलते, फफकते हृदय के अगारो पर ही तो खडे थे। बलिहारी उन के सन्तुलन की। आवाज़ एकदम साफ थी; विचार शृंखला-बद्ध थे। लोग अपने को भूले भाषण सुन रहे थे। 'मिलाप' के दफ्तर मे फोन आया—"भगत सिह और उन के साथियो को फाँसी-घर की तरफ ले जाया जा रहा है।" कुलतार सिह वही बैठे थे। वे दौड कर जलसे मे गये और पिता जी को यह समाचार दिया। सरदार किशन सिह ने उन्हे वही बैठा दिया और बिना किसी को बताये भाषण देते रहे। क्या इस सन्तुलन का मूल्याकन ससार की किसी भाषा का कोई शब्द कर सकता है ? तभी वहाँ वह ग्वाला आया, जो जेल मे दूध देता था। उस की सूचना थी—"फाँसी लग गयी है, जाकर लाश ले आओ।" सरदार किशन सिह के लिए यह कैसा क्षण था ? उन की पूरी कल्पना, पूरी कामना उन के जवान बेटे की लाश के पास मँडरा रही थी, पर उन का विवेक दूसरे सैकडो नौजवानो को लाश बनने से बचाने मे जूझ रहा था। उन की कडकती आवाज सब के कानो मे पडी—"खबर मिली है कि भगत सिह को फाँसी दे दी गयी है। मै खबर या लाश लेने जेल पर जा रहा हूँ। आप सब अपनी-अपनी जगह बैठे रहे। मै कहता हूँ, कोई जेल की तरफ न जाये। ऐसा न हो कि हम एक भगत सिह को लेने जायें और सैकडो भगत सिह दे कर आयें।"

लोगो मे खलबली मच गयी, बहुत कहने पर भी बहुत लोग उन के साथ हो लिये। जेल पर सन्नाटा था। वे दरवाजे पर पहुँचे। भीतर से अफ़सरो के कहकहो की

क्रान्तिकारी हो कर भी वे श्रेष्ठ प्रशिक्षक थे। क्रान्ति के विध्वस और निर्माण दोनो पहलुओ पर उन का पूरा अधिकार और ध्यान था। यह कहना ठीक होगा कि वे पूर्ण क्रान्तिकारी थे। तभी तो भगत सिह को उन्हो ने १४-१५ वर्ष की उमर मे ही इस योग्य वना दिया था कि वे पूरी मशीनरी के विरोध मे अकाली जत्थे का शानदार[1] स्वागत कर सकें। यह काम सरदार किशन सिंह के सिवा और किसी के वस का न था, पर उन्ही दिनो उन्हे कही वाहर जाना था, इसलिए उन्हो ने पूरे आत्मविश्वास के साथ भगत सिह को लाहौर से वगा भेज दिया था। अपने प्रशिक्षण पर उन्हे विश्वास न होता, तो यह आत्मविश्वास उन मे कहाँ से आता? मै ने कहा कि वे एक सुयोग्य सगठनकर्ता थे, एक श्रेष्ठ प्रशिक्षक थे और पूरी तरह क्रान्तिकारी थे। इन सब योग्यताओ को तभी पाया जा सकता है, जब मनुष्य मे अनुशासन की भावना पूर्ण रूप मे हो। सरदार किशन सिह का अनुशासन वडा सख्त था। उन्हो ने भगत सिह को वचपन से क्रान्ति की शिक्षा दी थी और अब उन्हे पूरी तरह विश्वास हो गया था कि उन का बेटा भी उन की तरह ही एक कुशल सगठनकर्ता वन गया है। नौजवान भारत सभा उस का एक उदाहरण थी। उस समय की एक घटना उन की अनुशासनवृत्ति पर गहरा प्रकाश डालती है। १९२७ मे भगत सिंह के लिए डेरी फॉर्म खोल दिया था। वे काम करते, तो जुट कर करते, पर यदा-कदा घर से चले जाते और दो-दो चार-चार दिन पार्टी के काम से गायब रहते। इसी तरह एक वार वे गये और कुछ दिन लौट कर न आये। पीछे वडी परेशानी उठानी पड रही थी। उन की गैरहाजिरी मे ग्राहको को दूध पहुँचाने के कई वादे गलत हुए और इसी तरह की और भी कई गलत वातें हुई। यह उन के लिए असह्य था, क्यो कि उन का जीवन सूत्र था—अपना हरेक उत्तरदायित्व पूरा करो। सरदार किशन सिंह लाहौर गये। बाजार मे आते हुए भगत सिह मिल गये। सरदार किशन सिह गुस्से मे थे। वही बाज़ार मे पीटना शुरु कर दिया। भगत सिह कहते जा रहे थे—"शान्ति रखिए पिता जी, शान्ति रखिए" और पिता जी घूँसे पर घूँसा मारते जा रहे थे।

वे कठोर थे, उन का क्रोध प्रचण्ड था। वे अपनी वात मे काट-छाँट पसन्द न करते थे। यह सव ठीक है, पर मै ने जब उन्हे देखा, उम्र उन की ढल चुकी थी। वीमारी ने उन्हे अपाहिज कर दिया था। जीवन के अनेक उतार-चढाव उन के स्मृति-पटल पर अंकित थे। वे मुझे वहुत प्यार करते थे, वहुत ध्यान रखते थे। मुझे उन का वह चित्र वहुत ही प्यारा लगता है, जव मेरी स्मृतियाँ अपने गाँव के उस स्कूल मे पहुँच जाती है, जिस मे जगत सिंह, भगत सिह, कुलवीर सिंह और कुलतार सिंह ने प्रायमरी तक की शिक्षा प्राप्त की थी और अब उसी स्कूल मे मैं पढती थी। मैं स्कूल जाती। वे मेरे लिए खाना ले कर आते और स्कूल के मैदान में पेड़ के नीचे खडे हो जाते।

---

१ देखिए. 'भगत सिंह की जीवन-गाथा'।

छुट्टी की घुट्टी होती, मैं दौड़ती हुई उन के पास आती, वे हँसते हुए मुझे लिपटा लेते, फिर धारा पर बैठ कर मुझे खाना खिलाते और बातें भी करते जाते। छुट्टी खत्म होने का घण्टा बजता। वे डिब्बा ले कर अपने खद्दे का सहारा लेते हुए चले जाते।

बस उन की एक स्मृति और, ऐसी स्मृति, जिस में उन के लम्बे जीवन की पूरी तपस्या बीज रूप में समायी हुई है और जिसे जान कर हम उन्हें पूरी तरह जान सकते हैं। बैठे-बैठे, लेटे-लेटे, बातें करते करते वे गुमसुम हो जाते, जो से जाने और तब लम्बी साँस ले कर कहते– 'दीन दयाल भरोसे तेरे सब परिवार चढ़ाया बेड़े।' हे दीन दयालु प्रभु, तेरे भरोसे पर अपना पूरा कुटुम्ब मैं ने बेड़े पर–बस्ता की पट्टी पर चढ़ा दिया है। वे सब मझधार में है, उन के चारों ओर खतरे हैं क्या कि वे सुरक्षित नाव में नहीं तख्तों के बेड़े पर हैं–सिर्फ ईश्वर का भरोसा है। यह भरोसा मजबूत है, क्यों कि ईश्वर दीन दयालु है। यह पंक्ति एक हो कर भी क्या उन का सम्पूर्ण जीवन चरित्र नहीं है? एक पिता जिस ने किसी गलतफहमी में नहीं, सोच-समझ कर अपने पूरे परिवार को क्रान्ति की धारा में छोड़ दिया है धारा उद्दण्ड है उस में खतरनाक भँवरें हैं छिपी हुई चट्टानें हैं जो बेड़े को ही नहीं बड़ी नाव को भी तोड़ सकती हैं इस पर भी आशा बलवती है, मंजिल पर पहुँचने का विश्वास अखण्ड है फिर भी भविष्य अज्ञात है–अन्धकार में अवश्य है। ओह एक अनोखे वीर क्रान्तिपथ के सकुटुम्ब यात्री थे वे सरदार किशन सिंह। उन की हर याद देश के लिए महत्त्वपूर्ण है, उन की हर याद मेरे लिए मधुर है। सचमुच वे महत्त्वपूर्ण और मधुर पुरखा थे हमारे देश की क्रान्ति के। उन्हें मेरी पीढ़ी के प्रणाम।

■ ■

वीरता की अमर स्रोतस्विनी माता विद्यावती

पुराने जमाने मे एक कहावत थी कि जहाँ चार बूढी स्त्रियाँ मिल कर बैठती है, वहाँ वातचीत घूम-फिर कर बहुओ पर पहुँच जाती है और जहाँ चार बहुएँ मिल कर बैठती है, वहाँ वातचीत घूम कर सासो पर पहुँच जाती है। वाद मे ऐसा भी युग आया जब यह कहावत चल पडी कि जहाँ चार राजनैतिक व्यक्ति मिल कर बैठते है, वहाँ वातचीत घूम-फिर कर जेलों पर पहुँच जाती है। विलकुल ऐसी ही बात श्रीमती विद्यावती जी की है। उन्हो ने भगत सिह को जन्म दिया, यह एक साधारण बात है, पर असाधारण बात यह है कि भगत सिह उन के रोम-रोम मे व्याप्त है। उन से स्वयं उन के जीवन की बात करो तो पहले ही चक्कर मे वे भगत सिंह पर पहुँच जाती है।

उस दिन चमत्कारो की कुछ बात चल रही थी। उन के संस्मरणो का स्रोत खुल गया। उन्हों ने बताया—"उन दिनों भगत सिंह का मुकदमा चल रहा था। हमारे गाँव के बाहर एक साधु आ कर बैठ गया और उस ने धूनी जला ली। दो-चार दिन मे ही उस की सिद्धि की चर्चा गाँव-भर में होने लगी। किसी ने मुझ से कहा—उस साधु के पास जाओ, तो भगत सिंह बच जायेगा। मुझे ऐसी बातों पर बहुत विश्वास नही था, फिर भी माँ की ममता ने बहुत जोर मारा और मै रात के समय कुलवीर सिंह को साथ ले कर उस साधु के पास गयी। उस ने कुछ पढ कर पुडिया मे राख मुझे दी और कहा कि इसे भगत सिंह के सिर मे डाल देना।

जब मुलाकात का दिन आया तो मैं राख साथ ले गयी और भगत सिंह के पास बैठ कर उन के सिर पर हाथ फेरने की कोशिश करने लगी, जिस से धीरे से राख उन के सिर मे डाल सकूँ। मेरा हाथ अभी उन के सिर तक न गया था। मै अभी कमर ही थपथपा रही थी कि वे बोले—"जो राख मेरे सिर मे डालना चाहती हो, वह कुलवीर के सिर मे डालो, ताकि यह हमेशा आप के पास रहे।"

मेरे लिए यह एक आश्चर्यजनक घटना थी। मै बहुत दिनों तक यह बात सोचती रही कि इन्हे मेरे मन की बात का कैसे पता चला? उन्ही

ष्टिा म न इस मामला म अगा पार बनाया कि मेरे बच्चे को फांसी न लगे। अन्त में बापा जो ने अरगाग की तो उन्होंने मुह से लिखा—'हम भगत सिंह चाहते हैं कि उस का केस वापस ले लिया जाय पर हमें यह बात नापसन्द है कि उस जगह फांसी हो जाए। ऐसी बातों में न आप जी न सामने रख दी है इस लिए हम सरकार से अर्ज करते हैं कि आप जी हमारा न्याय करें।'—और इस बार में बाद जब मैं मुलाकात के लिए गया, तो भगत सिंह ने बड़े गहरे भाव से पूछा—'माता, बताइए, अदालत में बापा जी ने क्या कहा?' मैं ने बताया तो बोले—'आप की बात तो मुनासिब न भी होगी, पर यह भी क्या कम कह सकता हूँ।' अगले न मानने की बात उठा। तब उन्होंने उन्हें ऐसे उत्साह से कहा—जैसे किसी के नाम लाटरी निकलने की बात तय हो गयी हो।

मुझ किसी ने बताया कि किसी जेल बच्चे का पहना लंगोट ले कर जाओ और उसे उन्हें दे दो। ये उस अपने पास रखें, फाँसी टल जायगी। मैं लंगोट साथ ले गयी और उन्हें देने लगी तो पूछा—क्या है यह? मैं ने कहा—यह छोटा लंगोट है इसे अपने पास रखना। उन्हों ने उसे वापस करते हुए कहा—'इसे आप सँभाल कर रखिए। अंग्रेज़ों की जेल काटने के लिए कुछ समय बाद मैं फिर जन्म लूँगा तब इसे पहनूँगा।' यह कह कर वे इतने ज़ोर से हँसे कि आसपास के लोग देखने लगे।

एक बार फिर मुलाकात करने गये तो देखा उन के खाने वाले लोहे के बरतन में लाल गुलाब के फूल रखे हुए हैं। मैं ने पूछा—भगत सिंह ये फूल कहाँ से आये हैं? बहुत ही मस्ती की मुद्रा में वे बोले, दुनिया में मेरे लिए फूल ही फूल हैं। अब बराबर सोचती हूँ सचमुच उन के लिए दुनियाँ में फूल ही फूल हो गये। उन के चित्रों पर फूल चढ़ते हैं, उन की प्रतिमाओं पर फूल चढ़ते हैं और सच तो यह है कि मुझ जो फूल चढ़ते हैं वे भी तो उन के ही फूल हैं।

फाँसी से बहुत दिन पहले ही भगत सिंह ने एक दिन मुझ से कहा था—'मुझे फांसी होगी और फाँसी के बाद ये लोग जेल की दीवार तोड़ कर मेरी लाश ले आयेंगे।' यह भविष्यवाणी भी सच निकली। मैं इन सब बातों को अवसर याद करती हूँ तो सोचती हूँ, उन के भीतर ईश्वर का ऐसा क्या चमत्कार था कि उन्हें आगे की भी सूझ जाती थी?'

मैं ने कहा—'आप ने बहुत बातें याद रखीं और इस तरह इतिहास की बड़ी सेवा की।' विद्यावती जी कहने लगीं—'ये बातें तो मेरी हड्डियों में रम गयी हैं। जब मैं जल जाऊँगी तब भी ये मेरी हड्डियों पर लिखी रहेंगी' और फिर उन का हृदय पिघल कर उन की आँखों के मोतियों में झलक आया।

सचमुच माता विद्यावती जी अथाह साहस की देवी हैं। उन्हों ने अपनी लम्बी जीवन-यात्रा में क्या नहीं देखा? जीवन के पहले ही पड़ाव में उन्हों ने परिवार को छिन्न भिन्न होते देखा। उन के एक देवर सरदार अजीत सिंह विदेश चले गये दूसरे देवर सरदार स्वर्ण सिंह जेल के असह्य कष्टों को सहते हुए शहीद हो गये। उन के पति

सरदार किशन सिंह जीवन-भर जेलो और अदालतो के चक्कर काटते रहे। दूसरा पडाव आया तो जवान बेटा फाँसी पर झूल गया। फिर दूसरे दो बेटे जेलो मे बन्द रहे और उन के पति को फालिज हो गया। ऐसे ही एक के बाद एक दु खदायी पडाव आये, पर उस से भी परे यह कि उन्हो ने स्वयं जीवन और मरण के खेल को खूब खेला। मन उन का बेटे के आसपास घूमता था, तो तन घर के फैले हुए लम्बे-चौडे कामो मे उलझा रहता था। वे कभी लाहौर जाती, तो कभी खासरियाँ आती। लगता था उन का जीवन यात्रा के लिए ही बना है। रास्ता झाड-झंखाड और चोर-डाकुओ मे भरा रहता था, फिर भी वे न अँधेरा देखती, न सवेरा, चल देती तो बस चल ही देती। साहस और दृढ आत्म-विश्वास ही उन के शस्त्र थे।

जिन दिनो साइमन कमीशन लाहौर पहुँचा उन्हो दिनो की बात है एक दिन चाची हरनाम कौर की खासरियाँ मे बंगा जाना था, पर भगत सिंह से मिलने की उन की प्रबल इच्छा थी। इस लिए विद्यावती जी उन के साथ शहनशाही-कुटिया लाहौर पहुँची। भगत सिंह उन दिनो वही रहते थे। कमरे मे किताबें बिखरी पडी थी। देखते ही वे समझ गयी कि पुलिस ने तलाशी ली है। भगत सिंह वहाँ थे ही नही, पर जैसे ही उन्हे पता चला कि बेबे जी और चाची जी आयी है, वे पीछे के रास्ते से आये और मिल कर कुछ ही क्षणो मे लौट गये। लाहौर से बाहर निकल जल्दी गाँव पहुँचने के खयाल से उन्हो ने जूता हाथ मे उठा लिया, अपने छोटे बेटे राजेन्द्र सिंह को कन्धे पर बैठा लिया और धूल-भरे रास्ते में तेज कदम रखती हुई आगे बढने लगी। कुछ ही कदम चली थी कि उन्हे पैर मे तेज चुभन महसूस हुई। सोचा ततैया होगा। लेकिन सिर घुमा कर देखा तो साँप फन उठाये खड़ा था। उन्हो ने धैर्य नही छोडा, चलती रही, चलती रही। जैसे-जैसे घर पास आ रहा था, वैसे-ही-वैसे उन्हे मृत्यु पास आती नज़र आ रही थी। घर पहुँची कि बेहोश हो कर गिर पडी। ख़ून की उलटी आयी, दाँतो से ख़ून बहने लगा। चार दिन तक झाड-फूंक होती रही, तब कही होश आया। इसी बीच पुलिस की गारद वहाँ पहुँची, इस अनुमान से कि माँ की खबर लेने तो भगत सिंह वहाँ जरूर पहुँचे ही होंगे, पर वे नही आये। खबर भगत सिंह ने वही मँगा ली थी।

बरसात के दिन थे। छत टपकने लगी। टपकते स्थानो पर मिट्टी लगाने के लिए ऊपर चढी। मिट्टी का एक ढेला उठाया कि हाथ की उँगली पर साँप ने काट लिया और वे दूसरी बार जीवन-मरण के झूले मे झूलने लगी। कौन जाने कितना जहरीला है साँप ? बचेगी भी या नही ? सब के मन अशुभ की कल्पना से भर उठे। शकाएँ मन को घेरे हुए थी। फिर वही झाड-फूंक की गयी और वे ठीक हो गयी।

ईश्वर जैसे उन के तन-मन की परीक्षा एक साथ ही ले रहे थे। परीक्षा तो फिर परीक्षा ही होती है। कौन जाने कैसे कठिन से कठिन सवाल पूछ लिये जायें और फिर ऐसे सवाल ? ये तो जीवन-मरण के सवाल थे। वे सुबह-ही-सुबह उठी। भैस का दूध निकालने के लिए गयी तो भैस के सामने पडी हुई कुट्टी को ठीक करने लगी। कुट्टी

तो क्या टीक करती, उन से दुश्मन न उन्हें वहाँ भी आ घेरा। साँप न पूरे जोर से डस लिया। वे बहादुर बेटे की बहादुर माँ थी पहले की तरह ही तीसरी बार भी मृत्यु पर विजय पा गयी।

रावी दरिया ने उफन कर गाँव को चारों ओर से घेर लिया। घर ढा लिया, चढ़ाई भी कर दी—पानी घरों के भीतर तक घुस आया। तमाम लोग छतों पर चढ़ गये। जीवन खतरे में घिर गया। वस्त्र लाग इकट्ठे हो कर बाँध बनाने लगे। बहादुर माँ ऐसे में कैसे घर रह सकती थी? फौरन उठी और पानी में घुस गया। मिट्टी में हाथ डाला ही था कि साँप ने फिर हाथ पर वार किया। झट गावर उठा हाथ के अँगूठे पर मल लिया। थोड़ी देर के बाद सब को बताया पर किसी डॉक्टर या झाड़ फूँक वाले को बुलायें भी तो कैसे? चारों ओर पानी-ही पानी। तभी उस उफनते दरिया में लगा दी छलाँग उन के बेटे रणवीर सिंह ने। वे तैरते हुए पार हो लाहौर पहुँचे और वहाँ से नाव में बैठा कर डॉक्टर को लाये। और माँ एक बार फिर मौत के किले का चक्कर काट कर अपने घर आ गयी।

साँप का काटना तो दूर, किसी को काटने का वहम भी हो जाय तो वहम ही खा जाये। विद्यावती जी को एक बार नहीं चार बार साँप ने काटा पर उन की जीवन डोर हमेशा साँप के ज़हर से ज्यादा मज़बूत निकली। साँप के ज़हर से चिकित्सा विज्ञान के अनुसार डॉक्टर किसी को बचा सकता है और लोक विश्वास के अनुसार झाड फूँक करने वाला तांत्रिक भी। इस लिए चार बार साँप के काटने पर बच जाने को मैं उतना महत्त्व नहीं देती जितना मृत्यु के सामने आ कर खड़े हो जाने पर भी उन की स्थिरता को। हालत चाहे जितनी खराब हुई मृत्यु का पंजा चाहे कितना कस गया उन के शान्त चेहरे पर घबराहट की कोई रेखा कभी नहीं खिंची। उन्हों ने शारीरिक रूप में ही नहीं मानसिक रूप में भी हर बार अपने को मृत्युंजय भगत सिंह की माँ सिद्ध किया और इस तरह वे काले नाग उन के व्यक्तित्व का प्रदीप्त करने वाले प्रमाण पत्र के काले अक्षर बन गये।

बरसात के दिनों में अब भी कभी-कभी साँप उन के पास आ जाता है। एक बार वे सोयी हुई थी। उन के पास ही मेज पर लालटेन जल रही थी। एक बहुत बड़ा साँप न मालूम कब आया और लिपट कर बैठ गया लालटेन के चारों ओर। ऐसे ही एक बार सन्ध्या के झटपटे में वे आँगन में चारपाई पर बैठी थी कि नीचे बहुत बड़ा साँप घूमने लगा। लेकिन किसी-न किसी तरह वे हर बार बच जाती रही। सुना है कि जिसे कई बार साँप ने काटा हो, उस की देह में बरसात के दिनों में ऐसी गन्ध आने लगती है कि साँप स्वतः ही उस गन्ध की ओर आ जाता है। कह नहीं सकती इस में कितनी वास्तविकता और कितनी कल्पना है पर ये दृश्य तो हम ने भी देखे हैं।

उन की सहन शक्ति की बात सोचती हूँ तो स्तब्ध रह जाती हूँ। उन्हों ने मृत्यु के आक्रमण ही नहीं सहे और भी बहुत-कुछ सहा। जेल जाने वालों ने भी इतना

शारीरिक और मानसिक कष्ट न सहे होंगे, जितने कि विद्यावती जो ने अपने जीवन में सहे। अपनी वेदनाओ को सुनाते-सुनाते कभी वे गम्भीर हो जाती तो कभी उन की आँखो मे अथाह सन्तोप का समुद्र ही लहराने लगता। स्पष्ट था कि अपने कष्टो की चिन्ता उन्हो ने कभी नही की। हाँ, उन के मन का एक वहुत ही कोमल कोना है और वह है भगत सिह की याद। वे उन की वात करती है, तो प्रसग के अनुसार गौरव, सुख, सन्तोप, दु ख और गम्भीरता—सभी तरह की रेखाएँ चेहरे पर खिंचती रहती हैं। वे और अधिक गम्भीर न हो जायें, इस लिए मै ने उस दिन उन के सामने ऐसा प्रश्न रख दिया, जिसे सुन कर वे खिलखिला कर हँस पडी। मै ने उन्हे इसी रूप मे सव से अधिक आकर्पक पाया। मेरा प्रश्न था—"वेवे जी, आप का विवाह कव हुआ और तव आप को कैसा लगा?"

वडे ही सादे और मनोरजक ढग से उन्हो ने कहना शुरू किया—"विवाह के समय सव-कुछ अच्छा-ही-अच्छा लगा। नये कपडे मिले, अच्छे-अच्छे गहने मिले। उस समय मै केवल ग्यारह वरस की थी। मेरा नाम इन्दी था। मेरे विवाह के समय की घटना भी अजीव है। यों तो दोनो परिवार सिक्ख थे, पर इधर आर्य-समाज का विशेप प्रभाव होने के कारण विवाह गुरु ग्रन्थ साहव से न हो कर आर्य-समाजी ढग से हुआ। फेरे वेदी से हुए, सरदार जी ने पण्डित के साथ-साथ स्वय भी सभी मन्त्र पढे। उस जमाने को देखते हुए यह घटना वडी असाधारण थी। सारे गाँव मे इस वात की चर्चा हुई कि सरदार वरयाम सिह के घर तो ऐसा दामाद आया है जो मन्त्र भी स्वय ही पढता है।"

सरदार अर्जुन सिह उन दिनो जालन्धर मे एक वकील के मुन्शी थे, इस लिए वे गाँव मे न रह कर परिवार सहित जालन्धर ही रहते थे। आर्य-समाज, पढाई-लिखाई और युग के वातावरण का परिवार पर इतना प्रभाव था कि गाँव के आम परिवारो से वहुत भिन्न था यह परिवार। वे एक साधारण परिवार से आयी थी, जहाँ उन की पढाई-लिखाई विलकुल नही हुई थी। उस युग के अन्य काम-धन्धो का ही ज्ञान उन्हे दिया गया था—चरखा कातना, कपास चुनना तथा घर के अन्य काम-काज, लेकिन इस घर मे आ जाने के वाद यही सव काफी न था। इस लिए उन के ससुर साहव ने विवाह के वाद ही यह तकाज़ा किया कि वहू को उन दिनो की परम्परा के अनुसार मायके मे अधिक दिन न छोड कर हम कुछ दिन वाद ही ले जायेंगे और जालन्धर रख कर शिक्षा की व्यवस्था करेंगे, पर गाँव की उस किशोरी के लिए यह वात एकदम असाधारण थी। वह शिक्षा का अर्थ ही न समझती थी और घर से दूर रहना उसे एकदम अस्वाभाविक लगता था।

उन्ही के शब्दो मे—"जव-जव मुझ से यह कहा जाता कि तुम्हे जालन्धर वोर्डिंग मे रख कर पढाया जायेगा, मैं अपनी माँ के गले से लिपट कर विलख-विलख कर रोने लगती और इस कल्पना से ही कि मै घर से दूर चली जाऊँगी, इतनी सहम जाती

कि मुझे बुखार आ जाता। कुछ दिन बाद सरदार जी मुझे लेने के लिए आये। मगर माता पिता मेरी हालत को समझ चुके थे। इनकार का कोई और रास्ता न सूझा, तो कह दिया कि तुम्हारी माता भी तो पढ़ी लिखी नहीं है। इस पर सरदार जी को गुस्सा आ गया और वे नाराज़ हो कर लौट आये। उन का लौटना था कि हमारे घर में सब को चिन्ता हुई और पढ़ाई का क्रम आरम्भ करने की बात सोची गया। स्कूल वहां कोई था नहीं। कोई साधु-सन्त आता तो मेरी मां झट कायदा ले कर मुझे उस के पास बिठा देती और विनयपूर्वक कहती— संन्यासी जी, मेरी बेटी को दो चार अक्षर सिखा दो। हमारे गांव में एक जुलाहिन थोड़ी पढ़ी लिखी थी। कभी मुझे उस के पास पढ़ने को भेजा जाता, तो गुरुद्वारे के ग्रंथी के पास और कभी गांव के ब्राह्मण के पास। कम इतनी ही शिक्षा हो सकी मेरी—कि थोड़ी-बहुत हिन्दी-पंजाबी सीख ली।

विद्यावती जी का विवाह १८९८ के लगभग हुआ। दो साल बाद गौना हुआ। तभी जिला लायलपुर में जमीन मिल जाने के कारण सरदार अर्जुन सिंह अपने परिवार सहित लायलपुर में जा बसे। यह सन १९०० की बात है। तभी वे पहली बार ससुराल गयी और आठ महीने वहाँ रहीं।

नयी जमीनें, नये घर, नयी आबादी, सब-कुछ नया ही था उस समय लायलपुर में। जमीन जम कर मेहनत चाहती है, पर मेहनत तो वही करे जो एकाग्र हो कर जूझ जाये मिट्टी के साथ। यहां तो पेट से अधिक चिन्ता थी देश की। इस लिए जमीन की तरफ कम, जलसे-जुलूसों और सोसायटियों में सब का ध्यान अधिक था। कभी सरदार किशन सिंह पर कोई मुकदमा चल पड़ता, कभी उन्हें जेल की सजा हो जाती, कभी सरदार अजीत सिंह गिरफ्तार हो जाते और कभी सरदार स्वर्ण सिंह। ऐसी ही अस्त-व्यस्त मन स्थिति और परेशानियों से गुजर रहा था उन का जीवन। जिस घर की वे बड़ी बहू थीं, वह असल में घर कम और विद्रोहियों का अड्डा अधिक था। जाने कौन, कब, कहां कहां से आ जाता और कब तक ठहरता। विद्यावती जी आने वाले मेहमान की भावना से लाख कोस दूर थीं, क्यों कि हरेक एक रहस्य बना रहता था और हरेक के आने पर गोपनीयता का वातावरण और घना हो जाता था। वे कभी ससुराल आ जाती, कभी मायके चली जाती, पर वे कहीं भी रहें, उन का मन सदा किसी अज्ञात आशंका से भरा रहता, जिस में जाने कब क्या हो जाय की अस्थिरता व्याप्त रहती। इन्हीं परिस्थितियों के बीच १९०४-५ में उन्हों ने अपने ज्येष्ठ पुत्र जगत सिंह को जन्म दिया।

उन्हीं के शब्दों में— उन दिनों सूफ़ी अम्बाप्रसाद अक्सर हमारे घर आया करते थे और कमरे में बैठे कुछ-न-कुछ लिखते रहते थे। हमें वे जरा भी अच्छे न लगते थे क्यों कि उन के आने पर सब लोग उन में ही उलझे रहते थे। एक बार हम ने उन्हें स्नान का भी नहीं पूछा। जब-जब हम ने रोशनदान से उन के कमरे में झांक कर देखा, उन्हें कुछ लिखते पाया। हमें रह-रह कर आश्चर्य हो रहा था कि यह क्या

आदमी है, जिसे खाने-पीने का भी ध्यान नही और फिर भी लिखता ही जा रहा है। दो-तीन दिन के बाद जब सरदार जी आये, तो उन्हो ने पूछा—मास्टर जी को खाना खिलाया ? हम ने कहा नही, तो वे बहुत नाराज हुए। फिर जा कर उन से पूछा, तो मास्टर जी ने बडी सादगी और शान्ति से, जैसे कोई बात ही न हुई हो, उत्तर दिया—'न किसी ने खाना दिया और न मैं ने खाया।' "

घर तब घर बनता है जब स्त्री और पुरुष पूरी योग्यता और पूरी लगन के साथ अपने पसीने से उसे सीचते है, पर घर के सर्वेसर्वा सरदार किशन सिह सरदार अजीत सिंह और सरदार स्वर्ण सिंह तो देश की बेल को अपने खून से सीचने मे लगे हुए थे, फिर घर की बेल को अपने पसीने से कौन सीचता ? स्थिति ऐसी थी कि वह बिखर जाये, पर साहस-धैर्य की प्रतिमा श्रीमती जय कौर उसे अपने सुदृढ हाथो से थामे बैठी थी और इस लिए बिखरने से बचा रहा। विद्यावती जी किन परिस्थितियो मे जी रही थी, इस का पता इस से चल सकता है कि सितम्बर १९०७ मे जब उन्हो ने अपने पुत्र भगत सिह को जन्म दिया, तो उस के एक दिन पहले तक सरदार किशन सिह एक मुकदमे मे गिरफ्तार थे। सरदार स्वर्ण सिंह जेल काट रहे थे और सरदार अजीत सिंह माण्डले (बर्मा) मे जलावतन थे। तीन-तीन भालो से बिधा उन का मातृत्व क्या हर क्षण कराहता न रहा होगा।

सयोग की बात, जिस दिन भगत सिंह का जन्म हुआ उसी दिन सब छूटे। इस से घर की ईट-ईट पर पहरा देती हताश उदासी हटी और खुशी की पायलो की झकार से घर उल्लसित हुआ, पर यह उल्लास धूप-छाँही था, इधर आया, उधर गया। १९०९ के आरम्भ मे सरदार अजीत सिंह भारतीय स्वतन्त्रता सघर्ष को जारी रखने के लिए चुपचाप विदेश चले गये। उन के जाने के बाद सरदार किशन सिह को गिरफ्तार कर लिया गया कि इन्हे अपने भाई की पूरी जानकारी होगी। जानकारी तो थी ही, पर वह जानकारी अँगरेजी सरकार को देने के लिए तो नही थी। यही सघर्ष की पृष्ठभूमि थी। सरदार किशन सिह के लिए जो सघर्ष था, विद्यावती जी के लिए वही सकट था। यही सकट होता, तब भी कोई बात न थी। एक घाव मे कितना भी दर्द हो, आदमी उसे सह लेता है, पर घाव के बाद घाव हो, तो सहनशीलता भी क्या करे ? हथौडो की निरन्तर पडती चोटें तो मजबूत चट्टान को भी चटका देती है।

पति सघर्ष मे ग्रस्त, एक देवर जलावतन, दूसरा पहले गिरफ्तार फिर बीमार, फिर स्वर्गवासी। एक देवरानी विधवा, एक न विधवा न सधवा। जीवन की चारो दिशाओ मे हाहाकार ही हाहाकार। लेकिन कोई दु ख कितना भी बडा हो, निरन्तर बना रहे तो सहना आदत बन जाती है और आदत उसे सहने की शक्ति देती है। इस तरह विद्यावती जी का जीवन पुराने दु खो के बीच कुछ सहज हो ही रहा था कि पजाब-भर मे गदर-पार्टी का आन्दोलन मच गया। अपनी मुसीबत तो थी ही, आज यह आया कल वह आया आरम्भ हो गया और हर आना-जाना विद्यावती जी के लिए एक नया आतंक

जाये कि धक्का देने वाले के लिए यह धक्का कितना त्रासदायक होगा कि उसे सहने मे वडे से वडे वीर का भी छक्का छूट जाये।

लगभग दो वर्ष वाद सरदार किशन सिंह लाहौर गये और वहाँ जीवन-वीमा का काम आरम्भ कर दिया। काम कुछ जमा तो वे विद्यावती जी को भी वही ले आये और अपने तीनो वच्चो जगत सिह, भगत सिंह और अमर कौर को दादा-दादी और चाचियो के पास वंगा मे छोड दिया। लाहौर आ कर ही कुलवीर सिंह का जन्म हुआ। लाहौर के पास ही खासरियाँ मे जमीन खरीद ली गयी, वीमे का काम भी चलता रहा। स्थिति अव पहले से वेहतर थी। उन्ही के शब्दो मे—"वीमे का काम अच्छा चल रहा था। खेती का काम भी आरम्भ हो गया था। कुछ पैसे वचे, तो मै ने सोने की दो अँगूठियाँ और वटन वनवा लिये, पर जेवर हमारे पास कव रहे थे, जो अव रहते। कुछ दिन वाद घर का एक नौकर उन सव जेवरो को चुरा कर भाग गया। वस जीवन मे पहली और अन्तिम वार यही जेवर मैने वनवाये। कही घूमने को मन करता, तो मै अपनी जमीन पर चली जाती या शहर। सिनेमा देखने का तो न शौक था, न उन दिनो रिवाज ही।"

कुछ वर्ष वाद खेती का काम काफी अधिक फैल गया। इस लिए मुख्य रूप से खासरियाँ मे ही रहना आरम्भ किया। मन मे शान्ति थी। जीवन मे सुख-समृद्धि की भावना। जीवन का वोझ हलका होने लगा था और वह उभरने लगा था। भगत सिह की शादी की वात चल रही थी। एक जगह से कुछ आदमी उन्हे देखने आये। सव को डर था कि भगत सिंह मना न कर दे, पर भगत सिंह उस दिन पूरी मस्ती मे थे। वरावर उछलते-कूदते रहे, नाचते-गाते रहे। विद्यावती जी से कहा—"वेवे जी, मेरी सगाई होने वाली है, जिसे जो वाँटना हो वाँट दो। खूव खुशी मना लो।" वे लोग रात मे घर पर ही रहे। दूसरे दिन सुवह भगत सिंह ने उस आदमी को खेत पर भेज दिया, जो ताँगा चलाता था और स्वय उन्हे ताँगे मे वैठा कर लाहौर तक छोडने गये। सगाई की तारीख निश्चित हो गयी, पर भगत सिह उस से पहले ही अपने पिता जी की दराज से रुपये ले कर और एक पत्र वहाँ रख कर अन्तर्ध्यान हो गये। विद्यावती जी के लिए यह वज्रपात ही था। उन के सव सपनो पर पानी फिर गया था और वे तडप उठी थी।

वे लाहौर की ग्वालामण्डी मे एक प्रसिद्ध ज्योतिपी के पास गयी। उस ने भगत सिंह का कोई कपडा माँगा। उन की पगडी पेश की गयी, तो कुछ पढ कर ज्योतिपी ने कहा—"तुम्हारा वेटा कुछ दिन वाद आ जायेगा, पर फिर चला जायेगा। उस लडके का भाग्य अद्भुत ढग का है कि या तो वह तख्त पर वैठेगा या फिर तख्ते पर झूलेगा।" क्रान्तिकारी परिवार मे रहने वाली विद्यावती जी के विचारो मे तख्त कहाँ आता, तख्ता ही घूम गया और उन्हे लगा कि एक साथ वहुत से विच्छू देह मे डक मार रहे है। यह १९२३ की वात है।

कभी ये कम हो जाते थ, कभी कम पर उस दिन तो राम रोम में टक ही टक हो गये जब १९२७ के बम-केस में भगत सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हों ने अपने पति की गिरफ्तारियाँ देखी थी एक देवर को जलावतनी देखी थी, दूसरे देवर की जेल और फिर मृत्यु देखी थी पर यह तो उन की गोद में पलता पुत्र की गिरफ्तारी था और गिरफ्तारी भी दफा १४४ तोड़ने में नहीं कि कुछ महीनो की जेल हो जाये गिरफ्तारी बम केस में जिस में आदमी फाँसी भी पा सकता है और काले पानी भी जा सकता है। यह गिरफ्तारी उन के लिए कोई बीमारी नही एक महामारी ही थी जिस में गाँव के गाँव उजड जाते है। उन का मन आंधी की इस संयोग में अस्त-व्यस्त हो गया।

उन्ही के शब्दों में— मैं न एक एक पल अंगारो पर काटा। सरदार जी रात दिन कोशिश कर रहे थे। वे बार-बार मुझे सान्त्वना देते थे पर मेरा मन अशुभ कल्पनाओं से इतना भर गया था कि मुझे उन की सान्त्वना एक बहलावा ही लगती। मुझे लगता था कि मेरी जिन्दगी बिखर रही है और अब यह दिखराहट रुकेगा नहीं।' सोचती हूँ यह उस नारी के जीवन का भूकम्प था जिस का बालपन अभावों से घिर घिरे दाम्पत्य के सुख की कल्पनाओं में बीता था पर दाम्पत्य मिला था काँटो से बिंधा हुआ, तब उस ने मातृत्व के सुख की कल्पनाओं में अपने को उलझा लिया था पर अब उस मातृत्व के द्वार पर भी काँटो के पेड उग आये थे— जहरीले काटो के पेड और उस की अन्तिम कल्पनाएँ भी कण्टकाकीर्ण हो गया थी। राह चलते काँटा लग जाता है तो हम परेशान हो जाते है लेकिन जिस की पूरी जिन्दगी काटों में बीत रही हो और उन काँटों के कटने की सम्भावना भी उस से छिन रही हो उस का क्या हाल होगा? आराम में जीने वाले इस प्रश्न का उत्तर कहाँ दे सकते है?

बडी मुश्किल से साठ हजार की जमानत पर भगत सिंह को छुडाया गया और सोच विचार के बाद उन्हे काम में लगाने का एक डेरी फार्म बनाया गया जो कि कुछ दिन सब चला। लेकिन भगत सिंह का डेरी का काम तो करना नहीं था। वे तो उस काम से कहीं बडे कामो के लिए उत्पन्न हुए थे हाँ, उन का जन्म देने वाले माता पिता और आसपास रहने वाले लोग उस समय यह कहाँ जानते थे कि भगत सिंह क्या है?

भगत सिंह टांगे पर दूध ले कर लाहौर जाते और फिर कई बार दो-दो तीन तीन दिन वापस न आते। जब कई दिन के बाद लौटते तो विद्यावती जी की भयभीत प्रतीक्षा अन्तिम सांस ले रही होती। भगत सिंह को देख उन की आँखो में आँसू उमड पडते। भगत सिंह कुछ भी न कहते। व रात जागती वे हँसते रहते नाचने की तरह मस्कते रहते या माँ को छेडते रहते। अन्त में जीत हँसी की ही होती। वे भी हँसने लगती और वे पट उठा के आंसू पोछ देते।

कभी-कभी तो विद्यावती जी की चिन्ता इतनी वढ जाती कि वे भगत सिंह को देखने के लिए स्वय लाहौर पहुँच जाती। एक वार इसी तरह वे लाहौर पहुँची। भगत सिंह तथा सुखदेव के साथ टाँगे मे वैठ कर वे कही जा रही थी कि सुखदेव की तरफ देख कर वोली—"यही तुम्हे इधर-उधर ले जाता है, इस को मै आज जरूर थप्पड लगाऊँगी।" भगत सिंह सुखदेव से वहुत प्यार करते थे। झट वोले—"ना वेवे जी, इसे मत मारना, यह वडे घर का लाडला वेटा है" और उन्हो ने इशारा कर के सुखदेव को नीचे उतार दिया। भगत सिंह अपनी वात पर दृढ रहते थे, पर मन किसी का न दुखे इस का पूरा ध्यान रखते थे, फिर वेवे जी के लिए तो उन के मन मे अथाह प्यार था।

सुवह और शाम उन के जीवन मे साथ-साथ चल रहे थे। भगत सिंह आ जाते, हँसते-हँसते काम मे जुटे रहते, उन्हे दीखते रहते, वे खुश रहती। भगत सिंह चले जाते, न लौटते तो उन का मन आशकाओ से भर जाता—पता नही मेरा भगत लौटेगा भी या नही, सरदार अजीत सिंह की तरह वह भी न लौटा तो ? कितनी विचित्र वात है कि सरदार अजीत सिंह का जीवन जहाँ भगत सिंह के लिए दीप-शिखा की तरह मार्गदर्शक और प्रेरक था, वहाँ उन के लिए शूली की तरह आतंककारी भी था। वे चाहती थी कि भगत सिंह डेरी के काम में लगे रहे, पर वे यह नही जानती थी कि भगत सिंह भैसो का दूध वेचने के लिए नही, माताओ के दूध का नाम ऊँचा करने को जन्मे है। माँ के दूध की शपथ उन के कार्यो की प्रेरणा है।

माँ को अपनी धुन थी और वेटे को अपनी। माँ की धुन कामना की थी, वेटे की धुन साधना की। कामना हारी, साधना जीती। साण्डर्स का वध होते ही भगत सिंह लापता हो गये। खोज-खवर की सीमा से दूर, सीमाहीन अज्ञातवासी। उन का मन विखर गया, जैसे डेरी विखर गयी थी। उन के व्यक्तित्व की सर्वोत्तम चीज़ हँसी है, पर तव उन की हँसी लुट गयी, उन की हँसी सो गयी, वे उदासी में डूव गयी, जैसे साँस लेता कोई वृक्ष हो !

एक दिन गाँव की वहुत सारी स्त्रियाँ इकट्ठी हो कर शहतूत खाने को चली तो वहुत ज़िद कर के उन्हे भी साथ ले चली कि उन का भी मन कुछ वहलेगा। उन्ही के शब्दो मे—"हम अभी जा ही रहे थे कि एक स्त्री ने आ कर कहा—'हाय, भगत सिंह पकडा गया।' वस मेरी तो कमर टूट गयी, वम का धमाका मेरे कलेजे पर हो गया। मेरी आँखो के सामने घूमने लगा, कभी भगत सिंह का खूवसूरत चेहरा, कभी जेल के मोटे-मोटे सीखचे, फिर भगत सिंह का चेहरा और फिर फाँसी का फन्दा। कलेजा विंध गया। मुझ मे चलने की हिम्मत न रही। किसी तरह गिरती-पडती घर पहुँची। मुझे हर तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा दिखाई दे रहा था।"

कुछ दिन वाद अपने पिता जी के नाम भगत सिंह का पत्र दिल्ली जेल से आया। उन्हो ने मुलाकात के लिए आने को लिखा था। उन्हें खुशी हुई, पर आगे यह भी लिखा था कि "वेवे जी को साथ न लावें, वे ख्वामखाह रो देंगी और मुझे भी दुःख

होगा हा।" य नहीं गयी दूसरे लोग गए, पर उन का मन कितना तड़पा होगा, इसे कौन जान सकता है। दिल्ली में असेम्बली की सजा के बाद भगत सिंह को मियाँ वाली जेल भेजा गया फिर कुछ दिनों बाद लाहौर दूसरे मुकदमे में लिए लाए गए। जिन दिनों भगत सिंह का भूख-हड़ताल जारी थी विद्यावती जी के शब्दों में—

'उन दिनों कुछ ध्यान का मेरा मन नहीं लगता था। हर समय ख्याल आता था—भगत सिंह भूखा है मैं कैसे खा लूँ? फिर थाली-चढ़ा जाना थी यह सोच कर कि हमें तो पैदल चल कर लाहौर पहुँचना है। उन दिनों भगत और यतीन्द्रनाथ (अमृतसरी बमकाण्ड के साथी) केवल कंकाल मात्र रह गए थे। दोनों को स्ट्रेचर पर डाल कर अदालत में लाया जाता था। विद्या वाले का एक लम्बा नहीं रामप्रसाद बिस्मिल की बहन बन कर हमारे साथ अदालत में जाती थी। वह कमर में लम्बी तलवार पहन रखती थी। एक दिन जब उस ने भगत और दत्त को स्ट्रेचर पर लाते देखा तो छाती पीट-पीट कर कहने लगी—हमारे भाई भूखे मार दिए ओ इन जालिमों ने हमारे भाई भूखे मार दिये। उस की आवाज सुन कर अन्य दर्शक भी चिल्लाने लगे और इस तरह अदालत में कोहराम मच गया। अदालत बर्खास्त करनी पड़ा। उस शोर गुल में कुछ मिनट तक भगत को वे ले जाना ही भूल गए। मजिस्ट्रेट ने कहा—पकड़ लो, इस लड़की को। तब भगत ने जोर से चिल्ला कर कहा था—यहाँ मेरी माँ है चाचियाँ हैं, बहनें हैं किस किस को पकड़ेंगे आप? जितने क्षण भगत का स्ट्रेचर नहीं उठाया गया दुर्गा (भाभी नाम से प्रसिद्ध एक क्रांतिकारिणी) उन से बातें करती रही। मैं भी पास ही खड़ी थी। भगत उस समय मुझे बच्चा ही लग रहा था और मेरा जी चाह रहा था कि उसे गोद में उठा कर भाग चलूँ लेकिन यह ममता भी वहाँ था मैं बेबस थी।'

मुकदमे के दिनों में घर के सब लोगों का ध्यान भगत सिंह और अदालत की ओर केंद्रित हो गया था। काम-काज सब बन्द हो गया था। सरदार किशन सिंह मुकदमे और जलसे जलूसों में लगे हुए थे। जो कुछ था उसे ही बेच कर खर्च जुटाया जाता था। इन सिर मकान की खिड़कियाँ और दरवाजे तक उतार कर बेच दिये गये थे। अस्मिता की होली जल रही थी उस के लिए कोई भी चीज़ हो सिर्फ ईंधन थी। जीवन जल कर राख हो रहा था पर घर का हर आदमी आग बबक रहा था। उस पर पानी नहीं डाल रहा था। परिवार की जिन्दगी ज्वालामुखी हो गयी थी।

कई बार कई-कई घण्टे मुलाकात की प्रतीक्षा में जेल के बाहर खड़े रहना पड़ता था। जेल अधिकारी ध्यान ही न देते थे और दिन भर की प्रतीक्षा के बाद जब बिना मिले ही लौट जाना पड़ता तो विद्यावती जी की हालत उस भिखारी से भी बदतर हो जाती जो सुबह खाली झोली ले कर चला हो और सन्ध्या के झुटपुटे में खाली झोली लिये ही लौट रहा हो, निराशा जिस के रोम रोम में व्याप्त हो पर उसे आशा में बदलने का कोई चारा न हो।

उन्ही के शब्दो मे—"बापू जी (सरदार अर्जुन सिंह) कुलवीर सिंह और मैं, एक बार मुलाकात को गये। दोपहर को ही जेल के दरवाजे पर हम पहुँच गये थे, लेकिन साँझ घिर आयी, हमे मिलने को नही बुलाया गया। हम भगत के बहुत पास थे। बस एक दीवार ही हमारे बीच मे थी, पर जिसे देखने को हमारी आँख तरस रही थी उसे हम न देख सके। प्यासे ही गये, प्यासे ही लौटे। वहाँ से पैदल चल पडे। जाते समय पैरो मे जो उत्सुकता थी, लौटते समय वह निराशा का बोझ बन गयी थी। मन भी बोझिल हो चुका था। फिर भी मै किसी तरह मन के बोझ को ढोती हुई चल रही थी। अँधेरा घिर आया था और हम झाड-झखाड-भरे रास्ते मे जा रहे थे। मै ने देखा, झाडियो के पीछे कुछ आदमी है और वे एक-दूसरे को कुछ इशारा कर रहे है। मै समझ गयी कि चोर है, इस लिए मै जोर से बोली—'भगत सिह का वकील तो कुछ बोलता नही, सरकारी वकील बहुत बोलता है, कुलवीर! हमे दूसरा वकील करना चाहिए।' सुनते ही वे पीछे हट गये। भगत सिंह चोरो के भी पूज्य हो गये थे।"

मै जब-जब विद्यावती जी के कँटीले कष्टो और बेपनाह बर्दाश्तो की बात सोचती हूँ, मेरा रोम-रोम काँप उठता है। भारतमाता की स्वतन्त्रता के लिए देश के तरुणो ने बहुत-कुछ किया, बहुत-कुछ सहा पर क्या यह कम महत्त्वपूर्ण है कि माताओ ने सीने पर पत्थर रख कर अपने बेटो को अथाह कष्टो, यातनाओ मे-से गुजरते हुए देखा और पल-भर उन को देखनेमात्र के लिए भी यो भटकती फिरी?

इसी तरह एक बार वे मुलाकात को गयी, तो भगत सिह ने कहा—"बेबे जी आप भी जेल मे आ जाइए, यहाँ साथ ही रहेंगे, आप को चल कर आना नही पडेगा।" वे उत्सुकता से बोली—"कैसे आ जाऊँ बेटा? लेक्चर मुझे देना नही आता, पिकेटिंग कर के आ जाऊँ क्या?" भगत सिंह बोले—"नही, वह हमारा काम नही है।" वे भूल गयी जेल-फाँसी को और उपहास के मूड मे बोली—"तो किसी को ढेला मार कर आ जाऊँ?" सुन कर भगत सिह खिलखिला कर हँस पडे और आसपास के दूसरे लोग भी। सोचती हूँ—माँ-बेटे की ऐसी हँसी इतिहास ने कितनी बार देखी है?

फाँसी मे कुछ दिन पहले की मुलाकात मे भगत सिह ने उन से कहा था—"फाँसी के दिन आप न आना बेबे जी? आप रोयेंगी, बेहोश हो जायेंगी, लोग आप को सँभालने मे लगेगे या लाशे लेगे? कुलवीर को भेज देना, अगर जेल वालो ने दी, तो वह लाश ले जायेगा।" भगत सिह के लिए उन की मृत्यु निमन्त्रित मृत्यु थी। इस लिए फाँसी के बाद की उन की लाश, उन के लिए सर्वोत्तम उपलब्धि थी, उन के जीवन की कृतार्थता और परिपूर्णता भी। इसी लिए अपनी लाश की बात वे इतनी निर्लिप्तता से कह गये, पर उन की माँ के कलेजे मे उस समय काली का जो ताण्डव हुआ होगा, उसे तो वे ही जान सकती है।

२३ मार्च १९३१ को फाँसी दे दी गयी। उन्ही के शब्दो मे—"सुनते ही मेरा

कलेजा टुकडे टुकड हो गया। भीतर स आँसुओ का समुद्र उमडता पर आँखो तक आन आते मेरी बुद्धि उसे रोक देता। हसते-हँसते प्राण न्योछावर करने वाले मेरे बेटे भगत के कहे अन्तिम शब्द मेरे कानो से बार-बार गूँज रहे थे— बेबे जी रोना मत। ऐसा न हो आप पागलो की तरह रोती फिरें। लोग क्या कहेंगे कि भगत सिंह की माँ रो रही है।' कलेजा मुह को आने लगता पर मैं भीतर-ही भीतर घोलती रही उन आँसुओ को।'

सोचती हूँ क्या फाँसी के फन्दे को गले म डालने से भी मुश्किल नही था यह काम एक माँ के लिए ? फिर कसे कर सकी वे इसे ? व इसे इस लिए कर सकी कि उस समय उन की एक देह म दो मातायें एक साथ आ बैठी थी—एक थी एक बेटे का मा, एक थी एक शहीद की माँ। बेटे की माँ रोने को उमड रही थी, शहीद की मा रोने को रोक रही थी। कितना करुण पर कितना अरुण है उन का यह चित्र।

यह अन्तर्द्वन्द्व कुछ धीमा पडा तो उन्हें घर दिखाई दिया। उस म न वह पुत्र था न वह पैसा। वह पूरी तरह जम कर एक बार फिर उखड गया था। सकडो मन अनाज पैदा करने वाला यह किसान परिवार अनाज के दाने दाने के लिए मोहताज हो गया था। १९३१ से १९३४ तक वे चार वर्षों में घोर आर्थिक सकट का सामना करना पडा। यह सकट किस काल कोठरी के सकट से कम था ?

धीरे धीरे यह सकट कम हुआ पर १९३९–४० का वर्ष आया कि सब काम बनते-बनते बिगड गये। बसते-बसते उखड गये। उन के दो बेटे कुलबीर सिंह और कुलतार सिंह जेल म जा पहुँचे और उन के पति सरदार किशन सिंह फालिज से अपंग हो पलग पर पड गये। अब वे ही सब-कुछ थी उन का व्यक्तित्व त्रिविध हो गया था। कभी वे घर को सँभालती कभी खेती-बाडी को देखती तो कभी जल्से की अध्यक्षता करने जाती। एक बार मोरी गेट (लाहौर) के बाहर उन की अध्यक्षता म एक भारी जलसा हो रहा था। भाषण देते हुए उन्हो ने बहुत ही सादी भाषा म अंगरेजो को लक्ष्य कर के कहा— मेरे एक बेटे को तुम ने फाँसी पर लटकाया मेरे छोटे देवर सरदार स्वर्ण सिंह को जेल के अन्दर अत्यधिक शारीरिक कष्ट पहुचा कर तपेदिक का रोगी बनाया और इस दुनिया से विदा होने के लिए मजबूर किया मेरे दूसरे देवर सरदार अजीत सिंह को जलावतन हो कर विदेशो में भटकना पडा और अब मेरे दो बच्चो को बिना कोई मुकद्दमा चलाये गिरफ्तार कर लिया है। क्या म इस सब स डर गयी ? नही म मिट जाऊँगी पर झुकूँगी नही। मैं ब्रिटिश-साम्राज्य को नयी चुनौती देती हूँ और दूसरे दो बच्चे भी देश-सेवा के लिए पेश करती हू। आओ जालिमो अगर तुम्हारी हवस अभी पूरी नही हुई तो इन को भी ले जाओ। इस से जल्से म बेहद जोश फैल गया और शहीदे-आज़म जिन्दाबाद के नारो की गूँज स धरती-आकाश एक हो गये। उस समय उन का चेहरा एक रूहानी नूर स दमक उठा था—दिव्य तेज स प्रदीप्त हो गया था।

उन्ही दिनो वे घी और मिठाइयाँ लेकर माण्टगुमरी जेल में पहुँची। उन्हें मालूम न था कि जेल मे भूख-हडताल चल रही है। माण्टगुमरी जेल मे वैसे ही वहुत सख्ती थी। फिर भूख-हडतालियो से किसी को मुलाकात करने की इजाजत कैसे मिलती ? वे सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल की कोठी पर गयी और कहा कि मुझे अपने वेटो से मिलने की इजाजत दी जाये। सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल वहुत घवराया हुआ था, उस ने जवाव दिया—"मेरा नन्हा-सा वच्चा वहुत वीमार है, मै वहुत परेशान हूँ, आप मुझे तग न करें। वे भूख-हडताल छोड दे, तभी आप मिल सकती है।" उन्हो ने तमतमाहट से सुपरिण्टेण्डेण्ट की ओर देखा और जवाव दिया—"आप अपने नन्हे वच्चे के लिए परेशान है, तव मेरी क्या हालत होगी, जिस के दो नौजवान शेरो-जैसे वच्चे भूखे है ?"

सुपरिण्टेण्डेण्ट ने अपनी मजवूरी वयान करते हुए मुलाकात कराने से इनकार कर दिया तव वहाँ उन की अध्यक्षता मे वडा भारी जलसा हुआ। उन्हो ने सारे हालात वहाँ की जनता के सामने रखे, तो लोग जोश से भडक उठे और वह जनसमूह जुलूस की शक्ल मे सुपरिण्टेण्डेण्ट की कोठी के सामने आ पहुँचा। कोठी जेल के पास ही थी। वाहर से भीड ने नारे लगाये, तो उन नारो का जवाव नारो मे जेल के अन्दर से कैदी देने लगे। इस पर भीड मे और जोश फैला। अव सुपरिण्टेण्डेण्ट वहुत घवराया और गिडगिडा कर विद्यावती जी से माफी माँगते हुए वोला—कि सरदार कुलवीर सिह (जो उस समय वीमार थे) को फौरन लाहौर के मेयो अस्पताल मे भेज दिया जायेगा। यह उन के व्यक्तित्व की विजय थी। मै उन के इस रूप की जव कल्पना करती हूँ, तो मेरे अन्त करण मे एक सिहनी दहाडने लगती है और मै रोमाचित हो सोचने लगती हूँ, सचमुच वे भगत सिह की माँ होने के योग्य है, भगत सिह उन के ही पुत्र होने के योग्य थे।

वेटो की जेल के छह-सात वर्ष, छह-सात युगो की तरह वीते। सुख के दिन वीतते देर नही लगती, पर दु ख के, मुसीवत के वर्ष तो क्या दिन भी भारी हो जाते है। काटे नही कटते। इन छह-सात वर्षो मे प्राकृतिक और अप्राकृतिक प्रकोप भी अपने प्रचण्ड रूप मे उन के द्वार पर घेरा डाले रहे। कभी वाढ आ जाने से घर वह गया, तो कभी दुश्मनो के आग लगा देने से फसलो के मोती राख के ढेर वन गये। इन वर्षो मे जाने कितनी वार उन का घर विखर-विखर कर वसा और वस-वस कर विखरा। विखरने-वसने का शतरज ही तो था विद्यावती जी का जीवन !

आया अगस्त १९४७ और वना पाकिस्तान। सव उखडे, सव के साथ-ही-साथ यह परिवार भी उखडा, उखडा ही नही उजडा भी। कुलवीर सिंह, कुलतार सिंह, जेल से लौट ही आये थे, सरदार अजीत सिह भी युगो की प्रतीक्षा के वाद आ गये, पर क्षण-भर के मिलन के वाद वे सदा के लिए चले गये। जो कुछ पाया था, वह फिर खो गया। खुशी की जो लहर आयी थी, वह मायूसी की खामोशी मे वदल गयी।

दो-तीन साल के वीच सव ने अपने-अपने ठिकानो की व्यवस्था कर ली। उन

के चारों बेटों—सरदार कुलबीर सिंह, सरदार कुलतार सिंह, सरदार रणबीर सिंह और सरदार राजेन्द्र सिंह—ने पंजाब से बाहर जमीनें खरीद ली और अपने-अपने कामों में जुट गये। श्रीमती विद्यावती और सरदार किशन सिंह ने समुद्र के ज्वार भाटे की तरह जीवन में एक बार नहीं अनेक बार ज्वार भाटे देखे थे पर अब समुद्र एकदम शान्त था। बरसों बाद एक बार फिर वे दोनों उसी तरह अकेले थे जैसे बरसों पहले विवाह के समय वही घर वही गाँव खटकड़कलां। ये जीवन के प्रभात में जहाँ मिले थे जीवन की सन्ध्या में फिर वहीं थे। समय की रेखाएँ उन के चेहरों पर स्पष्ट दीख रही थीं। एक भरपूर परिवार के स्रष्टा अब फिर अकेले थे। कुछ तो हमेशा के लिए उन का साथ छोड़ गए थे और जो थे वे अपने नए घरों को बसाने में लगे थे ठीक उसी तरह जैसे कभी बंगा और लाहौर में सरदार किशन सिंह और विद्यावती जी ने घर बसाये थे। उन का अब एक ही सुख था एक ही काम था—सरदार जी की देखभाल करना पर यह भी बहुत दिन न चला और १९५१ में ही अचानक सरदार जी के हृदय की गति रुक गयी, वे हमेशा हमेशा के लिए विदा ले कर चले गये, वहाँ जहाँ से लौटना कभी सम्भव नहीं होता।

वे अब गाँव में अकेली थीं और उन के जीवन का अंग बन गयी सरदार जी और भगत सिंह की यादें। ये यादें आज भी उन के दिल और दिमाग में उतनी ही ताजा हैं। अक्सर स्वप्न में वे भगत सिंह को देखती हैं। ठीक वही चेहरा वैसे ही कपड़े और उसी आवाज में उन्हें सुनाई पड़ता है— बेबे जी। वे चौंक कर उठ बैठती हैं पर सामने कुछ नहीं होता। सामने होगा भी क्या? भगत सिंह तो उन की आत्मा में समाये हुए हैं। आत्मा की ही होती है वह आवाज और आत्मा ही उसे सुनती है। न कान उसे सुन सकते हैं न आँखें उस आवाज देने वाले को देख सकती हैं। वे फिर लेट जाती हैं, पर तब नींद उन से बहुत दूर जा चुकी होती है। उन्हें यादें आने लगती हैं एक एक कर के पिछली घटनाएँ। वे अपनी अन्तरात्मा की फिल्म से देखने लगती हैं भगत सिंह को उन के विभिन्न रूपों में। फिल्म चलती रहती है और सवेरा हो जाता है।

१९६२ का वर्ष बड़ा उल्लास ले कर आया। २३ मार्च १९६३ को जब भगत सिंह की भव्य मूर्ति का अनावरण खटकड़कलां में हुआ, तो हजारों आँखों ने एक साथ उसे इस तरह देखा जैसे उन का भगत सिंह बहुत बरसों बाद गाँव लौटा हो। मूर्ति का सब से पहला हार श्रीमती विद्यावती ने पहनाया और लाड से उस का हाथ पकड़ लिया। वे मूर्ति की ओर इस तरह देख रही थीं जैसे वह अभी उन से बोलेगा। उन का चेहरा उस समय दमक उठा था जैसे कि वे मान रही हों कि उन्हों ने एक अमर सपूत को जन्म दिया जो सदा यहीं रहेगा।

एक युग था कि भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त का नाम बच्चे-बच्चे की जबान पर (अमस्बन्दी इनकलाब के बाद) आ गया था। यहाँ तक कि आम जनता यह जानती

ही न थी कि भगत सिह और दत्त दो व्यक्ति है। लोग भगत सिह के साथ दत्त इस तरह लगाते थे जैसे यह उन्ही का उपनाम हो—भगत सिह दत्त। भगत सिह को फाँसी की सजा हुई, वटुकेश्वर दत्त की उम्र कैद, पर कैद खत्म होने और स्वतन्त्रता मिल जाने के वाद भी श्री वटुकेश्वर दत्त ने इस परिवार या विद्यावती जी के साथ कोई सम्बन्ध नही जोडा। सच तो यह कि उन के वारे मे किसी को कुछ पता ही नही था। १९६३ मे मूर्ति-स्थापना के समय की जो न्यूजरील वनी, उसे दत्त जी ने पटना मे देखा और उन के मुख से निकल पडा—"माँ, अभी जिन्दा है।" तव उन्हो ने अपने पुराने साथी श्री किरणचन्द्र दास (शहीद यतीन्द्रनाथ दास के छोटे भाई) से सम्पर्क साधा और उन से पत्र-व्यवहार किया।

९ सितम्बर १९६३ को श्री वटुकेश्वर दत्त पटना से खटकडकलाँ पहुँचे। सवेरे मे ही सारा गाँव दत्त जी की प्रतीक्षा मे उमडा आ रहा था। लोग सडक पर आँखें गडाये देख रहे थे। वाजे वाले कतार मे सुसज्जित हो खडे थे, मानो उन का लाडला भगत सिह ही आज कही दूर लोक से लौटकर आ रहा हो। यह सच भी था। ३२ साल वाद भगत सिह अपने अभिन्न साथी की काया मे अपने गाँव आ रहे थे। घर का मुख्य द्वार सुवह से ही खोल दिया गया था और वे (माँ) सुवह से ही द्वार पर अपने लाडले की राह जोह रही थी। दोपहर के समय जव दत्त जी सरदार कुलतार सिह के साथ गाँव पहुँचे और माँ को द्वार पर खडी देखा, तो उन की आँखे भर आयी। माँ-वेटे ने एक-दूसरे को वाँहो मे भर लिया। वरसो से विछडे माँ-वेटे का यह मिलन अपूर्व था। दत्त जी नीचे झुके और माँ के चरणो की पावन रज आँखो से लगायी। माँ ने वेटे के मस्तक को वार-वार चूमा और वोली, "वेटे, तुम वही पहले-जैसे दत्त हो।" दत्त जी ने आँखे पोछी और रुँधे स्वर मे वोले—"सचमुच तुम मेरी माँ हो।"

वे वहुत देर तक उन के चेहरे को एकटक देखती रही, फिर वोली—"दत्त, मै तुम्हारे चेहरे मे भगत सिह को देख रही हूँ।" वस फिर दोनो अनेक स्मृतियो मे डूव गये। दत्त जी ने एक वात सुनायी तो माँ ने दूसरी। एक सस्मरण ने तो दोनो को ही निहाल कर दिया—भगत सिह और वटुकेश्वर दत्त दोनो से माँ जेल मे मुलाकात करने जाती। अपने एक तरफ वैठाती भगत सिह को दूसरी तरफ वटुकेश्वर दत्त को। तव खोलती खाने का डिव्वा, जो वे घर से जेल तक अपनी वगल मे दवा कर लाती थी। दोनो चुपचाप देखते रहते। वे टुकडा तोडती, सब्जी लगाती और वटुकेश्वर दत्त के मुँह की तरफ हाथ वढाती।

अव सीन आरम्भ होता। दत्त कहते—'पहले भगत सिह को,' और माँ अपना हाथ भगत सिह के मुँह की तरफ वढाती। भगत सिह कहते—'पहले वटुकेश्वर को,' तव माँ के होठो पर मीठी विजली कौंध जाती और वे अपना हाथ वटुकेश्वर दत्त के मुँह की ओर वढाती। दत्त फिर वही कहते—'पहले भगत सिह को' और माँ के मुँह से झुँझलाहट के शब्द निकलते, पर चेहरे पर खेल जाती उमग की लहरें। वे भूल

जाती जेल की, मुकद्दमे की, फाँसी की, वियोग की अथाह सब्र की। उन की स्मृतियों में भर जाते उन के राम लक्ष्मण और तब वे दो टुकड़े एक साथ तयार करती, दोनों के मुह तक एक साथ ले जाती। दोनों मुह खाली कर टुकड़े ने लेने और तब तीनों के अट्टहास से गूँज जाता जेल का वातावरण जैसे वह जेल न हो वे अभियुक्त न हों और वह किसी पार्क की पिकनिक हो।

इस मिलन के ठीक एक साल बाद दत्त जी रोगशय्या पर पड़ गये लगता है जैसे माँ से मिलना ही उन के जीवन की अन्तिम भूमिका थी। पहले तो वे पटना के अस्पताल में रहे पर जब हालत अधिक बिगड़ने लगी तब उन्हें दिल्ली के मेडिकल इन्स्टीच्यूट में लाया गया। विद्यावती जी स्वयं लम्बी बीमारी भुगत चुकी थी और चलने फिरने से मजबूर थी। सफर करना उन की शक्ति के बाहर था पर बेटे के दुःख में मा को अपना दुःख कब याद रहा है। वे कभी दिल्ली पहुँचती तो कभी गाँव लौटती। उन की उन दिनों की एक सूक्ति तो मातृत्व के विश्वकोश में सर्वोत्तम स्थान पर लिखने योग्य हो गयी— यदि ईश्वर कोई एसी सर्वोत्तम व्यवस्था कर देते कि पुत्रों के दुःख माताओं को लग जाया करते तो माताएँ ससार में अपने एक भी बच्चे को दुःखी न रहने देती।' इन शब्दों में कितनी गहरी कचोट है माता विद्यावती जी के हृदय की।

९ माघ १९६५ को वे उज्जैन (मध्यप्रदेश) के नागरिकों के निमन्त्रण पर वहा गयीं। वहा उन की अध्यक्षता में बहुत बड़ा जल्सा हुआ जिस में भगत सिंह पर लिखी कविताएँ और गीत गाये गये। इन सब गानों से वातावरण इतना मार्मिक हो गया कि लोग फूट फूट कर रोने लगे। तब उन्हो ने अपने उस असीम धैर्य का परिचय दिया जिस के बल से उन्हो ने जीवन में आने वाले अगणित दुःखों को सहन किया है। उन्हो ने लाड के स्वर में कहा तुम लोग रोते क्यों हो। आज तो भगत सिंह का विवाह हो रहा है। देखो कितना अच्छा मण्डप है फूलो की कितनी सुन्दर झालरें लटक रही हैं बिजली जगमगा रही है कवि लोग सहरा पढ़ रहे हैं घोड़ी गायी जा रही है। इसी से तो कहती हूँ भगत सिंह का विवाह हो रहा है। फिर तुम लोग क्यों रो रहे हो, रोओ मत। सब लोग खुशी मनाओ।

कवि श्री कृष्ण सरल ने लोगों को रोका कि वे दूर से माता जी पर फूल न फेंकें क्यों कि इस तरह माता जी को चोट लग सकती है। लेकिन विद्यावती जी ने मना कर दिया—' लोगों को मत रोको इन को अपने दिल की इच्छा पूरी कर लेने दो। ये तो फूल ही बरसा रहे हैं अगर मेरे बच्चे भगत सिंह की जय बोल कर कोई पत्थर भी मेरे ऊपर फेंकें तो मुझ को भी फल-जैसे ही लगेंगे।'

उन के मुख से एसे उल्लास भरे और धैर्यपूर्ण शब्दों को सुन कर लोग गद्गद हो उठे धन्य हो माँ धन्य हो माँ' ध्वनि के साथ ही भगत सिंह जिन्दाबाद के नारों से आकाश गूँज उठा पर उन के संयम का बाँध तब टूट ही गया जब सरदार भगत सिंह महाकाव्य के प्रणेता श्री श्री कृष्ण सरल ने अपना अँगूठा चाकू से चीर कर उन के पैरों पर

खून छिडका और उस खून का टीका माता जी के मस्तक पर लगया। कवि ने पुस्तक उन के हाथो पर रख कर जब अपना मस्तक उन के चरणो मे रखा तो उन की आँखो से आँसू की दो बूँदे लुढक पडी। स्थानीय माधव महाविद्यालय के छात्रो ने तीन हजार तीन सौ इकत्तीस रुपये की बोली लगा कर वह महाकाव्य खरीद लिया। एक दूसरे स्वागत-समारोह मे उन्हे ग्यारह सौ रुपये की थैली भेंट की गयी। यह सब धन उन्हो ने दत्त जी की चिकित्सा के लिए उसी समय दिल्ली भिजवा दिया।

जुलाई १९६५, दत्त जी की हालत दिन-प्रतिदिन बिगड रही थी। उन की वाणी मूक थी, आँखें मुँद चली थी। उसी हालत मे उन्हो ने पुकारा 'माँ'। तभी कार से विद्यावती जी को लाने का प्रबन्ध किया गया। दत्त जी अब कुछ घण्टो के ही मेहमान थे। माँ अब दत्त जी का सिर गोद मे लिये बैठी थी, उन्हे याद आ रहे थे भगत सिह के वे शब्द जो फाँसी से पहले उन्हो ने उन से कहे थे—"मै तो अब जाऊँगा ही पर अपना एक हिस्सा दत्त के रूप मे छोडे जा रहा हूँ।" २० अगस्त १९६५ को दत्त जी ने इस ससार से विदाई ली। सब के लिए यह दत्त जी की विदाई थी, पर उन के लिए तो उस दिन एक और भगत सिह चला गया था।

दत्त जी की अन्तिम इच्छा थी कि उन के शव को अन्तिम सस्कार के लिए फीरोजपुर मे सतलज नदी के किनारे पर ले जाया जाये, जहाँ उन के अभिन्न साथी शहीद भगत सिह का उन के अन्य दो साथियो शहीद राजगुरु और सुखदेव के साथ दाह-संस्कार किया गया था। दिल्ली से फीरोजपुर तक विद्यावती जी भी साथ गयी। चिता मे आग देने से पहले उन्हो ने एक बार फिर दत्त जी के चेहरे को देखा और शोक-विह्वल हो उन के मुख से ये शब्द निकल पडे—"तुम चारों तो यहाँ इकट्ठे हो गये, अब मुझे भी अपने पास बुला लो।" उन के हृदय की इस करुण पुकार को सुन कर सैकडो आँखें एक साथ बरस पडी।

भगत सिह को शहीद हुए बरसो बीत गये। एक लम्बा युग ही बीत गया, पर उन के हृदय मे उन की याद एकदम ताजा है। वे बडे विश्वास के साथ कहती है—"जब तक मैं जीवित हूँ, भगत सिह हर दम मेरे पास है, और जब मरूँगी तो मैं भी उस के पास चली जाऊँगी।"

■ ■

१८५७ के नये संस्करण
सरदार अजीत सिंह

१९०३ में वायसराय लार्ड कर्जन ने दिल्ली में एक शानदार दरबार किया। यह अँगरेजी हुकूमत को सुदृढ़ करने का एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग था। इस में देश भर के प्रायः सभी प्रमुख राजा-नवाब आये थे और उन्हों ने वायसराय को उसी अदब और अदा से सिर झुकाया था जैसे वे कभी दिल्ली के सम्राट को झुकाया करते थे।

जनता को लार्ड कर्जन यह दिखाना चाहते थे कि देश के सब शक्तिशाली सामन्त बरतानिया हुकूमत के साथ हैं। मतलब यह कि अंगरेज अजेय हैं और भारत के लोगों का कल्याण इसी में है कि वे अब सिर झुका कर अपनी गुलामी को ही अपना भाग्य मान लें। किस की हिम्मत थी जो इस बात का प्रतिवाद करे? सच तो यह है कि लॉर्ड कर्जन को प्रतिवाद की सम्भावना ही न थी कि प्रतिवाद की कोई चिनगारी कहीं चमक सकती है।

कोई चिनगारी नहीं चमकी पर एक नौजवान इसी दिल्ली में राजा-नवाबों से मिलता फिर रहा था। इस का काम उन के दिमागों में क्रान्ति के ऐसे टाइम-बम रखना था, जो उस समय तो साधारण गोले ही मालूम होते हैं पर समय पर फटते हैं तो विध्वंस मच जाता है। यह नव युवक सरदार अजीत सिंह थे। इन का सन्देश था—राजा लोग आपस में मिल कर १८५७ की तरह गदर की तैयारी करें।

सोचती हूँ तो अक्ल काम करना बन्द कर देती है कि एक नौजवान जिस की वेश भूषा साधारण थी बात-व्यवहार में साधारणता थी, जिस के पास कोई परिचय-पत्र नहीं था कैसे राजा-नवाबों के शाही भवनों में घुसा, कैसे उस ने उन से मुलाकात की और कैसे अपनी अनोखी बात उन से कही? इस से भी बढ़ कर यह कि उस में कितनी आग थी जिस ने उसे भययुक्त रखा जिस से अनेक राजा प्रभावित हुए और (विशेष रूप से कश्मीर और बड़ौदा के राजाओं ने) इस काम के लिए आर्थिक सहायता दी?

दीपक से दीपक जलाने का हृदय से हृदय जगाने का यह क्रांति कार्य १९०६ तक भीतर-ही भीतर चलता रहा। एक राजा दूसरे राजा

से सुगमतापूर्वक मिल नही सकता था, इस लिए विचार-क्रान्ति के सूत्रधार राजपण्डित थे। इस राज्य का राजपण्डित उस राज्य के राजपण्डित से मिलता था। इस तरह इस राजा की वात उस राजा तक और उस राजा की वात इस राजा तक पहुँच जाती थी।

इस विचार-क्रान्ति का कहाँ से कहाँ तक फैलाव हुआ, इस का कोई इतिहास सुलभ नही है, पर इतना पता चलता है कि इस की गन्ध अँगरेजी सरकार के गुप्तचर विभाग को मिली थी और इस की सूचना वायसराय तक पहुँच गयी थी। वायसराय लॉर्ड मिण्टो ने प्रमुख राजाओ को एक पत्र भेजा था कि वे अपने राज्यो मे फैलती हुई अशान्ति और उठती हुई वगावत को दवायें। राजा-नवावो ने लम्बे-लम्बे पत्र लिख कर अपनी राजभक्ति के गीत गाये थे। इन के उत्तर में वायसराय ने एक और पत्र भेजा था। इस मे धमकी भी थी और कुछ सुझाव भी। राजद्रोही अध्यापको, समाचारपत्रो और दूसरे प्रचारको को सख्त सजाएँ देने की वात इन मे मुख्य थी।

स्पष्ट है कि आतकवादी कार्य देश मे वहुत हो चुके थे। दामोदर चाफेकर और उन के भाई वालकृष्ण चाफेकर ने २२ जून १८९७ को १८५७ के गदर के ४० साल १ महीने और ११ दिन वाद पूना मे महारानी विक्टोरिया के ६०वें राज्याभिषेक के दिन श्री रैण्ड और लैफ्टिनेण्ट एयर्स्ट के कलेजे मे गोली मार कर भारतीय स्वतन्त्रता का पहला जयघोप किया था। इस के वाद भी आतककारी धडाके होते ही रहे थे, पर सरदार अजीत सिंह ने जो कार्य आरम्भ किया, क्या वह इसी शृखला की कोई कडी थी? नही, वडी विनम्रता पूर्वक मै कहना चाहती हूँ कि यह तो १८५७ की सगस्त्र क्रान्ति के अपूर्ण यज्ञ की पूर्णाहुति का एक नया समारम्भ था।

इतिहास अपने चमत्कारो के लिए प्रसिद्ध है, पर क्या यह चमत्कार उन चमत्कारो का भी चमत्कार नही है कि २१–२२ साल का वह नवयुवक इस पूर्णाहुति की तैयारी आरम्भ कर रहा था, साधनो के नाम पर जो शून्य था और साथियो के नाम पर आत्माहुति ही जिस की एकमात्र शक्ति थी। हमारे लोक-कवियो ने लैला और मजनू, हीर और राँझा के समर्पणो को घर-घर पहुँचा दिया है, पर आत्मार्पण की यह कथा इतनी अछूती क्यो रही कि एक उडती-सी चर्चा वन कर ही रह गयी? फिर २१ वर्ष की उमर मे सरदार अजीत सिंह ने जिस क्रान्तिधारा का अकेले आरम्भ किया था, उन के भतीजे भगत सिह ने उसे अपनी २१ वर्ष की ही उम्र मे असेम्वली मे वम फेक कर जन-जन के मन से जोडने का चमत्कार किया, क्या यह भी इतिहास के आश्चर्यो का आश्चर्य नही है?

२३ फरवरी १८८१ को खटकडकलाँ (जालन्धर) मे सरदार अजीत सिंह का जन्म हुआ। उन्हो ने गाँव मे ही प्राइमरी परीक्षा पास की और मिडिल पास किया वंगा के गवर्नमेण्ट स्कूल से। घर का वातावरण उग्र आर्य-समाजी था और इन दिनो आर्य-समाज का अर्थ था स्वदेशाभिमान? क्या वालक अजीत सिंह मे इस **की झलक**

मिलता है ? उन के ताया सरदार सुजन सिंह पक्के अंगरेज-परस्त थे। वे अक्सर अंगरेज कलक्टर से मिलने जाया करते थे और बातों-बातों में साहब बहादुर की चर्चा भी करते रहते थे। अजीत सिंह के मन में साहब को देखने की इच्छा पैदा हुई। कुछ दिनों में यह इच्छा बहुत तीव्र हो गयी। कह-सुन कर एक बार वे चाचा जी के साथ साहब को देखने जालन्धर गये। साहब की टूटी फूटी हिन्दी सुन कर उन्हें बड़ी नफरत हुई— 'यह क्या साहब है जिसे ठीक बोलना भी नहीं आता।

एक बार यही साहब गांव हो कर नवांशहर जा रहे थे। कुछ देर वे चाचा जी के पास ठहरे और उन से बातें कीं। उन की टूटी फूटी भाषा सुन कर बालक अजीत सिंह के मन की घृणा इतनी बढ़ गयी कि उस ने साहब को नमस्ते भी नहीं की और एक पेड़ की छाया में खड़ा रहा। उस की आंखों में क्रोध साफ झलक रहा था। साहब ने पूछा यह लड़का कौन है ? उन के जाने पर ताया जी ने नमस्ते न करने पर डांटा और धमकी भी दी कि वे अब कभी उस साहब के पास नहीं ले जायेंगे। इस पर अजीत सिंह ने तुनक कर उत्तर दिया— जिन्हें ठीक ठीक बोलना भी नहीं आता उन्हें मैं नमस्ते क्यों करूं ?'

१८९४ में अजीत सिंह ने साईं दास ऐंग्लो संस्कृत हाईस्कूल से मैट्रिक पास किया। उन की इच्छा अब बनारस में पढ़ने की थी। कारण था संस्कृत में बहुत दिलचस्पी। उन्हों ने अपने बड़े भाई सरदार किशन सिंह से सलाह की। माता पिता से बात छिपा कर सरदार किशन सिंह इन का प्रबन्ध करने बनारस गये पर बात खुल गयी। माता पिता सहमत नहीं हुए और कानून की पढ़ाई के लिए उन्हों ने अजीत सिंह को बरेली कालेज भेज दिया। उन दिनों मैट्रिक पास कर के ही वकालत पढ़ने की स्वीकृति थी—बाद में बी० ए० पास करने का नियम हो गया था।

पढ़ाई कुछ महीने ही चली थी कि वे बीमार हो गये। लौट आये पर इन्हीं महीनों में इन में राजनैतिक चेतना की पहली चिनगारी जाग उठी थी। इस का कारण राजनैतिक साहित्य का अध्ययन था। अब वे डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर के छात्र थे। यहां पढ़ते हुए उन्हों ने सामाजिक कार्यों में खूब दिलचस्पी ली और राजनैतिक अध्ययन का क्रम जारी रखा। अपने राजनैतिक रूप में वे तब उभरे जब इन्हीं दिनों श्री गोपाल कृष्ण गोखले लाहौर आये। इन्हों ने जलसों का संगठित करने में अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया पर गोखले के सुन्दर सरस भाषणों ने इन्हें प्रभावित नहीं किया। इन की प्रतिक्रिया थी— चमत्कार भाषणों से स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। इस के लिए तो कठिन लड़ाई लड़नी पड़ेगी। लड़ाई का क्षेत्र उन दिनों कांग्रेस ही था, इस लिए सरदार अजीत सिंह उस के सदस्य बन गये और उस में अपने विचारों के साथी बनाने लगे।

१८९६ में इण्टर पास कर के वे स्कूल में अध्यापक हो गये। उन्हों ने अपना जो परिचय-पत्र उन दिनों छपाया था वह इस प्रकार था—

१. पेज हिज बैस्ट काम्पलीमैण्ट्स ऐण्ड वैग्स टु अनाउंस टु सिविल ऐण्ड मिलीटरी ऑफिसर्स दैट ही अण्डर टेक्स टु टीच उर्दू, हिन्दी, पर्शियन ऐण्ड पंजाबी ऐट लाहौर ऐण्ड एब्रॉड।

२. मुन्शी अजीत सिंह्स वर्क हैज आलवेज रिसीव्ड प्रोवेशन फ्रॉम हिज पीपल्स।

३. मुन्शी अजीत सिंह इज एन ऐक्सपीरियन्स्ड कॉम्पीटेण्ट ऐण्ड कैपेबल ट्यूटर ऐण्ड नोज द वेस्ट वे टु प्रिपेयर एन ऑफीसर फॉर हिज एक्जामिनेशन इन द शॉर्टेस्ट पॉसिबिल् टाइम।

४. मुन्शी अजीत सिंह कैन अण्डर टेक टु प्रिपेयर ऑफीसर्स बाई कॉरस्पॉण्डेंस ऑल सो।

५. टर्म्स मॉडरेट, हाइएस्ट रेफरेंसिज, एक्सीलेण्ट टेस्टीमोनियल्स।

६. ट्रायल मोस्ट रिस्पैक्ट फुली सॉलीसिटेड।

इस परिचय-पत्र मे उन्हो ने अपनी योग्यता और पात्रता का बखान जिस ढग से किया, वह उन की बुद्धिमत्ता को प्रदर्शित करता है, पर उन का अपने को सरदार अजीत सिंह न लिख कर मुन्शी अजीत सिंह लिखना उन की कूटनैतिक दूरदर्शिता का भी प्रदर्शन करता है। मुन्शी का साफ अर्थ अध्यापक (मास्टर) तो है ही, साथ ही यह भी कि कायस्थ लोग अपने को मुन्शी लिखते थे। प्रसिद्ध है कि मुगल बादशाहत का कलमदान हमेशा उन के साथ रहा। उर्दू पर्शियन के वे माहिर होते ही थे और राजभक्ति उन का सहज सस्कार थी। एक अँगरेज अफसर को अपने अध्यापक मे और क्या चाहिए?

अँगरेज अफसरो मे इस प्रकार प्रवेश पाने का भीतरी उद्देश्य था—"अँगरेजो की मनोवृत्ति और जीवन-पद्धति का अध्ययन करना। जिस से यह पता चले कि अँगरेज के मन पर किस कार्य की क्या प्रतिक्रिया होती है और उस प्रतिक्रिया मे अँगरेज क्या और किस तरह आचरण करता है।" इस की गहराई यह थी कि अँगरेज की मनोवृत्ति और कार्य-पद्धति का पूरा ज्ञान होने से हम अपने कार्य (ऐक्शन) की तैयारी के साथ ही उस पर अँगरेज की प्रतिक्रिया (रिऐक्शन) का पहले से ही अनुमान कर लेंगे और साथ ही उस का जवाब भी सोच लेंगे। यह एक बात ही सरदार अजीत सिंह को क्रान्ति-कारिता के बहुत ऊँचे सिंहासन पर बैठा देती है, शायद सर्वोच्च सिंहासन पर ही, क्योकि देश के क्रान्तिकारियो मे किसी भी दूसरे आदमी ने मनोवैज्ञानिक अध्ययन की इस ऊँचाई को नही छुआ।

उन के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व की यह ऊँचाई कितनी थी, इस का पता एक और बात से भी लगता है कि उन्हो ने कलक्टरो, कमिश्नरो जैसे, अफसरो के चपरासियो का सघ बना लिया था। १९०६-७ के युग मे यूनियन की बात सोचना भी किसी के लिए सम्भव न था। फिर यह यूनियन भी कैसी? चपरासी लोग गुप्त फाइलें अफसरो के सामने पेश करने से पहले सरदार अजीत सिंह के सामने पेश करते थे। सरदार जी

अनेक मसलों पर अखबारों में बयान दे देते थे। सरकार परेशान हो जाती थी कि उस के गुप्त रहस्य हमारे जानकारों से पहले अखबारों के पास कैसे पहुँच जाते हैं।

आर्य-समाज के लिए उन्हों ने बहुत से पैम्फलेट और ट्रैक्ट लिखे। इन में 'विधवा की पुकार' बहुत प्रसिद्ध हुआ। उन के बड़े भाई सरदार किशन सिंह हिन्दू अनाथालय के सुपरिन्टेण्डेण्ट थे। सरदार अजीत सिंह को भी अनाथों में दिलचस्पी थी कि इन्हें इस ढंग पर पाला पोसा जाय कि ये देश की सेना के सैनिक सिद्ध हों। एक बार सरदार किशन सिंह को मध्यप्रदेश-दुर्भिक्ष के बाद अनाथों को लेने वहाँ जाना था, पर वे बीमार पड़ गये। इस लिए सरदार अजीत सिंह को यह काम सौंपा गया। इसी काम से वे बंगाल भी गये। वहाँ उन का सम्पर्क कुछ क्रान्तिकारियों से भी हुआ।

सहारनपुर के निवासी श्री जतीन्द्र मोहन चटर्जी ने (अपने संस्मरणों के अनुसार) १९०४ में कुछ मित्रों के साथ एक गुप्त समिति बनायी थी और ढमाला नदी के किनारे बैठ कर अपने जीवन को देश के काम में लगाने का व्रत लिया था। सरदार अजीत सिंह इन के भी सम्पर्क में आये। क्रान्तिकारी साहित्य में श्री चटर्जी का ही नाम नीलाम्बर बाबा है। बाद में श्री चटर्जी बैरिस्टरी पढ़ने विलायत चले गये। लाला रामशरण दास कपूरथला वालों ने अपने विवरण में लिखा है कि जब वे लाला हरदयाल से मिले, तो जतीन्द्र मोहन चटर्जी उन के शिष्य की तरह उन के पास रह रहे थे। कुछ लोगों का कहना है कि सरदार अजीत सिंह को श्री चटर्जी ने ही क्रान्तिकारी बनाया, पर इस में कुछ तत्व नहीं है, क्यों कि श्री चटर्जी की गुप्त समिति बनाने से पहले ही सरदार अजीत सिंह राजाओं के साथ बगावत की बातें कर चुके थे। फिर सरदार अजीत सिंह का लक्ष्य तो १८५७ था और उन का कार्य सैनिक बगावत का गुप्त संगठन था, जैसा कि आगे के पृष्ठों में हम देखेंगे। गर्म आतंकवादी वे कभी हुए ही नहीं।

उन के सामाजिक क्रान्तिकारी विचारों का पूर्ण प्रदर्शन हुआ उन के विवाह में। उन्हों ने श्री धनपतराय की पालिता पुत्री हरनाम कौर से विवाह किया, जिस की वंशावली अज्ञात थी। उस युग में यह कोई साधारण कदम न था। वे स्त्रियों के घोर विरोधी थे, अस्पृश्यता और जाति बन्धन के विरोधी थे और यह सब उन्हें पैतृक रूप में प्राप्त था।

१९०५ ई० में अंगरेजी कूटनीति ने हिन्दुस्तान के बंगाल का गहरा नीव खोदना आरम्भ की और बंगाल के टुकड़े कर उस को प्रान्तों में बाँट दिया। इस से वहाँ का सार्वजनिक जीवन उबल पड़ा और स्वदेशी प्रचार के साथ विदेशी बहिष्कार का खुला सार्वजनिक आन्दोलन शुरू हो गया। कलकत्ता में श्री दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उस में सरदार अजीत सिंह भी अपने बड़े भाई सरदार किशन सिंह के साथ सम्मिलित हुए। कांग्रेस के गरम-नरम दल वहाँ साफ-साफ अलग-अलग कैम्पों में बँट गये थे। गरम दल का नेतृत्व लोकमान्य तिलक

हाथ मे था। सरदार अजीत सिंह पूरी तरह उन के साथ हो गये। उल्लेखनीय बात यह है कि तिलक महाराज इन के व्यक्तित्व और विचारों से प्रभावित हुए और उन्हो ने इन की शक्ति को पहचाना।

कलकत्ता से सरदार अजीत सिंह यह संकल्प ले कर लौटे कि पंजाब मे भी यह खुला आन्दोलन चलाना है और किसानो को सगठित करना है। भाग्य ने ऐसा सयोग किया कि चिनगारियाँ लपटो मे वदल गयी। महान् क्रान्तिकारी सूफी अम्वाप्रसाद अपने अखवार 'जमी उल वतन' मे लिखे एक लेख पर पाँच साल की जेल काट कर तभी छूटे और सरदार अजीत सिह से आ मिले। भारतमाता सोसायटी की स्थापना हुई। इस के प्रमुख कर्ता-धर्ता थे सरदार अजीत सिह, सूफी अम्वाप्रसाद, सरदार किशन सिंह, सरदार स्वर्ण सिंह, लाला हरदयाल, लाला लालचन्द फलक, मेहता नन्दकिशोर, महाशय घसीटा राम, केदारनाथ सहगल आदि।

इस सोसायटी के दो शस्त्र थे पहला भाषण और दूसरा प्रकाशन। प्रकाशन के लिए 'भारतमाता बुक एजेन्सी' स्थापित की गयी, जो राजद्रोहात्मक साहित्य का प्रकाशन और प्रचार करती थी। इस की आत्मा सूफी अम्वाप्रसाद थे। भारतमाता (पहले मासिक, फिर साप्ताहिक), इण्डिया (अँगरेजी), पेशवा (उर्दू) और पजावी (अँगरेजी) देश मे आन्दोलन के समर्थक पत्र थे। इन सब मे क्रान्ति की आग ही शब्दो के रूप मे सचित होती थी। '१८५७ की वगावत,' 'उँगली पकडते पहुँचा पकडा', 'देसी फौज' 'वन्दर वाँट', 'जफर सेना' और 'वागी मसीह' आदि पुस्तको ने जनता के मन को उद्वेलित और उत्तेजित कर के रख दिया। वे सभी पुस्तके, परचे और ट्रैक्ट सरकार ने जब्त कर लिये, पर जब्ती से इन का प्रचार जनता मे और भी वढ गया।

'वागी मसीह' नाम की पुस्तक तो सूफी अम्वाप्रसाद का भयानक वम ही सिद्ध हुई। सरकार सरदार जी को वागी कहती थी। सूफी साहव ने उन्हे वागी मसीह कहा। मसीह का मोटा अर्थ है वीमारियाँ दूर करने वाला। सूफी साहव ने सरदार जी को जनता के सामने एक ऐसे चिकित्सक के रूप मे प्रस्तुत किया, जो अपनी वगावत की औषधि से उस की सव वीमारियो को दूर कर सकता है। इस पुस्तक ने सरदार जी को वेहद लोकप्रियता दी और उन्हे जनता के हृदयो मे प्रतिष्ठित कर दिया। जनता के साथ ही सेनाओ पर भी इस साहित्य का प्रभाव पडा। भारतमाता सोसायटी के जलसो मे आने के लिए सेना की छावनियो मे भी निमन्त्रणपत्र भेजे जाते थे और सैनिक सरदार अजीत सिह का भाषण सुनने आते भी थे। इसी आधार पर पजाव सरकार के क्षेत्रो मे भारतमाता सोसायटी के आन्दोलन को 'छोटा सन सत्तावन' कहा जाने लगा।

भाषणो का काम सरदार अजीत सिह के हाथ मे था। वे ज्वालामुखी प्रवक्ता थे। घण्टो वोलते थे और इस तरह वोलते थे, जैसे आग का झरना वह रहा हो। वे उवल पडते थे, श्रोता उफन पडते थे। वरतानवी अत्याचारो का वे वर्णन करते तो

आग हो जाते और दर्द की दुर्गति का वर्णन करते तो आँसुओं का दरिया हो जाते। वे गरजते और श्रोताओं को जगाते। वे रुदन करते और श्रोताओं को बहाते। वे बोलते रहते और वर्षा आ जाती तो भी एक श्रोता तक न हिलता। वे बोलते रहते और धूप फैल जाती पर एक भी श्रोता टस से मस न होता। ऐसा भी होता कि सारा जलसा दहाड़ता और ऐसा भी होता कि सारा जलसा अपने आँसुओं में डूब डूब जाता। उन का आकर्षण अथाह था प्रभाव बेपनाह था। वे उस आकर्षण और प्रभाव के घेरे में किसानों को लाने की योजना बना ही रहे थे कि स्वयं सरकार ने और परिस्थितियों ने किसानों को भारतमाता सोसायटी के आँगन में ला खड़ा किया। इस का किस्सा किसी जासूसी उपन्यास से कम नहीं। यहाँ पेश है भगत सिंह की कलम से—

'एक दिन लाहौर और अमृतसर क्षेत्र के जाट कृषकों ने लगान बढ़ाए जाने के विरुद्ध एक सभा करने का निश्चय किया। शाह आलमी दरवाज़े के बाहर रतन चन्द की सराय में यह सभा आयोजित की गयी थी किन्तु जब जाट लोग जमा हो गए तो डिप्टी कमिश्नर ने रतन चन्द के लड़के को बुला कर जायदाद ज़ब्त कर लेने की धमकी दी। इस पर रतन चन्द के लड़के ने वहाँ एकत्रित हुए किसानों को अपनी सराय से बाहर निकाल दिया। तब किसानों ने नगर के नेता माने जाने वाले सज्जनों से सम्पर्क स्थापित किया किन्तु वहां से भी उन को साफ़ जवाब मिला। हर तरफ़ से मायूस हो कर वे बेचारे म्युनिसिपल गार्डन में जा बैठे। इसी बीच भारतमाता सोसायटी के सदस्यों को इस की सूचना मिली और वे इन लोगों को अपने स्थान पर ले आए। सोसायटी के पास एक कमरे के अतिरिक्त एक विशाल मकान भी था। इस मकान में दरियाँ बिछा कर शामियाना लगवा दिया गया और एक तरफ उन किसानों के भोजन के हेतु लंगर का प्रबन्ध कर दिया गया। किसानों का उत्साह इस से अत्यधिक बढ़ गया और फिर पूरे एक सप्ताह वहां प्रतिदिन सभाएँ हुई जिन में बड़े ही निर्भीक भाषण दिए गए। इस सभा में जाट किसानों का उत्साह देख कर भारतमाता सोसायटी के सदस्यों का हौसला और भी बढ़ गया।

इस के पश्चात् देहातों के दौरे का कार्यक्रम बनाया गया जिस से किसानों को लगान-बन्दी के लिए तैयार किया जा सके। यह सरकार के विरुद्ध युद्ध घोषणा थी और जनता में जोश इतना था कि इस संघर्ष में वह अपना सर्वस्व दाँव पर लगा देने के लिए तत्पर मालूम होता था।'[1]

किसानों के इस जोश का आधार क्या था? इस का विवरण भी भगत सिंह की ही कलम से— बंगाल विभाजन के विरुद्ध जो शक्तिशाली आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और स्वदेशी के प्रचार तथा विदेशी के बहिष्कार की जो हलचल प्रारम्भ हुई थी,

1 काल कोठरी में रहते समय भगत सिंह द्वारा लिखित 'स्वाधीनता की लड़ाई में पंजाब का पहला उभार' के अंश।

उस का पंजाव के औद्योगिक जीवन तथा साधारण जनता पर वडा भारी प्रभाव पडा था उन दिनो यहाँ भी (पंजाव मे) स्वदेशी वस्तुएँ विशेषत खाँड तैयार करने का ख्याल पैदा हुआ और देखते-देखते एक-दो मिलें भी खुल गयी। यद्यपि सूवे (प्रान्त) के राजनैतिक जीवन पर इस का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नही पडा, किन्तु सरकार ने इस उद्योग को नष्ट करने के लिए गन्ने की खेती का लगान तीन गुना कर दिया। पहले एक वीघे का लगान केवल ढाई रुपया था, वही अव साढे सात रुपये देने पडते थे। इस से किसानो पर एक भारी वोझ आ पडा और वह एकदम हतवुद्धि-से रह गये।

नया कॉलोनी ऐक्ट—दूसरी ओर लायलपुर इत्यादि मे सरकार ने नयी नहर खुदवा कर जालन्धर, अमृतसर, होश्यारपुर इत्यादि के निवासियो को वहुत-सी सुविधाओ का लालच दे कर इस क्षेत्र मे वुला लिया था। यह लोग अपनी पुरानी जमीन-जायदाद छोड कर आये और कई वर्ष तक अपना खून-पसीना एक कर के इन लोगो ने इस जंगल को गुलजार वना दिया, लेकिन अभी यह चैन भी न लेने पाये थे कि नया कालोनी ऐक्ट (न्यू कॉलोनाईजेशन ऐक्ट) इन के सिर पर आ खडा हुआ। यह ऐक्ट क्या था, कृषको का अस्तित्व ही मिटा देने का एक तरीका था। इस ऐक्ट के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की निजी सम्पत्ति का अधिकारी केवल उस का वडा लडका ही हो सकता था। छोटे पुत्रो का कोई हिस्सा नही रखा गया था। वडे लडके के मरने पर भी वह ज़मीन या अन्य जायदाद छोटे लडको को नही मिल सकती थी, वल्कि उस पर सरकार का अधिकर हो जाता।

कोई व्यक्ति अपनी ज़मीन पर खडे वृक्षो को नही काट सकता था। उन से वह एक दातून तक नही तोड सकता था। जो जमीनें उन को मिली थी, उन पर वह केवल खेती कर सकते थे। किसी प्रकार का मकान या झोपडा, यहाँ तक कि पशुओं को चारा डालने के लिए खुडली (खोर) तक नही वना सकते थे। कानून का थोडा-सा भी उल्लंघन करने पर चौवीस घण्टे का नोटिस दे कर तथाकथित अपराधी की ज़मीन जब्त की जा सकती थी। कहा जाता है कि ऐसा कानून वना कर सरकार चाहती थी कि थोडे से विदेशियो को तमाम जमीन का मालिक (ज़मीदार) वना दिया जाये और ज़मीन के हिन्दुस्तानी काश्तकार उन के सहारे (दवाव) पर रहे। इस के अतिरिक्त सरकार यह भी चाहती थी कि अन्य प्रान्तो की भाँति पजाव मे थोड़े-से वडे-वडे जमीदार हो और शेष निहायत गरीव काश्तकार हो। इस प्रकार जनता दो वर्गो मे विभक्त हो जाये। मालदार कभी भी और किसी भी हालत मे सरकार-विरोधियो का साथ देने का साहस नही कर सकेगे और निर्धन कृषको को, जो दिन-रात मेहनत कर के भी पेट नही भर सकेगे, इस का अवसर ही नही मिलेगा। इस प्रकार सरकार खुले-हाथों जो चाहेगी, करेगी।"

शहरो से देहातो तक और वावुओ से किसानो तक सरदार अजीत सिंह के ज्वालामुखी भाषणो को फैलता देख कर पंजाव के गवर्नर ने सव ज़िलो को एक सरकूलर

भेजा कि जनता को चेतावनी दी जाय कि वह सरदार अजीत सिंह का भाषण न सुने। अँगरेज कलक्टरों ने अपने-अपने जिलों के देहातों और नगरों में इस आदेश का प्रचार किया, पर इस से सरदार अजीत सिंह का आकर्षण और भी बढ़ गया—उन के जलसों में लोग टूट पड़ने लगे। एक पत्रकार के शब्दों में— सरदार अजीत सिंह ने जिस तरह उन दिनों जनता का मन जीत लिया था उस का अब कोई विश्वास ही न करेगा।

सरदार अजीत सिंह के जलसों का जाल सारे पंजाब में फैल गया। वे उन दिनों किस तेजी से काम कर रहे थे इस का परिचय जलसों की इस अधूरी सूची से लगता है—

१४ मार्च १९०७ को सरदार अजीत सिंह का लाहौर में भाषण हुआ। विषय था—'हिन्दुस्तान हमारा है' और उपस्थिति तीन हजार थी।

१७ मार्च को लाहौर में ही स्वदेशी पर उन्हों ने भाषण दिया।

तीसरा जलसा आर्य सेवक होटल के मैदान में हुआ। सरदार अजीत सिंह ने भाषण में कहा—'भाइयो, जानते हो आज हम यहाँ क्यों इकट्ठे हुए हैं? इस लिए कि फिरंगी को बता दें कि हमारी पहली तहरीक आजादी को पूरे पचास साल गुजर गये हैं। बेशक कुछ गद्दारों की गद्दारी की वजह से सत्तावन में हम असफल हुए मगर अब आप को यहाँ से जाना होगा। हम ने पहली जंग आजादी की असफलता से जो सबक सीखा वह यह है कि हम तलवार नहीं उठायेंगे। आप ने यहीं बैठे एक हाथ बढ़ाए और फिरंगियों की कैद से आजाद हो कर आने वाले सूफी अम्बाप्रसाद को देखा है। उन्हों ने आते ही 'इण्डिया' में एक मजमून लिखा है जिस का शीर्षक है—हम पागल नहीं कि तलवार पकड़ें। हम ने फिरंगी को आज ही इस प्लेटफॉर्म से जो चैलेंज देना है इस के लिए माझा और मालवा के ताकतवर सरदारों की मंजूरी हमारे पास है। आप की मर्जी और इजाजत से हम फिरंगी को यह चेतावनी दे रहे हैं कि वे अपना रास्ता लें। हमारा पहला माँग यह है कि वे फौरन नहर वाला कानून 'पूर्बोलाना' लायलपुर और मिण्टगुमरी खत्म कर दें। दो माह के अन्दर ऐसा न हुआ तो हम कोई टैक्स न देंगे। इस देश की लूट-खसोट को अब बरदाश्त नहीं किया जायगा। हम में से हरेक सिर पर कफन बाँध तैयार खड़ा है।'

सोचती हूँ इस भाषण को पढ़ कर कि बारडोली में जिस लगानबन्दी आन्दोलन के विजेता हो कर वल्लभ भाई पटेल देश में सरदार कहलाये, उस के आदि प्रवर्तक सरदार अजीत सिंह ही तो थे।

इस जलसे में १५०० हट्टे कट्टे लठैत किसान उपस्थित थे। इन सब ने अपना-अपना अँगूठा लगा कर प्रस्ताव पास किया और पंजाब सरकार की मार्फत भारत मन्त्री को इंग्लैण्ड में यह धमकी तार भेजा— अंगरेज हिन्दुस्तान छोड़ जायें तो बेहतर है वरना अहिंसात्मक और शान्त ढंग से करबन्दी आन्दोलन बड़े जोरों से शुरू कर

दिया जायेगा।" साथ ही यह भी नोटिस दिया गया कि सरकार अपनी नहरो को वन्द कर दे, वरना हम आवियाना (जलकर) नही देंगे।

जव सरदार अजीत सिह वोल रहे थे, तो कई सौ शस्त्रधारी पुलिसमैनो और अफसरो ने मैदान को घेर लिया। उन्हो ने जलसा वरखास्त करने का हुक्म दिया। तभी सूफी अम्वाप्रसाद दरवाजे मे कुरसी डाल कर वैठ गये और उन्हो ने दृढता से कहा कि "मै देखूँगा कौन कम्वख्त जलसा वन्द करता है। किसी (एक गोली) को इधर आने तो दो।" वन्दूक-सगीनधारी पुलिस खडी थी, पर किसी की भी यह हिम्मत नही हुई कि भीतर घुसने की कोशिश करे।

'इण्डिया' के सम्पादक लाला पिण्डीदास उस जलसे मे उपस्थित थे। उन्ही के शब्दो मे—"जल्से मे एक भी आदमी ऐसा न था, जो सरदार अजीत सिंह का भाषण सुन कर रो न रहा हो। सव रूमाल या दुपट्टे से आँसू पोछ रहे थे। सरदार जी सरकार के अत्याचारो की कहानी कुछ इस अन्दाज से कहते थे कि लोग दहाडे मार-मार कर रोने लगते थे। वन्दे मातरम् की गूँज के साथ जलसा समाप्त हुआ, तो पुलिस ने भीड पर घोडे दौडा दिये। मना करने पर भी वे नही माने, तो सरदार किशन सिह और महाशय घसीटा राम ने अँगरेज पुलिस अफसर मिस्टर वीटी को पकड लिया और खूव पीटा। सरदार किशन सिह, सरदार स्वर्ण सिह, लाला लालचन्द फलक, लाला गोवर्धन दास, महाशय घसीटाराम और पण्डित रामचन्द्र पेशावरी को गिरफ्तार कर लिया गया।"

तीन रगो का एक डण्डा, जो ढाई हाथ लम्वा होता था, इस आन्दोलन का झण्डा था, जो हरेक के हाथ मे रहता था। सरदार अजीत सिह ने अपने भाषण मे कहा था—"हम इन डण्डो से ही मार-मार कर अँगरेजो को भगायेगे।" इस जलसे की रिपोर्ट के रूप मे सरदार अजीत सिंह के इस आन्दोलन की गूँज लन्दन की पार्लयामेण्ट मे भी खूव गूँजी और इस तरह यह आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय हो गया।

२२ मार्च को लायलपुर मे भारतमाता सोसायटी का जो विराट् जलसा हुआ, उस के सयोजक चौधरी शहावुदीन (वाद मे सर शहावुदीन के रूप मे पजाव कौन्सिल के सरकार-परस्त अध्यक्ष) थे। इस मे ८००० से भी अधिक लोग उपस्थित थे। खास वात यह थी कि इस मे लाला लाजपतराय को भी वुलाया गया था। लाला जी की गाडी कुछ लेट थी और कुछ देर इस लिए भी उन्हे लगी कि उत्साह मे भरी जनता ने स्टेशन पर उन्हे जिस घोडा-गाडी मे वैठा कर जुलूस निकाला, उस के घोडे खोल दिये और उसे अपने हाथो से खीच कर जलसे तक लाये। जलसा समय पर आरम्भ हुआ, तो भारतमाता सोसायटी के कार्यकर्ता श्री वाँकेदयाल ने अपनी कविता 'पगडी सँभाल जट्टा, पगडी सँभाल ओये !' पहली वार पढी। लोग झूम उठे और वाद मे ऐसा समा वँधा कि कवि और श्रोता दोनो ही आँसुओ मे वह गये। इस के वाद तो यह तहरीक 'पगडी सँभाल जट्टा' के नाम से ही प्रसिद्ध हो गयी। जव लाला लाजपतराय जलसे

म आय, ता सरदार अजीत सिंह वाल रहे थे। तिरगा झण्डा उन के हाथ में था और दूसर बहुत स लोगो के हाथ म भी। भाषण क्या था, अगारो की जयमाला था। उन की एक-एक बात पर जनता तालियाँ बजा रही थी।

अपन भाषणो में जनता की तालियाँ लाला लाजपतराय को उन स वढ कम जोरो थी। इस व अपने जीवन की उन से वडी उपलब्धि मानत थ। भारत म इन तालियो पर उन का अभी तक अखण्ड राज्य था पर आज उन्हा न पहला वार दखा कि उन का प्रतिद्वन्द्वी उन व सामने है—सरदार अजीत सिंह का हर वाक्य तालियो की गूज स घिरता जा रहा था। लाला जा शानदार जुलूस स लौट थे एक उत्साहित भरपूर जलसा उन क सामन था। व वोल और खूब जम कर वोले। तालियाँ उन्हें खूब मिली, पर व एक वहम का शिकार हो गय। सरकारी क्षत्रो में यह वहम फल गया कि लाला लाजपतराय गुरु ह और अजीत सिंह शिष्य। वे जा कुछ कर रहे ह सब लाला जी क इशार पर और वास्तविक नता लाला जी ही ह। इस वहम का आधार यह था कि लाला जी उस समय आय-समाज और कांग्रेस में नतृत्व क सर्वोच्च शिखर पर थे और सरदार अजीत सिंह एक नौजवान हो थे। दो महीने वाद ही लाला जी को इस वहम की कीमत चुकानी पडी।

२७ माच को फिर लायलपुर म सरदार अजीत सिंह वाल और २९ माच को अमृतसर में। विषय था—भारत में राजनतिक स्थिति। य शहरो क जलसे थ। इन के साथ ही दहातो म जो जलसे हुए व अलग थे। इस प्रकार माच के जलसो ने पजाव की हवा गरम कर दी।

पहली अप्रल को लाहौर के शाह आल्मी दरवाजे पर सरदार अजीत सिंह पूरे जोश स गरजे और उन्हा ने अगरेजो के वध को उचित बताया और खुले आम आतक वादियो का समथन किया। इस स इतना जोश फला कि उसी दिन लाहौर में ही एक और जल्से में उन का भाषण कराया गया। इसे छात्रो ने आयोजित किया था। इस का कोई खुला ऐलान नही हुआ था बल्कि सायकिलो पर घर घर घूम कर छात्रो ने इस की सूचना दी थी।

६ और ७ अप्रल १९०७ का लाहौर की सभाओ म उन क भाषण हुए। भीड खचाखच थी। भाषणो में मुख्य विषय था टक्सो को बढाने का विरोध। ९ अप्रल को गुजरावाला की सभा में सरदार अजीत सिंह फिर स्वदशी पर बाले और १२ अप्रल को अमृतसर की सभा में। ६००० स भी अधिक उपस्थिति थी। विषय था राजनतिक स्थिति उपाय था अँगरजो को मार भगाना।

१४ अप्रल को लाहौर में सभा हुई। हजारो आदमी उपस्थित थे। मुख्य विषय था समाचारपत्रो का दमन। लाला जसवन्त राय क पत्र पजावी पर सरकार ने मुकदमा चला दिया था और लाला जा को गिरफ्तार कर लिया था। १६ अप्रल को फिर सभा हुई लाहौर में ही। १७ और १८ अप्रल को मुल्तान में भाषणो की धूम

रही। सभाओं में सैनिक आते तो सदा ही थे, पर १८ अप्रैल की मीटिंग में २०० सिख सैनिक उपस्थित हुए। इस घटना ने पंजाब सरकार को सनसनी में डाल दिया। उस के गुप्तचरों की रिपोर्ट थी कि १० मई १९०७ को गदर की पचासवीं वर्षगाँठ पर सरदार अजीत सिंह और उन की पार्टी नये विप्लव की तैयारियाँ कर रही है।

२६ अप्रैल को बटाला में और २८ अप्रैल को गुरुदास पुर में सभाएँ हुईं, जिन में सरदार अजीत सिंह ने १८५७ के गदर की हिमायत की। देहातों में भी बराबर जलसे हो रहे थे और इस तरह वातावरण सनसनी से भरपूर था। सनसनी जनता में थी, आतंक अँगरेज़ों में था।

भारतमाता सोसायटी के गरम कार्यकर्ता और 'इण्डिया' के सम्पादक लाला पिण्डीदास पर सरकार ने इधर-उधर से ज़ोर डलवाया कि वे अजीत सिंह का साथ छोड़ दें, लेकिन उन के यह न मानने पर उन का अखबार बन्द कर दिया। इस पर भी वे बाज़ न आये, तो उन की गिरफ्तारी का वारण्ट निकाला गया। एक निहत्थे आदमी की गिरफ्तारी क्या थी, पारसी थियेट्रिकल कम्पनी का सनसनीखेज़ ड्रामा था। इस ड्रामे के हीरो मिस्टर बीटी और मिस्टर बारबर नाम के दो अँगरेज पुलिस अफसर थे। ४०० सशस्त्र सिपाही इन के साथ थे और बड़ी अकड़ फूँ के साथ गुजराँवाला पहुँचे थे, पर इन की हालत अभिमन्यु नाटक के राय बहादुर-जैसी थी। पण्डित राधेश्याम कथावाचक ने अपने प्रसिद्ध नाटक अभिमन्यु के प्रहसन में एक रायबहादुर का चरित्र दिया है। रायबहादुर महाराजा दुर्योधन की तरफ से युद्ध में लड़ने गये थे और शाम को अकड़ते हुए घर लौटे थे। जब पत्नी ने पूछा कि युद्ध में आज आप ने क्या-क्या वीरता दिखायी, तो रायबहादुर बोले—मैं ने पचासों बहादुरों के पैर काट दिये। पत्नी ने पूछा—सिर क्यों नहीं काटे? रायबहादुर बोले—क्या वाहियात बात करती हो, सिर तो मेरे पहुँचने से पहले ही कोई उन के काट ले गया था।

मतलब यह कि रायबहादुर ने मुरदों के पैर काट दिये थे, पर मिस्टर बीटी और मिस्टर बारबर ने वीरता में रायबहादुर को भी मात दे दी। रायबहादुर मोरचे पर गये तो थे, पर ये गुजराँवाला के स्टेशन पर ही रह गये और दफा १२४ का वारण्ट गुजराँवाला के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट को भेज दिया कि वह लाला पिण्डीदास को गिरफ्तार कर स्टेशन ले आये। यही नहीं, इन दोनों वीरों ने स्टेशन मास्टर से कहा कि वह उन्हें किसी सुरक्षित कमरे में बैठा कर बाहर से ताला बन्द कर दे और किसी को उन के यहाँ होने की खबर न दे।

गुजराँवाला का पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट भी आखिर अँगरेज़ था। उस का भी कलेजा घड़ी का पेण्डुलम हो गया। ४०० सशस्त्र सिपाहियों ने यद्यपि लाला पिण्डीदास का मकान घेर रखा था, पर उन के कमरे में तो इन बेचारे को ही घुसना था? उस समय तक ऐटम बम तो ईजाद हुआ नहीं था, पर जाने लाला पिण्डीदास क्या कर बैठें और उन का कमरा ही बेचारे साहब बहादुर का कब्रिस्तान बन जाये। ठीक

ता ह जीत-जी मत्र म कौन रामान्दार पुगगा ? साहब बहादुर ने लाला अमारक मजिस्ट्रेट (वन्दे मातरम और पीपुल' सम्पादक श्री फाराजचन्द के दाना) स मन माँगी । बात हो क्या थी, व लाला पिण्डीदास के पास गय हँसते-हँसते कहा— 'आ मेर साथ चल ।' किस्सा सुन कर व भी सून हँसे और साथ चल दिये । सगाना व पहर में उन्हें ट्रेन स लाहौर लाया गया । स्टेशन पर घुडसवार दस्ता पहल स तनात था । उग क पहरे में उन्ह जल भजा गया । यह सब सरदार अजीत सिंह क द्वारे आन्दोलन का आतंक था । इस आन्दोलन का अगरेज १८५७ के नये गदर का पग सेमा समझते थ और भय स अस्थिर हो रहे थे ।

भारतमाता सोसायटी के कार्यकर्ताओं की धडाधड गिरफ्तारियाँ हो रही थीं । इन म प्रतिष्ठित वकील पत्रकार विद्यार्थी और इसी तरह क दूसर प्रतिष्ठित लोग थे । इन का मुकदमा करने के लिए पटियाला से अँगरज मजिस्ट्रेट मि० बारवटन का बुलाया गया था ।

एक दिन एक सिख सार्जेण्ट लाला पिण्डीदास महाशय घसाटाराम और लाला दीना नाथ (सम्पादक देश) को जल से अदालत म लाया पर बारवटन साहब तब तक आये नहीं थ । आगे का किस्सा लाला पिण्डीदास के शब्दों म— हम तीनों एक ही जंजीर म बध एक बरामदे म बठ थ । सिख सार्जेण्ट न पूछा— आप किस अखबार के एडीटर ह ? म ने इण्डिया और लाला दीनानाथ ने देश का नाम बताया । जब उस ने महाशय जी स पूछा तो व बोले— आप को नहीं मालूम म मुक्तामार अखबार का एडीटर हू । सारा बरामदा कहकहों से भर गया । सार्जेण्ट अब खुल गया था । उस ने बताया कि जब आप को गुजराँवाला म गिरफ्तार कर क अगरज अफसर लाय तो रलव स्टेशन स जेल के दरवाज तक दस-दस कदम पर सिपाही तनात किय गय थ । प्रबन्ध यह था कि उन म किसी एक ही फिरके क सिपाही नहीं थे । एक हिन्दू था, दूसरा सिख था, तीसरा मुसलमान था । यह एहतियात भी की गयी थी कि फौजी गारद घुडसवार शहर की सडकों पर गश्त लगा रहे थ । जब हम हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने यह सुना कि अगरजों ने घबरा कर अपने स्त्री-बच्चों को किले में या स्पशल ट्रेन म भज दिया ह, तो हम लोग खूब हसे थ ।

इस क बाद सिख सार्जेण्ट ने एक बहुत ही मजेदार किस्सा सुनाया कि एक दिन हमारे अँगरेज पुलिस-सुपरिण्टण्डेण्ट ने अपने दफ्तर म गारद मगायी तो हम ने समझा कि किसी खास जगह उन्हें जाना ह । साहब बहादुर आगे आगे चले और हम पीछे-पीछ । सोच रह थे न जाने कहा जाना ह पर साहब बहादुर अपने बँगले के दरवाजे पर पहुँच गय और बोले—आप सब जा सकते ह । हम सल्यूट दे कर लाइन में वापस आ गये और दर तक हँसत रहे ।'

इस तरह सरदार अजीत सिंह ने अपने पगडी संभाल जट्टा क किसान आन्दोलन का अपनी वाणी की तेजस्विता स राजनतिक क्रान्ति के रूप म बदल दिया

था। लाला लाजपत राय ने अपने एक भाषण मे कहा था—"सरदार अजीत सिंह का असली उद्देश्य इस किसान आन्दोलन को पूरी तरह भडका कर इसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ उग्र क्रान्तिकारी आन्दोलन वना देना था। सरदार जी कोई समझौता न चाहते थे, वल्कि वे तो अँगरेजी राज्य का मुकम्मल खातमा चाहते थे।"

सरदार अजीत सिंह का उद्देश्य इस वात से स्पष्ट है कि उन्हो ने अँगरेजो के जाने के वाद भारत मे किस तरह का शासन होगा, इस के लिए एक सविधान की रचना की थी। यह सविधान अँगरेज अफसरो के हाथ लग गया था, साथ ही सूफी साहव एवं सरदार जी का वहुत-सा साहित्य भी। वरसो की जाँच-पडताल के वाद पता चला है कि यह सविधान और साहित्य भारत सरकार के इतिहास-विभाग मे सुरक्षित है, पर अभी तक जनता के लिए इस विभाग के द्वार वन्द है।

गुप्तचर-विभाग वहुत सतर्कता से सरदार अजीत सिह के कामो पर नजर रख रहा था, पर सरदार अजीत सिंह के भाषणो की भाषा धडाकेदार होते हुए भी कानूनी दाँव-पेंचो से भरपूर थी। इस लिए उन पर मुकदमा चलाये, तो सफलता का निश्चित विश्वास न था। मुकदमा चला और वे छूट गये, तो उन का प्रभाव और भी वढ जाना निश्चित था। इन्ही दिनो तिलक प्रेस होशयार पुर की तलाशी मे एक परचा मिला, जिस का शीर्षक था—'अँगरेजो का वध करो।' गुप्तचर विभाग ने सरदार अजीत सिह के भाषणो और लेखो से उद्धरण दे कर रिपोर्ट मे लिखा—"अजीत सिंह के पाठक उस के विचारो को क्रियान्वित करने मे देर न लगायेंगे।" एक दूसरी रिपोर्ट मे कहा गया—"इन्हें (सूफी अम्वाप्रसाद और सरदार अजीत सिंह को) पाँच साल के लिए वन्द कर दें, तो शान्ति होगी।"

५ मई, १९०७ को विस्तृत रिपोर्ट मे कहा गया—"दो महीनो से ये लगातार मीटिंगें कर रहे है और खुले तौर पर राजद्रोह फैला रहे है। वडे-वडे शहरो के जलसो में सरदार अजीत सिंह ने अँगरेजो के और ऊँचे अफसरो के वध का और अँगरेजो पर आक्रमण कर के आजादी पाने का प्रचार किया है। फौजो मे भरती होने वाले क्षेत्रो मे और समाज मे वगावत फैलायी जा रही है। सिख-समाज, सिख-फौज और पेन्शन पाने वाले सिपाहियो मे प्रचार का विशेष ध्यान है। सिखो के गाँवो मे राजद्रोह के परचे वरावर वाँटे जा रहे है। राजद्रोहात्मक भाषण मे सिख-सैनिको को वरावर वुलाया जाता है और वे आते भी है। अफसरो के दौरो पर गाडी वगैरह न देने का भी प्रचार जनता मे किया जा रहा है। भारतीय सैनिको और पुलिसमैनो को नौकरी छोडने का या नौकरी करते-करते गद्दारी करने का प्रोत्साहन दिया जा रहा है। अजीत सिह ही इस सव के नेता है। वह अग्निमुख वक्ता है और किसानो एव सैनिको को एक साथ भडका रहा है।"

यह रिपोर्ट पजाव के लेफ्टीनेण्ट गवर्नर के पास भेजी गयी और इसे अत्यन्त आवश्यक कार्य मानने की प्रार्थना की गयी, क्यो कि स्थिति भयानकता की ओर तेजी से

चढ़ रही ह ।

पजाव के गवनर मि० इवटसन ने वायसराय लॉर्ड हार्डिंग्ज को लिखा— 'पजाव म गदर होने वाला ह और उस का नेतत्व सरदार अजीत सिंह और उन की पार्टी करगी । बगावत को रोकने का प्रबध करें ।'

अब यह फोडा पक गया था पर इस का उभार बहुत दिन पहले स आरम्भ हो रहा था । इस का पता वायसराय लॉर्ड मिण्टो क उस पत्र मे लगता ह जो उन्हो ने २° अगस्त १९०६ को भारत मत्री लॉर्ड मौर्ले को लिखा था— गदर पदा करने के लिए फौजा म खूब काम किया जा रहा ह । फौजा म इस समय जो साहित्य बाटा जा रहा ह उस का अगला कदम यही ह कि वहा गदर पदा हो ।

७ मई १९०७ को सरदार अजीत सिंह और लाला लाजपत राय के वारण्ट निकाल दिये गये । इन पर भारत सरकार के गृह-सचिव श्री एच० एच० रिजले के हस्ताक्षर थे । लाला लाजपत राय तो ९ मई को ही गिरफ्तार हो गये और बर्मा के माण्डले किले में भेज दिये गये पर सरदार अजीत सिंह इतना तेज़ी से घूम रह थे कि तुरत हाथ नही आये । वे २ जून सन १९०७ को अमृतसर म आधी रात के समय बहुत धूमधाम से मिस्टर डब्लू० एच० वन्विक पलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट के द्वारा रगूलेशन तीन १८१८ के मातहत पकडे गये । डिप्टी सुपरिण्टेण्डण्ट मिस्टर पी० डब्लू० जोन्स उन्हें साधारण पसेंजर टेन स लाहौर छावनी लाय । रात की बात थी निभ गयी पर लाहौर से उन्हें स्पेशल टेन में ३ जून शाम को ५ बजे भेजा और आग गाइड नाम के स्पेशल स्टीमर में उन्हें भेजा गया । रिपोट थी कि यदि उन्हें साधारण टेन से भेजा गया तो बहुत गरम प्रदशन होंगे और इसी भय म रास्ते म किसी स्टेशन पर गाडी नही रुकी । अगर कही रुकी भी तो चारा ओर जगल ही नजर आया । १ अगरज इन्सपेक्टर १ हिन्दुस्तानी सब इन्सपक्टर ६ भारतीय सिपाही १ अगरज सार्जेण्ट और २ हिन्दुस्तानी कान्स्टेबिल उन क साथ थे ।

भारत क वायसराय ने कहा—' हम भूल नही सकत कि लाहौर म अगरज लोग बिना कारण बेइज्जत किय गये और रावलपिण्डी में दगे हुए । इस पर पजाब के गवनर ने जो गम्भीर रिपोट दी उसे भी हम भुला नही सकते । इसी रिपोट पर लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह को जनता के हित के लिए गिरफ्तार कर नजर बद किया गया और राजद्रोह फलाने वाली सभाओ पर पाबन्दी क लिए आर्डिनेन्स जारी किया गया ।'

भारत मत्री मिस्टर मौर्ले ने पर्लमिण्ट में कहा— पहली मार्च १९०७ से पहली मई तक पजाब के प्रसिद्ध क्रान्तिकारियो ने २८ सभाए की । इन में सिर्फ पाँच का ही सम्बन्ध किसाना के कष्टा स था बाकी सब में राजद्रोह का प्रचार किया गया ।

माण्डले के किले में लाला जी और सरदार जी को एक-दूसरे से नहा मिलने दिया जाता था । सरदार जी के आने का पता भी लाला जी को बहुत दिन बाद लगा ।

लाला जी के भापण तो जरूर धडाकेदार होते थे, पर मानसिक रूप से वे नरम दल के आदमी थे। सरदार अजीत सिंह का निर्वासन तो लोगो की समझ मे आता था, पर प्रश्न था कि वेचारे लाला जी क्यो पकडे गये ? मै इसी अध्याय मे पहले कह आयी हूँ कि भारतमाता सोसायटी की एक सभा मे परिस्थिति-वश लाला जी के जोश मे आ जाने के कारण सरकारी क्षेत्रो मे यह वहम फैल गया था कि इस आन्दोलन के वास्तविक नेता लाला जी ही है, पर यह सिर्फ एक वहम ही था।

नरम दल के कॉंग्रेसी नेता श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने १० जून १९०७ को वायसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी को एक पत्र मे लिखा—"लाला लाजपत राय के सम्बन्ध में देश के प्रभावपूर्ण लोगो की ओर से उन के हस्ताक्षरो से युक्त एक प्रार्थना पत्र तैयार हो रहा है। उसे ले कर मै जुलाई के अन्त तक स्वय शिमला आऊँगा। इस पर वायसराय की कौन्सिल के सभी गैर-सरकारी और भूतपूर्व सदस्यो के हस्ताक्षर होगे, साथ ही प्रान्तीय कौन्सिलो के सदस्यो, कॉंग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्षो और प्रान्तीय कॉन्फ्रेन्सो के भूतपूर्व अध्यक्षो के भी हस्ताक्षर होगे।

अजीत सिंह को लाजपत राय के साथ जोडना लाला जी के साथ बहुत वडा अन्याय है। पिछली फरवरी मे जव मै लाहौर मे था, अजीत सिह ने लाला जी को कायर और सरकार-परस्त आदमी कह कर लाछित किया था। यह उन्हो ने इस लिए किया था कि लाला जी ने उन के आन्दोलन मे कोई भाग नही लिया था।"

इस पत्र पर भीतर-ही-भीतर जाँच हुई। १६ जुलाई १९०७ को सी० आई० डी० के स्थानापन्न डायरेक्टर मि० जे० स्टीवेन्सन ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा—"मेरा लाहौर का एजेण्ट कहता है कि अजीत सिह १०० रुपये माहवार लाला जी से लेते रहे और लाला जी अपने राजनैतिक फण्ड से उन का खर्च देते रहे। लाला जी अजीत सिंह को उन के भापणो के नोट्स वना कर भी दिया करते थे।"

यह रिपोर्ट एक गप्प थी, चारो ओर फैले वहम पर आधारित थी। लाला लाजपत राय ने अपनी 'आत्मकथा' के पृष्ठ ११९ पर स्वय कहा है–"१९०६ मे कलकत्ता कॉंग्रेस के समय गरम लोगो की जो मीटिंग हुई, उस मे मै जान गया था कि अजीत सिंह ने सूफी अम्वाप्रसाद की मदद से भारतमाता सोसायटी की स्थापना की है और यह सोसायटी गरम पक्ष के सिद्धान्तो का प्रचार करती है। इस समय तक अजीत सिंह कई वार मेरे पास आर्थिक सहायता के लिए आये थे, पर मै ने इस के लिए वहुत-सी शर्तें लगायी थी, जिन्हे उन्हो ने पूरा नही किया।"

असल मे सरदार अजीत सिंह की शक्ति का स्रोत लाला लाजपत राय जी न थे, न हो ही सकते थे। उन की शक्ति का सोत जनता थी। इस के वाद माजे और मालवा क्षेत्र के सरदार और कुछ राजा लोग थे। वे जलसो में एक पद वडी मस्ती से गाया करते थे—'माजे दे जोर नाल, मालवे दे शोर नाल, असी नही हारना।' इतिहास का सत्य यह है कि अपने क्षेत्र मे सरदार अजीत सिंह ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को जन्म दिया,

चलाया और उसे अन्तर्राष्ट्रीय रूप दिया। वे किसी की शाखा नहीं थे एक स्वतन्त्र वृक्ष थे। वे किसी सूर्य से प्रकाश ले कर चमकने वाले चांद नहीं थे, वे स्वयं सूर्य थे, जो प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपने आकाश में स्वयं उभरे थे।

यह १५ जून १९०७ थी। सरदार अजीत सिंह अब माण्डले के किले में थे। बर्मा तब भारत का एक प्रांत था। उसे अंगरेजों ने बाद में अपनी कूटनीति के अनुसार १९३५ के शासन सुधारों के समय भारत से अलग कर दिया था। १८५७ में बादशाह बहादुरशाह जफर को बर्मा में ही नजरबन्द रखा गया था। उस के बाद १८८२ में कूका विद्रोह के नेता गुरु राम सिंह को भी बर्मा में ही निर्वासन भोगना पड़ा था। बादशाह बहादुरशाह और गुरु राम सिंह ने आखिरी सांस बर्मा में ही ली थी। बहुत बरस बाद लोकमान्य तिलक और नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के निवास से भी माण्डले पवित्र हुआ था।

सरदार अजीत सिंह माण्डले के इसी किले में थे। लाला लाजपत राय उन से कुछ दिन पहले ही आ गये थे और उन्हें पुलिस के पहरे में सुबह शाम घूमने की भी इजाजत थी पर सरदार जी के वहाँ आते ही किले में किले के चारों ओर और बाहर सड़कों पर भी सख्त पहरा कर दिया गया और सिपाही ही सिपाही दिखाई देने लगे। सरदार अजीत सिंह के खर्च के लिए सरकार ने १२० रुपये मासिक स्वीकृत किये थे और श्रीमती अजीत सिंह के लिए दस रुपये मासिक पर परिवार के लोगों ने ये दस रुपये स्वीकार नहीं किये और लेने से इनकार कर दिया।

माण्डले के किले में एक साफ सुथरे बंगले में उन्हें रखा गया था। वे वहाँ दोनों समय व्यायाम करते थे और मस्त रहते थे। उन का अधिकांश समय संसार की क्रांतियों में नेतृत्व करने वाले वीरों का जीवन चरित्र पढ़ने में लगता था। ये जीवन चरित्र बहुत प्रेरक थे। उन के मन में आया कि इन्हें अपनी भाषा के द्वारा देश की जनता तक पहुँचाना चाहिए जिस से वह समझ सके कि आजादी के लिए क्या-क्या करना पड़ता है। इन सब को उन्हों ने अपनी भाषा में लिखा और जेल से छूटने के बाद महिब्बाने वतन के नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित किया। इस की शानदार भूमिका सूफी अम्बा प्रसाद ने लिखी थी। यह पुस्तक लोकप्रिय हुई पर सरकार ने इसे जब्त कर लिया। अपनी दिलचस्प शैली और ज्वालामुखी घटनाओं के कारण जब्त होने पर भी यह पुस्तक घर घर पढ़ी गयी और बाद में जब सरदार जी ईरान में थे तो पर्शियन भाषा में इस का अनुवाद हुआ—वहाँ भी यह घर घर पढ़ी गयी। माण्डले जेल में सुपरिण्टेण्डेण्ट एक मूडी आदमी था। वह आप-ही-आप चढ़ जाता था और आप-ही-आप उतर भी जाता था। चढ़ता था तो छाती से छुरा बात नहीं मानता और उतरता था तो हँस हँस कर बातें करने लगता था।

सरदार अजीत सिंह को बाहरी दुनिया से अब कोई सम्पर्क न था। किसी से भी उन्हें मिलने की इजाजत न थी। वे घर पत्र भेज सकते थे पर वह भी सेंसर करा

कर। घर से जो पत्र आते थे, वे जाँच-पड़ताल के बाद भी उन्हे नही मिलते थे। सरदार जी ने जेल अधिकारियो से कभी कोई मॉग नही की। उन्हे कोई समाचारपत्र नही मिलता था। जेल अफसरो के अलावा कोई जेल-वार्डर भी उन के पास आता था, तो उस की तलाशी ली जाती थी। जब वह काम कर के उन के पास से लौटता था, तब फिर दुबारा तलाशी होती थी।

पुलिस के पहरे मे उन्हे घूमने जाने की स्वीकृति थी। एक-दो बार वे गये भी, पर भारतीय लोग, उन्हे देख कर झुक-झुक कर नमस्कार करते थे। पुलिस उन नमस्कार करने वालो के साथ मार-पीट करती थी, इस लिए वे बाहर जाते ही न थे। भारत-वासी भी पुलिस मे थे, पर सरदार जी के किसी काम मे उन्हे नही लगाया जाता था। बर्मी पुलिस के लोग ही उन के काम मे लगाये जाते थे। पजाब सरकार ने तो उन को 'भयकर आदमी' माना ही था, सरकार-परस्त और अँगरेजो के अखबारो मे भी उन के और उन के आन्दोलन पर बहुत जहर उगला जाता था। इस से माण्डले के जेल अधि-कारी उन से सदा भयभीत रहते थे, पर सरदार जी का व्यवहार बहुत सन्तुलित था। वे शान्त भाव से अपनी दिनचर्या चलाते थे।

एक दिन जब वे गहरी नीद मे सो रहे थे। उन्हे सपने मे उन के कसूर वासी मित्र सरदार करतार सिह दिखाई दिये। उन्हो ने कहा—"सरदार जी, आप ११ नवम्बर को छूट जायेंगे।" हमारे वश मे चमत्कारी सपनो की शृखला रही है। सरदार जी को भी इस सपने के सच होने का विश्वास हो गया। ११ नवम्बर १९०७ को दिन मे ११ बजे माण्डले के कमिश्नर ने सरदार जी को जेल के दफ्तर मे बुलाया, तो आते ही वे बोले—"मुझे मालूम है कि आप ने मुझे छोडने के लिए बुलाया है।" इस पर कमिश्नर चुपचाप आश्चर्य से उन की तरफ देखता रह गया। तब सरदार जी ने कहा—"सार्जेण्ट को बुला कर पूछिए। मै ने बहुत दिन पहले उस से कह दिया था कि हमे ११ नवम्बर को छोडा जायेगा।" कमिश्नर भौचक रह गये। सरदार जी को बाद मे यह जान कर बहुत आश्चर्य हुआ कि उस सपने के कुछ दिन बाद ही करतार सिह जी की मृत्यु हो गयी थी।

सरकारी कागजो के अनुसार ७ नवम्बर, १९०७ को भारत सरकार ने सरदार अजीत सिह और लाला लाजपत राय को जल्दी से जल्दी छोडने का निर्णय किया। ११ नवम्बर को उन्हे छोड दिया गया, १२ नवम्बर को वही गार्डेड स्टीमर उन्हे प्रात ७ बजे माण्डले से ले कर चला और १८ नवम्बर १९०७ को स्पेशल ट्रेन से वे लाहौर पहुँचे। सब भाषाओ के समाचारपत्रो की मोटी लाइनें उन के नाम के सुनहरे अक्षरो से भर गयी। जनता मे जोश का उफान आ गया। पजाब-भर मे उन के स्वागत मे खुशियाँ मनायी गयी। सरदार अजीत सिह पहले से भी अधिक प्रसिद्धि और ख्याति ले कर लौटे। अब वे देश के हीरा हो गये, हीरो बन गये।

प्रश्न है कि खतरनाक कामो का रेकॉर्ड होते हुए भी भारत सरकार ने सरदार

अजीत सिंह को छोडने का निर्णय क्या किया ? परिस्थितियों पर गहरी नज़र डालते हुए मैं सोचता हूँ कि लाला जी की निर्दोषिता तो गोखले जी के प्रार्थना पत्र से सिद्ध हो ही गयी थी। इस लिए लाला जी को रिहा करना तो अब अनिवार्य था पर इस हालत में अकेले सरदार अजीत सिंह को नजरबन्द रखने का अर्थ होता उन्हें और भी अधिक प्रभावशाली बनाना क्रांतिकारी आन्दोलन का एक-छत्र सम्राट सिद्ध करना। यह सरकार के लिए महगा सौदा था इस लिए उस ने उन्हें लाला जी के साथ छोड देना ही उचित समझा। इस का एक गहरा राजनतिक और मनोवैज्ञानिक कारण भी था। सरदार अजीत सिंह के किसान आन्दोलन के सामने सरकार झुक गयी थी क्या कि किसानों में फैली बगावत की लपटें सेनाओं में भी जा पहुँची थी और वहाँ बगावत का धुवा उठने लगा था। झुकने के सिवा सरकार के पास कोई चारा न था। उस ने सरदार अजीत सिंह को किसानों से दूर किया और किसानों को जमीन पर मालिक के अधिकार (मिल्कियत) देना स्वीकार कर लिया। इस तरह सरदार अजीत सिंह का आंदोलन सफल हो गया और सरदार जी उस सफलता के समारोहों से दूर रहे। इस अवसर पर सरकार के विशेषज्ञों ने पूरी नीति पर दुबारा विचार किया और नया एक्ट ज्यों का त्यों वापस ले लिया। अब पूरी तरह किसान सन्तुष्ट थे और किसी आन्दोलन में पड़ने की उन्हें जरूरत न थी। इस प्रकार सरदार अजीत सिंह को अपने वातावरण में अकेले रह जाना चाहिए। वे इस स्थिति में भी किसानों को अपने साथ ले सकते हैं या नहीं इस की परीक्षा उन्हें छोड कर ही हो सकती थी। सरकार ने अपनी विज्ञप्ति में कहा कि—"सम्राट आज के राज्याभिषेक की खुशी में उन्हें छोडा गया है। जो भी हो, उन की रिहाई से पंजाब उछल पडा। उस ने उन्हें सिर आँखों पर लिया और वे एक शानदार प्रदर्शन हुए कि अंगरेज़ी सरकार सन्नाटे में आ गयी और उस के क्षेत्रों में एक प्रश्न खडा हो गया कि क्या उन्हें छोडना उचित था ?

दिसम्बर १९०७ के अंत में कांग्रेस का अधिवेशन सूरत में हो रहा था। लोकमान्य तिलक के विशेष निमन्त्रण पर वे सरदार किशन सिंह के साथ सूरत गये। सूरत का यह अधिवेशन बडी विचित्र परिस्थितियों में हो रहा था। कांग्रेस के नरम और गरम दलों में गहरी दरार तो कलकत्ता अधिवेशन (१९०६) में ही पड गयी थी, पर वहाँ अधिवेशन के सभापति दादा भाई नौरोजी के सर्वमान्य व्यक्तित्व के कारण बात निभ गयी थी। दोनों दल कांग्रेस पर कब्जा करना चाहते थे, पर बहुमत नरम दल का था नरम दल ने अपने को और भी शक्तिशाली बनाने के लिए अधिवेशन को नागपुर से सूरत में बदल दिया था। गरम दल तिलक को सभापति बनाना चाहता था पर गोखले के नरम दल वालों ने डॉ० रासबिहारी घोष को चुन लिया। गरम दल वालों ने यह सोच कर कि लाला लाजपत राय अभी देश निकाले से लौटे हैं, इस लिए उन का नाम सर्वसम्मति से चुना जा सकेगा उन का नाम पेश किया था, पर लाला जी तैयार नहीं हुए।

लोकमान्य तिलक ने गरम दल वालो की अलग बैठक बुलायी और परिस्थितियो पर सलाह की। सरदार अजीत सिंह भी शामिल हुए। उन की राय थी कि प्रतिक्रिया-वादियो से दबना या उन्हे तरह देना ठीक नही है, उन से भिडना चाहिए। उन की दलील यह थी कि हम पजाब मे गरम आन्दोलन चला कर देख चुके है, जनता हमारे साथ है इस लिए हम नरम लोगो से खुली टक्कर लेगे, तो जनता हमारे साथ होगी। तिलक बहुत प्रभावित हुए। सचाई यह कि अपने ढग का आदमी उन्हे सार्वजनिक जीवन मे पहली बार मिला था। वे सरदार अजीत सिह पर मुग्ध हो गये, क्यो कि वे उन की आत्मा के साथी सिद्ध हुए। 'कॉंग्रेस का इतिहास' के लेखक डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैया ने तिलक और गोखले के विचारो की यह तुलना की है—"गोखले शासन और उस के सुधार की ओर मुख्य ध्यान देते थे, तिलक राष्ट्र और उस के निर्णय को सब से मुख्य समझते थे। गोखले का आदर्श था प्रेम और सेवा, तिलक का आदर्श था सेवा और कष्ट-सहन। गोखले विदेशियो को जीतने का उपाय करते थे, तिलक उन को हटाना चाहते थे। गोखले उच्च वर्ग और बुद्धिजोवियो की तरफ देखते थे, तिलक सर्वसाधारण और करोडो की ओर। गोखले का अखाड़ा था कौन्सिल भवन, तिलक की अदालत थी गाँव की चौपाल। गोखले अँगरेजी मे लिखते थे, तिलक मराठी मे। गोखले का उद्देश्य था स्व-शासन, जिस के योग्य भारतीय अपने को अँगरेजो की कसौटियो पर कस कर बनाये, तिलक का उद्देश्य था स्वराज्य, जो कि प्रत्येक भारतवासी का जन्मसिद्ध अधिकार है और जिसे वह विदेशियोकी सहायता या बाधा की परवाह न करते हुए प्राप्त करे।"

लोकमान्य तिलक के पास राजनैतिक जोवन का जो सूत्र था, सरदार अजीत सिह उसी के भाष्यकार थे। तिलक और सरदार अजीत सिंह ने नरम दलवालो से निपटने के लिए सरदार किशन सिह के साथ मिल कर योजना बनायी। दूसरे दिन सभापति का चुनाव होने पर तिलक ने बोलने का समय माँगा। वे अधिवेशन को स्थगित करने की बात कहना चाहते थे, पर उन्हे समय नही दिया गया। तब वे अपने भाषण के अधिकार का उपयोग करने के लिए उठे और मच की तरफ बढे। उन्हे रोकना था कि गुल-गपाडा मच गया और डॉक्टर पट्टाभि सीतारमैया के ही शब्दो मे "प्रतिनिधियो मे से किसी ने एक जूता उठा कर फेंका, जो सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी को छूता हुआ सर फिरोजशाह मेहता को लगा। तब मानो एक लडाई शुरू हो गयी। कुरसियाँ फेंकी गयी और डण्डे चलने लगे, जिस से कॉंग्रेस उस दिन के लिए स्थगित हो गयी।"

इस वाक्य मे डण्डे शब्द महत्त्वपूर्ण है और उस की जिज्ञासा है—क्या यह भारतमाता सोसायटी के चिह्न वाले डण्डे ही तो नही थे? इस प्रश्न का उत्तर अब कौन दे सकता है, पर दूसरे दिन गरम दल की सभा मे भावविभोर हो कर तिलक महाराज ने कहा—"सरदार अजीत सिह एक विलक्षण व्यक्ति है वे इस लायक है कि उन्हे स्वतन्त्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति बनाया जाये। हमारे पास उन-जैसा कोई दूसरा

आत्मा नहीं है।" तिलक महाराज ने केवल यह कहा ही नहीं, इस भावना को साकार रूप देने के लिए एक ताज भी अपने हाथ से सरदार अजीत सिंह के सिर पर रखा। यह ताज अब भी हमारे परिवार में सुरक्षित है।

सरदार अजीत सिंह भी तिलक महाराज के व्यक्तित्व से बेहद प्रभावित हुए और जब १९०८ में तिलक गिरफ्तार हो गये तो सरदार जी ने सूफी अम्बाप्रसाद के साथ साधुओं जैसे वस्त्र पहन लिये—इस प्रतिज्ञा के साथ कि जब तक तिलक नहीं छूटेंगे हम इसी वेश में घर घर आज़ादी की अलख जगाते रहेंगे।

माण्डले से लौटते ही सरदार अजीत सिंह भारतमाता सोसायटी के काम में जुट गये। भारतमाता बुक एजेन्सी लाहौर से फिर धड़ाधड़ साहित्य प्रकाशित होने लगा। 'पेशवा' नामक दैनिक पत्र दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति करने लगा। सरकारी रिपोर्ट में इसे पंजाब का सब से अधिक राजद्रोह फैलाने वाला पत्र कहा गया था क्योंकि यह बौद्धिक वर्ग की मानसिक खुराक बन गया था। उस समय यह १५०० प्रति दिन छपता था और इस की माँग प्रतिदिन बढ़ रही थी।

इस बीच एक और महत्त्वपूर्ण कार्य था सरदार जी के द्वारा एक सांकेतिक कोड की रचना। इस के द्वारा ही पत्रों, समाचार और मित्रों को सन्देश भेजे जाते थे। यह एक परिपूर्ण भाषा हो गई थी पर इसे जानने वाले ही समझ सकते थे। यह कोड इतना परिपूर्ण था कि जब सरदार जी विदेश चले गये तो इस के द्वारा उन्होंने भारत के क्रांतिकारियों के साथ तो सम्पर्क रखा ही, अपने अपने देश में संसार के जो लोग क्रान्तियाँ कर रहे थे उन के साथ भी सम्बन्ध रखा और इस प्रकार यह संसार भर की क्रान्तियों के बीच सम्पर्क का सुरक्षित सूत्र बन गया। सौभाग्य से यह कोड हमारे परिवार में सुरक्षित है।

मांडले जाने से पहले उन्होंने किसानों के दुःखों का लाभ उठा कर अपने गत साल को पुनः आन्दोलन (किसान आन्दोलन) का रूप दे कर जनता के जागरण का बड़ा काम कर लिया था। अब उस तरह की परिस्थितियाँ नहीं थीं। उन्होंने लाला हरदयाल और सूफी अम्बाप्रसाद आदि के साथ मशवरा कर एक दूरगामी और विराट योजना बनाई। भारत की स्वतन्त्रता के लिए इस से पहले और इस के बाद भी कोई ऐसी व्यापक योजना [illegible] व्यक्ति या पार्टी या संस्था के द्वारा कभी बनी हो, यह कहना मुश्किल लगता है।

इस योजना [illegible] था। इस का मूल आधार यह विश्वास था कि विश्वयुद्ध अवश्य होगा और भारत के [illegible] के लिए वही सर्वोत्तम समय होगा। योजना का [illegible] यह था कि [illegible] के भीतर और विदेश में एक साथ [illegible] हो और [illegible] आरम्भ हो [illegible] उस में [illegible]। [illegible] और [illegible] दिये। इस लिए निश्चय हुआ कि [illegible] हरदयाल [illegible] सूफी अम्बाप्रसाद [illegible]

निरंजन सिंह ब्राजील मे जमे और सरदार अजीत सिंह को माण्डला जाने से जो प्रसिद्धि मिली है, साथ ही तिलक महाराज से उन के जो सम्बन्ध बन गये है, वे उन का उपयोग देश के विभिन्न क्रान्ति-सगठनो को एकता मे बाँध कर उस समय भारत मे क्रान्ति का सगठन करें।

भारतमाता सोसायटी के आन्दोलन की गूँज सारे देश मे पहुँच गयी थी। उसे सुन कर बगाल के क्रान्तिकारी श्री चन्द्रकुमार चक्रवर्ती सरदार अजीत सिंह के पास आये और उन्हे गुप्त संगठन मे महयोग देने लगे। सरदार जी ने उन का नाम रख दिया फरिश्ता जी। सहारनपुर के श्री जितेन्द्र मोहन चटर्जी (नीलाम्बर बाबा) लाला हरदयाल की विद्वत्ता से बहुत प्रभावित थे और उन के शिष्य के रूप मे उन के साथ काम कर रहे थे, पर लाला जी के विदेश जाने पर वे भी बैरिस्टरी पास करने इंग्लैण्ड चले गये। फरिश्ता जी के आने पर सरदार जी को एक अच्छा सहयोगी मिल गया और गुप्त संगठन फैलने लगा। जगह-जगह खुले जल्से करने का अपना काम भी सरदार अजीत सिंह ने जारी रखा।

एक दिन फरिश्ता जी का भी मन भाषण देने को हुआ। उस की कहानी श्री रामशरण दास के शब्दो में इस प्रकार है—"लाहौर-भर मे ढिढोरा पीटा गया कि ब्रेडला हाल मे सरदार अजीत सिंह का भाषण होगा। वे लोकप्रिय वक्ता थे। उन का भाषण सुनने को लोग उत्सुक रहते थे। सरदार अजीत सिंह इन दिनों भी अपने भाषणो मे सब-कुछ कहते थे, पर इस सफाई से कि सी० आई० डी० वाले देखते रह जाते थे। उस दिन सरदार अजीत सिंह ही वक्ता थे और वे ही सभापति। उन के भाषण के बाद फरिश्ता जी एक अपरिचित की तरह सभापति के बिना बुलाये ही भीड मे से उठकर मच पर आ गये और सरदार जी से बिना पूछे ही अँगरेजी मे धुवाँधार भाषण देने लगे। खूब तालियाँ बजी, पर उन के एक वाक्य पर तो तालियो की गडगडाहट से आकाश ही गूँज गया। वह वाक्य था—दि डाग ऑव इण्डिया इज बेटर दैन द गॉड ऑव इग्लैण्ड—हिन्दुस्तान का कुत्ता इंग्लैण्ड के ईश्वर से श्रेष्ठ है।

फरिश्ता जी का भाषण सुनते-सुनते ही पुलिस-अफसर बेचैन हो गये और उन्हो ने उन्हे पकड लेने का फैसला किया, पर भाषण पूरा होते ही वे कूद कर भीड मे गुम हो गये। लायलपुर के डॉ० दीनानाथ ने उन्हे एक गिन्नी दी कि वे लाहौर से तुरन्त बाहर चले जायें और वे गुजराँवाला चले गये। सरदार अजीत सिंह ने जनता से एक अनजान आदमी की तरह कहा—"अजीब आदमी था यह कि न मुझ से इजाजत ली, न पूछा और जो जी मे आया कह गये। मेरा इन से और इन के विचारो से कोई सम्बन्ध नही है, पर क्या कोई बता सकता है कि ये हजरत कौन थे ?

किसी ने उत्तर नही दिया, पुलिस अपना ही मुँह ताकती रह गयी, पर फरिश्ता जी का वारण्ट निकाल दिया गया कि मिलते ही गिरफ्तार कर लिया जाये। सरदार अजीत सिंह के कहने पर मै (रामशरण दास) गुजराँवाला गया और सरदार जी के

सरदार अजीत सिंह
स्वतन्त्रता की खोज मे

आदमी चार दिन के लिए घर से बाहर जाता ह तो सौ प्रबध हजार बातें सोचता ह। उस को पता होता ह कि वह कहाँ जा रहा ह कहाँ ठहरगा क्या करगा और कब लौटेगा। फिर भी एक झमेला-सा मालम होता ह सफर पर जो इस तरह घर से जा रहा ह कि भविष्य अज्ञात ह अवधि यात्रा की ह नहा और जिस के लिए सफर का अथ ह भटकना वह भी जाने कब तक और कहाँ से कहाँ तक उस के मन की कसी गति होगा ?

जब सरदार अजीत सिंह अपने साथी सूफी अम्बाप्रसाद आदि के साथ उस रात घर से बाहर निकले होंगे तो उन के मन में कसा तूफान रहा होगा ? सोचती हूँ तो कलेजा मुह को आने लगता ह और दम घुटने लगता है पर तभी मन में आता ह कि ऊँचा आदश और पवित्र ह्दय मनुष्य को इतना बल देते ह कि बीहड वन भी चमन बन जाते ह और गहर समुद्र कागज की किश्तियों से पार करने लायक।

ऐसे सफर का पहला प्रश्न होता ह—किधर से चलें कौन-सी राह पकड ? एक राह थी पेशावर होते हुए खबर का दर्रा पार कर अफगानिस्तान पहुचना पर इस में बहुत खतरे थे। दूसरा राह थी कराची से पानी के जहाज द्वारा ईरान जा निकलना। उन्होंने यही राह चुनी पर इस राह में भी तो धन की जरूरत थी पास पोट आदि उपकरण आवश्यक थे। साथियों की सगठन शक्ति अभिनन्दनीय ह कि साधन जुट गये, उपकरण मिल गये। सरदार अजीत सिंह और उन के साथी एसे शानदार ढग से कराची में जहाज पर चढ़े कि अँगरेजी सरकार व गुप्तचरों की नजरें मुट्ठी की मुँदी ही रह गयी। सरदार अजीत सिंह अब मिर्जा हसन खाँ थे।

समुद्र की छाती को चीरता जहाज ईरान के बन्दरगाह बुशेर जा पहुँचा और हमारे क्रान्ति-यात्री शान्ति के साथ ईरान पहुँच गये। ईरानी क्रान्तिकारी पार्टी के नेता मयद असदुल्ला मुजतबिक ने उन का दिल से खर सत्कार-स्वागत-किया। वहाँ स तुर्किस्तान पहुचे जहाँ खान जुगी मिर्जा ने स्वागत किया और खान जमीर खाँ कबीले के सरदार समाउदौला से मिलाया। इस का अथ था इस प्रदेश की सब स बडी शक्ति स परिचय।

मुमद्रष्टा भगत सिंह

वहाँ से पहुँचे शीराज । लूट भी एक धन्धा है और उस जमाने मे उस क्षेत्र का यह एक बडा धन्धा था, जैसे आजकल सरहदो पर तस्करी व्यापार है। ये कई जगह लूटे गये और उस से कई गुनी जगहो पर पीटे गये । ठग इन्हे पीटते, तो यह खिलखिला कर हँसते । सरदार अजीत सिह की प्रतिक्रिया थी—"यारो, पिटाई का स्वाद जीवन मे पहली वार ही चख रहे है ।" ये उस जीवट के प्रतिनिधि थे, जिस का अनुभव उर्दू की इन दो पक्तियो मे गूँथा गया है—

"यो तो ऐ सैयाद, आजादी के है लाखो मजे ।
दाम के नीचे तडफने का मजा कुछ और है ।।"

जव समाउद्दौला को यह खवर मिली, तो उन्हो ने गाँव के जत्थेदार को खवर भेजी कि इन मेहमानो का सामान वापस दिलाया जाये और समान वापस मिल गया । शीराज मे वे इमामे-जुमा से मिले और इस्फहान होते हुए ईरान की राजधानी तेहरान पहुँच गये । इस सफर मे कोई ग्यारह वार लुटाई हुई । इस सफर का एक वेहद मनोरजक सस्मरण सरदार अजीत सिह के ही शब्दो मे इस प्रकार है : "इस सफर मे एक शहजादा भी हमारे साथ था । वह कुछ विस्किट ले कर चला था । वे लूट लिये गये और पिटाई भी हुई । वह वार-वार कहता था—मारपीट की कोई वात नही दोस्तो, पर तुम किसी तरह मेरे विस्किट दिला दो । उस की यह वात सुन कर हम खूव हँसते थे । "

तुर्गिस्तान से चलते समय सरदार अजीत सिंह और हृपीकेश एक टोली मे हो गये थे और सूफी साहव और दूसरे साथी दूसरी टोली मे । तेहरान मे इमामे-जुमा के वेटे ने सरदार जी को डेमोक्रेटिक पार्टी के सचिव मिर्जा मुहम्मद पहलवी से मिलाया और वही इन की मुलाकात हुई सैयद जमालुद्दीन तवखतीवी से, जो ईरान के प्रधानमन्त्री रह चुके थे । 'वर्क' के सम्पादक और ईरानी क्रान्तिकारियो के नेता श्री ज़ियाउद्दीन (वाद मे प्रधानमन्त्री) से भी सरदार जी की मित्रता हो गयी, जो तुरन्त ही वडे काम की सिद्ध हुई और वाद के जीवन मे भी । वही ईरान के विदेश मन्त्री (वाद मे वादशाह) श्री रजाशाह पहलवी से सरदार जी की निकटता हो गयी ।

ईरान उन दिनो अजीव सकट से गुजर रहा था । उस के उत्तरी भाग पर रूस के जार का प्रभाव था और दक्षिणी भाग पर अँगरेजो का । वादशाह कमजोर था, जो न रूस को कुछ कह सकता था, न व्रिटेन को, पर क्रान्तिकारी लोग दोनो के विरुद्ध संघर्प कर रहे थे । सरदार जी ने फारसी मे 'हयात' नाम का पत्र निकाला । इस पत्र ने हिन्दुस्तान की आज़ादी के सघर्प की हिमायत की और ईरान के हितो को भी वल दिया ।

एक वार अँगरेजी पुलिस के किसी अधिकारी ने सरदार अजीत सिंह को पकड लिया, पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी येपरन खाँ साइवेरिया के रूसी क्रान्तिकारी थे । श्री जियाउद्दीन ने उन से कहा—"एक क्रान्तिकारी के द्वारा दूसरे क्रान्तिकारी को कष्ट नही मिलना चाहिए ।" इस पर सरदार जी छोड दिये गये पर वे अव अँगरेज़ो की

उन का ईरान में रहना हर घडी खतरे म पडना था।
निगाह में चढ गये थे, इस लिए
वे जियाउद्दीन के साथ ही इरान स बाहर हो गये।
रस्तौव हो कर वे बाकू पहुँचे। वहा से सरदार अजीत सिंह टर्की पहुचे और
उभरती हुई शक्ति कमाल पाशा से मिले। ईरान के क्रान्तिकारी तुकीर जदा से उन के
अच्छे सम्बध हो गये। पाच सप्ताह वहाँ रह कर वे वियेना गये और तब जमनी जा
पहुँचे। प्रथम विश्वयुद्ध का वातावरण बन रहा था पर सरदार अजीत सिंह समझ गये
कि उस में अभी देर ह। जमनी से वे पेरिस गये। वहाँ अध्यापन का काम करते रह
और भारतीय क्रान्तिकारी सघ की स्थापना भी उन्हो ने वहाँ की।

परिस से वे स्विटजरलण्ड पहुचे। वहाँ का लुसेन स्थान उन्हें बहुत पसन्द
आया और १९१२ तक वही रहे। काम था भारत की आजादी की टोह और रोजी
थी श्री सैयदी असद नामक मिनिस्टर के बच्चो को पढाना। लुसेन उन दिनो ससार
भर के क्रान्तिकारियों का अडडा हो रहा था। सरदारजी ने बहुतो से मेल कर लिया।
ज्यूरिच में वे लेनिन से भी मिले। मुसोलिनी से भी उन की मुलाकात हुई, जो उस
समय विद्यार्थी ही थे।

ईरान के एक मिनिस्टर स्विटजरलण्ड आये। सरदारजी से वे परिचित थे।
वे जमनी जा रहे थे। सरदारजी उन का दुभाषिया हो कर जमनी चले गय। जमनी
के सर्वेसर्वा कसर से उन की भावी युद्ध के सम्बध म गहरी बातें हुइ। सरदारजी ने
युद्ध के समय कसर से एशिया की आजादी के लिए मदद करने की माँग की। कसर
का उत्तर था— हम एशिया की मदद करेंगे पर हमारी लडाई तो सिफ फ्रान्स से
ह। सरदार जी ने कहा— यह कसे हो सकता ह कि आप युरप को रौंद दें और
ब्रिटेन चुपचाप तमाशा देखता रहे। इस प्रकार आप की और ब्रिटेन की तो ठनेगी ही।
इस लिए ब्रिटेन हमारा-आप का एक-समान दुश्मन ह। आप हमारी मदद करगे तो
अपने दुश्मन को शिकस्त देंगे और इस प्रकार हमारी मदद आप की भी मदद होगी।'
कसर पर उन की बात का गहरा असर पडा और वह उन के साथ बातचीत की
गहराइयों में उतर गया।

सरदार जी ने कसर के सामने अपनी पूरी योजना रखी कि जब युद्ध होगा तो
निश्चित रूप से अगरेजों क झण्डे के नीचे लडने वाले हजारो भारतीय सिपाही आप
की सना के द्वारा बदी बनाये जायेंगे। हम उन सिपाहियों से आजाद हिन्द सेना का
सगठन करेंगे। आप की सेना द्वारा टर्की का पतन होते ही हमारी सेना का रास्ता
हिन्दुस्तान का ओर बढ़ने के लिए खुल जायगा और वह हिन्दुस्तान की सरहद पर जा
पहुँचेगी। सरहद पर हमारे साथी सगठन का जो काम कर रहे ह उस के कारण
सरहद लोग हमारा स्वागत करेंगे। इस प्रकार सहसा प्रहार कर के युद्ध में काफी
टूटी अँगरेजी सेना को हम पूरी तरह समाप्त कर देंगे।

कसर ने सरदार जी के उत्साह की प्रशसा की और यह भी माना कि उन में

युगद्रष्टा भगत सिंह

एक सेनापति की तरह व्यूह-रचना की अद्भुत शक्ति है, पर उन्हे इस वात मे विश्वास नही हुआ कि भारतीय सेना किसी भी परिस्थिति मे अँगरेजो के विरुद्ध युद्ध कर सकती है। इतना निश्चित है कि कैसर सरदार अजीत सिह के काफी निकट आ गये और उन्हो ने पूरी तरह मदद देने का वचन दिया। कैसर का जो मन्त्री सरदार अजीत सिह को विदा करने आया, उस ने कहा—"हमारा कैसर माने न माने, मै आप की वात मे शत-प्रतिशत विश्वास करता हूँ।"

सरदार अजीत सिह वर्लिन मे कैसर से साठ-गाँठ पक्की कर के पेरिस आ गये। उन्ही दिनो इंग्लैण्ड के राजा पचम जार्ज फ्रान्स आने वाले थे। इग्लैण्ड की विख्यात पुलिस ने रिपोर्ट की कि पेरिस मे राजा जार्ज की हत्या के षड्यन्त्र की गन्ध महसूस हो रही है। विशेषज्ञो का ध्यान सरदार अजीत सिह पर केन्द्रित हो गया। पेरिस से तग कर के भारतीयो को खदेडा गया और सरदार जी को नजरवन्द करने की वात पर भी विचार हुआ, पर वे वहाँ से स्विटजरलैण्ड चले गये। श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा भी उन दिनो सरदार जी के साथ थे।

उन्ही दिनो (मार्च १९१२) सरदार जी ने अपने श्वसुर श्री धनपतराय जी को जो पत्र लिखा वह उन की मनोवृत्ति और दृष्टि दोनो पर अच्छी रोशनी डालता है। उस के कुछ अश इस प्रकार है—

प्यारे वावा जी महाराज, मौज वहार।

आप के चन्द मुवारिक कलमात वन्दा तक पहुँचे। उन को पढ कर निहायत खुशहाल हुआ। खुदा आप का वजूद सलामत रखे। पेश अज ये कि मै हिन्दुस्तान मे आने की फिक्र करूँ, आप हिन्दुस्तान से वाहर दीगर मुमालिक भी देखें। आप अपनी वशीर आँखो से खुद मुलाहिजा फरमायेगे कि दुनिया कहाँ जा रही है। मै ने युरॅप के चन्द मुमालिक देखे है और अव यहाँ की वज जिन्दगी से वाकिफ हूँ। अव्वल-अव्वल हरेक चीज आदमी के लिए गराँ नजर आती है और इस मे जरा भी शक नही कि असवावे जिन्दगी युरॅप मे शस हफ्त मुकाविल गराँ है। सद् रुपया माहवार से वाकिफ आदमी युरॅप के हर शहर मे जिन्दगी वसर कर सकता है। इस से कम वद गुजरती है। ज्यादा जिस कदर किसी का दिल चाहे खर्च कर सकता है।

यहाँ दुनिया विलकुल निराली है। अगरचे मेरे लिए कोई गैरमामूली चीज नही, लेकिन मुकावला करने से मालूम होता है कि यहाँ की जिन्दगी और मगरिकी जिन्दगी मे वहुत फर्क है। कुदरत और सनअत दोनो के दस्त-वदस्त काम करने से यहाँ की जिन्दगी अच्छी गुजरती है। आवोहवा वहुत अच्छी, हिफ्जे सेहत के लिए हर किस्म के सामान मुहय्या है। तालीमोतदरीस व मुल्क की जरूरियात के मुताविक हर चीज वाकायदा मुनज्जम है। हुव्वे वतन की तालीम देने की अव यहाँ जरूरत नही। लोगो की रगो-रेशो मे यह सिफ्त दाखिल है, मगर मगरिकी पराखदिली या रूहानियत यहाँ देखने मे नही आती। मर्दम रोजो-शव रुपया पैदा करने के सिवा और किसी

जिक्र न रहा। अतः आप यहाँ के लिए गए आए हैं।

यह लोग जिन मगरिब अखबार, लोगों को ही आदर्श समझा करते हैं। मगरिब अखबारों को हम के काबिल नहीं मानते। इस के बावजूद उन के लिए को प्यार करते, बल्कि उन को मुनासिब गुन का मदाह होते हैं और अपना मुल्क के बेहतर कायम हो कर उन के लिए को इस्तेमाल हासिल होता है। म ... में हैं उमदा में उसका मुकम्मल देखा जाता है लेकिन बावजूद इन तमाम जिहात के तारीफ़ के काबिल दोस्त हैं और आपको तकलीफ़ इजाज़त नहीं देता है।

मुल्क के मरकज़ जिहात खुशगवार हैं और रावी के साफ हरे पहाड़ पर जाना आसान है। चूंकि आप यहाँ गुज़र बसर करते हैं शहर में रहने के अखबार भी बराबर व बाहर मालूम है। इसलिए जिस जगह रहें इस लिए नहीं कि एक जगह तमाम बसर हो उसे देना चाहिए। एक बाहर दुनिया में रवाना। मेरे ख्याल में आप इस मशवरत से बहुत महज़ूज़ होंगे।

१९१४ में पहला विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया। सरदार जी अपनी योजना में जुट गए। अंगरेजों की तरफ से भारतीयों की जो सेना मोर्चों पर लड़ रही थी उस में बगावत के भाव पनपाते रहे और भारत के क्रान्तिकारियों से अपना सम्पर्क जोड़ते रहे। बसरे के साथ उन का हरदम ताजा सम्पर्क बना रहा। अमरिका में सरदार अजीत सिंह के साथी लाला हरदयाल ने गदर-पार्टी की स्थापना की थी और वहाँ कई हजार सिख-बन्धु भारत पहुँच कर गदर करने की तैयारी कर चुके थे। लाला जी ने बहुत चाहा कि इस समय सरदार अजीत सिंह अमरिका आ जायें और गदर-पार्टी का नेतृत्व करने के लिए गुप्त रूप से भारत जायें। उन्हें अमेरिका लाने के लिए यत्न किया गया इस का उल्लेख भी गदर-पार्टी के इतिहास में मिलता है पर घटनाओं का अध्ययन करने से ऐसा मालूम पड़ता है कि सरदार जी अमरिका जाने से अधिक अपना यूरोप में रहना आवश्यक और महत्वपूर्ण समझते थे। एक बार लाला हरदयाल ने कुछ झुंझलाहट के साथ कहा था— अजीत सिंह वहाँ बैठ कर अपना समय बरबाद कर रहे हैं।

बात ऐसी नहीं थी असल बात यह थी कि प्रथम विश्व-युद्ध में भारत में क्रांति अपने तीन रूपों में एक साथ आग पकड़ रही थी। अमरिका में संगठित गदर-पार्टी के बोर जोर में भरे हुए भारत पहुँच कर यहाँ की फौजों को अपने साथ मिला कर आंतरिक तूफान उठाने की कोशिश कर रहे थे। काबुल में राजा महेन्द्र प्रताप के राष्ट्रपतित्व में आजाद हिन्द सरकार कायम हो गयी थी। वह अपनी तैयारियों में जुटी थी। सरदार अजीत सिंह उन भारतीय सैनिकों को जो अंगरेजों से बागी हो कर उन से आ मिले थे या फिर जर्मन-सेनाओं के द्वारा गिरफ्तार हो कर कैम्पों में रह रहे थे— एक आजाद हिन्द सेना का संगठन कर रहे थे। उन्हें आशा थी कि वे टर्की के रास्ते अपनी सेना ले कर काबुल सरकार से जा मिलेंगे। इस हालत में अंगरेजों के छक्के छूट जायेंगे और हिन्दुस्तान आजाद हो जायेगा।

युगद्रष्टा भगत सिंह

१९१६ के आरम्भ मे ही सरदार अजीत सिंह ने भाँप लिया कि युद्ध का पासा अमरीका के मैदान मे आते ही पलट जायेगा और जर्मनी की हार हो जायेगी। वे ब्राजील पहुँच कर वही बस गये और एक गुमनाम जिन्दगी जीने लगे। उन के लिए यह एक बहुत बडा धक्का था, पर धक्का देना और धक्का सहना ही तो क्रान्तिकारी का भाग्य है। यह वह समय है जब भारत के पत्रो में अकसर उन के मर जाने की खबरे फैल जाया करती थी। एक बार जब ऐसी ही खबर फैल रही थी, ईरान निवासी एक अँगरेज़ महिला ने सरदार अजीत सिंह पर एक लेख किसी पत्र में लिखा। भगत सिंह ने बडी बुद्धिमानी से पता चला कर उस महिला को बी० एस० सन्धु के नाम से एक पत्र लिखा और उस से सरदार जी का पता पूछा। उस ने उत्तर दिया, मुझे उन का ठीक पता तो मालूम नही है, पर सम्भवतः वे राय डी जेनेरी (ब्राजील) मे है। बहुत दिनो बाद उन का पत्र मिला और उस से उन का देश से और परिवार से टूटा हुआ सम्पर्क फिर जुड गया।

कोई १६ वर्ष वे ब्राजील मे रहे। वे कुछ समय वहाँ प्रोफेसर रहे, कुछ समय एक कपडे की फर्म के मैनेजर रहे और कुछ समय टूथ-पेस्ट बनाने वाली एक फैक्टरी मे भी संचालक रहे। इन वर्षो मे उन्हो ने उस क्षेत्र के तीन क्रान्तिकारी तूफानो मे भाग लिया और भारतीय क्रान्तिकारियों को भी संगठित करते रहे। अब फिर दुनिया के नक्शे मे नयी उथल-पुथल पैदा हो रही थी। यह कैसे सम्भव था कि दुनिया मे नयी ऊष्मा पैदा हो और एक महान् क्रान्तिकारी के दिल की धडकनो मे उफान न आये ? वे ब्राजील से चले और फ्रान्स आये। यह १९३२ की बात है।

फ्रान्स में कुछ दिन रह कर वे स्विटजरलैण्ड चले गये, पर पेरिस की कला और स्विटजरलैण्ड की सुन्दरता से उन्हें क्या लेना था, वे तो लोहे की तलाश मे थे। उन्हे जर्मनी की ओर से हथौडो की ठुक-ठुक सुनाई दी। वे जर्मनी पहुँच गये। चिकित्सा के लिए वहाँ श्री सुभाषचन्द्र बोस ठहरे हुए थे। दोनो मिले। यह दो गरम हृदयो का शान्त मिलन था। फिर जर्मनी मे वे काफी दिन रहे और तब स्विटजरलैण्ड लौट गये। उन्हे अपने भीतर नयी गुनगुनाहट सुनाई दे रही थी। वे उन छन्दो की तलाश मे थे, जो उस गुनगुनाहट को नये गीतो मे उतार दे। स्विटजरलैण्ड से वे इटली जा पहुँचे। यह वह युग था, जब जर्मनी मे हिटलर का और इटली मे मुसोलिनी का सितारा दिन और रात ऊपर चढता जा रहा था। मुसोलिनी से वे परिचित थे। मुसोलिनी ने उन का बहुत शानदार स्वागत किया। वे रोम मे रहने लगे और नेपल्स मे फारसी के प्रोफेसर हो गये।

संसार की राजनीति का गहरा अध्ययन कर सरदार अजीत सिंह ने १९३९ मे एक लेख लिखा, जिस का शीर्षक था 'स्ट्रेटेजी ऑव प्रेजेण्ट वार'। इस का विषय यह था कि संसार मे आज जो उथल-पुथल मची हुई है उस की आग किधर फैलेगी। बहुत-से आलोचको ने उस समय इस लेख की हँसी उडायी थी, पर बाद मे उन की भविष्य-

इन के साथ ठीक न था—अँगरेज तो इन्हे कुछ समझते ही न थे। ये सिपाही ईराक हो कर मिस्र आये थे। ईराक की जनता ने इन्हे खूब धिक्कारा कि ये बेवकूफ आदमी अपनी गुलामी को मजबूत करने का काम कर रहे हैं। एक प्रश्न बार-बार इन से पूछा गया—"तुम ऐसे ही बहादुर हो तो अपने देश से अँगरेजो को क्यो नही मार भगाते ?" गिरफ्तारी के बाद ये लोग अनुभव करते थे कि जिन्हे दुश्मन मान कर हम लडने आये है, वे कैद मे हम से ऐसा व्यवहार करते है, जो उस आजादी के व्यवहार से अच्छा है।

सरदार अजीत सिंह इन भारतीय सिपाहियो के लिए रेडियो मे अलग कार्यक्रम प्रसारित करते थे। चोरी-चोरी सिपाही उसे सुनते थे और उन मे यह आत्म-ग्लानि पैदा होती थी कि हम अपने देश के दुश्मनो को मजबूत करने के लिए उन से लड रहे है जो हमारे देश की आजादी के काम मे हमारे नेताओ की मदद कर रहे है। खास बात यह थी कि अँगरेज लोग हिन्दुस्तानी सिपाहियो के साथ बहुत हीन व्यवहार करते थे, पर गिरफतारी के बाद जर्मन सेना अँगरेजी और हिन्दुस्तानियो के साथ समान दरजे का व्यवहार करती थी। अँगरेज गिरफ्तारी के बाद भी हिन्दुस्तानियो के साथ अपना व्यवहार हीनता से पूर्ण ही रखते थे। इस सब से यह वातावरण बन गया था कि लडने से गिरफ्तार होना श्रेयस्कर है और सिपाही मौका मिलते ही आत्मसमर्पण कर देते थे।

इन्ही दिनो नेता जी सुभाषचन्द बोस काबुल से सरदार जी के पास आये। सरदार जी के इटली और जर्मनी मे ऊँचे सम्पर्क थे और सरदार जी के पास काम की पूरी योजना थी। दोनो मे गहरा विचार-विमर्श हुआ और सरदार जी ने मुसोलिनो और हिटलर के साथ नेता जी का सम्पर्क-सूत्र जोडा तब नेता जी जर्मनी गये। सरदार अजीत सिंह ने लगभग एक लाख रुपया भी उन्हे काम के लिए दिया। सरदार जी के पास अनुभव और योजना का भण्डार था, नेता जी के पास उत्साह और सगठन-शक्ति का अजेय समुद्र। अब दोनो एक हो गये थे।

जुलाई १९४२ की बात है। बेनगाजी के युद्धबन्दी कैम्प मे यह खबर उडी कि नेता जी सुभाषचन्द बोस आ रहे हैं। लोगो में उत्साह फैल गया, पर नेता जी वहाँ नही पहुँचे और सरदार अजीत सिंह के साथी भारतीय क्रान्तिकारी श्री इकबाल शैदाई वहाँ पहुँच गये। सब भारतीय युद्धबन्दियो को एक जगह इकट्ठा किया गया। श्री शैदाई ने उन के सामने देशभक्ति से भरपूर ओजस्वी भाषण दिया और देश की आजादी के लिए उन से सरदार अजीत सिंह द्वारा स्थापित 'आजाद हिन्द लश्कर' मे भरती होने की प्रार्थना की। परिणाम स्वरूप अधिकाश भारतीय सैनिक लश्कर मे शामिल होने के लिए तैयार हो गये।

एक-एक से पूछ कर सब सिपाहियो को दो हिस्सो मे बाँट दिया गया। एक तरफ वे जिन्हो ने लश्कर मे शामिल होना स्वीकार किया था और दूसरी तरफ वे, जिन्हो ने स्वीकार नही किया। दोनो को अब अलग-अलग कैम्पो मे बाँट दिया गया। इटली ले जाने के लिए भी एक जहाज पर अँगरेजी कैदियो और लश्कर मे भरती होने

से इलाज करने वाला का पराया गया, दूसरा में लन्दन में भरती होने वाला को। पहले जहाज में रखने से काम लिया गया। अंगरेज अफसरों और सिपाहियों का जहाज की ऊपरी मंजिल में जगह दे दी गयी और हिन्दुस्तानी अफसरों और सिपाहियों का नीचे की मंजिल में। नीचे गर्मी तहखाना तो नरक ही था।

चलगाओ से दोनों जहाज एक-साथ चले। दूसरे दिन अंगरेजी पनडुब्बी ने दोनों जहाजों पर तारपीडो का निशाना लगाया। समय की बात कि निशाना उसी जहाज पर लगा जिस में अंगरेज सवार थे। भाग्य का और भी तमाशा हुआ कि उस जहाज का ऊपर का हिस्सा ही उड़ गया। उस में कई सौ गोरे थे जिन में केवल दस ही बचे। हिन्दुस्तानी सब बच गये। लन्दन में भरती होने वालों ने इस का यह अर्थ लगाया कि भगवान् ने देश की सेवा के लिए ही हम बचाया है। लन्दन के सैनिकों को राम से लाया गया जहाँ लन्दन की छावनी थी। वहाँ समाचारों के रूप था। लन्दन के फौजियों ने इन नये आने वाले भाइयों का स्वागत किया। उन सब की टोपियों पर तिरंगे राष्ट्रीय बिल्ले लगे हुए थे और लन्दन की छावनी में चारों तरफ झण्डे ही झण्डे फहरा रहे थे। लन्दन के सैनिक जोर से पुकारते—हिन्दुस्तान नये सैनिक दूसरी ओर से गुंजारते—'जिन्दाबाद'। इस तरह बहुत देर तक हिन्दुस्तान जिन्दाबाद के नारे गूँजते रहे।

सरदार अजीत सिंह ने आ कर इस जोश को प्यार की बाहों में थाम लिया। उन्होंने न तो सैल्यूट पर ध्यान दिया न सम्मान पर। वे एक एक सैनिक से भुजाओं में भर कर गले मिले और इतने भाव विभोर हो गये कि उन का गला रुँध गया और आँखें डबडबा आयीं। छावनी परिवार के वातावरण में बदल गयी। न कोई सिपाही रहा न अफसर न हाई-कमाण्ड। इसी स्थिति में उन के मुँह से निकल पड़ा—मेरे बच्चो मैं तुम से मिल कर इतना खुश हूँ जितना इस समय भगत सिंह से मिल कर हुआ होता। मेरे लिए तो तुम सभी भगत सिंह हो। मुझे विश्वास हो गया है कि अंगरेज या कोई भी अब न हिन्दुस्तान को गुलाम रख सकता है न उस का शोषण कर सकता है। इस के बाद वे खामोश हो गये।

जर्मनी में नेता जी ने 'फ्राइज इण्डियन लिजो—आजाद हिन्द सेना—की स्थापना की थी। उन्हें सैनिकों की जरूरत थी। सरदार अजीत सिंह ने पाँच सौ सैनिक अपने पास रख लिये और बाकी को नेता जी के पास भेज दिया। इन पाँच सौ को नयी वर्दियाँ दी गयीं और परेड के बाद सबने यह शपथ ली।

मैं ईश्वर के नाम पर शपथ लेता हूँ कि मैं स्वयंसेवक के रूप में आजाद हिन्दुस्तान लश्कर में शामिल हो रहा हूँ। मैं देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना तन मन और धन सब कुछ न्यौछावर कर दूँगा और अपने देश की शान बढ़ाने के लिए अपने सर्वश्रेष्ठ प्रयत्न करूँगा। जो कोई भी मेरे प्यारे देश पर कब्जा करने के मनसूबे बाँधेगा उस का विरोध करने में यदि मुझे अपनी जान की बाजी भी लगानी पड़ेगी तो मैं परवाने की तरह हँसते-हँसते अपना प्राण न्योछावर कर दूँगा। देश के प्रति वफादारी

मेरे जीवन का आभूषण होगा और देश के प्रति गद्दारी के अपराध मे मुझे जो दण्ड दिया जायेगा, उस पर मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

'आजाद हिन्दुस्तान लश्कर' के सैनिकों की ट्रेनिंग आरम्भ हो गयी। यह ट्रेनिंग केवल युद्ध की ही नही थी, देश के इतिहास की भी थी, जिस से सैनिको मे अपने देश के लिए अभिमान और आत्मगौरव पैदा हो। लश्कर के सैनिक युद्धवन्दी कैम्पो मे जा कर अँगरेज-परस्त सैनिको से मिलते रहते थे। वे इन से प्रभावित होते थे और इस तरह लश्कर के सैनिको की सख्या वढती रहती थी। इटली के सैनिक अधिकारी लश्कर के सैनिको से वहुत प्रभावित थे और उन्हे इटली के सैनिको से श्रेष्ठ मानते थे।

सरदार अजीत सिह ने वारी रेडियो का नाम 'आजाद हिन्दुस्तान रेडियो' रख दिया था और वे उस पर प्रतिदिन जोरदार भाषण देते थे। देश-भर मे फैली भारतीय जनता और दुनिया मे फैले भारतीय सैनिक उसे चाव से सुनते थे। नेता जी भी इस वीच इटली आये। 'आजाद हिन्द लश्कर' के काम से वे प्रसन्न भी हुए और प्रभावित भी। सरदार अजीत सिह से उन की लम्बी वात-चीत हुई, वे जल्दी ही जर्मनी लौट गये।

सव काम ठीक चल रहा था कि युद्ध का पासा पलट गया। इटली की सेना के पैर उखडने लगे। उस ने चाहा कि आजाद हिन्द लश्कर का वह अपने हित मे उपयोग करे, पर सरदार अजीत सिह और उन के साथियो की साफ राय थी कि भारतीय सैनिक भारत के लिए ही लडेंगे, अन्य किसी के लिए नही। इटली वालो का खिलौना वनने मे साफ इनकार कर दिया गया और अन्त मे तो उसे भग ही कर दिया गया और सव सैनिको को उदेना के नजरवन्दी कैम्प मे भेज दिया गया। ८ अक्तूवर १९४३ को इटली का पतन हो गया। अव इन के लिए फिर से अँगरेजो के हाथो मे पडने का डर था, पर ११ अक्तूवर को जर्मन सेना ने कैम्प को घेर कर सव को कैदी वना दिया और जर्मनी भेज दिया। 'आजाद हिन्द लश्कर' के सैनिक नेता जी की आजाद हिन्द सेना मे जा मिले और इस तरह उस समय अँगरेजो के हाथ पडने से वच गये, पर सरदार अजीत सिह क्या करे? वे इधर-उधर हुए, पर अन्त मे २ मई १९४५ को अँगरेजो ने उन्हे पकड लिया। सभी जानते थे कि उन के लिए यह घटना मौत के मुँह मे चले जाने के समान है। गिरफ्तारी के साथ ही उन का सव-कुछ जव्त कर लिया गया।

अव वे त्रास के शिविरो मे जीते-जी नरक की ज्वाला सह रहे थे। त्रास सहना ही अव उन का वर्तमान दीखता था और मर जाना और मार डाला जाना ही उन का भविष्य। पर वे शान्त थे। जिस देश के लिए उन्हो ने जीवन-भर तप किया था, अपनी वरवादी के खेल खेले थे, उस के ही कुछ निवासी अव चाँदी के चन्द टुकडो के लिए उन्हे तिल-तिल जला रहे थे, सता रहे थे, और विना गला काटे मौत की तरफ धकेल रहे थे। सरदार जी ने अपने एक मित्र से कहा था—"मै मर जाऊँ, तो पत्रो मे छपा देना कि मेरे दु ख झेलने और मरने का कारण इण्डियन मिलीटरी मिशन है।"

सरदार अजीत सिंह स्वतन्त्रता के द्वार पर

अँगरेज जा रहे थे। हिन्दुस्तान आजाद हो रहा है ज्यों ही देश की हवा में यह गन्ध आया समाचारपत्रों में सरदार अजीत सिंह की चर्चा आरम्भ हो गयी और ज्यों ही पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार स्थापित हुई सरदार जी को वापस बुलाने का आन्दोलन आरम्भ हो गया। यहीं उन प्रयत्नों की कहानी भी कहना आवश्यक है जो भारत आने के लिए स्वयं सरदार जी ने समय-समय पर किये थे। भारत सरकार के गृह विभाग की फाइलों से श्री फूलचन्द जैन-द्वारा तैयार की गयी टिप्पणियों के अनुसार— १९३८ में जब सरदार अजीत सिंह स्विटजरलैण्ड में पण्डित जवाहरलाल नेहरू से मिले तो उन्होंने अपनी भारत आने की बेचैनी प्रकट की। स्विटजरलैण्ड से सरदार जी नेपल्स गये और वहाँ से उन्होंने ब्रिटिश सरकार से उस के (नेपल्स) के राजदूत द्वारा भारत जाने के लिए पासपोर्ट देने की प्रार्थना की। व्यवस्था के अनुसार इंग्लैण्ड की सरकार ने भारत सरकार के गृह विभाग को लिखा कि सरदार अजीत सिंह को पासपोर्ट नहीं भारत के लिए विजा (प्रवेश-पत्र) दिया जा सकता है यदि उन के ब्राजील वाले पासपोर्ट की मियाद कम से कम दो वर्ष की बाकी हो। यदि पासपोर्ट की मियाद समाप्त हो रही हो तो विजा भी समाप्त समझा जाये तब तक जब तक कि ब्राजील सरकार उन के पासपोर्ट को फिर से नया न कर दे।'

सरदार अजीत सिंह और उन के भारतीय सलाहकारों ने ब्राजील के पासपोर्ट पर विजा लेकर भारत में आना स्वीकार नहीं किया क्यों कि इस का अर्थ था यह स्वीकार करना कि सरदार अजीत सिंह एक विदेशी हैं और भारत सरकार जब चाहे उन का विजा कैन्सिल कर सकती है।

२० सितम्बर १९३८ में स्विटजरलैण्ड में रहते हुए सरदार जी ने अपने नाम से भारत के लिए ब्रिटिश पासपोर्ट देने की प्रार्थना की। इस में उन्होंने यह भी लिखा कि १९०९ के बाद अपने असली नाम का प्रयोग उन्होंने नहीं किया और उन के सब प्रमाणपत्र आदि इसी नाम से हैं। उन्होंने यह सिद्ध करने की भी कोशिश की कि वे ब्रिटिश नागरिक ही हैं।

रहे है। वे स्वय जानते है कि वे ब्राजील के पासपोर्ट पर ब्रिटिश विज़ा ले सकते है, पर वे भारत मे एक विदेशी के रूप मे जाना पसन्द नही करते।

११ अक्टूबर १९३८ को इण्डिया-आफिस ने उन से उन परिस्थितियो की विस्तृत जानकारी माँगी, जिन के आधार पर उन्हे ब्राजील का पासपोर्ट मिला था। उन्हो ने बताया कि १९१४ मे वे हुसन ख़ाँ के नाम से पर्शिया के पासपोर्ट पर ब्राजील आये और १९३२ में जब उन्हो ने युरॅप जाना चाहा, तो वह अपना रद्द हुआ पासपोर्ट दुबारा नही बनवा सके। इस का कारण यह था कि उस समय ब्राजील मे पर्शिया का राजदूत नही था। तब उन्हो ने ब्राजील की सरकार से वहाँ की राष्ट्रीयता का प्रमाण-पत्र देने की प्रार्थना की। वह उन्हे उसी परिचय पर मिल गया, जो उन का पर्शिया (ईरान) के पासपोर्ट में दिया गया था कि उन का जन्म पर्शिया मे हुआ है और उन के माता-पिता पर्शियन है।

१ अगस्त १९३९ को इण्डिया-ऑफिस ने उन्हे सूचित किया कि ब्रिटेन की राष्ट्रीयता और विदेशी सम्पर्क कानून के अनुसार ब्रिटेन का कोई नागरिक किसी दूसरे देश मे जा कर वहाँ की नागरिकता के अधिकार प्राप्त कर लेता है, तो ब्रिटेन की नागरिकता का अधिकार समाप्त हो जाता है। आप इस स्थिति में है, इस लिए भारत आने का विज़ा सिर्फ ब्राजील के पासपोर्ट पर ही दिया जा सकता है, बशर्ते कि वह दो बरस के लिए मान्य हो।

सरदार अजीत सिंह ने दूसरे देशो की मार्फत पासपोर्ट ले लिया, जो भारत और दूसरे देशो मे आने के लिए २० मार्च १९४१ तक के लिए प्रमाणित था। नवम्बर १९३९ मे सूचना मिली कि उन का विज़ा जो ब्राजील के पासपोर्ट पर भारत जाने के लिए स्वीकृत था, कैन्सिल कर दिया गया है। कारण यह बताया गया कि सरदार अजीत सिंह ने अपने जाने की तारीख़ और वे किस जहाज से जाना चाहते है, यह बताने से इनकार कर दिया।

सरकार जिस परिणाम पर पहुँची वह इस प्रकार है—हमे सरदार अजीत सिंह के साथ एक विदेशी-जैसा व्यवहार करना चाहिए और उन्हे भारत मे प्रवेश की तमाम सुविधाएँ देने से इनकार कर देना चाहिए।

भारत सरकार ने अप्रैल १९४६ मे आखिरी बार सरदार अजीत सिंह के भारत-प्रवेश पर विचार किया। उस समय वे गिरफ्तार हो चुके थे और जर्मनी के एक कैम्प मे नजरबन्द थे। वह इसी परिणाम पर पहुँची कि उन्हे एक अवांछनीय विदेशी माना जाये और उन के भारत-प्रवेश को किसी भी हालत मे स्वीकार न किया जाये।

अँगरेज़ सारी राजनीति का सचालन कर रहे थे। उन्हे मालूम था कि हम जा रहे है और इस दशा मे सरदार अजीत सिंह को वापस करना पड़ेगा, पर वे उन के प्रति इतना कुढे और चिढे हुए थे कि वे उन्हे अपनी ही चक्की मे पीस डालना चाहते थे। कूटनीति अँगरेज का चरित्र है। उन्हो ने जब देखा कि सरदार अजीत सिंह कैम्पो

और सरदार जी हँस ही पडे—"देखो लडको, तुम्हारी चाची मुझे पहचानती ही नही।"
पर इस अविश्वास की जड कहाँ है ? विदाई के समय श्रीमती हरनाम कौर ने सरदा
अजीत सिंह का जो स्वरूप देखा था, चालीस साल तक रात-दिन वे उसी का ध्या
करती रही थी। वह स्वरूप चित्र बन कर उन के रोम-रोम मे खुद गया था और अ
जो स्वरूप उन के सामने था, वह उस चित्र से दूर पार भी मेल नही खा रहा था
सन्देह का उपाय है परीक्षा। वे परीक्षा पर उतर आयी। उन्हो ने पुराने रिश्तेदा
के नाम पूछे, स्थान पूछे, घटनाओ की जाँच-पडताल की। सरदार जी ने हँस-हँस क
सब का जवाब दिया। अविश्वास के लिए अब गुंजायश न थी, पर विश्वास का पौ
भी जड न पकड रहा था। मन का यह अन्तर्द्वन्द्व एक छोटे वाक्य में समा गया—"ठी
है, वही होगे।" मतलब यह कि आज का चित्र चालीस साल वाले चित्र के मुकाब
फीका ही रहा, चमकदार न हो सका। वे चार-पाँच दिन दिल्ली रह कर घर लौ
गयी। जर्जर सयोग से वह अजर वियोग अधिक शक्तिशाली निकला!

हम तुम मिले न थे, तो जुदाई का था खयाल,
अब यह मलाल है कि तमन्ना निकल गयी!

मै ने जब से ज़रा-ज़रा होश सँभाली थी, तभी से बापू जी (सरदार अजीत सिंह
का नाम बार-बार सुना था। परिवार मे अक्सर उन की चर्चा होती थी। चर्चा की इ
माला मे उन की वीरता के पुष्प गूँथे रहते थे। वीरता का बखान करते समय मनुष्य क
वाणी मे एक खास तरह का जोश उमड आता है। वह जोश उस वीर के भावना-चि
को और भी अधिक चमका देता है। मेरे बालक-मन पर घर मे उन की चर्चा सुन क
जो भाव-चित्र बना था, वह भी अनेक रंगो से चित्रित था और यह रग ख
चमकदार थे।

यह चमक कितनी गहरी थी, इस का पता तब लगता था जब कभी-कभी उ
की मृत्यु की अफवाह उड जाती थी। घर का वातावरण इस से दु ख मे डूब जाता थ
रोना-धोना मच जाता था। मै ने उन्हे कभी देखा न था। देखती ही कहाँ ? उन
विदेश चले जाने के एक दशाब्दी बाद मेरे पापा जी का जन्म हुआ था। फिर भी मे
नन्हा मन दु ख से भर जाता था। इस भावना ने मेरे मन को पारिवारिक सम्बन्ध
अधिक एक विशेष अनुरक्ति के साथ उन से बाँध दिया था।

उस दिन परिवार मे एक विशेष चहल-पहल थी, खुशी का रगीन वातावर
था, उत्सुकता और उत्साह की गन्ध सब जगह फैली थी। सरदार अजीत सिंह दिल्ल
से लाहौर आ रहे थे और हम सब भी लाहौर पहुँच गये थे। उस समय का जो पहल
चित्र मेरे मन पर अंकित है, वह लाहौर स्टेशन का है। वहाँ इतनी भीड थी कि तिल
भर भी जगह खाली न थी। मेरी उस नन्ही-मुन्नी जिन्दगी ने स्टेशन तो बार-बार दे
थे, क्यो कि मै ने अपने पापा जी के प्रथम दर्शन जेल मे ही किये थे। बाद मे भी उन
मिलने को जेल जाने के लिए रेल-यात्रा का क्रम बन रहा था, पर स्टेशन पर ऐसी भी

था, उस की ये पंक्तियाँ मुझे आज भी याद है—

जय हिन्द, जय हिन्द, जय हिन्द,
शूरवीर वीर बन, देश को आजाद कर,
जान को कुरबान कर, देश को बचाये जा,
गाये जा-जय हिन्द, जय हिन्द, जय हिन्द।

उन्ही दिनो का एक सस्मरण लाला जसवन्तराय जी (सम्पादक 'पजाबी' के रूप मे जिन्हे एक लेख पर जेल हुई थी और बाद मे जिन्हो ने व्यापार-व्यवसाय मे बहुत उन्नति की) के शब्दो मे—"लाहौर के उस जलसे मे बहुत भारी हाजिरी थी। सरदार अजीत सिह के स्वागत मे जुडा था यह जलसा। इत्तफाक से उन दिनो मै भी लाहौर मे था। मै भी जलसे मे पहुँचा, पर मै मच की तरफ बढ ही रहा था कि सरदार जी भाषण देने को उठ खडे हुए। मै अपनी जगह ही ठहर गया। खडे होते ही सरदार जी की निगाह मुझ पर पडी। कमाल है उन की याद और कमाल है उन की इसानियत कि उन्हो ने देखते ही मुझे पहचान लिया और बिना एक भी शब्द कहे मच से सीधे मेरे पास आ कर मुझे गले लगा लिया। मुझे इस जलसे की भीड देख कर भारतमाता सोसायटी के जलसो की भीड याद हो आयी। मेरा सौभाग्य है कि उस जमाने मे मुझे भी देश का थोडा बहुत काम करने का मौका मिला। मै लाला लाजपत राय का साथी था, जो नरम थे और देखभाल कर काम करते थे, पर सरदार जी तो खुद आग से ही खेलते थे, इस लिए उन के जलसो मे बेहद भीड रहती थी।"

चार-पाँच दिन दिल्ली रह कर श्रीमती हरनाम कौर बगाल चली गयी थी। सरदार जी लायलपुर गये, तो वे आ कर मिली और फिर गाँव लौट गयी कि वही सरदार जी का स्वागत करेगी। बाजे थे, भीड थी, वन्दनवारें थी, सारा गाँव सजाया गया था पर गरमी की अधिकता के कारण तबीयत ख़राब हो जाने से सरदार जी गाँव न पहुँच सके। श्रीमती हरनाम कौर के मन को इस से ठेस पहुँची, वे नाराज हो गयी। सरदार अजीत सिह स्वास्थ्य के लिए डलहौजी पहुँच गये। सब के बहुत बार कहने और उन के बार-बार लिखने पर वे डलहौजी आ गयी। लगभग ४० साल तक क्रान्ति का बनजारा रहने के बाद सरदार जी अब अपनी गृहस्थी मे थे और चालीस साल का एकाकीपन भोगने के बाद श्रीमती हरनाम कौर अब भरपूर जीवन जी रही थी, पर मै ने अकसर सोचा है—कैसा-कैसा लग रहा होगा दोनो को ? जो जीवन लगभग आधी शताब्दी तक नही मिला था, वह अब प्राप्त था, जो इतने दिनो खोया रहा था, वह अब उन का अपना था, पर क्या वे सुखी अनुभव कर रहे होगे अपने को ? मै मर्माहत हो जाती हूँ, मेरी अनुभूतियाँ कटे हुए जानवर की तरह तडपने लगती है, यह सोच कर कि—ना, परिपूर्णता नही, उन दोनो को अपना यह जीवन कुछ अजीब-सा, कुछ लदा हुआ-सा लगता होगा। इतने दिनो अपने खास ढग मे जीते-जीते वही ढग उन का अपना जीवन बन गया था, वही अब उन के लिए स्वाभाविक था और अब वे जो जीवन जी

रहे थे, वह अस्वाभाविक था। मेरे कलेजे म काँटा-सा चुभ जाता ह, जब म सोचती हू कि सचाई यह ह कि आधी शताब्दी की चोटों से उन की जीवन मशीन म लगा सुख की अनुभूति का यन्त्र ही टूट गया था—भरपूर जीवन के आनन्द का अनुभव करना उन के लिए सम्भव ही न था। पुराने भवन की मरम्मत हो सकती ह, पर टूट कर गिर पडा भवन मरम्मत से फिर कहाँ खडा हो सकता ह? विश्व की क्रान्ति के इतिहास म उस रक्त का लेखा बडी सावधानी से रखा गया ह जो क्रान्ति के लिए बलिदान हुआ पर उस ने भावनाओ के बलिदान का लेखा जोखा कहाँ रखा ह?

यह सब हो ही रहा था कि राष्ट्रीय मच का परदा बदल गया नया दृश्य सामने आ गया। सरकार ने घोषणा कर दी—१५ अगस्त १९४७ को अगरेजी राज्य भारत के बटवार के साथ समाप्त हो जायेगा और भारत स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा। इस घोषणा का सरदार जी पर क्या प्रभाव पडा? व गम्भीर हो गये, बेहद गम्भीर। दो तीन दिन के चिन्तन के बाद एक वाक्य उन का मुहावरा हो गया— न जवाहरलाल देख रहा ह न जिन्ना दोनो तरफ खून की नदिया बह जायेंगी। म भला उसे कैसे देख सकता हू? ना, म उसे नही देखूगा म चला जाऊगा।

औरो ने सुना तो समझा कि ये फिर विदेश जाने की बात सोच रहे ह पर श्रीमती हरनाम कौर ने सुना तो एक बिजली-सी खिंच गयी उन के रोम रोम मे— ये फिर चले जायेंगे इस विचार ने उन के टूटे अनुभूति यन्त्र को जोड दिया और उन्होंने सयुक्त जीवन के आनन्द की फुहार महसूस की। उन की सूखी खाल जैसे पहली बार चिकनी हो गयी उन का रूखा मन जैसे लहलहा उठा—'नही जी अब कहाँ जाना ह।

सरदार जी का मुहावरा दो-तीन दिन म बदल गया— जिस आजादी के लिए म जिन्दगी भर जूझता रहा उसे बिना देखे म कैसे जा सकता हू? श्रीमती हरनाम कौर ने सुना तो उन्हें लगा कि यह मेरी विजय ह सरदार जी अब कही नही जा सकते। उन्ह लगा कि आज उन का जीवन कृतार्थ हुआ ह। सीता के तप को राम ने आज पहली बार स्वीकृति दी ह। उन्हें जीवन की परिपूर्णता का ऐसा बोध हुआ जैसा पहले कभी नही हुआ था। उन का बोल मीठा हो गया, हृदय मीठा हो गया दृष्टिकोण आशावादी हो गया उन्ह लगा उन की उम्र कम नही घट रही ह।

यह आ गया १४ अगस्त १९४७। सरदार जी बहुत खुश थे सरदारनी भी बहुत खुश थी। उस घर में उस दिन जैसे एक नये दाम्पत्य का उदय हुआ था। दोनो ने उस दिन नये कपडे बदले नया रूप लिया। सरदार जी में उस दिन बेहद स्फूर्ति थी सरदारनी भी प्रसन्न थी। उन का ही नहीं उस दिन उस कोठी का ही काया-कल्प हो गया था। दिन भर मिलने वालो की चहल-पहल रही खुशियाँ अठखेलियाँ करती रहीं। सरदार जी अतीत की स्मृतियो के पन्ने पलटते रहे सरदारनी जी अतीत की स्मृतियो को विस्मृति के गर्त में फेंकती रहीं। उन के सामने अब अन्धकार भरा अतीत नही प्रकाश

पूर्ण भविष्य था। सोचती हूँ, जीवन-भर कल्पना ही उन का जीवन रही।"

१४ अगस्त १९४७ की शाम आयी। सरदार अजीत सिंह पाकिस्तान की स्वतन्त्रता के समाचार वहाँ के रेडियो पर सुनते रहे। रात हुई, पर वे सोये नही, १२ वज गये, उन का रेडियो खुला था। वे भारत की स्वतन्त्रता के समारोह का आँखो-देखा हाल सुनते रहे। लॉर्ड माउण्टवेटन का भापण उन्हो ने वहुत ध्यान से सुना। भारत अव स्वतन्त्र था। उन का यज्ञ पूर्ण हो गया था। वे पूर्ण प्रसन्न थे, पूर्ण स्वस्थ थे, जैसे वीमारी उन्हो ने कभी देखी ही न हो।

खुशी-खुशी वे सो गये। अभी चार भी नही वजे थे कि वे जाग गये और उन्हो ने सव को जगाया। वोले—"मेरी जिन्दगी का मकसद पूरा हो गया, अव मै जा रहा हूँ।"

"कहाँ ?" सरदारनी ने हँस कर पूछा। सरदार जी ने अपनी वात किसी और से कही—"लो, मेरा आखिरी वयान लिख लो। दुनिया-भर मे मेरे दोस्त फैले हुए है। वे शिकायत करेंगे कि विना हम से कुछ कहे ही चला गया।"

सुन कर वातावरण गम्भीर हो गया। उन के डॉक्टर को वुलाया गया। देख कर उन्हो ने कहा—"सरदार जी एकदम ठीक है।" अलग वुला कर उन्हो ने कहा—"सरदार जी वूढे हो चुके है, कमजोर भी काफी है, जीवन-भर इन्हो ने वहुत मुसीवतें झेली है। ऐसी हालत मे किसी वहम का हो जाना स्वाभाविक है। वयान न लिखना। इन के मन मे मरने की वात जम गयी तो हार्ट फेल हो सकता है।"

डॉक्टर साहव यह कह कर चले गये, टालमटोल की गयी, वयान नही लिखा गया। वे वोले—"तुम लोगो की नजर मे मेरी राय गलत है और डॉक्टर की राय ठीक है। खैर मत लिखो, दुनिया के लोग तुम्हारी ही शिकायत करेंगे।"

उन्हो ने सरदारनी को वुलाया। वे सोफे पर पैर लटकाये वैठे थे। सरदारनी सामने आ खडी हुई। हाथ जोड कर सहज स्वर मे वोले—"मै ने तुम से शादी की थी। तुम्हारी सेवा करना मेरा फर्ज था, पर मै भारतमाता की सेवा मे लगा रहा। कुछ भी हो, कसूर तो हुआ ही।" उन का स्वर गम्भीर हो गया। वोले—"सरदारनी, मुझे माफ कर देना।" और उन्हो ने झुक कर दोनो हाथो से श्रीमती हरनाम कौर के दोनो पैर छू लिये।

वे चौंक कर पीछे हटी। सरदार जी ने अपने दोनो पैर ऊपर किये, एक ओर तकिये से लग, पैर फैलाये, जोर से पुकारा 'जय हिन्द' और वे जीवन-मुक्त हो गये।

स्वतन्त्र भारत की पहली उपा ने सूर्य के आगमन की पहली घण्टी वजायी, तो उस आवाज के साथ ही सरदार जी की मृत्यु की खवर चारो ओर फैल गयी और डलहौजी के वे सव लोग जो स्वतन्त्र भारत मे सरदार जी का भापण सुनने के लिए एकत्र होने वाले थे, दु:ख के आँसुओ मे डूवे उन की अरथी के पीछे चले।

सोचती हूँ ऐसी स्वेच्छा-मृत्यु पौराणिक वीर भीष्म के वाद क्या इतिहास मे कही कभी और भी किसी को प्राप्त हुई ? सचमुच सरदार अजीत सिंह हमारे राष्ट्र की क्रान्ति के भीष्म ही तो थे।

■ ■

आशा-निराशा की धूप-छाँह
श्रीमती हरनाम कौर

- वे अकेली थी एकदम अकेली, पर उन के साथ हरदम एक दिव्य-पुरुष रहता था।
- उन के जीवन के सब दीप बुझ गये थे पर उन के अंदर धुप्प जीवन में एक ज्योति सदा जलती रहती थी।
- यह दिव्य पुरुष था उन का निर्वासित क्रांतिकारी पति सरदार अजीत सिंह जो उन से हजारों मील दूर था।
- अधूरे जीवन की यह लंबी प्रतीक्षा, वे आयेंगे कब आयेंगे ?
- वर्षों का गाढ़ा लगान लगाते उन का तन बूढ़ा हो गया था—उस ने दुनिया देख ली थी पर उन के मन ने देखा था विवाह विवाह का सुख न भोगा था इस लिए वह विवाह के वातावरण में ही ठिठक गया था आगे न बढ़ा था अभी उसी उम्र में जी रहा था आकांक्षा से परिपूर्ण हो कर।
- वे अपने क्रांतिकारी पति के विश्वव्यापी यश-साम्राज्य की साम्राज्ञी थी देश भर के लिए वंदनीय पर अपने वातावरण में एक अभागी ही।
- वे एक साथ बलाश का प्रकाशमान शिखर भी थी पृथ्वी का अंधेरा खण्ड भी क्या जिंदगी थी श्रीमती हरनाम कौर की कि स्मरण कर सब का सिर झुके पर कभी जिंदगी जीने की कोई आकांक्षा न करे।

वह पागलपन का युग था। तब पागल पैदा हुए उस युग में। पागल अपने हित की कोई बात नहीं सोचता और अपने सिवा किसी की ओर ध्यान नहीं देता। वह अपनी बातों में इतना डूब जाता है कि उसे अपना भी ध्यान नहीं रहता। उसे न किसी की प्रशंसा प्रभावित करती है न निंदा। वह अपनी ही राह चलता है अपनी ही नींद सोता है, अपनी ही जाग जागता है। कोई उसे समझदारी का पाठ पढ़ाना चाहता है तो उस का उत्तर होता है—

> 'इन्हीं बिगड़े दिमागों में घनी खुशियों के लच्छे हैं
> हमें पागल ही रहने दो कि हम पागल ही अच्छे हैं।'

उन का कोई व्यक्तिगत चाह नहीं होता और एक मात्र चाह होता

है यह कि सब पागल हो जायें, कोई समझदार न रहे। श्रीमती हरनाम कौर के पिता भी एक पागल थे और उन के पागलपन का ही एक नमूना है, यह, कि उन्हो ने अपनी वेटी, 'हरि' के लिए एक पागल ही पति चुन लिया था। वे गोरक्षा के दीवाने थे और उन का दामाद देश-रक्षा का दीवाना। दोनो अपनी धुन के धुनी थे।

वे थे कसूर के प्रसिद्ध वकील श्री धनपतराय। गाय की रक्षा कैसे हो, यही उन का मिशन था। वे विद्वान् थे और यह बात समझ गये थे कि गाय की रक्षा गोमाता की जय बोलने से नही होगी। गाय की उपयोगिता बढाने से होगी। सोचती हूँ विशाल देश के वे पहले आदमी थे, जिन्हो ने गाय के प्रश्न को धार्मिकता की दलदल से निकाल कर वैज्ञानिक उपयोगिता की साफ जमीन पर रखा था, परखा था। बरसो के चिन्तन के बाद वे इस परिणाम पर पहुँचे थे कि नयी गायों की नस्ल सुधारी जाये, जिस से वे अधिक दूध दें और दूध न देने वाली गायो को बैलो की तरह हल मे और गाडियो मे जोडा जाये। हमारे देश की जनता परिवर्तन को सुगमता से स्वीकार नही करती। उन की बात से भी लोग भडक उठे थे। महीनो तक धार्मिक और सामाजिक पत्रो मे उन के विरुद्ध मोटे-मोटे शीर्षक लगाये गये थे और उन्हे बुरा-भला कहा गया था, पर कहा तो मैं ने कि वे तो पागल पीढी के पुत्र थे, जो निन्दा-स्तुति से ऊपर रहती है। धार्मिक पण्डितो ने उन्हे धर्म-सभाओ के उत्सवो मे अधार्मिक घोषित किया था और क्या गाय का हल मे जोडना धर्मानूकूल है? इस प्रश्न पर शास्त्रार्थ के लिए ललकारा था। उन्हों ने मुसकरा कर सब-कुछ सुना था, पर कहा कुछ नही था। वे स्वयं सामाजिक क्रान्ति की प्रचण्ड हुकार थे, धर्मान्धता की ललकार वे भला क्या सुनते?

उन के जीवन-चरित्र की सामग्री परिस्थितियो ने लूट ली है, पर उन के चरित्र का यह चित्र तो इतिहास के पृष्ठो में सुरक्षित रहेगा ही कि हिन्दू होते हुए भी उन्हो ने अपनी वेटी का विवाह एक ऐसे सिक्ख युवक से किया जो दे श-भक्ति मे उफन रहा था। यह भी स्पष्ट ही था कि यह उफान उसे ऐश-आराम के उपवन की ओर नही, लम्बी जलन की ओर ही ले जायेगा। फिर यह विवाह भी कैसे हुआ। क्या बारात चढी? वर-द्वार सजे? बाजे बजे? धूम-धाम मची? धर्म-कर्म हुए? नही, वह सब कुछ नही हुआ और हुआ सिर्फ यह कि श्री धनपत राय ने अपनी वेटी को अजीत सिंह के पास बैठाया और यह कहते हुए वेटी का हाथ वर के हाथ मे दे दिया--"ससार की हर वस्तु तभी आगे बढती है, एक शक्ति का रूप ग्रहण करती है, जब दूसरी के साथ मिल जाती है। जीवन मे आगे बढने के लिए, उन्नति के पथ पर चढने के लिए मैं तुम दोनो को मिलाता हूँ।" जब-जब यह विवाह मुझे याद आता है, मैं सोचने लगती हूँ कि क्या सस्कार था, दो जीवनो की एकता का यह सूत्र हमारे समाज के लिए श्री धनपत राय का एक अमर उपहार नही है?

बरसात पानी का मौसम है, सरदी ठण्डक का, गरमी-लू-झुलस का और बसन्त फूलो का, पर विवाह सपनो का मौसम है। इस विवाह मे सपनो की भीड नही थी,

क्यो कि वे एक-तरफा थे। सरदार अजीत सिंह के दिल दिमाग मे घरेलू जीवन का कोई सपना था, मुझे इस का विश्वास नही होता क्यो कि उन की नस-नस में भारत में सशस्त्र क्रान्ति का एक ऐसा विराट सपना समाया हुआ था कि किसी और छोटे सपने की वहा गुंजायश ही न थी। जो विनाश की होली जला रहा हो खून का फाग खेल रहा हो, वह विवाह की दीपावली में तेल के नन्हें दीपक कहाँ जला सकता है? यदि के शब्दों में उन का भाव है—

तुम समाये हुए हो नजरों में
अपनी आँखों में आये नींद कहा?"

ठीक है उन की आखो म किसी सपने की गुंजायश न थी और उन के लिए विवाह बड़ो की खुशी के लिए और परिस्थितियो के कारण किया गया एक कर्तव्य था पर हरनाम कौर की आँखों में तो एक सौ आठ सपने थे और हर सपना अजीत सिंह के धागे म पिरोया हुआ था। उन सपनो का क्या हुआ? विवाह के कुछ समय बाद गौना हुआ तो सपने और रंगीन हो गये। अब दोनो साथ थे पर साथ कैसा था? ऐसा साथ जैसी पुरानी छपरिया जिस में जगह-जगह छेद। दो दिन साथ रहते तो मन के बन्द द्वार खुलने लगते पर अजीत सिंह शाम तक लौटने की बात कह कर चले जाते और राजनीति के चक्कर पर ऐसे चलते कि कई दिन शाम ही न होती। फिर आते और दूसरे ही दिन चले जाते तो सप्ताह भर में लौटते। कभी-कभी पूरा महीना बीत जाता। हरनाम कौर घर का झाड़-बुहार कर लीप-पोत कर साफ करती पलंग की चादर बदलती सजती-संवरती पर उन का यह उत्साह एक मानसिक आघात बन कर रह जाता जब वे न आते। हंसी से खिलते प्रभात आते उदासी म बुझती सन्ध्या आती और रात उन की प्रतीक्षा म काट डाला देती। ये काँटे उस दिन जहर-बुझे शूल हो गये जिस दिन अजीत सिंह गिरफ्तार हुए और माण्डले के किले म जलावतन कर दिये गये।

प्रतीक्षा पहले भी था अब भी पर पहली प्रतीक्षा में एक स्वाद था अब की प्रतीक्षा में एक विषाद। पहले दूर-सफर लौटना अजीत सिंह के अपने वश में था उस पर आग्रह किया जा सकता था किया जाता था और कभी-कभी वह सफल भी हो जाता था। अब आना-न-आना अजीत सिंह के वश में न था। सरकार की इच्छा पर था और उस इच्छा की सीमा का पता किसी को न था। न इसे प्रभावित करना ही किसी के हाथ में था। पहले अपनी बीमारी का झूठा-सच्चा सन्देश भेज कर अजीत सिंह की इच्छा को प्रभावित करना सम्भव था पर अब सरकार का हृदय तो किसी का किसी पर भी कब्जा होने को तैयार न था। हरनाम कौर का हृदय द्वार पहले भी बन्द रहता था अब भी पर पहले वह द्वार एक गौरव म बन्द था [illegible] खुल सकता था अब उस पर ताला लग गया था और उस का ताला तब खुलता जब वे मर जाते। अब उस पर ताला लग गया था और उस का ताला खोलना किसी के वश में न था। जिन्दगी सुनसान हो गयी थी, जिस में अब सास ले रहा हरनाम कौर का मन न था।

"[illegible] भगत सिंह"

थी, इतनी सुनसान कि भविष्य की आशा के चाँद-सूरज तो दूर, कोई जुगनू भी कभी उस में न चमकता था। अँधेरा ही उन का वर्तमान था, अँधेरा ही भविष्य !

इस अँधेरे मे एक दिन अचानक प्रकाश भर गया और प्रकाश भी सूर्य का। हरेक समाचारपत्रका पहला पृष्ठ सरदार अजीत सिंह के नाम से सुनहरे अक्षरो मे चमक उठा। सरकार ने उन के निर्वासन का आदेश वापस ले लिया था और वे माण्डले से वापस आ रहे थे। हरनाम कौर के कपडे चमक उठे, चेहरे पर रौनक चमकी, सिर के रूखे बाल चिकने हो कर चमक उठे और चमक उठा घर। सरदार अजीत सिंह आ गये और हरनाम कौर का जीवन सुगम हो गया, पर भाग्य को यह सुगमता अधिक दिन सहन न हुई।

उस दिन हरनाम कौर की देह बुखार से गरम तवा हो रही थी। उठना तो दूर, बैठना भी सम्भव न था। अजीत सिंह इसी हालत मे उन्हे लाहौर से बगा लाये और हरनाम कौर के 'कब आयेंगे', प्रश्न पर 'परसो आ जाऊँगा', कह कर चले गये।

जाने कितनी परसो आयी और चली गयी, पर उन का कोई पता नही था। दिन के बाद दिन, सप्ताह के बाद सप्ताह, महीने के बाद महीने और साल के बाद साल गुजरते चले गये, पर वे नही लौटे, न कोई खबर ही दी। सरदार अजीत सिंह सरकार की आँख बचा कर देश छोड विदेश चले गये थे। राम के वनवास की सीमा चौदह बरस थी और पाण्डवो के अज्ञातवास की एक बरस, पर सरदार अजीत सिंह उस अज्ञातवास के लिए चले गये थे, जिस की कोई सीमा न थी। यह सब विवाह के चार वर्ष बीतते-न-बीतते ही हो गया था और हरनाम कौर शृगार-सेजका स्पर्श कर अगार-सेज पर आ बैठी थी।

सास-ससुर ने इस अगार-सेज को सहन योग्य बनाने के लिए अपने होनहार पौत्र जगत सिंह और भगत सिंह को अपने पास गाँव मे ही रख लिये और उन के पालन-पोषण की जिम्मेदारी और देख-भाल का काम दोनो चाचियो को सौंप दिया। उन का कलेजा अब भी खोखला था, पर गोद भर गयी थी। उन की गैया अब भी जल रही थी, पर होनहार बेटों की समीपता के कारण उस की जलन कम हो गयी थी। अन्त करण अब भी शून्य था, पर वातावरण बेटो की बातचीत से मुखर था। उन की भुजाएँ अब उमग से फैलती थी, तो कोई-न-कोई बेटा उन मे सिमट आता था। वे उसे अपने पास सुलाती, अपने हाथ से खिलाती-पिलाती और तैयार कर मदरसे भेजती। लौटने का समय उन्हें मालूम था, पर प्यार की उत्सुकता ने कब घडी का विश्वास किया है ? वे समय से पहले ही द्वार पर पहुँच जाती और दूर-दूर तक ताकती रहती। कोई बालक या किशोर उधर से आता दीखता, तो पूछती—जगत सिंह आ रहे है क्या ? कभी-कभी यह प्रश्न बार-बार दोहराया जाता, तो उन की सास झल्ला कर कहती—एक तेरे ही बेटे तो मदरसे नही गये, फिर आयेंगे तो तेरे पास ही आयेंगे, वहाँ खडी क्यो बेकार ताक-झाँक करती है, जब कि काम करने को पडा है।

वे सुनती तो कभी-कभी अनसुना कर देती और कभी द्वार से लौट आती, पर

उन्हें चैन न पड़ती और फिर द्वार पर जा लगती। उन के बाहर पर ...
आ जाते रहते जगे उन के भीतर कोई निश्चय चल रहा हो और उन के हृदय की धड़कन
हो। अचानक जगत सिंह दिखाई दे जाते निश्चय हो जाता उन के हृदय की धड़कन
बढ़ जाती और उत्सुकता पटची पड़ती। वे जगत सिंह को गोद में उठा लेती और प्यार
से पूछती— तुम्हारे चाचा जी का पत्र आया है? गाँव का डाकखाना स्कूल में ही था
पर डाकखाना किसी को अपना डर न तो पत्र नहीं भेजता। जगत सिंह कहता ना'
और बस उन की उत्सुकता का उत्तर तत्क्षण उतर जाता और आँखों से चाचा में आँसू
झरने आते। जगत सिंह उन का भार थाम लेता। पर में हर समय देश का गुलामी
अंगरेजों के अत्याचार और क्रान्ति की ही बातें होता रहती थी। जगत सिंह अपनी छाती
पर हाथ मारता और कहता— चाची जी मैं बड़ा हो कर अंगरेजों का देश से निकालूंगा
और चाचा जी को वापस लाऊंगा। छोटा भाई भगत सिंह भी पास हो होता। वह
जन्म से ही बड़ा भावुक और रहस्य था। यह सब देख कर वह हैरान-सा होता और
फिर बहुत-सा प्रश्न एक साथ पूछता जिन में कुछ अंगरेजों के सम्बन्ध में होते तो कुछ
चाचा जी के और फिर अपने छोटे-छोटे हाथों से चाचा के आँसू पोछते हुए कहता—
"चाची जी मैं जरूर चाचा जी को वापस लाऊँगा। आश्वासन का तार कितना ही
कमजोर क्यों न हो वह टूटे मन को एक बार जरूर सहारा देता है। हरनाम कौर
सँभल जाती घर के काम में जुट जाती और फिर दूसरे दिन उसी तरह अपना प्रश्न
दोहराती—"तुम्हारे चाचा जी का पत्र आया है? उत्तर भी वही होता और परिणाम
भी फिर भी इस में जीवन का चक्र घूमता तो था ही। इसी तरह बीत गये लगभग
आठ साल और फिर एक दिन यह चक्र अचानक टूट गया और भविष्य का नक्षत्र जगत
सिंह भगवान् की गोद में जा सोया।

यह एक बड़ा धक्का था पर इस ने हरनाम कौर को भड़भड़ाया नहीं एक
दम गुम कर दिया न आँखों में आँसू न मुँह में विलाप, बस चुपचाप वे जहाँ बैठती
बैठी ही रह जाती। उन के भीतर इतने चित्र थे कि वे कुछ और कह न पाती। अपना
ही अतीत उन के सामने बिखरा पड़ा था कुछ इस तरह जैसे आँधी में पत्ते कि एक को
पकड़ो तो दूसरा उड़ जाये और एक की तरफ हाथ बढ़ाओ तो दूसरा सामने आ जाये।
उन का जन्म कहाँ हुआ था उन के माता पिता कौन थे, कैसे थे वे कुछ नहीं जानती।
बस वे इतना ही जानती है कि अपने माता पिता के घर वे दो-तीन वर्ष की उम्र तक
रहीं और फिर उन से बिछड़ गयीं। कहा कैसे यह दुर्घटना हुई वे कुछ नहीं जानती।
उन की आरम्भिक स्मृतियाँ घनपत राय के आँगन में ही खेलती है। उन्हों ने १६ वर्ष की
उम्र तक वहाँ रहते वहाँ के जन-जन की ही नहीं कण कण की समानता अनुभव की
और उन की आत्मीयता का भी वह परिवार पूरी तरह केन्द्र रहा। उन के वहाँ से
चलते वहाँ की हर आँख रोयी और स्वयं उन की आँखें भी पानी पानी हुई। हरनाम
कौर को जरा सा भी कभी किसी ने आभास नहीं होने दिया कि वे इस घर में नहीं

जन्मीं। सोचती हूँ कितने विशिष्ट थे श्री धनपत राय और कितना शिष्ट था उन का परिवार; पर सत्य सत्य ही था और वह सत्य सूत्ररूप मे ही सही, हरनाम कौर के अन्त करण मे स्पष्ट था कि धनपत राय की इकलौती वेटी विख्यात हो कर भी मैं उन के घर मे जन्मी नही हूँ।

वह पहले अपने जन्मदाताओ के साथ वसी-विखरी, फिर धनपत राय के पुण्य परिवार मे वसी-उखडी, फिर सरदार अजीत सिंह के साथ वसी-उजडी और तव वेटे जगत सिंह के साथ उन्हो ने अपने मन की वेल को रोपा, सीचा, पनपाया, वाँधा और टूटते देखा। सोचती हूँ, परिवर्तन के ऐसे धडाको मे तो एक कर्कश-कठोर पुरुष भी पागल हो जाये, फिर वे तो एक ममतालु महिला थी। यही नही कि वे पागल या अस्त-व्यस्त नही हुई, जीवन में व्यवस्थित और प्रशान्त रही। उन के भीतर लाख विष उमडा हो, उसे उन्हो ने जीभ पर कभी नही आने दिया। उन की उपमा उस वृक्ष से दी जा सकती है, जो साँप-बिच्छुओं से भरे खण्डहर मे खडा हो कर भी सदा फूल वरसाता रहता है।

मनोविज्ञान के अध्ययन से पता चलता है कि कठोर और क्रूर माता-पिताओ के वच्चे अक्सर डाकू और हत्यारे हो जाते हैं। जीता-जागता अनुभव है कि सिंचाई-नुलाई और खाद से खेत और उपवन फल-फूल देते है और इन के अभाव मे सूख जाते है। प्यार, ममता, सहानुभूति, समवेदना, सद्व्यवहार, सदाचार मनुष्यता की खुराक हैं। इन के विना वह रूखा हो जाता है, हताश हो जाता है, उस मे 'फ्रस्ट्रेशन' आ जाता है, वह मनुष्य-द्रोही हो जाता है, उसे अपने सिवा सब बुरे लगने लगते है। हरनाम कौर उस युग के गाँव मे रह रही थी, जो गुलामी और सामाजिक कुरीतियो मे जकडा हुआ था और जहाँ समर्थ को ही सम्मान पाने का अधिकार माना जाता था। समर्थ शासक थे तो असमर्थ शासित। शासितो पर ममता कव किसने वखेरी है? सदा स्मरणीय विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी अण्डमान-यात्रा का वर्णन किया है। उन्हे वैलो की तरह कोल्हू मे जोड़ कर तेल निकलवाया जाता था, नारियल का छिलका कूट कर उस के तार निकालने को दिये जाते थे। हरनाम कौर भी ऐसे ही कठोर परिश्रम का जीवन जी रही थी। उन की देवरानी श्रीमती हुकम कौर भी इस जीवन में उन के साथ थी, उन पर मैंने इसी पुस्तक मे अलग लिखा है, पर दोनो मे स्वभाव का चौडा अलगाव था। नतीजा यह कि दोनो एक जुए के नीचे थी, पर एक-दूसरे को सरसता न दे पाती थी।

अनुभवी वडी वूढियो का कहना है कि कोई पूरे समय पूरी मेहनत करे, तो पाव-भर सूत प्रति दिन कात सकता है। फिर कातना ही तो एक काम न था। उन का दिन तडके चार वजे आरम्भ हो जाता था। जव वे चार-पाँच सेर अनाज की टोकरी ले कर अपनी देवरानी के साथ चक्की पर आ वैठती थी। फिर दूध दुहना और चौके-वरतन के काम के वाद चरखे पर वैठना। उन के चरखे के चलने से ही परिवार का चरखा चलता

था। कपास के चुनने से ले कर सूत बुनने तक का सारा काम उन्हीं के हाथों से होता था। तब बनते थे सब के कपडे। उस कपडे में से कई थान रंग कर फुलकारियाँ बनायी जाती थीं। जिन दिनों कातने का काम न होता, उन दिनों फुलकारियों पर कशीदाकारी आरम्भ हो जाती। दिन भर एक क्षण के लिए भी न बैठने के बाद उन के सिर पर होता रात का काम। सोचती हूं वे दोनों जीवित मनुष्य हो कर भी जड लोहे की मशीन हो गयी थीं, जिस का हर पुरजा अपनी जगह कसा हुआ था, जिस की रफ्तार बांध दी गयी थी और जिसे इधर-उधर होने की जरा भी गुंजायश न थी। बीस वर्ष की भरी जवानी से छप्पन वर्ष के ढलाव तक श्रीमती हरनाम कौर ने यही जीवन जिया। उन की जिन्दगी एक ऐसे किले में बीती, जिस की दीवारें ऊंची भी थीं, मजबूत भी और जिस में कहीं कोई खिड़की न थी, जिस से बाहर के फूलों की महक भीतर आ सके। हां एक खिडकी ऐसी अवश्य थी जिस से बाहर के कांटे कभी-कभी उन तक अवश्य आ जाते थे। वे कांटे थे अफवाहों के व कांटे थे चर्चाओं के—कीकर और करौंदे ही नहीं, नागफन के जहरीले कांटे से तेज और पने। ये कांटे शरीर में चुभते हैं व कांटे कलेजे में चुभते थे।

वे कातती होतीं और पास-पड़ोस की कोई महिला उन के पास आ बैठती। दैनिक पत्रों में भी खबरें छपती हैं पर हमारे देश में तो हर आदमी ही बिना छपा दैनिक पत्र है। यह महिला भी ऐसा ही दैनिक पत्र सिद्ध होती और खबर देती— तू यहाँ बैठी उस के नाम का चरखा चला रही है और अजीत सिंह ने तो विलायत में मेम से शादी भी कर ली है तभी तो चिट्ठी तक भी नहीं भेजता।' वह तो इतना कह कुछ देर बाद चली जाती, पर हरनाम कौर के कलेजे की झोपडी में ऐसी चिनगारी रख जाती जो उन्हें जलाती भी और रुलाती भी। कल्पना के सहारे आशा के पत्तों का जो महल हरनाम कौर हफ्तों-महीनों में बनाती वह एक ही झोंके में ढह जाता। जो दूर हो कर, अज्ञातवासी हो कर भी उन का अपना बना रहता था किसी और का हो जाता और उस के लौटने की राह ही बंद हो जाती। वे तड़प उठतीं तड़पती रहतीं। इस तड़प में उन के सूत का तार टूट जाता तो जाने कब तक टूटा रहता और वह पूनी का टुकड़ा हाथ में लिये बैठी की बैठी रह जातीं। सच तो यह कि वे उस समय पीढ़े पर होने भी पीढ़े पर न होतीं और इस से बढ़ कर सच यह कि वे कहीं भी न होतीं अपने आंसुओं में डूबी रहतीं। हम दूसरों के सम्बन्ध में कुछ कहते समय कितने हृदयहीन हो जाते हैं ?

बचपन से ही भगत सिंह के हृदय पर चाचियों के आंसुओं की छाप पड चुकी थी। वहीं से उन्होंने गुलामी के दर्द को अपने दिल में पाल लिया था। भारत की स्वतन्त्रता और चाचा जी की वापसी दो ही प्रबल इच्छाएं थीं उन की। इन के लिए उन्होंने कोई सम्भव प्रयत्न न छोड़ा था। इसी से अब अजीत सिंह का पता मालूम हो गया था और कभी-कभार उन का गुमनाम पत्र किसी-किसी के पते पर आने लगा था। सन १९२९ में जब भगत सिंह पर मुकदमा चल रहा था वे उन दिनों ब्राजील में थे।

कुलतार सिह उस समय पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। हरनाम कौर ने कुलतार सिह से पत्र लिखाया—"आप तो परसो लौटने का वायदा कर गये थे, अभी तक आये क्यो नही ?" उत्तर मिला—"अजीज, परसो और बरसो मे दो ही नुक्तो (उर्दू लिपि के अनुसार अनुस्वार) का फर्क है !"

कभी-कभार के पत्र से यह तो निश्चित हो ही गया था कि वे जीवित है। कई वार रोम-रेडियो से उन के भाषण भी प्रसारित होते थे, पर कुछ महीनो यदि उन की कोई खबर न मिलती तो कभी-कभी बिना छपा दैनिक यह खबर भी लाता कि अजीत सिह की मृत्यु हो गयी है। इस खबर मे हरनाम कौर को अपने भविष्य की ही मृत्यु दीखती और वे बेहाल हो जाती। हर खबर इस तरह दी जाती कि जैसे खबर देने वाला स्वयं अजीत सिंह की शव-यात्रा मे शरीक हो कर लौटा है। हर खबर एक झूठ थी, पर यह झूठ उस दुखिया मन मे इस तरह चुभता, इस तरह चुभता कि सच भी मात मान लेता। सोचती हूँ, हम अपने घर का कूडा गली मे फेंक कर केले का छिलका सडक मे डाल कर, मल-मूत्र के लिए बच्चे को जहाँ-तहाँ बैठा कर और पान की पीक थूक कर ही वातावरण को गन्दा नही करते, अप्रामाणिक सुने-सुनाये या गढे-गढाये विचार बिखेर कर भी उसे सडाते है और भूल जाते है कि हम इस तरह उस वातावरण को खराब कर रहे है, जिस मे दूसरो के साथ हम भी रहते है। हम रामलीला बार-बार देखते है, मन्थरा के कारनामो पर उसे कोसते है, पर हमारी आत्म-निरीक्षण और आत्म-चिन्तन की वृत्ति इतनी निर्बल हो गयी है कि यह अनुभूति हमारे अन्त करण को नही मथती कि स्वयं हमारा स्वभाव इतना हीन और दोष-दर्शी हो गया है कि मन्थरा हमारे सामने छोटी रह गयी है। भूकम्प पृथ्वी को हिला देते है, हरनाम कौर भी हिल जाती, पर उन का यह विश्वास कभी खण्डित नही हुआ कि उन के पति जीवित है और वे एक दिन ज़रूर लौटेंगे। यह विश्वास ही उन के जीवन की धुरी थी।

इस वातावरण मे, इन परिस्थितियो मे रहते हुए भी हरनाम कौर का हृदय मानव के प्रति बेहद सहानुभूतिपूर्ण और संवेदनशील था। वे शिक्षित थी और गाँव की लडकियो को शिक्षित करती रहती थी। पढने वाली लडकियो की भीड़ उन के पास जुडी ही रहती थी। एक बार तो उन्हो ने छोटा-सा स्कूल ही खोल लिया था, जिस मे हिन्दी और पंजाबी की शिक्षा वे स्वयं देती थी। टूटी हड्डियो को जोडना, मोच निकालना, दुखती आँखे ठीक करना और इसी तरह के दूसरे काम भी उन्हो ने अपनी सास श्रीमती जय कौर से सीख लिये थे। इस तरह वे अपने गाँव की मास्टरनी और डॉक्टरनी एक साथ थी, पर न उन के नर्सिंग—होम की कोई फीस थी, न स्कूल की। वे लडकियो को पढाती ही न थी, उन्हे जीवन के सत्यो और तथ्यो की शिक्षा भी देती थी, जिस से उन का व्यक्तित्व निखर उठता था। उन की आत्मा मे कितनी तेजस्विता थी, इस का पता इस बात से चलता है कि एक बार उन की पढाई एक लडकी को उस के पति ने किसी मतभेद पर अपने घर ले जाने से इनकार कर दिया। सब के सब प्रयत्न जब

वेवार हो गये, तो उन्हों ने उस युवक को एक पत्र लिखा। उन की आत्मा का तेज स्विता का उस युवक पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह आ कर उस लड़की को ले गया और उन दोनों में फिर कभी कड़वाहट नहीं आयी। *उन के जीवन का यह पहलू उन के* व्यक्तित्व की विशिष्टता को समझने के लिए साफ आईना है कि अपने बिगड़े जीवन को भूल वे दूसरों के बिगड़े जीवनों को बनाने-सँवारने में लगी रहीं। जिन्हें जीवनशास्त्र का ज्ञान और जीवन की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का परिचय है, वे मानेंगे कि यह कोई साधारण बात नहीं है।

स्वप्न प्रकृति के निर्माण का एक अद्भुत तन्त्र है। इसी की शक्ति से रावण के राक्षसी पहरे में समुद्र पार रहते भी सीता राम से प्रतिदिन मिल सकती थी और राधा *गोकुल में रह कर भी द्वारकावासी कृष्ण से। वियोग में स्वप्न एक का भी उतना ही* सहारा है जितना राव का। स्वप्न के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न बातें कही गयी हैं पर जन-सामान्य के जीवन में तो स्वप्न एक रहस्य ही है। हमारे परिवार में स्वप्नों के अनेक चमत्कार हैं। उस दिन भी एक चमत्कार ही हुआ था जब हरनाम कौर ने सुबह उठ कर सब को बताया था कि सरदार जी बहुत बड़ी फौज के जनरल हो गये हैं और मैं ने उन्हें फौजी वरदी में देखा है अब वे फौज ले कर ही यहाँ आयेंगे। उस दिन सब ने एक दर्द के साथ उन का स्वप्न सुना था पर बाद में सब ने आश्चर्य के साथ सुना कि उन दिनों सरदार अजीत सिंह सचमुच आज़ाद हिन्द लश्कर का इटली में निर्माण करते हुए पूरी तरह फौजी मूड में थे।

हरनाम कौर निरन्तर भीतर-ही भीतर उन की बात सोचती थीं उन के मन की एक लहर कहती थी—वे आ जायें पर भगत सिंह की फाँसी की बात सोच कर उन का मन थर्रा जाता था—ना वे यहाँ न आयें वहीं रहें। महाकवि हरिऔध की राधा के शब्दों में उन का अन्तर्द्वन्द्व कुछ इस प्रकार था—

प्यार आवें मम दुख हरें प्यार स गोद लेवें,
ठण्डे होवें नयन, दुख हों दूर, मैं मोद पाऊँ।
यह भी है भाव उर के और ये भाव भी है
प्यार जीवें सुख से रहें गेह चाहे न आवें।

विवाह के बाद उन के पति ने पाठ का एक गुटका उन्हें दिया था। वे रात में शान से पहले कभी उस का और कभी गीता का पाठ किया करती थीं। यह गुटका अन्त तक उन के पास रहा और उन की पति निष्ठा को विश्वास का बल देता रहा। उन का विश्वास सत्य हुआ और स्वतन्त्रता के अरुणोदय (मार्च १९४७) में सरदार अजीत *सिंह भारत लौटे। कुछ दिन दोनों साथ रहे पर स्वतन्त्रता के सूर्योदय की पहली किरण* के साथ ही वे स्वर्ग सिधार गये। वे पहले भी अकेली थीं फिर भी अकेली रह गयीं पर दोनों स्थितियों में बड़ा अन्तर था। पहले अकेलेपन में आशा की एक ऊष्मा थी, प्रतीक्षा का भाव था पर बाद का अकेलापन बर्फ की तरह ठण्डा था और उस में

फिर कभी ऊष्मा आने की आशा तो दूर सम्भावना भी न थी। इस धक्के ने उन्हे अन्तर्मुख कर दिया था, वाहर से एकदम चुपचाप। उन मे अथाह जोवन-शक्ति थी। वे तिडक कर भी टूटी नही और अपने को नयी परिस्थितियों के साथ मिला कर चलती रही।

उन की इच्छा थी कि मरने के वाद उन का दाह-संस्कार भगत सिंह की समाधि पर किया जावे। सयोग की वात कि फरवरी १९६२ मे वे फिरोजपुर मे थी। वही उन का देहान्त हुआ और उन की इच्छानुसार शहीद भगत सिंह की समाधि के पास ही उन का दाह-संस्कार किया गया।

मेरा मन जलती हुई दीपशिखा की तरह उन के जीवन का चिन्तन कर अपने से पूछता है—क्या उन का जीवन एक सफल जीवन था ? क्या उन्हे उन की तपस्या का फल मिला ? इस से भी आगे वढ कर क्या उन की तपस्या को समाज ने, राष्ट्र ने पहचाना, पूजा ? मेरा मन एक वार घने गहरे अन्धकार से भर जाता है, क्यो कि न गुलाम भारत ने उन की खोज-खवर ली, न आजाद भारत ने। वे गुमनाम जीवित रही, गुमनाम मर गयी। मै अवसाद मे डूवने लगती हूँ, पर तभी मेरी आँखो मे घूम जाता है, वह दृश्य, जहाँ भारत मे सगस्त्र क्रान्ति के एक प्रमुख प्रणेता सरदार अजीत सिंह अपनी मृत्यु से कुछ देर पहले स्वतन्त्रता के पहले दिन १५ अगस्त १९४७ की ब्राह्मवेला मे उन के पैर छू कर उन की तपस्या का अभिनन्दन करते है। उन के जीवन की यह सर्वोत्तम उपलब्धि थी, निश्चित ही ऐसी उपलब्धि जिस ने जीवन-भर भूख की अधमरी जिन्दगी जीने वाली उन की आत्मा को छत्तीस भोग, छत्तीसो व्यंजन से भरे भण्डार मे ला वैठाया था। यह एक भारतीय नारी की महान् उपलब्धि थी, जिस ने हरनाम कौर को सीता, दमयन्ती और सावित्री की परम्परा मे ला कर खडा कर दिया।

■ ■

क्रान्ति की किरण
सरदार स्वर्ण सिंह

बाप जागरण क्रान्ति का अगुआ बडा भाई लोकमान्य तिलक की राजद्रोही राजनीति का पोषक और मँझला भाई पगडी सँभाल ओ जट्टा के रूप में उत्तर भारत की जनक्रान्ति का प्रवतक घर म हर समय राजनीति की चर्चा, गदर मचान के जोड-तोड अगरेजो को खत्म करने के मसूबे। इस स्थिति में छोटा भाई स्वण सिंह १६ १७ वषकी उम्र म ही उफनती बगावत के सपने लेन लगा तो क्या आश्चय ?

१९०४ ५ म राजपूताना म जबरदस्त अकाल पडा। माताओ ने बेटिया दूसरों को सौंप दी, बापों न बेटे यह तो साधारण बात थी पर इस अफवाह ने देश का दिल दहला दिया कि माँ ने अपने बटे को उसी तरह खा लिया जसे भडिया हिरन के बच्चे को खा लेता ह। सरदार किशन सिंह उस अकाल के बीचोबीच खड थे एक देवदूत की तरह और सेवा का काम कर रह थे। व अनाज रोटी और कपडे का वितरण करते बीमारो को दवा-दारू देते और जिन बच्चो के माँ-बाप मर जाते उन्हें कम्प मे सरक्षण में ले लेते।

अकाल समाप्त हुआ तो कम्प में काफी बच्च थ। उन का क्या हो ? वहाँ ऐसा कौन था जिसे सौंप दने उन अनाथों को ? उन्हों ने लाला लाजपत राय स सलाह की और उन्हें अपन साथ ल आय। लाहौर के मोरी दरवाजा पर एक अनाथालय खोला गया और उस में उन बच्चो को रखा गया इस मिशनरी भावना के साथ कि य देश के बच्चे ह और इन्हें देश के लिए तयार करना ह। यह पालन-पोषण का नही जीवन निमाण का जीवन का ज्वालामुखी बनाने का प्रयत्न था। इस की सफलता के लिए एक दहकते हुए व्यक्तित्व की आवश्यकता थी। सब की निगाह सरदार स्वण सिंह पर टिक गयी। व अनाथालय के सुपरिन्टेण्डेण्ट बना दिये गये। उन का जन्म खटकड कलाँ जिला जालन्धर में सन १८८७ में हुआ था और अनाथालय का सचालन सँभालने समय उन के चहरे के राजो न मूछ-दाढी का साफ रूप नहीं लिया था पर कलेजे की ज्वाला न उम्र के दिन कब गिने हैं ?

वे बच्चों को दाना-पानी के साथ देशभक्ति की चिनगारियाँ देने लगे और किताबी अक्षरो के साथ देश की गुलामी के ज्ञान का फूस बिछाने लगे। उन बच्चो के साथ और बच्चे भी आते गये, काम बढता गया। अनाथालय लाहौर की सफल सस्थाओं मे गिनती पाने लगा और उसे जल्दी ही हवेली राजा हरबम सिह मे बदल दिया गया। क्या उन की सफलता यही थी कि अनाथालय मे बच्चे और फर्नीचर बढ रहे थे? नही, उन की सफलता यह थी कि बच्चो में अनाथ होने की हीन-भावना नही थी और वे देश के तरुण बनने को पनप रहे थे। उन के चेहरो पर और विचारो-व्यवहारो पर देश-भक्ति के तेज की छाप थी। यह छाप ६ अप्रैल १९१९ मे इतिहास के पन्नो पर खून के छीटे बन कर इस तरह चमकी कि फिर कभी धुँधली न हो सकी।

उस दिन रौलेट ऐक्ट के विरोध मे लाहौर की बादशाही मसजिद मे एक बडा जलसा हुआ। लाला हरकिशन लाल सभापति थे। शहर मे उस दिन हडताल थी, जलसा खचाखच भरा हुआ था। सरकार के कानून का विरोध सरकार का विरोध था ही, पर सब शान्त थे। जलसे के बाद जब लोग अपने-अपने घरो को लौट रहे थे, हीरामण्डी मे नौगजे पीर के पास पुलिस ने अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलानी आरम्भ की। वे भी थे, जो भाग खडे हुए, वे भी थे, जो दुबक गये और वे भी थे, जो गिर पडे, पर नौजवान खुशीराम भी उन्ही मे था, जो गोली खाता रहा और पुलिस को अपने नारो से ललकारता रहा। इतिहास का एक अजब क्षण था कि धडाम की आवाज मे बन्दूक चिंघाडती, गोली बाँय मे दौडती, खुशीराम घायल हो जाता, खून बहने लगता, गोली मारने वाला भौंचक हो कर देखता कि खुशीराम गिरा नही है, दीवाने जोश मे भरा ललकार रहा है। तब दूसरी बन्दूक उठती, धडाम से चिंघाडती, गोली धायँ मे दौडती, खुशीराम और घायल हो जाता, खून और ज्यादा बहने लगता, दूसरा गोली मारने वाला भी भौंचक हो कर देखता कि खुशीराम गिरा नही, खडा है और खामोश नही, जोश से ललकार रहा है। फिर नयी बन्दूक उठती, फिर नया धडाका होता, फिर नयी गोली दौडती, फिर नया घाव होता, नया खून बहता और नया नारा गूँजता। इस तरह बारह गोली खा कर खुशीराम शहीद हुआ। गोली मारने वाले जोश मे थे तो अँगरेजी सरकार की मशीनरी के पुरजे-भर थे, पर खुशीराम के गिरने पर होश मे आये, तो जीते-जागते इनसान हो गये। वे खुशीराम के चारो ओर घिर आये और बहुत देर आदर-भरी पीडा के भाव से, खामोश पडे खुशीराम को देखते रहे। हत्यारो की नजरो के साये का आँचल ही शहीद का कफन हो गया। खुशीराम के साथी फकीरचन्द ने भी शान मे गोली खायी और बुरी तरह घायल हो गये। अनाथालय के दूसरे बहुत से बालक भी देश के ही काम मे लगे। स्पष्ट है कि यह सरदार स्वर्ण सिह की ही देश-भक्ति का प्रभाव था कि अनाथो का निवास क्रान्ति का प्रकाशगृह हो गया था।

क्या स्वर्ण सिंह का यही कैरियर है कि उन्हो ने एक अनाथालय को क्रान्ति का

मंदिर बना लिया ? मैं मानती हूँ कि यह भी कोई छोटा काम नहीं है, क्या कि निष्ठा से किया छोटे से छोटा काम भी महत्वपूर्ण हो जाता है पर उन के कदम यहीं नहीं रुके। वे तो 'चल चल रे नौजवान' का नमूना थे रुकना जिस का काम नहीं होता चलना ही शान मानी जाती है। अनाथालय उन के लिए एक पाठ था। वे अनुभव से यह जान गये थे कि इस तरह का सेवा-कार्य अस्थायी तसल्ली (टम्पोररी रिलीफ) है, रोगनाशक चिकित्सा नहीं। प्रश्न उन के सामने यह था कि सब दुखों की जड़ देश की गुलामी है और उस दूर कर के ही हम देश को नया रूप दे सकते हैं। इस पाठ ने अनाथालय को उन का बचाव केन्द्र बना लिया था जहाँ पुलिस की निगाहों से बच कर वे सूफी अम्बाप्रसाद और करतार सिंह केसगढ़िया आदि के साथ क्रांति-यज्ञ की वेदी सजाया करते थे।

१९०५ ६ में एक साथ क्रांति के दो वृक्ष पनप उठे। बंगाल में बंग भंग के विरोध में स्वदेशी प्रचार विदेशी बहिष्कार का आन्दोलन और पंजाब में पगड़ी संभाल ओ जट्टा की तहरीक। दोनों एक-दूसरे से स्वतन्त्र थे दोनों की विचारधारा भिन्न थी। बंग भंग का आन्दोलन अहिंसात्मक जन-आन्दोलन था तो पंजाब में सुल्आम गदर करने की हिंसात्मक आग बरसायी जा रही थी। पहले आन्दोलन का नेतृत्व कांग्रेस के हाथ में था तो दूसरे के प्रवर्तक सरदार अजीत सिंह थे। सरदार स्वर्ण सिंह ने इस तहरीक को व्यापक रूप देने के लिए चुपचाप गाँव-गाँव के चक्कर काट के इसे संगठित करने में रात दिन एक कर दिया था। अन्त में वे भारतमाता सोसायटी के प्रचार मन्त्री थे। उसी समय में महान् हिन्दी के प्रचार मन्त्री सायरस ने ऐतिहासिक नाम पाया कि उस ने प्रचार के अनेक नये नमूनों का आविष्कार किया। कौन है जो स्वर्ण सिंह की तुलना गोयबल्स से करे पर यह एक ऐतिहासिक सचाई है कि स्वर्ण सिंह प्रचार-कला के आचार्य थे। कान से कान बात पहुँचाना तो वे जानते ही थे कनसर

अनुसार यह जानवर हराम है। अत वैरे ने इनकार किया, तो अँगरेज ऑफिसर ने उसे गोली मार दी। वैरा की मृत्यु किसी तरह समाचार वन कर पत्रो मे छप गयी। 'पंजावी' नामक अँगरेजी अखवार के मालिक श्री जसवन्त राय और सम्पादक श्री के० के० उथावले पर मुकदमे चले और दोनो को दो-दो साल के लिए सख्त जेल की सजा दी गयी। अपील करने पर हाईकोर्ट ने भी सजा वहाल रखी। इस से जनता मे गरमी आयी और जगह-जगह जुलूस निकले, जलसे हुए। लाहौर मे जो शानदार जुलूस निकला, उस का नेतृत्व सरदार स्वर्ण सिह कर रहे थे।

अँगरेज सरकार इसे कहाँ सहने वाली थी, सरदार स्वर्ण सिह और उन के साथी गिरफ्तार कर लिये गये और न्याय का नाटक होने के वाद २० जुलाई १९०७ को सर्वश्री स्वर्ण सिंह, करतार सिंह, वहाली राम, राम सिंह, घसीटाराम और गोवर्धनदास को डेढ-डेढ साल की, लाला लालचन्द 'फलक' को नौ महीने की और गन्धर्वसेन को ३० वेंत की सजा दी गयी। सरदार स्वर्ण सिंह को वोर्स्टल जेल लाहौर मे रखा गया और उन्हे सताने का एक अजीव तरीका वरता गया। उन्हे महाशय घसीटाराम के साथ रहट मे वैल की तरह जोडा गया, पर कमाल यह था कि उस रहट की सव डोलचियाँ फटी हुई थी और पूरा घुमाने पर भी एक वूँद पानी न निकलता था। जव स० स्वर्ण सिह ने यह देखा, तो वे वहाँ से हट गये और उन्हो ने रहट चलाने से इनकार कर दिया। कैदी की स्थिति हमेशा ही वन्धन की होती है, पर उस युग मे तो गुलाम की थी। कैदी की यह हिम्मत कि वह हुकुम मानने से इनकार करे! जेल-अफसरो ने उन्हे रोव मे लेने की कोशिश की, तो उन्हो ने कहा—"कैदी मशक्कत करने को वाध्य है, पर यह रहट मशक्कत नही है, यह तो वदला लेने का गैर-कानूनी यन्त्र है। मै मर जाऊँगा, पर इसे नही चलाऊँगा, इतना ही नही, वे कैदियो के सामने भाषण देने लगे कि कैदी भी इनसान है और उन्हे गैर-कानूनी वातो के सामने सिर नही झुकाना चाहिए। उन के भाषण से कैदी भडक उठे और जेल वालो को पगली घण्टी (एक तरह का कर्फ्यू) वजा कर कैदियो को वैरको मे वन्द करना पडा। वाद मे अपील करने पर चीफ कोर्ट ने उन्हे जमानत पर रिहा कर दिया। छूटते ही वे फिर भारतमाता सोसाइटी के काम मे लग गये।

सरकार की मुख्य निगाह सरदार अजीत सिंह पर थी और वह उन के चारो ओर अपना जाल वुन रही थी। वे आँख वचा कर देश से वाहर चले गये, तो सरदार स्वर्ण सिह उन के सामने थे, पर स्वर्ण सिंह क्रान्ति के नेता नही, राजदूत थे। सरकार विश्वस्त थी कि क्रान्तिकारी गुप्त साहित्य इसी आदमी के द्वारा छपाया और गाँव-गाँव पहुँचाया गया है, लेकिन पुलिस के छापो मे जो कुछ मिला था, उस मे सरदार स्वर्ण सिंह का कही अता-पता भी न था। उन पर वह हाथ कैसे डालती? तव विशेषज्ञो को उन का मामला सौंपा गया, जो मुकदमा चलाने मे नही, मुकदमा वनाने मे माहिर थे। सरदार स्वर्ण सिंह और उन के साथी लालचन्द 'फलक' पर कई मुकदमे एक साथ

चलाए गये—इस में नहीं तो उस में और उस में नहीं तो इस में, कहीं तो फसेगा ही।

मुकदमा सत्य पर नहीं, सबूत पर खड़ा होता है और सबूत मिलते नहीं, बनाये जाते हैं। सरकार के पक्ष में सबूत बनाने वाले पुलिस अधिकारी थे और बने हुए सबूतों को जमाने वाले वकील थे। जरूरत ऐसे वकीलों की थी जो उन बनाये सबूतों के महल को उखाड़ने वाली जिरह और गुत्थियाँ सुलझाने वाली बहसों से धराशायी कर दें, पर उस युग में ऐसे साहसी वकील कहाँ थे, जो सरकार के मकड़जाल को गले में डालने की हिम्मत करें? तो एक तरफ वकीलों और सबूतों से लैस सरकार थी दूसरी तरफ कचहरी के दावपेचों से अनभिज्ञ सरदार स्वर्ण सिंह। फिर मजिस्ट्रेट उन का था, जो दावेदार थे। उस के पास सरकारी पक्ष के लिए भरपूर समय था पर सरदार स्वर्ण सिंह की हर बात उस के लिए फालतू थी और फालतू बात सुनने की उसे फुरसत कहाँ होती?

जब यह मुकदमा चल रहा था और वे जेल में थे तो उन्हें इतना खराब खाना मिलता था कि वे उसे खा नहीं सकते थे और भूखे रहते थे। एक पेशी पर लाला लाल चन्द फलक ने (जो इस मुकदमे में भी उन के साथी थे) अदालत में जेल की एक रोटी पेश की। जो पकड़ते ही टूट गयी क्या कि उस में बेहद मिट्टी मिली हुई थी। दूसरी पेशी पर सरदार किशन सिंह घर से खाना ले कर गये। सरदार स्वर्ण सिंह ने मजिस्ट्रेट से कहा—'मैं भूखा हूँ पहले मुझे खाना खाने दो, बाद में मुकदमे की बात होगी।' सरकारी वकील पिटमन ने गुर्राकर कहा—'पहले मुकदमे की कार्यवाही होगी बाद में तुम खाना खा सकते हो।' सरदार स्वर्ण सिंह अड़ गये अपनी बात पर और सरदार किशन सिंह से ले कर खाना खाने लगे। खाना खाते जाते थे और पिटमन की तरफ देख कर मुस्कराते जाते थे। पिटमन बहुत नाराज था पर वह कर ही क्या सकता था?

सरदार स्वर्ण सिंह को डेढ़ साल की सख्त सजा दी गयी। जो आदमी क्रांति के पथ पर पैर रखता है जेल की सड़क पर ही तो चलता है। कैद का ऐलान ताजा नया हो उस के लिए तो पुरानी बात ही होती है वे जेल जाने से चिन्तित क्या होते? फिर जेल कोई नयी बात तो न था। वे जेल देख आये थे उन के दोनों बड़े भाइयों की जीवन सहचरी थी जेल पर हाँ वे चिन्तित थे श्रीमती हुक्म कौर के लिए जो परिवार की एक विशेष परिस्थिति में उन की जीवन-सहचरी बना दी गयी थी। जब जेल जाने के लिए उन्हें हथकड़ियाँ पहनायी गयी तो उन्हें हुक्म कौर की चूड़ियाँ खनखनाती सुनाई दीं और बिजली का सन्नाटा उन की नसों में खिंच गया। वे एक सहृदय मनुष्य थे, सेवाशील और सुख-दुःख में काम आने वाले साथी थे पर वे उस की कोई सेवा न कर सकते थे जो सिर्फ उन की थी और जो इस लिए अपने अरमानों की चिता पर जाते जा जलने को मजबूर थी कि वह उन की पत्नी है। क्रान्तिकारी होते हुए भी उन्हें उन के सपनों का पूरा अहसास था, जो हुक्म कौर ने बचपन से विवाह के दिन तक सँजोये

होगे, पर उन की आँखो में एक इतना वडा सपना छा गया था, जो थोडी देर मे सव सपनो को ढँक देता था।

अव वे जेल मे थे। जेल मे अपराधी रहते है, पर अपराधी भी मनुष्य होते है। इस लिए जेल के भी कुछ नियम है। जो अपराधियो के अधिकारो की घोपणा करते है, पर पुलिस दीवान से गवर्नर तक उन के विरुद्ध था। जेल अधिकारियो को इनाम इस मे मिलने वाला न था कि उन्हो ने इस कैदी को हिफाजत से रखा। उनका श्रेय इस मे था कि उन्हो ने इसे वेकार कर दिया। उन की पारखी आँखो ने सरदार स्वर्ण सिह को देखते ही परख लिया कि उन का मन लाख पत्थर का हो, तन वहुत कोमल है। उन्हो ने उन्हे लम्वी मुद्दत के लिए काल-कोठरी मे डाल दिया, जहाँ का अन्धेरा एकान्त मनुष्य को तोड डालता है। इस के बाद उन्हे चक्की और कोल्हू मे लगाया गया। काला सूनापन, पशुओ को भी थका देने वाली मेहनत, गन्दी और कम खुराक और नव-विवाहिता पत्नी का, उस के शापित भविष्य की चिन्ता से ग्रस्त वियोग।

पहले कमजोरी आयी, फिर वीमारी। हर जेल मे हस्पताल होता हे, चिकित्सा की जाती है। उन्हे भी डॉक्टर देखता रहा, पर रोग वढता रहा, मृत्यु की जकडन सख्त होती रही। वुखार रहने लगा, खाँसी आने लगी और तव थूक के साथ खून। अँगरेज़ सरकार का दावा था कि वह कानून से चलने वाली सरकार है, जोर-जवरदस्ती की नही। विशेपज्ञ डॉक्टर वुलाये गये, थर्मामीटर लगा, स्टेथेस्कोप ने दिल की वात कान मे कही, और रिपोर्ट मिली कि तपेदिक हो गया है, सेकेण्ड स्टेज पर है, वचना असम्भव है। सरकार दण्ड देती थी, तो दया भी करती थी। जेल ने प्रस्ताव किया, कलक्टर ने समर्थन किया, गवर्नर ने स्वीकृति दी, वे छोड दिये गये। यही नही, यह भी कि उन पर कई कचहरियो मे चल रहे कई मुकदमे भी वापस ले लिये गये, उन्हे पूरी तरह मुक्त कर दिया गया। वेचारी सरकार और कर ही क्या सकती थी!

अव वे अपने घर मे थे। डॉक्टर भी थे, पत्नी भी थी, चिकित्सा भी थी, खुराक भी थी, सेवा भी थी। चिकित्सा अपना काम कर रही थी, सेवा अपना, पर मौत ने जो इरादा वाँध लिया था, अँगरेजी सरकार को उस ने जो आश्वासन दिया था, उस पर वह अडिग थी। जो जेल मे होना था, वही घर मे हो रहा था। सरकार अपना काम कर चुकी थी, मौत अपना काम कर रही थी और सरदार स्वर्ण सिंह? वे भी अपना काम कर चुके थे। उन्हो ने सरकार के काम मे वाधा नही डाली थी और वे मौत के काम मे भी वाधा नही डाल रहे थे। मृत्यु के प्रति वे निश्चिन्त थे। ठीक भी हे, जो सोच-समझ कर फाँसी की राह चला हो कि एक झटका और वस सव-कुछ समाप्त, वह धीरे-धीरे पास आ रही मृत्यु की पगचाप से क्यो घवरायेगा?

लगभग डेढ साल वे जेल के सीखचो से मुक्त हो रोग-शय्या पर पडे रहे। और १९१० मे २३ वर्प की भरी जवानी मे देशानुरागी और गृहस्थ वैरागी का आदर्श छोड, वे शहादत की नीद सो गये। कैसा मार्मिक सयोग है कि इस वलिदान के इक्कीस साल

वा॰ उन क भतीज भगत सिंह भी २३ वर्ष की भरी जवानी में ही शहीद हुए। थामता हुक्म और उन के जीते भी अकेला थी, उन क मरने क बा॰ भी। उन के जाते उन्हें प्रतीक्षा का सहारा था उन क मरे स्मृतियों का सहारा मिल गया। जिन्हें प्रत्यक्ष सहारे मिले हैं वे इन अप्रत्यक्ष सहारों के मीठे दर्द का रस क्या जानें? सोचती हूँ क्रान्ति के इतिहास में मरने वालों ने जो कुछ सहा है क्या उस से भी अधिक असह्य नहीं है वह जो उन के पीछे जीने वालों ने सहा? एक वे हैं जो मौत की कीमत में बहुत-कुछ पा गये और एक वे हैं जो जिन्दगी की कीमत में सब-कुछ दे गये। वास्तव इतिहास की अपेक्षा सामान्य इतिहास कितना मार्मिक है कितना करुण!!

निराशा की जीवित निशा : श्रीमती हुकम कौर

१९१० में उन का सौभाग्य-सूर्य डूब गया था और १९६६ मे वुझा उन का जीवन-प्रदीप। १९१० और १९६६। खून जमने लगता है मेरा इस आँकडे को याद कर के और मै उस जमते खून को हरकत देने के लिए उँगलियों पर गिनने लगती हूँ · १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६० और ६ जोड वैठता है छप्पन। वुद्धि जरा दौडती है एक जिज्ञासा से पचास वर्ष की आधी शताब्दी और उस से भी छह वर्ष अधिक ? जानता मन अनजान वनना चाहता है उस कवूतर की तरह, जो विल्ली को देख कर आँख मूँद लेता है और सोचता है यह कि भाग गयी विल्ली—कहाँ है यहाँ विल्ली ? कही भी नही। अनजान वनता मन कहता है—नही जी, छप्पन नही हो सकते, छप्पन तो वहुत होते है। मै फिर गिनने लगती हूँ उँगलियो पर १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६० और ६ जोड वैठता है वही छप्पन, आधी शताव्दी और छह वर्ष, कई वार यही उलट-पुलट होती है, पर गणित तो गणित है। मै एक वार गिनूँ या एक सौ एक वार—एक और एक दो ही रहेंगे। हुकम कौर तपी थी, जली थी, पूरे छप्पन वर्ष तक, विना किसी आशा के, विना किसी प्रतीक्षा के, विना किसी मानसिक सहारे के। उन का आज जैसा सूना था, उन का कल और परसो भी वैसा ही सूना होना था न उन के जीवन मे आज कोई खुशी थी, न कल कोई खुशी होनी थी। उन के जीवन के लिए परिवर्तन सिर्फ कोश मे लिखा शव्द था, व्यवहार मे उस की कीमत न थी एक कहावत निराश से निराश मनुष्य को भी आशा का वरदान देती है—वारह साल मे तो कुररी के भी भाग जागते है—पर वारह चौक अडतालिस और आठ छप्पन वर्ष में भी उन के भाग नही जागे। वे सोये ही इस तरह थे कि उन्हे फिर कभी जागना न था। वे निराशा की ऐसी जीवित निशा थी, जिसका चाँद लुट गया था और सूर्य इस तरह डूव गया था कि फिर कभी उसे उगना ही न था। इस कहावत की तरह ही कहावत है, 'दसोटा नल का भी कट गया था'—ठीक है नल और दमयन्ती का हाथ छूट गया था, पर हुकम कौर का हाथ छूट नही टूट गया था, जिसे अव किसी के द्वारा पकडे जाने की सम्भावना ही न थी। नल-दमयन्ती का

जीवन बिखर गया था जिस का राज एव हिन पूण हो गयी, पर हुकम कौर का जीवन तो बिगर गया था रत म तल का तरह जिस बटोरना अब सम्भव ही न था।

सोचती हूँ ता सोचती ही रह जाती हूँ कि कितना जनिगाता था उन का व्यक्तित्व कि इस हालत म भी व छप्पन साल जीवित रही और जीवन के इन लम्ब बरसो म कितने बरस एग थ जब सुबह चार बजे स रात क दस बजे तक उन्हो न काम किया। कितना मजबूत था उन का दह-दुग कि टूटा नही व पागल नहीं हुइ, मुरझायी—मुरी नहीं और फालिज उन क पास आत डरता रहा। हिटलर बड़ा बहादुर था जो खिडकियां पर रग करन वाले मामूली पेण्टर से बढ कर जमनी का फयूहरर हो गया। उस का देश उस ईश्वर मान कर पूजन लगा दुनिया की राजनीति उस के इशारा पर अपनी चाल का ताल देन लगा पर निराशा के पहल झोंके म ही जहर खा कर मर गया बचारा। नेपोलियन उस स महान था। वह सनिक स सेनापति और सेनापति स फ्रान्स का सम्राट हो गया था और उस न यरप को अपन बूटा से रौंद दिया था पर बाद में एक बन्दी के रूप में उसे सेण्ट हलेना में रहना पडा। वह मरा नहीं आत्म-हत्या उस न नहीं की पर पाँच वष म ही उस का जीवन तत्व खोखला हो गया।

इस क विरुद्ध हुकम कौर उस निराशा में जिस का अत सम्भव ही न था अवण्ड कममय जीवन ५६ वष तक जीती रही आधी शताब्दी और छह वष। करणा का स्रोत उमडने लगता ह छप्पन वष की बात सोच कर पर उस करुणा में काँटे उग आत ह जब म सोचती हूँ उन छप्पन वर्षों स पहले वर्षों की बात। पति का वियोग होने से पहले क्या वे जीवन की परिपूर्णता का उपभोग कर रही थीं? यह प्रश्न साधारण नहीं ह क्यो कि मनुष्य परिपूर्णता के शिखर पर चढ़ने के बाद अपूणता के गड्ढ में गिर पडता ह तो कसक होती ही ह पर तब उस भोगी हुई परिपूर्णता की स्मृतियो का सम्बल साथी हो जाता ह— 'अरे देख ली एक बार दुनिया। जसा एक बार एसा सौ बार। आज कुछ नहीं ह तो क्या कल तो सब-कुछ था। कल का गव आज की हीनता स उबारे रहता ह मनुष्य को।

हुकम कौर की बात सोचते-सोचते मेरा ध्यान अपने देश पर चला जाता ह। हमारा देश वभव और विकास के कलश तक पहुचा और धडाम से गिर कर बिखर गया। उठने की कोइ आशा न रही पर उठा और खूब उठा। प्रश्न है किस सम्बल के सहारे उठा? उत्तर ह—अतीत के गौरव का सहारा ले कर। ऋषि दयानन्द ने देश को पुकारा अतीत के गौरव के नाम पर। और सन्त विवेकानन्द ने ललकारा अतीत गौरव के नाम पर कविवर रवीन्द्रनाथ की दृष्टि अन्त तक देश क अतीत पर लगी रही और राष्ट्रकवि मथिलीशरण गुप्त ने भी अपनी आवाज यहीं से आरम्भ की— हम कौन थे क्या हो गय ह और क्या होंगे अभी। उज्ज्वल अतीत मनुष्य के लिए एक बहुत बड़ा सहारा ह जो उस उठन की प्रेरणा देता ह उठ सकने का विश्वास दिलाता ह।

करुणा की साक्षात् प्रतिमा श्रीमती हुकम कौर के साथ ऐसा अतीत कहाँ था ? मृत्यु से पहले डेढ वर्ष तक उन के पति सरदार स्वर्ग सिह तपेदिक से ग्रस्त थे । उन दिनो मे आशा की कोई किरण नही थी, डॉक्टर-हकीम-वैद्य—सभी ने उन के रोग को असाध्य कह दिया था । इस का अर्थ है कि इस डेढ वर्ष मे हर घडी मृत्यु हुकम कौर के पास थी । किसी के घर मे साँप के रहने का वहम हो जाये, तो उसे चैन नही पडती, पर हुकम कौर के तो घर मे नही, पलँग पर ही मौत नाच रही थी । उन्हे कैसे चैन पडती । मृत्यु की चिन्ता, मृत्यु की आशंका, बस यही था उन का जीवन । एक दिन मृत्यु ने उस जीवन को चबा लिया, जो उस के पजे मे था और हुकम कौर का जीवन अँधियारा हो गया ।

उन्हे अब न कभी सजना था, न सँवरना था, न किलकना था । न उन के हाथो मे चूडियाँ खनकनी थी, न माँग मे सिन्दूर दमकना था । उन के जीवन का दशहरा और दीवाली पलक मारते होली मे समा गये थे और जिन्दगी को पनपाने और पुलकाने वाले अरमान राख की एक ढेरी बन कर रह गये थे । इस ढेरी का क्या उपयोग था ? यही कि कभी-कभी आँधी-तूफान मे यह राख उडती थी और उन की आँखो के सामने अँधेरा घुप्प छा जाता था ।

गुरुद्वारे मे मनौती, मन्दिर मे मनौती, पीर और थान पर मनौती मानी जाती है—मेरा यह काम सिद्ध हो जायेगा, तो मै यह भेंट चढाऊँगी । मनौती मन का सपना है, मुझे मानने मे कोई आपत्ति नही कि यह एक अन्धविश्वास है, पर यह भी तो मानना पडेगा कि मनौती माताओ और पत्नियो की डगमगाती आशा-नौका की पतवार है । माँ सन्तान के सकट मे और पत्नी पति की परेशानी मे मनौतियो का सहारा लेती है, पर वे न माँ थी, न पत्नी । वे तो सन्त कवि कबीर की भाषा मे उस धौकनी की तरह थी जो साँस लेते हुए भी निर्जीव होती है । रमजान शरीफ की तपस्या कठिन है—हर इच्छा पर नियन्त्रण रखना पडता है, पर उस के अन्त मे ईद का चाँद तो निकलता है, उस तपस्या का आबे-जमजम ठण्डक तो देता रहता है । हुकम कौर का जीवन तो ऐसा रमजान हो गया था, जिस मे ईद होती ही नही, एक ऐसी अमावस, जिस के बाद दोयज के माथे पर चाँद का टीका सजता ही नही ।

फल की आशा से पूजा-पाठ-प्रार्थना करने को धर्म ने घटिया बात बताया है, पर ससार मे बढिया आदमी कितने है ? जीवन की रेल मे तृतीय और द्वितीय श्रेणी के ही अधिक डिब्बे होते है, प्रथम श्रेणी के कम । फल की कामना ने ही धर्म और ईश्वर की भावना को जीवित रखा है, पर जिस के वृक्ष की जड कट गयी, वह फल कहाँ से पायेगा, फल की कामना क्या करेगा ? हुकम कौर भी ऐसी ही स्थिति मे थी । सस्कारवश वे भी पूजा-पाठ करती थी पर अकसर ऊब कर यह भी कह देती थी—"मुझे क्या दिया है भगवान् ने, जो मै उस की पूजा करूँ ।" सिर पर पति नही, गोद मे सन्तान नही, यौवन निरर्थक, वर्तमान दु ख-भरा और निराशा मे डूबा हुआ । जिन्दगी ही मौत तो

मौन से क्या भय ? फिर भी वे लम्बे वर्षों तक जीवित रहीं। सोचती हूँ कितनी शक्ति थी उन में और सोचती हूँ समाज ने उस शक्ति का उपयोग नहीं किया यह कैसा दारुण चित्र है समाज की निर्जीवता का। साथ ही यह समाज की हृदयहीनता का भी कैसा दयनीय चित्र है कि समाज ने उस हृदय की अपनी पूजा प्रतिष्ठा दे कर सावन की जरा भी कोशिश नहीं की जिस का सारा रक्त समाज को शक्ति देने में ही निचुड़ गया था।

इस साल तक मौन के साथ रहने से पहले हुकम कौर के जीवन में क्या कोई फुलवारी महक रहा थी ? करुणा में डूबा मन पूछता है पर स्मृति का दूत कहता है— नहीं बीमार और मरणासन्न पति की समीपता पाने से पहले इस साल तक उन के पति जेल में थे और वहाँ से उन की बीमारी की खबरें चिनगारी बन कर आतीं और हुकम कौर को जलाती थीं। और उस से पहले ? उस से पहले विवाह की चार दिन की चाँदनी छोटी उम्र के कारण जिस में चाव तो था पर कोई गहरा भाव नहीं था और उस से पहले साधारण परिवार के अभावों में पलने के कष्ट। सोचती हूँ जन्म से मरण तक एक मर्मान्तक निराशा का ही नाम है हुकम कौर पर मर्मान्तक निराशा की लम्बी निशा में भी अविरल अकम्प भाव से चलते रहने की क्षमता से युक्त एक व्यक्तित्व का ही नाम क्या नहीं है हुकम कौर ?

जब आशा का आखिरी सितारा डूबता है तो मन वैसी ही खोयी-खोयी हो जाती है जैसे वह विधवा पति की लाश के पास बैठ कर जिस की आखिरी चूड़ी तोड़ी जा रही हो। उन के जीवन का अंकुर जब उगा तो वहाँ सुख की एक किरण चमक रही थी। हुकम कौर कई भाइयों की इकलौती बहन थी। संविधान लाख चिल्लाये और घोषणा करे भारतीय माता पिता के मन में बेटा-बेटी का भेद नये युग के प्रकाश में भी अन्धकार की तरह छाया हुआ है। फिर वह तो अंधकार का युग ही था जिस में माता पिता और भाई लड़की का जन्म लेते ही गला घोट कर मार देना खटमल मारने की तरह उचित और सहज समझते थे। बेटी के लिए परिवार में सम्मान पाने की एक ही रेखा थी कि वह कई भाइयों की इकलौती बहन हो। हुकम कौर को यह सम्मान सुख प्राप्त हुआ था अपने जन्म के समय पर अभागा के लिए फूल भी अंगार हो जाते हैं। महाकवि कालिदास ने ठीक ही कहा है— 'कभी-कभी अमृत भी विष हो जाता है।'

विधवा होने के बाद दूर बैठे भाइयों का स्मरण हुकम कौर के टूटे जीवन का वैसा ही सहारा था जैसे रात के थके बटोही के पैरों के लिए कहीं दूर पर जलते दीपक की रोशनी। रोशनी से हुकम कौर ने भाग्य को चिढ़ थी एक एक कर के उन के सब भाई मर गये और भाभियाँ भी। जगत सिंह की मृत्यु ने उन के अकेलेपन को और भी सूना कर दिया था। तब सारी ममता उन्होंने भगत सिंह पर उंडेल दी। उन्हें जब फाँसी हुई तो उन का सूना जीवन नये भूकम्प से अधमरा हो गया। इस में उन का कोई दोष न था पर भाग्यवान के दुःख का सब से महत्त्वपूर्ण फल ही यह है कि

आदमी किसी को दोष नही देता बल्कि दूसरों के दोषों को भी अपने ही खाते मे लिख लेता है। उस की भाषा होती है—मेरी, किस्मत ही फूटी थी, तो दूसरो का क्या दोष ? वे अब अकेली रह गयी थी ममता की राह मे और उन का अकेलापन कभी-कभी बडे ही करुण शब्दो मे मुखरित हो उठता था—अकेला तो पेड भी सूख जाता है, फिर मैं तो इनसान हूँ। सोच कर मन तडप उठता है—कितनी प्यास थी उन के भीतर कि कोई मेरा अपना हो, सिर्फ मेरा-ही-मेरा, पर उन का अपना कौन था ? यो तो सब अपने ही थे, पर अपना तो अपना ही होता है। सडक पर चलते कौन अकेला रहा है, लेकिन सडक की भीड से किस का हृदय गुंजार हुआ है ? सडक पर चलते सब अपनी धुन मे होते है, सब के मन में अपना घर होता है, पर जिस का घर ही सूना हो, उस की कल्पना तो सडक पर चलते भी सूनी ही रहेगी। वे सडक की भीड मे भी अकेली थी। क्या यह स्थिति जीवन को तोड डालने वाली नही है ? और क्या इस स्थिति मे भी लम्बी जिन्दगी जीना सरल है ?

श्रीमती हरनाम कौर उन की जेठानी भी पति-विहीन थी और श्रीमती हुकम कौर भी, पर एक का पति विदेश मे जीवित था, दूसरी का स्वर्ग मे। विदेश मे लाख दु ख हो, वहाँ से आदमी कभी-न-कभी लौट तो सकता है, पर स्वर्ग मे लाख सुख हो वहाँ न पासपोर्ट है, न पोस्ट ऑफिस। हरनाम कौर बडे घर की बेटी थी, हुकम कौर साधारण घर की। इस से उन दोनो के प्रति दूसरो से मिलने वाले सम्मान में अन्तर पडता था। हरनाम कौर ने टूटी हड्डी जोडने, दु खती ऑख ठीक करने, मोच निकालने और लडकियो को पढाने का काम सीख रखा था और इन सब के कारण वे गाँव में अधिक सम्मानित थी, उन्हे सब आदर के साथ मिलते थे, घर मे भी उन के साथ अपेक्षाकृत अच्छा व्यवहार होता था। इन सब बातो ने हुकम कौर को उपेक्षित कर दिया और उपेक्षा मनुष्य को भावहीन कर देती है। वे भी चिडचिडी हो गयी थी। जो मन मे हो मुँह पर आ जाता था। हरनाम कौर इस मामले मे चतुर थी। मन की बात मन मे रखती थी, जीभ पर न आने देती थी। कूटनीति प्रशसा पाती थी, स्पष्टनीति निन्दा। यह निन्दा उन्हे कड ुवा कर देती थी, यह कडवाहट उन्हे और निन्दा मे डुबाती थी। हमारा सत्य दर्शन का यन्त्र कितना कमजोर है ? उन का स्वभाव सभी देखते थे, भाव कोई नही। उपेक्षित और निन्दित हो कर भी उन मे कर्तव्य का अथाह भाव था। सुबह चार बजे वे चक्की पर होती थी, सात बजे चूल्हे पर, दस-ग्यारह बजे चौके पर और उस के बाद चरखे पर—काम-ही-काम, काम ही उन का धर्म था और काम ही उन का मर्म। घर अकसर उन के ही हाथ की रोटी खाता था, उन के ही काते सूत के वस्त्र पहनता था, फिर भी वे सब से अधिक उपेक्षित थी।

बिना मोबिल आयल के तो मोटर का एजिन भी घरघराहट करने लगता है। क्या वे कोई यन्त्र थी, जड-यन्त्र जो काम करता है, जिस मे हृदय नही होता ? सब शायद ऐसा ही समझते थे, पर जब भी उन का ध्यान करती हूँ माण्टगुमरी जेल की

कौर ? हाँ, ऐसा ही लगता है, पर हाँ एकदम ना मे बदल गयी, जब उन के विलाप से व्यथित हो, जेल वालो ने कुलतार सिह को जेल की ड्योढी मे जा कर उन से मिल लेने की सुविधा दे दी। वे कुलतार सिह को लिपट गयी और एकदम उन के मुँह से निकला—कुलतार मेरी जिन्दगी तो कट गयी किसी तरह, पर सतीन्द्र कौर (श्रीमती कुलतार सिह) का क्या होगा ? यह कहाँ रहेगी ? मतलब यह कि वे अपने लिए नही, सतीन्द्र कौर के लिए तडप रही थी, उन्हे अपने भविष्य की नही, सतीन्द्र कौर के भविष्य की चिन्ता उद्विग्न कर रही थी। इस से साफ बात यह कि उन के लिए सतीन्द्र कौर का उन की ही तरह जीना असह्य था। वे नही चाहती थी कि उन्हो ने जो त्रास सहे हैं, वे सतीन्द्र कौर को भी सहने पडे, 'जो किसी के दिल मे भी चोट हो, तो जिगर मे मेरा तडप उठे।' मानवीय सहानुभूति, मानवीय समवेदना का क्या यह क्लाईमेक्स नही है और जीवन की कौन-सी कहानी है, जो इस क्लाईमेक्स को पा कर 'क्लैसिकल' न हो उठे।

हुकम कौर खण्डहर मे खडा वृक्ष थी, जहाँ न कोई मालिक न कोई माली, पर वे चाहती थी कि सतीन्द्र कौर सुरक्षित और पोषित चमन की महकती चमेली का जीवन जिये। यह उन के व्यक्तित्व का कोई साधारण पहलू नही है। हुकम कौर कितनी उदार, कितनी सहनशील, कितनी कोमल थी कि अपना दु ख भूल कर दूसरो के सुख मे रस ले पाती थी, पर हमारा समाज कितना सड गया है कि नारियल के छिलके को तो देखता है और उस के भीतर के पोषक रस और मधुर फल को नही। इस से भी आगे यह कि वह पहले घोर उपेक्षा से मनुष्य को चिडचिडा बनाता है फिर उस के बुरे स्वभाव की निन्दा मे जुटा रहता है। हुकम कौर इस का जीवित उदाहरण थी। उन के भाव को कोई न देखता था, उन के स्वभाव की सब निन्दा करते थे। सिराजुद्दौला के चरित्र को धूर्त अँगरेज इतिहासकारो ने योजनापूर्वक खूब काला किया, पर बाद मे कर्नल अलकाट ने ईमानदारी से खोज कर के जब सिराजुद्दौला का जीवन-चरित्र लिखा, तो उस के प्रथम पृष्ठ पर एक सूत्र अकित किया—"सिराजुद्दौला बद नही, बदनसीब था।" सोचता हूँ क्या यही सूत्र हुकम कौर के जीवन-चरित्र का सार-सूत्र नही है।

यह बात है १९१० की कि वह बीस वर्ष की उमर मे विधवा हो गयी और यह बात है १४ जनवरी १९६६ की कि वे स्वर्ग सिधार गयी। उन की मृत्यु एक दु खिया औरत की मृत्यु थी, लेकिन एक बात इस मृत्यु पर महत्त्व की वार्निश कर देती है। उन का जीवन मृत्यु के धक्के सहते बीता था, पर उन के जीवन पर सब से गहरा प्रभाव जिस मृत्यु का पडा, वह थी प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री की ११ जनवरी १९६६ को मृत्यु।

क्या शास्त्री जी से उन का व्यक्तिगत सम्पर्क—सम्बन्ध था ? सम्बन्ध क्या होता, जब उन्हो ने उन्हे कभी देखा भी न था। फिर ? 'हाय, पाकिस्तान के राजा ने हमारे राजा को मार दिया!'—ये शब्द थे, जो हर घड़ी उन के मुँह से निकलते रहे।

तो शास्त्री जी उन के राजा थे, मन के देश के राजा थे। क्या कहते हैं उन के दुःख भरे शब्द? यही न कि उन के मूक जीवन का अन्तःस्रोत राष्ट्र के साथ जुड़ा था और एक महान् की पत्नी की भावना ही उन में न थी, राष्ट्र की जाग्रत चेतना भी उन में थी। ठीक भी है, समाज और परिवार में उन्होंने जो कुछ सहा था, वह देश के कारण और देश के लिए ही तो सहा था। उन का सहज प्रह्लाद के गरम खम्भे से लिपटने-जैसा ही दारुण तो था। उन की जलन को भगत सिंह ने ठीक-ठीक आँका था—जब वे जेल में थे, चाची जी ने उन से कहा था—बेटा, सरकार बड़ी सख्त है, तुम्हें सताती होगी। उन्हों ने उत्तर दिया था—चाची जी, यह सरकार तुम्हारी सरकार से कम सख्त है और कम सताती है।

शहीदों के शहीद भगत सिंह : जीवन-झाँकी

- क्या होते है भला सात वर्ष !
- उस युग मे सात वर्ष का वालक मुश्किल से तख्ती ले कर स्कूल जाने लायक होता था ।
- १९२४ से १९३१ सात ही वर्ष होते है ।
- हिसाव मे पाई से पाई मिलानी हो तो इन मे तीन महीने और जुडते है—जनवरी, फरवरी, मार्च ।
- मार्च भी पूरा नही, उस के सिर्फ २३ दिन !
- इस तरह कुल सात वर्ष दो महीने और तेईस दिन ।
- कुछ भी नही, कुछ भी तो नही ।
- हम सव के जीवन मे सात वर्ष और तीन महीने देखते-ही-देखते गुजर जाते है, तो सचमुच कुछ भी तो नही होते सात वर्ष और तीन महीने ।
- हाँ, कुछ नही होते, पर वह इतने ही दिनो मे तूफान भी हो गया और निर्माण भी ।
- संसार की सव से वडी शक्ति की नीव भी हिला गया और राष्ट्र को नयी समाज-व्यवस्था का सूत्र भी दे गया ।
- हम वे दिन भी गिन लें, जो वेहोशी मे वीते और वे दिन भी गिन लें जो वेखुदी मे वीते तो तेईस वर्ष होते है ।
- क्या होते है तेईस वर्ष । किसी भी कॉलेज में इस उम्र के नवयुवक वी० ए० या एम० ए० की कक्षाओ मे वैठे मिलेंगे ।
- पर वह तेईस वर्ष की उम्र मे ही दुश्मन को वेहाल और देश को निहाल कर गया, इतिहास का एक पृष्ठ लिख गया, इतिहास का एक पृष्ठ हो गया !
- स्वामी विवेकानन्द उनतालीस वर्ष की उम्र मे अपना काम कर गये थे, महामानव ईसा तैंतीस वर्ष की उम्र मे और महापुरुष शंकराचार्य तीस वर्ष की उम्र मे, पर उस ने तेजी से ये रेकॉर्ड भी तोड़ दिये और तेईस वर्ष की उम्र मे ही अपने तमाशे का तम्बू फैला भी दिया और समेट भी लिया ।

ये थे भगत सिंह, शहीदो के शहीद भगत सिंह !

कौन-सा दिन होता है और कौन-सी तारीख जिस में बालकों के जन्म नहीं होते, पर इन जन्म लेने वाले बालकों में कोई-कोई ऐसा भी होता है जिस के जन्म के कारण उसे जन्म देने वाली तिथि इतिहास में स्मरणीय हो जाती है—स्वयं इतिहास बन जाती है। २५ दिसम्बर ईसा को जन्म दे कर, वैसाख की पूर्णिमा बुद्ध को जन्म दे कर और २ अक्तूबर गांधी को जन्म दे कर जो पद पा गयी थी वही पद २८ सितम्बर १९०७ आश्विन शुक्ला त्रयोदशी संवत् १९६४ विक्रमी शनिवार प्रातः लगभग ९ बजे भगत सिंह को जन्म दे कर पा गयी। यह घटना ग्राम बंगा जिला लायलपुर (अब पाकिस्तान) में हुई।

प्राचीन साहित्य में संस्कृत के कवियों ने महापुरुषों के जन्म पर प्रकृति को प्रभावित होते—बादलों का घिर आना या छँट जाना, पुष्पों का असाधारण रूप से खिल उठना इत्यादि—दिखाया है। भगत सिंह के जन्म पर प्रकृति पूरी तरह प्रभावित हुई पर राष्ट्र की राजनीति के रूप में उसे उस ने अपने इशारों में साफ़ कहा हो कि आज राजनीति का एक भावी कर्णधार जन्मा है। उसी दिन उन के चाचा सरदार अजीत सिंह के निर्वासन समाप्त होने की सूचना मिली और उसी दिन उन के पिता सरदार किशन सिंह और उन के छोटे चाचा सरदार स्वर्ण सिंह जेल से रिहा हुए। सब ने उन्हें भागां वाला—भाग्यवान—कहा और इसी से उन की दादी श्रीमती जयकौर ने उन का नाम रख दिया भगत सिंह।

उन्हों ने अपने माता पिता से रूपवान और बलिष्ठ व्यक्तित्व पाया था। आकर्षण उन के उस व्यक्तित्व की जन्मजात विशेषता थी। जीवन का पहला वर्ष पूरा करते-करते वे सब की गोद के लाडले हो गये थे। दादियां, माताएं और बहू-बेटियां ही नहीं छोटी उम्र के बालक भी उन्हें गोद लेने को उत्सुक रहते थे। उन की जो बातें सब को प्रभावित करती थीं वह थी उन का दूसरों को देखना और मुसकराने का निराला ढंग। बड़े-बूढ़े उन्हें देख कर उन के उज्ज्वल भविष्य की बातें किया करते थे—'बड़ा होनहार बेटा पैदा हुआ है सरदार किशन सिंह के घर।' और यह भी कि 'खानदान की इज़्ज़त में यह चार चाँद लगायेगा।'

और अब वे हो गये थे ढाई-तीन साल के। उन दिनों खेतों में नया बाग लग रहा था। ज़मीन तैयार हो चुकी थी और उस में आम के पौधे रोपे जा रहे थे। सरदार किशन सिंह अपने मित्र श्री मेहता नन्दकिशोर के साथ अपना बाग देखने के लिए खेतों पर गये। भगत सिंह भी साथ थे। पिता की उँगली छोड़ वे खेत में बैठ गये और पौधों की तरह छोटे-छोटे तिनके ज़मीन में रोपने लगे। आश्चर्य से मेहता जी ने कहा—'आपका बेटा तो अभी से किसान बन गया है और पौधे रोप रहा है।'

पिता ने प्यार से कहा—'क्या कर रहे हो भगत सिंह।' इस के उत्तर ने दोनों को स्तब्ध सा कर दिया और सच भी—'बन्दूकें बो रहा हूँ।' स्वर ऐसा था कि जो कृषि का कोई विशेषज्ञ हो।

सोचती हूँ जो वालक वन्दूक शब्द का उच्चारण भी नही कर सकता और जो नही जानता कि वन्दूक का उपयोग क्या है, वह अपने खेत मे वन्दूक वो रहा था, अपने उन हाथो से, जिन मे चलाना तो दूर, अभी वन्दूक थामने की भी ताक़त न थी। वचपन भविष्य की भूमिका है। भूमिका को पढ कर हम ग्रन्थ का स्वरूप और विषय-विकास जान लेते हैं। वचपन मे भी भविष्य के वीज और अकुर मिल जाते हैं। उस दिन यह कौन सोच सकता था कि जो वालक तुतलाते-तुतलाते ही खेत मे वन्दूक वोने लगा है, आगे चल कर उस का व्यक्तित्व स्वय ही वन्दूको का ऐसा खेत हो जायेगा जिस मे उस के वलिदान के वाद भी वन्दूकें उपजेंगी और जव तक भारत का इतिहास जीवित रहेगा, वन्दूकें उपजती रहेगी।

भगत सिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह भारत से फरार हो कर विदेश चले गये थे। उन की पत्नी श्रीमती हरनाम कौर भगत सिंह को गोद मे लिटा लेती और वात्सल्य की गहरी अनुभूति मे डूव जाती। वात्सल्य और दाम्पत्य की भावनाएँ जन्म-जात सहचरी है। वे दाम्पत्य की स्मृतियो मे घिर जाती और उन की आँखो की वद-लियाँ वरसने लगती। भगत सिंह देखते, तो विह्वल हो जाते। वे आँसुओं का कारण तो तव क्या समझते, पर उन का चेतना-यन्त्र इतना समर्थ था कि वे उन के दुःख को गहराई के साथ महसूस करते और गोद मे लेटे ही लेटे आँसू पोछते। कौन सोच सकता था उस दिन कि जो वालक आज अपनी चाची के आँसू पोंछ रहा है, वह भारतमाता के आँसू पोछने के लिए जन्मा है। चाची वालक की निश्छल सहानुभूति पा कर और भी द्रवित हो जाती, तो भगत सिंह गोद से उतर कर दोनो वाँहे चाची के गले मे डाल देते। उन्हे अपने मे कस कर मूक सहारा देते और कभी-कभी स्वयं भी रो पडते।

भगत सिंह की शिक्षा वगा गाँव के प्राइमरी स्कूल मे आरम्भ हुई तो वे श्रेष्ठ विद्यार्थी सिद्ध हुए। पाठ याद करने मे वे सावधान रहते थे, तो लिखाई को सुन्दर वनाने मे सतर्क। जमा-जमा कर पढते, वना-वना कर लिखते। अध्यापको के प्रति वे वहुत शालीन थे, तो साथी विद्यार्थियो के प्रति हमदर्द। स्कूल उन के व्यवहार से उन के लिए परिवार हो गया। छुट्टी होती तो वडी कक्षाओ के वालक उन को कन्धो पर वैठा कर घर छोड जाते।

उन का यह समय अपने दादा सरदार अर्जुन सिंह के संरक्षण मे वीता। दादा जी धर्म-पुरुष भी थे, कर्म-पुरुष भी। निश्चय ही उन का धर्म और कर्म दोनो ही राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत थे, फिर भी भगत सिंह किस धातु के वने थे, इस का पता इस वात मे भी साफ झलकता है कि उन्हों ने अपने दादा के धर्म का नही, कर्म का ही प्रभाव ग्रहण किया। गाँव के सीधे-सादे जीवन मे रहते और हवन, वेदपाठ, प्रभु प्रार्थना और गुण-कीर्तन के गहरे घने वातावरण मे पलते हुए भी भगत सिंह का धर्म के प्रति विरक्त रह जाना उन के उस लौह व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत करता ह जो जन्मजात होता है और विरोधी आँधियो में भी अपनी दिशा मे आगे वढता है।

उन की जो वृत्तियाँ बचपन में ही झलकने लगी थीं, उन में एक थी मित्रता की वृत्ति। गाय चराने वाले बालक तो उन के मित्र थे ही पर बड़ों-बड़ों से भी वे मित्रता जोड़ते थे। इस की भी एक निराली अदा थी। एक दिन गाँव का बूढ़ा दरजी उन की कमीज़ सिल कर उन्हें दे गया। कमीज़ देख कर बोले—"दरजी मेरा दोस्त है। वह मेरे लिए कमीज़ लाया है।" कोई उन्हें कुछ चीज़ दे जाता तो घर आ कर कहते थे—"वह मेरा दोस्त है, ऐसा मुझ से दे गया है।"

एक बार ऐसा हुआ कि उन्हों ने एक ही दिन में कई बार यह घोषणा की—"यह मेरा दोस्त है, वह मेरा दोस्त है।" घर में ही किसी ने कहा—"यह और वह क्या, तुम्हारा तो सारा गाँव ही दोस्त है।" छाती पर हाथ रख कर एक समझदार आदमी की तरह बोले— "हाँ सारे मेरे दोस्त हैं।" उन के दावे का ढंग देख कर सब हँस पड़े, पर उस दिन उन हँसने वालों को क्या पता था कि यह बालक साल्ह-सत्रह वर्ष बाद ही अपनी मौत का सिक्का फेंक कर करोड़ों स्त्री-पुरुषों की दोस्ती खरीद लेगा और उस के ये बोल उस के ही नहीं इतिहास के बोल हैं।

तीसरी कक्षा में पहुँचने-पहुँचने वे उस क्रान्ति को झिलमिल रूप में समझने लगे थे, जिस के कारण उन के एक चाचा विदेश में भटक रहे थे, घर न आ सकते थे, चाची को रोना पड़ता था, दूसरे चाचा जेल के अत्याचारों से शहीद हो गये थे और पिता का एक पैर जेल में रहता था। अब भगत सिंह चाचियों के दुःखी होने पर उन के पास बैठ जाते, इस तरह जैसे कि जैसे उन के दुःख को ठीक-ठीक महसूस कर रहे हों। वे दोनों चाचियों को धीरज बंधाते, पर बाल प्रतिभा का यह एक चमत्कार ही है कि वे श्रीमती हरनाम कौर को कहते — चाची जी, आप दुःखी न हों, मैं अँगरेजों को यहाँ से भगा दूँगा और चाचा जी को वापस लाऊँगा।' दूसरी चाची श्रीमती हुकम कौर से कहते— चाची जी, आप दुःखी न हों। मैं अँगरेज़ों से अच्छी तरह बदला लूँगा। कहते समय उन का बाल-स्वर ऐसा सन्नद्ध होता, जैसे किसी देश का सेनापति आक्रमणकारियों को भगाने के सम्बन्ध में प्रधान मन्त्री को आश्वासन दे रहा हो। सुनते-सुनते चाचियाँ अपना दुःख भूल कर बालक को अपने में समेट लेतीं और रोते-रोते भी मुसकरा पड़तीं।

चौथी कक्षा में पहुँचने पर वे सभी विद्यार्थियों से पूछा करते थे— 'तुम बड़े हो कर क्या करोगे।' कोई कहता—नौकरी करूँगा, कोई खेती की बात करता, कोई दुकानदारी की। वे सुनते रहते, पर जब कोई कहता— 'मैं शादी करूँगा', तो वे जोश से कहते—"शादी करना भी कोई बड़ा काम है। मैं हरगिज़ शादी नहीं करूँगा। मैं तो अँगरेजों को देश से बाहर निकालूँगा।

पढ़ने में इतने तेज थे कि चौथी कक्षा की पढ़ाई के साथ ही उन्हों ने घर में रखी सरदार अजीत सिंह, सूफी अम्बाप्रसाद और लाला हरदयाल की लिखी पचास से अधिक छोटी-बड़ी पुस्तकें पढ़ डालीं। घर में पुराने अखबारों की फाइलें भी थीं। उन

मे सरदार अजीत सिह् और लाला लाजपत राय के निर्वासन तथा दूसरे राजनैतिक काण्डो के समाचार थे। इन सब को भी उन्हो ने पढ डाला। इस अध्ययन ने चाचियो के आँसुओ की छाया मे बोयी गयी अँगरेज-विरोधी प्रवृत्ति को अकुरो का रूप दे दिया। उम्र के विचार से वे अभी बालक ही थे, पर बात-चीत, विचार-विमर्श और चाल-ढाल मे अपनी उम्र से बहुत आगे थे—बहुत आगे, इतने आगे कि उन के अध्यापक उन का आदर करते थे और दूसरे छात्रो को वैसा बनने की प्रेरणा देते थे। पढाई, अनुशासन, सफाई, स्वच्छता, और सहयोग के लिए ताडना तो दूर रहा, उन्हे कभी कहना भी न पडता था। लोकप्रियता के जिस शिखर पर वे अपने जीवन के अन्त मे पहुँचे, उस का शिलान्यास उन्हो ने बचपन मे ही कर दिया था। उन का बचपन सचमुच उन के भविष्य की भूमिका थी।

गांव में प्रायमरी पास कर भगत सिंह अपने माता पिता के पास नवांकोट लाहौर चले गये। उन दिनों सिखों के बालक सिख जाति-द्वारा स्थापित और संचालित खालसा स्कूलों में ही पढा करते थे। सब के आग्रह करने पर भी सरदार किशन सिंह ने उन्हें खालसा स्कूल के बजाय डी० ए० वी० स्कूल में भरती किया। दादा जी सरदार अर्जुन सिंह का प्रभाव तो इस में था ही पर खास बात यह थी कि खालसा स्कूलों का प्रबन्ध सरकारपरस्त आदमियों के हाथ में था और वहां 'गाड सेव द किंग'—ईश्वर राजा की रक्षा करे—का गीत प्रार्थना में गाया जाता था। भगत सिंह के जन्म के पीछे क्रान्तिवीरपन की कामना थी। वे उन्हें राजभक्ति के वातावरण में कैसे रख सकते थे।

भगत सिंह पांचवीं क्लास में पढ़ने लगे। गांव के स्कूल और शहर के स्कूल दोनों के वातावरण और स्तर में अन्तर है, यह सोच कर पिता जी ने उन के लिए ट्यूशन का प्रबन्ध कर दिया। कुछ दिन बाद जब एक दिन सरदार किशन सिंह अध्यापक से मिले तो पूछा—आप का शिष्य ठीक पढ़ रहा है। अध्यापक का उत्तर था—वह तो शिष्य क्या स्वयं गुरु है। मैं इसे क्या पढ़ाऊं वह तो लगता है पहले ही सब-कुछ पढ़ा हुआ है। स्कूल की पुस्तकें तो वे पढ़ते ही थे बाहर की जो पुस्तक या समाचारपत्र उन्हें मिल जाता उसे भी वे याद कर डालते थे। उन्हीं दिनों राष्ट्रीय घटनाओं पर उन का ध्यान अपनी कक्षा और उम्र दोनों से काफी आगे था। यह १९१७ की बात है। प्रथम विश्व-युद्ध चल रहा था। उस के बीच में गदर-पार्टी ने भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध १९ फरवरी १९१५ को गदर करने की योजना बनायी थी वह अनेक कारणों से असफल हो गयी थी। उस के नेता गिरफ्तार कर लिये गये थे और मुकदमा चला कर फांसी-काला पानी आदि की सजाएं दी जा चुकी थीं। मुकदमा जेल के भीतर हुआ था और उस की खबरें भी सेंसर हो कर ही अखबारों में छपती थीं। फिर भी युद्ध की खबरों के बाद जनता के दिल-दिमाग में सनसनीदार खबरें वे ही थीं। भगत सिंह ने उन्हें बहुत ध्यान से पढ़ा था और उन का मन उन में बहुत आन्दोलित रहा था। कहना चाहिए कि सरदार अजीत सिंह, सूफी अम्बा प्रसाद,

और लाला हरदयाल का साहित्य पढ कर उन के मन पर अँगरेजो के विरोध की जो रेखाएँ खिची थी, वे इन खबरों से और गहरी हो गयी थी। एक समझदार बालक का मन ऐसी खबरो मे जितना प्रभावित हो सकता है, भगत सिह का मन उस से अधिक प्रभावित हुआ था। उस का एक कारण तो भगत सिह का जन्मजात सस्कार था, दूसरा यह कि उन के पिता सरदार किशन सिह देश के क्रान्ति-आन्दोलन के एक प्रमुख पुरुप थे। भगत सिह जब-तब उन से इस बारे मे पूछते रहते थे और गहरी जानकारी पाते रहते थे।

२२ जुलाई १९१८ को उन्हो ने अपने दादा सरदार अर्जुन सिह को उर्दू मे यह कार्ड लिखा था—

ओम

श्रीमान् पूज्य बाबा जी, नमस्ते।

अर्ज यह है कि खत आप का मिला। पढ कर दिल को खुशी हासिल हुई। इम्तहान की बाबत यह हे कि मैं ने पहले इस वास्ते नही लिखा था, हमे बताया नही था। अब हमे अँगरेजी और सस्कृत का बताया है। उस मे मै पास हूँ। सस्कृत मे मेरे १५० नम्बरो मे से ११० नम्बर है, अँगरेजी मे १५० मे से ६८ नम्बर है। जो १५० नम्बरो मे से ५० नम्बर ले जाये, वह पास होता है। नम्बर ६८ ले कर अच्छा पास हो गया हूँ। किसी किस्म का फिकर न करे। बाकी नही बताया और छुट्टियाँ, ८ अगस्त को पहली छुट्टी होगी। आप कब आयेंगे, तहरीर फरमावें।

आप का ताबेदार

भगत सिह

संस्कृत मे भगत सिंह ने १५० मे ११० नम्बर लिये, पर अँगरेजी मे १५० मे ६८ ही, उन्हो ने सोचा कि इस का दादा जी के मन पर बुरा प्रभाव न पडे, इसी लिए बताया कि पास होने के लिए तो ५० नम्बर ही काफी थे, मै ६८ नम्बरो से 'अच्छा पास' हो गया हूँ। कार्ड के ऊपर लिखा ओम् और संस्कृत मे दिलचस्पी दादा सरदार अर्जुन सिह का प्रभाव दर्शाते है और बात कहने का ढग, उन के स्वभाव मे भोलेपन और चातुर्य का जो सगम था, उसे स्पष्ट करते है। पढाई के साथ-साथ हमेशा उन की रुचि खेलो मे भी समान रही। वे उन मे रस लेते थे और परिपूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे।

१९१९ मे जब महात्मा गान्धी ने भारत की राजनीति के द्वार पर अपने कोमल और बलिष्ट हाथो से एक जोरदार दस्तक दी, भगत सिह सातवी क्लास मे थे। असहयोग की आँधी ज्यो-ज्यो बढती आ रही थी, उन की स्फूर्ति उभरती जा रही थी। असहयोग के पच-बहिष्कारो मे स्कूलो का बहिष्कार भी था। भाषणो मे सरकारी अदालतो और नौकरियो के बहिष्कार के साथ जोशोखरोश से स्कूल छोड देने की भी बात कही जाती थी। भगत सिह जलसों मे जाते थे और अपने भीतर उस आवाज़ को

गम्भीर घाष के स्वर म गूँजता पाते थे। उन क हा घर म जब भारतमाता सासायटी का आदोलन उठा था, वे नन्ह शिशु थे जब गदर-पार्टी का आदोलन हुआ था व चौकने पर दूर बठ दख्व थ लकिन अब जो आदालन उमड रहा था उस क ता व ठीक बीच म थे। वह उन्हें एकदम पास से स्पश कर रहा था। *यह स्पश कितना यथाथ था।*

१३ अप्रल १९१९ को अमृतसर म जलियाँवाला काण्ड हो गया। भगत सिंह तब अपनी उम्र क बारहवें साल म थे। दूसर दिन ठीक समय पर व घर से स्कूल चले गये पर ठीक समय पर लौट नही। वातावरण म अशान्ति फली हुई थी सब को चिन्ता हुई—क्या नही आया भगत सिंह। चिन्ता ठीक थी, पर छुट्टी क समय ता वह जाय जो स्कूल जाय। वे स्कूल गय ही कहा थे? सुबह घर से निकले ता सीध अमृतसर जा पहुँचे और *जलियांवाला बाग जा कर जनता क खून स लथपथ* मिट्टी उठायी माथ स लगायी और थानी सी एक शीशी म भर कर लौट पड। साचता हूँ तो हृदय की धडकन बढ जाती ह। अमृतसर म आतक की आँधिया चल रही थी दमन का नगाडा बज रहा था। फौजी लाग नमस्ते की जगह भी गोली का उपयाग करते थे, पिटाई, गिरफ्तारी खून और लाश ही वहा के दश्य थे। उस हालत में वस व जलियावाला बाग पहुचे होग वस वहा से मिट्टी ले कर लौटे हाग और स्वय उन के खून म कस कस उफान आये होगे।

देर से व घर पहुच तो छोटी बहन अमर कौर अपने स्वभाव के अनुसार उछलती-कूदती उन के पास आयी— वीरा जा आज इतनी देर क्यो कर दी? म न आप क हिस्स के आम रख हुए ह। चलो खा लो। आज भगत सिंह अपन स्वभाव के अनुसार चहकते हुए नही आय थे उदास और क्षुब्ध थ। घबरा कर बहन ने पूछा— क्यो, क्या बात ह तबीयत तो ठीक ह? गम्भीरता स भगत सिंह ने कहा— खान की बात मुझ से मत करा। आओ तुम्ह एक चीज दिखाऊ। खून स रगी मिट्टी की वह शीशी दिखा कर बाले— अगरजो न हमार बहुत आदमी मार दिये ह। सारी बातें बहन को बताने क बाद फूल ताड कर लाय और शीशी के चारा आर रख दिय, बाद म भी बहुत दिना तक यह फूल चढान का क्रम चलता रहा। यह बलिदान की वन्दना थी, खून खून को पहचान रहा था और खून खून को पुकार रहा था!

सोचती हू उस दिन किसी का और स्वय उन्ह भी क्या पता था कि उन का बलिदान एक दिन राष्ट्रीय बलिदाना का प्रतीक हा जायगा और व शहीदा के शहीद शहीद-आजम कहलायेंग। भविष्य को कौन जानता ह पर इतना स्पष्ट ह कि उन का निमाण जिन कणा स हुआ था वह शहादत-बलिदान के ही कण थे जिस हवा म उन्हा न साँस लिय थे, उस म क्रान्ति की ही महक थी। व क्रान्तिकारी शहीद न बनते और कुछ हो ही नही सकत थ क्या कि व उस वश का अमृत फल थे—परिवतन, उथल पुथल, बगावत सघष, बेचनी विध्वस और क्रान्ति ही जिस क सपना का शृगार थे।

विचार आये, विचार गये, भगत सिंह उन मे तैर रहे थे। आन्दोलन देश मे उभर रहा था, पर उन की आत्मा मे तो उफन ही रहा था। यह सन् १९२१ था और नौवी क्लास थी। उन्हो ने निश्चय कर लिया कि उन्हे डी० ए० वी० स्कूल मे नही पढना है, आन्दोलन मे कूदना है। इस की सूचना पिता जी को देनी आवश्यक थी, पर तव तक वे वहुत शर्मीले थे। इसी लिए उन्हो ने अपने साथी श्री जयदेव गुप्ता से कहा—"तुम कह दो पिता जी से।" उन्हो ने सरदार किशन सिह से कहा, तो वे तैयार ही थे। जो होली के हुडदंग मे खुद कूदा हुआ हो, वह वेटे को गुलाल से दूर रहने की वात कैसे कहेगा?

भगत सिंह ने स्कूल छोड दिया और इस तरह वे आन्दोलन की पहली सीढी पर चढ गये। आन्दोलन की दूसरी सीढी थी स्वदेशी का प्रचार और विदेशी का वहिष्कार। दोनो ही कार्यों का सम्वन्ध वस्त्रो से था। भगत सिंह के घर मे धुनाई-कताई की परम्परा थी। पहले से ही घर के सव लोग खद्दर के वस्त्र पहनते थे। इस लिए स्वदेशी में उन के लिए कोई खास आकर्षण न था, हाँ विदेशी वस्त्रो की होली जलाने मे उन्हे रस आता था। इस मे उन की पूरी दिलचस्पी थी। वे लडको की टोली वना लेते, घर-घर से विदेशी वस्त्र माँग कर लाते, फिर उन का धूम-धाम से जुलूस निकालते और किसी चौराहे पर उन की होली जलाते।

होली मे रोशनी होती, लपटें उठती, गरमी फैलती। भगत सिंह के मन मे भी रोशनी होती, लपटे उठती, गरमी फैल जाती। इन होलियो ने ही विद्रोह की ओर वढते उन के पहले कदम देखे और उन की संगठन-शक्ति, तेजस्विता और व्यवहार-पटुता के पहले स्पर्श उन के साथियो को मिले। जो परिवार दूसरी टोलियो को एक भी विदेशी वस्त्र देने से साफ इनकार कर देते थे, वे भगत सिह को कई-कई वस्त्र देते थे। जो लोग दूसरो की वातो से चिढ़ जाते थे, गुस्सा करते थे, भगत सिंह की वातो से खिल उठते थे। श्री अजय घोष ने भगत सिंह की शहादत के वाद कहा था—"जो व्यक्ति भी कभी उन से मिला, उस पर उन की असाधारण प्रतिभा तथा वडप्पन का गहरा प्रभाव पडा। इस का कारण यह नही था कि वे वहुत अच्छे वक्ता थे, वरन् यह कि उन की वातो मे इतना जोश, इतना वल और ऐसी शालीनता होती थी कि कोई भी व्यक्ति उन से मिलने पर उन से प्रभावित हुए विना रह ही नही सकता था।" प्रभावशाली वार्तालाप की यह वृत्ति उन मे वचपन से ही थी, पर इस ने पहली सार्वजनिक अँगडाई ली थी, विदेशी वस्त्रो की होली के सगठन मे ही। अपनी टोली के जुलूस के नारो मे ही उन की आवाज़ सव से ऊपर सुनाई देती और उन के चलने मे भी ऐसी नाटकीयता रहती, जैसे वे किसी ऐतिहासिक फिल्म के हीरो हो।

आन्दोलन अपनी पूरी रफ्तार पर आ गया था और अपनी उम्र के हिसाव से वे भी अपनी पूरी रफ्तार पर थे। तभी एक धडाका हुआ और उस ने सारा सीन ही वदल दिया। ५ फरवरी १९२२ को गोरखपुर जिले के चौरीचौरा स्थान पर कांग्रेस का

एक जुलूस निकल रहा था। भीड ने पुलिस के इक्कीस सिपाहियो और एक थानेदार को
गुण्डे कर थाने मे बन्द कर दिया और थाने की इमारत में आग लगा दी। व सब जल
कर मर गये। १७ नवम्बर १९२१ को बम्बई मे भी ऐसा ही काण्ड हो चुका था और
१३ जनवरी १९२२ को मद्रास मे। इन घटनाओ से प्रभावित हो कर १२ फरवरी
१९२२ को कांग्रेस की कार्य समिति ने अपनी बारडोली की बैठक मे जो आन्दोलन को
गयी तेजी देने के लिए बुलायी गयी थी, असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया और
कांग्रेस के एक करोड सदस्य बनाने, मरने का प्रचार करने राष्ट्रीय विद्यालयो को खोलने
मादक द्रव्य निषेध का प्रचार करने और पचायतें सगठित करने का कार्यक्रम देश के
सामने रखा।

पण्डित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपत राय ने जो उस समय ऐसा
आन्दोलन के कारण जेल मे थ इस प्रस्ताव को बहुत नापसन्द किया और गाधी जी
को बहुत सख्त पत्र लिखे। महाराष्ट्र और बगाल मे भी इस के विरुद्ध बहुत गरम प्रति
क्रिया हुई। इस प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए २४ २५ फरवरी १९२२ को दिल्ली
मे महासमिति की जो बैठक बुलायी गयी उस में डॉ० मुजे ने गाधी जी की निन्दा का
प्रस्ताव रखा और कई सदस्यो ने इस प्रस्ताव के समर्थन मे भाषण दिये।

देशव्यापी विरोध की यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया भगत सिंह के मन में एक
तूफान बन कर उतरी। व इस बात से परेशान हो गये कि इतने बडे देश के आदोलन मे
दो चार जगह बेकाबू भीड का उपद्रव कर बैठना इतनी बडी बात कैसे हो सकती
पूरे देश का आदोलन ही स्थगित कर दिया जाय। इस चिन्तन से उन के मन के
एक प्रश्न खडा हो गया—हिंसा श्रेष्ठ है या अहिंसा इस पर हम वाद विवाद कर
थे या देश की आजादी के लिए लड रहे थे। आखिर हमारे आदोलन का उद्दे
क्या था?

हिंसा और अहिंसा के इस अन्तर्द्वन्द्व मे उन के अन्तःकरण में एक बहु
खूबसूरत चेहरा चमक उठा। यह १९ वर्षीय युवक सरदार करतार सिंह सराबा का
था, जो देश में अँगरेजो के खिलाफ सशस्त्र गदर मचाने की तैयारी मे पकडा गया और
हँसते हँसते शहीद हो गया। यह चेहरा भगत सिंह के कलेजे मे स्मृतियो मे धडकते सब
चेहरो से ऊपर था। भगत सिंह उसे प्यार करते थे। उस के रोम रोम मे लहराते मृत्यु
के चाव पर न्योछावर थे।

व देवताओ के स्तोत्रो की तरह उन के सस्मरणो का मन-ही-मन जाप किया
करते थे। १५ सितम्बर १९१५ को जब जजो ने उन्हे फाँसी की सजा सुनायी तो
उन्हो ने कहा था— थैक्यू आप को धन्यवाद।' उन के एक साथी को आजन्म
कारावास की सजा सुनायी गयी थी तो उस ने कहा था— कालापानी नही मै फाँसी
चाहता हूँ। जज झुझला पडा था और झल्लाहट में उस ने कहा था— इस के लिए
अपील करो।

भगत सिंह ने अपने मन से पूछा—क्या चौरीचौरा सत्य है और करतार सिंह एवं उन के साथियो का कार्य असत्य है ? दूसरे प्रश्न ने उन्हे झकझोर दिया—यदि करतार सिंह का कार्य असत्य है, अनुचित है, तो सरदार अजीत सिंह, सूफी अम्बाप्रसाद, वीर सावरकर और श्री रासबिहारी बोस का हमारे देश के इतिहास मे कोई स्थान नही। वे सब क्या उपद्रवकारी ही है ? उन के मन ने इस पर हॉ नही की, जोर से ना की और इस ना ने उन्हे गान्धी जी से, अहिंसा से दूर खडा कर दिया।

१५ वर्षीय भगत सिंह के मन मे यह सब तूफान उठ रहे थे, जैसे वे राष्ट्र के कोई प्रमुख विचारक हो। हम कह सकते है कि उन की उम्र यह सब सोचने लायक नही थी, पर उन के सामने तो १९ वर्षीय सरदार करतार सिह सरावा थे, जिन के बारे मे जजो ने अपने फैसले मे लिखा था—"ही इज वन ऑव द मोस्ट इम्पॉरटेण्ट ऑव दीज सिक्स्टी वन एक्सक्यूज्ड ऐण्ड हैज द लार्जेस्ट डौजियर ऑव देम ऑल। देयर इज प्रैक्टीकली नो डिपार्टमेण्ट ऑव दिस कॉन्सपिरेसी इन अमेरिका, ऑन द वायज ऐण्ड इन इण्डिया इन ह्विच दिस एक्यूज्ड हैज नाट प्लेड हिज पार्ट।"—वह इन ६१ अभियुक्तो मे सब से अधिक महत्त्वपूर्ण आदमी है। इस के बारे मे हमारे पास सब से अधिक सबूत है। अमेरिका, समुद्री रास्ते, और हिन्दुस्तान मे होने वाले इस षड्यन्त्र का कोई ऐसा हिस्सा नही, जिस मे इस ने अपना पार्ट अदा न किया हो।"

सोचती हूँ आगे चल कर सशस्त्र आतंकवादी कार्यक्रम को मानसिक रूप मे एक जन-आन्दोलन और नयी समाज-व्यवस्था का सुदृढ सूत्र होने वाली क्रान्ति का रूप देने मे भगत सिंह को जो ऐतिहासिक सफलता मिली, उस के बीज उन के जीवन के इसी मोड पर बोये गये थे।

यह सच है, पर यह भी सच है कि यह भविष्य की बात है। इस समय तो भगत सिंह निर्णय की नही, जिज्ञासा की ही स्थिति मे थे—अहिसा का यह मार्ग ठीक नही है, यह देश को उस के लक्ष्य आजादी तक नही पहुँचा सकता, यह उन का मन कहता था, पर इस मे जनता के मन को आन्दोलित करने की अद्भुत क्षमता है, यह भी उन का मन कहता था। फिर मार्ग क्या है, फिर मार्ग क्या है ?

असहयोग की असफलता ने भगत सिह को मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के उस स्थल पर खडा किया था, जहॉ हिटलर उस समय था—जब वह आस्ट्रिया मे खिडकियाँ—दरवाजे रँगने वाला एक मजदूर ही था, पर राष्ट्र के अतीत, वर्तमान और भविष्य की कडियाँ मन-ही-मन बैठा रहा था। यह अन्तर्द्वन्द्व, यह जिज्ञासा, मार्ग की यह खोज ही असहयोग मे भगत सिंह की सब से बडी उपलब्धि थी।

इस उपलब्धि के बीजो की भूमि उन मे चौरीचौरा काण्ड से पहले ही तैयार हो रही थी। इस का पता उन के उस कार्ड से लगता है जो डाक मुहर के अनुसार उन्होने १४ नवम्बर १९२१ को अपने दादा जी के नाम लिखा था—

ओम

लाहौर

मेरे पूज्य दादा साहब जी, नमस्ते ।

अब यह है कि इस जगह खैरियत है और आप की खैरियत श्री परमात्मा जी से नेक मतलूब हूँ । अहवाल यह है कि मुद्दत से आप का कृपा पत्र नहीं मिला । क्या सबब है । कुलबीर सिंह कुलतार सिंह की खैरियत से जल्दी मुत्तला फरमायें । बेबे साहब अभी मोरांवाली से नहीं आयी । बाकी सब खैरियत है ।

आप का ताबेदार
भगत सिंह

इस कार्ड की लाइनों के बीच उल्टा रंग (जिस से पुलिस आदि का ध्यान न जाय) लिखा है— 'आज कल रेल्वे वाले हड़ताल की तयारी कर रहे हैं । उम्मीद है कि अगले हफ्ते के बाद जल्द ही शुरू हो जावगी ।' १९२८ में इतिहास जिसे भारत में समाजवाद का उद्घोषक सिद्ध करने वाला था वह १९२१ में ही देश में अपने ढंग की पहली हड़ताल के प्रति इतना सचेष्ट था उसे इतना महत्त्वपूर्ण मानता था कि कार्ड में छिपा कर उस की खबर दादा जी को भेजनी आवश्यक समझता था—होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।

■ ■

नेशनल कॉलेज

नेशनल कॉलेज की स्थापना पजाब कॉंग्रेस के नेताओं का, जिन मे श्री लाला लाजपत राय प्रमुख थे, एक श्रेष्ठतम रचनात्मक कार्य था। इस मे अधिकतर वे ही विद्यार्थी प्रविष्ट हुए थे, जिन्हो ने असहयोग आन्दोलन मे स्कूल-कॉलेज छोड दिया था और किसी-न-किसी रूप मे उस मे भाग लिया था। स्वाभाविक है कि उन के मन राजनैतिक उत्तेजना और राष्ट्रीय चेतना से पूर्ण थे।

दूसरी विशेपता यह थी कि इस कॉलेज मे ऐसे अध्यापक रखे गये थे, जिन का उद्देश्य विद्यार्थियो को परीक्षा पास कराना या सरकारी नौकरी के लिए तैयार करना नही था। राष्ट्रीय नेतृत्व के लिए तैयार करना था।

तीसरी विशेपता यह थी कि इस कॉलेज में अँगरेजी कॉलेजो के ढंग का घिसा-पिटा पाठ्य-क्रम नही था, वरन वह एक सरस, सजीव, राजनैतिक ज्ञानवर्धक और उद्बोधक पाठ्य-क्रम था। भारतीय इतिहास की जानकारी तो दी ही जाती थी, विश्व इतिहास की जानकारी भी दी जाती थी। इस मे भी बादशाहो का ही लेखा-जोखा नही पढाया जाता था, फ्रान्स, इटली और रूस की राज्यक्रान्तियो का इतिहास भी पढाया जाता था। भारत मे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न हुए, उन की पूरी जानकारी दी जाती थी और ससार के जो दूसरे देश अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड रहे थे, उन के आन्दोलनो का परिचय भी दिया जाता था।

इस अध्ययन के साथ समय-समय पर राष्ट्रीय नेताओ के भाषण भी होते थे। इन से वातावरण मे गरमी आती थी, प्रेरणा मिलती थी और रुचि बढती थी। इस प्रकार लाहौर का नेशनल कॉलेज राष्ट्रीयता का महान् स्रोत बन गया था।

आचार्य श्री जुगलकिशोर विलायत से अपनी शिक्षा समाप्त कर तब आये ही थे और स्वतन्त्र देश की मानसिक उन्मुक्तता मे ओतप्रोत थे। उन्हो ने नेशनल कॉलेज के वातावरण को सहज बना दिया और हर प्रकार की कट्टरता से दूर रखा। वे उस माली की तरह थे जो पेड-पौधो के लिए ठीक तरह जमीन तैयार कर देता है, उन्हे रोप देता है, खाद देता है और सिंचाई की व्यवस्था करने के बाद अपने ढंग पर बढने के लिए उन्मुक्त

छोड़ देता है। वे उस माली की तरह नहीं थे, जो फूलों को काट-छांट कर बम्बई के हैंगिंग गार्डन की तरह अपना मनपसन्द सजावट का उपकरण मात्र बना कर छोड़ता है। उन की दृष्टि इस बात पर थी कि उन के उपवन में उत्तम फूल रोपे जायें, उन्हें पूरी खुराक मिले, वातावरण ठीक मिले और उस में वे अपने रुझान के अनुसार बढ़ें। सोचती हूँ नेशनल कालेज का भाग्य था कि उसे आचार्य जुगलकिशोर जी प्रिंसिपल के रूप में मिले। वे कालेज की आत्मा थे।

भाई परमानन्द राजनैतिक विद्रोह के अपराध में कालेपानी की सज़ा भोग कर आये थे। अपनी सुन्दर आकृति, मधुर स्वर, सादा रहन-सहन और सौम्य स्वभाव के कारण जनता में देवता-स्वरूप भाई परमानन्द के नाम से प्रसिद्ध थे। वे नेशनल कालेज में प्रोफेसर तो थे ही सर्वेसर्वा लाला लाजपत राय जी के व्यवस्था प्रतिनिधि भी थे। उन के जीवन के साथ एक विद्रोह की कहानी नत्थी थी और वे विद्यार्थियों के लिए विद्रोह की जीती-जागती मशाल ही थे। वे पन्त-पन्हात अन्दमान की आप-बीती सुनाने लगते थे और इस प्रकार भावुक विद्यार्थी उन कष्टों की अनुभूति में भाव विभोर हो जाते थे जो देश की स्वतन्त्रता के लिए देशभक्तों ने सहे। भाई जी नेशनल कालेज के प्राण थे जो सदा कर्म प्रेरणा जगाते रहते थे।

भारत की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक और भारतीय इतिहास के मौलिक एवं गहरे विद्वान श्री जयचन्द्र विद्यालंकार तीसरे प्रोफेसर थे जो नेशनल कालेज के वातावरण में राजनैतिक ज्योति जगाये रखते थे। उन के अध्यापन की यह विशेषता थी कि वे विद्यार्थियों में जिज्ञासा जगाते थे और तथ्यों सत्यों और निष्कर्षों का बोझ या आदेश की तरह ग्रहण न कर तर्क की कसौटी पर खरा-खोटा परख कर ही स्वीकार करने की प्रवृत्ति पैदा करते थे। वे नेशनल कालेज की भुजा थे। और भी कई श्रेष्ठ प्रोफेसर थे जिन में श्री छबील दास का नाम उल्लेखनीय है।

भगत सिंह को सरदार किशन सिंह ने इसी नेशनल कालेज में भरती कर दिया। भगत सिंह मैट्रिक पास नहीं थे, नौवीं क्लास में उन्होंने असहयोग में स्कूल छोड़ दिया था। इस स्थिति में उन्हें कालेज के प्रथम वर्ष में कैसे प्रविष्ट कर लिया गया। भाई परमानन्द ने उन के ज्ञान की जाँच की। अंगरेजी में भगत सिंह कमजोर थे पर उन्हें स्कूल की पुस्तकों के अतिरिक्त ऐतिहासिक और राजनैतिक पुस्तकें पढ़ने का बेहद शौक था। इस लिए इन विषयों में भगत सिंह का ज्ञान ही नहीं चेतना भी अपनी शिक्षा से बहुत आगे थी। फिर भाई जी उन के व्यक्तित्व से, वार्तालाप से, बुद्धिमत्ता और आदर्शवादी दृष्टिकोण से बहुत प्रभावित हुए। भाई जी ने उन्हें दो महीनों का समय विशेष तयारी के लिए दिया और कालेज में ले लिया। कुछ दिन निश्चय ही भगत सिंह पर बोझ पड़ा पर परिश्रम उन का स्वभाव था। चलेंज को स्वीकार करना और हाड़ में जूझना उन का संस्कार था। इस लिए जल्दी ही वे अपने साथियों के साथ हो गये और पढ़ाई का काम ठीक-ठीक चल निकला।

भगत सिंह स्वतन्त्रता के असहयोग आन्दोलन मे भाग ले चुके थे। उस के स्थगन से उन के मन मे जिज्ञासाएँ जागी थी, कॉलेज के पाठ्य-क्रम मे रौलेट कॅमेटी की रिपोर्ट भी थी। इस मे भारत की स्वतन्त्रता के सशस्त्र प्रयत्नो का ब्योरेवार वर्णन था। इस अध्ययन ने उन्हे अहिंसा के विचार से और दूर कर दिया। दूरी की इस खाई को चौडा करने मे बहुत बडा भाग लिया प्रोफेसर जयचन्द्र विद्यालंकार ने। गदर-योजना के १९१५-१६ मे असफल हो जाने के बाद पजाब मे सशस्त्र प्रयत्नो की शृखला टूट गयी थी और सिर्फ जयचन्द्र जी ही एक मात्र ऐसे आदमी थे, जिन का सम्पर्क बगाल के क्रान्तिकारियो से था। जिन विद्यार्थियो मे अपेक्षाकृत राजनैतिक बेचैनी अधिक होती थी, वे जयचन्द्र जी के आस-पास हो जाते थे। भगत सिह का व्यक्तित्व तेजस्वी था, विचार तेजस्वी थे, वे थोडे ही दिनों मे उन के बहुत निकट हो गये। इस निकटता ने भगत सिह की अध्ययन-पिपासा को नियमबद्ध कर दिया। 'जो पुस्तक मिली पढ डाली' की जगह अब हो गया—'इस के बाद वह, उस के बाद यह'—इस से ज्ञान विस्तृत और पोपला की जगह विकसित और गहरा होने लगा।

नेशनल कॉलेज के साथ ही लाला लाजपत राय ने द्वारकादास पुस्तकालय की भी स्थापना की थी। श्री राजाराम शास्त्री (बाद मे उत्तरप्रदेश के मजदूर नेता और कौन्सिल के सदस्य) उस पुस्तकालय के अध्यक्ष थे। भगत सिंह अपने स्वभाव के कारण उन के अच्छे मित्र हो गये थे। वे उन से पुस्तकें तो लाते ही थे, उन की खाने-पीने की चीजें भी छीन लेते थे। सी० आई० डी० की भी निगाह पुस्तकालय पर रहती थी, क्यो कि पुस्तकालय युवको का केन्द्र था। वहाँ खूब राजनैतिक बहसें होती थी। श्री राजाराम शास्त्री के शब्दो मे—"इस बहस मे सरदार भगत सिह आतकवाद और समाजवाद दोनो का समर्थन करते थे। जहाँ भगत सिह को एक ओर कार्ल मार्क्स प्रभावित करते थे, वहाँ दूसरी ओर प्रसिद्ध रूसी अराजकतावादी बाकूनिन की भगत सिंह भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। रूस मे कुछ क्रान्तिकारी अपनी जान न्योछावर कर के अपने सिद्धान्तो के प्रचार मे विश्वास रखते थे। इसे 'आत्म-बलिदान-द्वारा प्रचार' कहा जाता था (प्रोपेगण्डा बाई डेथ) भगत सिह को ऐसे क्रान्तिकारियो ने सब से अधिक प्रभावित किया था, जो अपना बलिदान कर के अपने सिद्धान्तो का प्रचार दुश्मन की अदालत मे खडे हो कर किया करते थे।

एक दिन मै ने एक 'अराजकतावादी' पुस्तक पढी। सम्भवत उस का नाम था 'अराजकतावाद और अन्य निबन्ध' (अनारकिज्म ऐण्ड अदर एसेज) इस मे एक अध्याय था 'हिंसा का मनोविज्ञान' (साइकोलॉजी ऑव वायलेन्स)। इस मे फ्रान्स के अराजकतावादी नवयुवक वेलाँ का वह तमाम बयान दिया गया था, जिसे उस ने गिरफ्तार होने पर अदालत के सामने दिया था। उस मे उस ने बताया था कि किस प्रकार पहले ट्रेड यूनियनो को सगठित किया, सार्वजनिक सभाओ मे व्याख्यान दिये और शान्तिमय प्रदर्शन किये, पर श्रमजीवियो तथा अन्य मेहनतकशो के शोषण

पर कायम इस पूंजीवादी समाज के विचारधारा पर प्रभाव नहीं पड़ा। तब भर मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्यों न फ्रांस की असेम्बली में बम का धमाका किया जाय जिस से बहरे कानों तक आवाज पहुंच जाये। बहरों को सुनाने के लिए ऊंची आवाज की आवश्यकता होती है यही सोच कर मैंने असेम्बली में बम फेंका था। मेरा उद्देश्य बिल्कुल स्पष्ट था—मरते हुए शासकों को सुना क्रान्ति से सावधान कर देना। अब मजिस्ट्रेट मुझ जो भी सजा दें मैं उसे सहर्ष शिरोधार्य करूंगा।

वेलाँ का बयान काफी लम्बा और जोशीला था। उसे पढ़ कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। कितने ही नवयुवकों को मैंने उसे पढ़ने को दिया, पर जब भगत सिंह ने उसे पढ़ा तो मारे खुशी के उछल पड़े। उस पुस्तक को उन्होंने कई बार पुस्तकालय से अपने नाम पर लिया। वेलाँ के बयान को उन्होंने याद कर डाला, कॉपी पर नोट कर लिया मुझ से रोज आ कर पूछते थे कि किस नवयुवक ने इसे पढ़ा है और उस पर इसका क्या प्रभाव पड़ा।

निश्चय ही वेलाँ के उदाहरण ने उनके मन में यह संकल्प जगाया कि आगे चल कर मैं भी ऐसा ही करूंगा। और जब सचमुच उन्होंने ऐसा किया तो वे वेलाँ को भूले नहीं और बम फेंकने के बाद असेम्बली में फेंके पर्चे में उन्होंने वेलाँ के नाम का सादर स्मरण किया।

इन्हीं दिनों जब गम्भीर राजनैतिक अध्ययन और प्रोफेसर जयचन्द्र विद्यालंकार के सम्पर्क से उन के मन में एक आतंकवादी विकसित हो रहा था, एक दिन जयचन्द्रजी के मकान पर ही विख्यात क्रान्तिकारी श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल से उन की मुलाकात हुई। इस परिचय और बातचीत से भगत सिंह के सामने क्रांतिकारी दल के नये क्षितिज खुल गये।

भगत सिंह क्रान्तिकारियों के घर में जन्मे थे। देश से जलावतन उन के चाचा सरदार अजीत सिंह पास न हो कर भी हर समय एक प्रेरक शक्ति और आदर्श के रूप में उन के सामने थे। देश की स्वतन्त्रता के लिए जीवन भर जूझने वाले पिता सरदार किशन सिंह उन के पास ही थे। इस लिए उन का मन दो तेज तरंगों से लहरा रहा था। पहली तरंग थी 'मैं कुछ करूंगा' और दूसरी लहर थी—मैं ऐसा क्या करूं कि कुछ बेजोड़ बात बन। इसी बात को यों कहना ठीक होगा कि वे उमंग और जिज्ञासा के झूले में झूल रहे थे और हर उठती लहर को पकड़ने की कोशिश में रहते थे।

असहयोग आन्दोलन के समाप्त होते-न-होते ही अकाली आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था। इस का उद्देश्य सरकारपरस्त और स्वार्थी महन्तों के कब्जे से निकाल कर गुरुद्वारों की सम्पत्ति को सिख-समाज के सार्वजनिक नियन्त्रण में लाना था। इस आन्दोलन के कार्यकर्ताओं का बाहरी चिह्न था काली पगड़ी। भगत सिंह भी उन दिनों बड़े ठाठ से काली पगड़ी पहनते थे और कृपाण रखते थे।

उस छोटी-सी उम्र में ही उन में इतनी तेजस्विता थी कि हर उठता आन्दोलन

उन्हे अपने साथ लेने को उत्सुक था और हर आन्दोलन के प्रति वे सचेष्ट थे। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने अपने 'वन्दी जीवन' (पृ० ३००) मे लिखा है—"मुझे पता लग गया था कि सरदार गुरमुख सिंह इत्यादि, जो अपना अलग संगठन कर रहे थे, यह नही चाहते थे कि अब की बार सिख लोग गैर सिख-सस्थाओ के साथ मिल कर भारतीय विप्लववादी आन्दोलन मे भाग लें। यहाँ तक सरदार गुरुमुख सिंह जी ने चाहा कि हमारे सच्चे साथी सरदार भगत सिह को हम लोगो से तोड कर अपनी सस्था मे मिला ले। इस कारण गुरुमुख सिंह जी ने भगत सिंह को बहुतेरा समझाया कि तुम बगालियो के फेर मे मत पडो। इन के फेर में पडोगे तो फाँसी पर लटक जाओगे, काम कुछ भी नही कर पाओगे। इस प्रकार से गुरुमुख सिंह जी भगत सिह जी से कितनी बाते कहते थे, वे हम लोगो से सब कह देते थे। बहुत बहकाने पर भी श्री भगत सिंह जी ने हम लोगो का साथ नही छोडा।"

भगत सिह अब क्रान्तिकारी-दल के बाकायदा सदस्य थे और नेशनल कॉलेज के परिश्रमी विद्यार्थी भी। एक और प्रवृत्ति मे भी वे भाग ले रहे थे। वह थी अभिनय की प्रवृत्ति। उद्देश्य था जनता मे गुलामी की पीर और आजादी की बेचैनी पैदा करना। नेशनल कॉलेज मे एक नेशनल नाटक क्लब की स्थापना की गयी। 'राणा प्रताप', 'भारत-दुर्दशा' और 'सम्राट् चन्द्रगुप्त' नाटको मे भगत सिह अपनी भूमिकाओ मे पूरी तरह सफल रहे। 'सम्राट् चन्द्रगुप्त' के अभिनय से अभिभूत हो उन के प्राध्यापक भाई परमानन्द ने उन्हे मंच पर ही हृदय से लगा लिया और लाड से कहा—"मेरा भगत सिंह—सचमुच भविष्य मे शशिगुप्त सिद्ध होगा।" इस क्लब के नाटको की सफलता इस से सिद्ध है कि अँगरेजी सरकार ने इस पर पाबन्दी लगा दी—इसे बन्द कर दिया। सोचती हूँ, क्या व्यक्तित्व था उन का कि नेता भी, अभिनेता भी, प्रणेता भी! वे वर्तमान के उद्बोधक और भविष्य के उदघोषक होने को ही जन्मे थे। वे युग की आकाक्षा के वीर-पुत्र थे।

१९२३ मे भगत सिंह एफ० ए० पास कर बी० ए० के प्रथम वर्ष मे प्रविष्ट हुए, पर तभी परिस्थितियो ने उन्हे कॉलेज की क्लास से उठा कर लम्बी राह पर ला खडा किया। वे दादी जय कौर के लाडले थे। उन के बडे भाई जगत सिंह की असमय मृत्यु ने इस लाड को मोह मे बदल दिया। उन्हो ने अपने पुत्र सरदार किशन सिंह से आग्रह किया कि अब भगत सिंह का विवाह कर दिया जाये। वे डिक्टेटर थी स्वभाव में—जो कह दिया, सो हो। भगत सिंह के मन मे मृत्यु-सुन्दरी घूम रही थी। वे विवाह के लिए कैसे तैयार हो सकते थे? उन के पिता सरदार किशन सिंह एक अजीब शिकजे मे फँसे थे। एक तरफ माता का आग्रह था, दूसरी तरफ पुत्र का अटल निर्णय। स्वयं वे आग्रही न होकर भी विवाह के पक्ष मे थे।

एक बात मै यही साफ कर दूँ कि सरदार किशन सिंह के मन में अपने पुत्र के भविष्य की क्या कल्पना थी? कुछ लोगो ने उन के मन को बिना पहचाने उन के

बाहरी व्यवहार को दख कर उन की एसी तसवीर खीच मारी ह जस वे घोर प्रगति विरोधी थ और भगत सिंह को घर में ही बन्दित रखना चाहत थे। मन दुख होता ह कि इन लोगो ने सरदार किशन सिंह की एक कमजोरी का भी सहानुभूति स नही देखा। फिर कमजोरी भी कसी कमजोरी? उन के चरित्र का गम्भीर अध्ययन कर विश्लेषण कर म इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि भगत सिंह का विवाह करन में उत्सुकता उन की कमजोरी नही दृष्टिकोण की भिन्नता ही थी।

वे अपन पुत्र भगत सिंह की शक्तियो को जानत थ और उन के मन में भावना थी कि वह नरम लाजपत राय की जगह नया गरम लाजपत राय बनें। साफ-साफ यह कि उन के मन म नय लोकमान्य तिलक का नक्शा था जो कांग्रेस को यानी आजादी के सावजनिक आन्दोलन को प्रगतिशील गरमी दे कर आजादी को भारत के आँगन में उतार। और भी साफ शब्दो म म कहूँगी कि नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के व्यक्तित्व ने जो तजस्वी रूप आग चल कर लिया अपन पुत्र का वही रूप उन की आँखो में समाया हुआ था। कोई छिपाने की बात नही कि फाँसी पर झूलत भगत सिंह का चित्र उन की आँखो म नही था उन्हें प्रिय नही था। वे अपने छोटे भाई सरदार अजीत सिंह अपन मित्र महान रासबिहारी बोस और अपने पुत्रवत प्रिय शहीद करतार सिंह सराबा के कार्यों का परिणाम देख चुके थे। उन के दृष्टिकोण को समझन के लिए यह आवश्यक ह कि हम यह बात न भूलें कि उन्हो ने गदर पार्टी के काम म आर्थिक सहायता दी थी पर सराबा से साफ कह दिया था कि तुम्हारा ग़दर-आन्दोलन जिस खुले रूप में सगठित किया जा रहा ह वह भारत में सफल नही हो सकता क्यो कि यह अमरिका नही ह।

सरदार किशन सिंह के जीवन का एक एक क्षण भारत की स्वतन्त्रता के काम म लगा ह। उन की कमजोरी और ताकत की तुलना करने से पहले हमें यह घटना ध्यान में रखनी होगी कि आर्य-समाज के महान नता और डी० ए० वी० कालेज के सस्थापक महात्मा हसराज के पत्र श्री बलराज जब १९१४ के षडयन्त्र केस में कालेपानी की सजा पा गय तो उन्हो ने अपने पुत्र से सब तरह सम्बन्ध विच्छेद करने की खुले-आम घोषणा कर दी थी। इस के विरुद्ध सरदार किशन सिंह कदम-ब-कदम क्रान्तिकारियो के साथ रह निश्चय ही क्रान्तिकारियो के जीवन-सूत्र के साथ कि जियें अनजाने और मर जायें अनजाने। उन की कमजोरी यह नही थी कि वे क्रांति विरोधी थ। हाँ उन की कमजोरी यह थी कि उन म पत्निक रूप म बहुत गुस्सा था गुस्से में व बौखला जाते थे और गालियाँ तो देत ही थ कभी कभी मारने भी लगत थे।

विवाह के सम्बन्ध में या विवाह के उपाय से भगत सिंह को घर-गृहस्थी का साधारण आदमी बनाने के लगाव म व आग्रही होत तो १९२३ से १९२९ तक जब भगत सिंह उन के निकट रह क्या वे एक बार भी आग्रह न करत? क्या इस प्रश्न पर दोनो में कभी एक बार भी कहा-सुनी या मन मुटाव न होता? जरूर होता पर हम सब जानत ह कि एसा नही हुआ और वे उन की फाँसी के दिन तक उन के प्रति गदर

ात्सल्य मे ओत-प्रोत रहे ।

इसी पृष्ठभूमि मे ये शब्द है—वे भगत सिंह के विवाह के लिए आग्रही नही ं, हाँ पूरी तरह उत्सुक थे । एक दिन उसी इलाके के एक बहुत अमीर आदमी भगत सिंह को अपनी बहन के लिए देखने आये । भगत सिंह उस दिन बहुत प्रसन्न रहे, उछलते-कूदते रहे और अपने ताँगे मे स्वयं घोडी हाँक कर उन्हे लाहौर तक छोडने ये । भगत सिंह उन्हे पसन्द आ गये और वे सगाई के लिए तारीख तय कर गये ।

सगाई की इस बातचीतने भगत सिंह के द्वार खुल गये। तैयारी पहले से ी ही। इस तैयारी को समझने के लिए श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल के ये शब्द मार्ग-दर्शक है—"मेरा यह एक नियम था कि दल के आदमी की परीक्षा करने की ारज से मै यह देखना चाहता था कि अपने दल का व्यक्ति त्याग करने के लिये कहाँ तक तैयार है । हम लोग तो उसी को अपने दल का आदमी समझते थे, जो व्यक्ति हर घडी इस बात के लिए तैयार हो कि जब कभी कहा जाये तभी घर-बार छोड कर काम करने के लिए मैदान मे उतर पडे । इस नीति के अनुसार मै ने भगत सिंह से कहा कि क्या तुम घर-बार छोडने को तैयार हो ? यदि तुम शादी कर लोगे, तो आगे चल कर अधिक काम करने की आशा तुम से नही रहेगी और यदि तुम घर मे रहते हो तो तुम्हे शादी करनी पडेगी । मै नही चाहता कि तुम शादी करो । इस लिए मेरी इच्छा है कि तुम घर छोड कर, मै जहाँ कहूँ, वहाँ रहने लग जाओ । भगत सिंह घर छोडने के लिए तैयार हो गये ।"[1]

मै ने अपने एक लेख मे क्रान्तिकारियो की फरारी का विश्लेषण करते हुए लिखा था—"क्रान्तिकारियो ने स्वतन्त्रता के लिए बडे-बडे कार्य किये, बलिदान दिये, उन का शत-शत अभिनन्दन, पर इन बलिदानो मे घरो के मोह से निकल कर क्रान्ति के पथ पर आने का काम कितना मार्मिक है ? फिर घर का मोह ही तो नही होता उस के वातावरण की एक जकडन भी तो होती है और ज्यो ही इस जकडन पर परिवार का कोई सदस्य जरा-सा-जोर देता है, परिवार के अणु और विराट् की शक्ति मिल कर उस जोर को तोड देने मे जुट जाते है । शिकार साहित्य मे पढा है कि अजगर भागना तो दूर, तेजी से हिल-डुल भी नही सकता, वह अपने शिकार को पास पाते ही अपनी कुण्डली मे जकड लेता है और पूरी ताकत से दबा कर उस की नस-नस तोड़ देता है, जिस से वह खाने लायक मुलायम ग्रास बन जाये । क्या घर की जकडन, किसी अजगर की जकडन से कम ताकतवर होती है और भागने वाले को कम ताकत से दबोचती और तोडती है ? ठीक है, न कम ताकत से दबोचती है, न कम ताकत से तोडती है, पर अधिकतर क्रान्तिकारियो को इस दबोच और तोड को छलाँग कर ही बाहर आना पडा है । महात्मा बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण की गाथा हमारे साहित्य मे रत्न-जडे अक्षरो मे

---

१ 'बन्दी जीवन' पृ० २७७ ।

लिखी ह पर समस्त क्रान्ति क इतिहास का तो हर पन्ना हा किसी-न किसी महाभि निष्क्रमण से रँगा हुआ ह। फिर महात्मा बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण में तो परिवार क प्यार न ही चोट खायी थी पर क्रान्ति क इन महाभिनिष्क्रमणा में तो बिलखत परिवारा के अभावो और भावा के दारुण घाव भर पड ह।'

सगाई की निश्चित तिथि से कुछ दिन पहल भगत सिंह घर स लाहौर गय और वहाँ ग जान कहा फरार हो गये। उन के पिता को अपनी मेज़ की दराज म रखा यह पत्र मिला—

पूज्य पिता जी नमस्त।

मेरी जिन्दगी मक्सदे आला यानी आजादी-ए-हिन्द के असूल के लिए वक्फ हो चुकी ह। इस लिए मरी जिन्दगी म आराम और दुनियावी ख्वाहशात बायस कशिश नहीं ह।

आप को याद होगा कि जब म छोटा था तो बापू जी न मर यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि मुझ खिदमते-वतन के लिए वक्फ कर दिया गया ह। लिहाज़ा म उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हू।

उमीद ह आप मझे माफ फरमायेंग।

आप का ताबेदार

भगत सिंह

इस फरारी क साथ हा नशनल कॉलेज का अध्याय समाप्त हो गया। यह १९२३ के उत्तरार्द्ध की बात ह।

■ ■

पहली फरारी

घर से बाहर पैर रखने का अर्थ था कि क्रान्ति-यात्रा आरम्भ हो गयी। भगत सिंह अपने पिता के नाम जो पत्र छोड गये थे, उस मे साफ लिखा था कि वे देश-सेवा के लिए समर्पित है और उसी काम से आगे बढ रहे है। सगाई की बात तो बहाना थी। देहाती कहावत है—'रोने को जी चाह रहा था, घिसर पडी'। सगाई की बात न उठती तो क्या वे घर के धन्धे मे ही लगे रहते। वे लाहौर से चले और सीधे जा पहुँचे कानपुर। श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल के शब्दो मे—"मेरे कहने पर भगत सिंह जी घर छोड़ कर कानपुर चले गये थे। पहले-पहल कानपुर मे मन्नीलाल जी अवस्थी के मकान पर उन के रहने का इन्तजाम किया गया था।"

कानपुर क्षेत्र का काम उन दिनो योगेशचन्द्र चटर्जी देख रहे थे। भगत सिंह ने उन के साथ काम आरम्भ किया। श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य (बाद में 'प्रताप' के सम्पादक) श्री बटुकेश्वरदत्त, श्री अजय घोष (बाद मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेट्री) और श्री विजयकुमार सिनहा-जैसे क्रान्तिकारियो से उन का परिचय वही हुआ। ये सब बगाली थे और इन के बीच एक सिख युवक का रहना सी० आई० डी० को सन्देह का निमन्त्रण देना था। श्री गणेशशकर 'विद्यार्थी' ने अपने 'प्रताप' के सम्पादन विभाग मे भगत सिंह को स्थान दे कर इस मसले को हल कर दिया। अब भगत सिंह भगत सिंह न रह कर बलवन्त सिंह हो गये थे और 'प्रताप' मे वह इसी नाम से लिखते थे। इस व्यवस्था के होने से पहले कुछ दिन अखबार बेच कर अपने खाने-पीने का काम उन्होने चलाया।

अब भगत सिंह क्रान्तिकारी दल के आदमी थे और दल का काम ही उन का काम था। काम को समझना और उसे पूरी तरह अपनी मुट्ठी मे ले लेना उन का स्वभाव था। वे काम को समझ रहे थे, पर जो काम उन के मन मे उधेड-बुन मचाता था, वह डकैती डाल कर पार्टी के लिए रुपया लाना था। पार्टी को रुपये की जरूरत थी, रुपया पाने का और कोई रास्ता न था, यह डकैती का एक पहलू था, पर डकैती तो किसी नागरिक के घर ही डालनी थी। इस लिए डकैती पार्टी को जनता से दूर करती थी। जनता मे उसे अलोकप्रिय बनाती थी, यह उस का

दूसरा पहलू था। भगत सिंह ने संसार की क्रान्तियों के इतिहास का गहरा अध्ययन किया था और उन्हें विश्वास हो गया था कि चौंका देने वाले कुछ काण्डों से देश में क्रान्ति नहीं हो सकती। उस के लिए जनता को साथ लेना होगा, लेना ही होगा पर डकैती तो उसे और भी दूर करती है। उन्हों ने निश्चय कर लिया था कि वे इस स्थिति को बदलेंगे और अपने जीवन को ही उस का साधन बनायेंगे।

कानपुर पुलिस की निगाहों में चढ़ गया था। एक बड़े काण्ड की तैयारी आरम्भ हो गयी थी इस लिए पार्टी के सदस्य बेहद सतर्कता बरत रहे थे और इधर उधर हो गये थे। भगत सिंह को श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने ग्राम शादीपुर तहसील खैर जिला अलीगढ़ के नेशनल स्कूल में हेडमास्टर बनवा दिया था। वे ठाकुर टोडर सिंह (बाद में कांग्रेसी एम० एल० ए०) के घर पर रहते थे और स्कूल का काम देखते थे। स्कूल थोड़े ही दिनों में चमक उठा था। किसी ने लेनिन महान के लिए कहा था—'वे क्रान्तिकारी न बन जाते तो प्रोफेसर होते।' भगत सिंह की अध्ययनशीलता और अध्यापकी को देख कर कह सकते हैं कि वे क्रान्तिकारी न होते तो एक सफल प्रिंसिपल होते।

वे कदम-कदम आगे बढ़ जा रहे थे पर घर के लोग कदम-कदम परेशान हो रहे थे—कहाँ गया भगत सिंह। उन्हीं दिनों भगत सिंह ने अपने मित्र श्री रामचन्द्र को एक पत्र लिखा। उस में अपना पता भी दिया। हिदायत थी कि वह किसी को पता न बतायें लेकिन परिवार की परेशानी रामचन्द्र के सामने थी। उन्हों ने श्री जयदेव गुप्ता से पत्र का ज़िक्र किया पर पता नहीं बताया। बहुत आग्रह हुआ तो उन्हों ने कहा—'पता बताने की तो कसम है। उसे मैं तोड़ नहीं सकता, पर तुम्हारे साथ उस पते पर चल सकता हूँ।'

दादी श्रीमती जय कौर सख्त बीमार थीं और भगत सिंह को एक बार देखने के लिए तड़प रही थीं। सोचता हूँ उन के हृदय में यह विचार अवश्य होगा कि विवाह का आग्रह मेरा ही था जिस के कारण भगत सिंह को घर छोड़ना पड़ा। सरदार किशन सिंह ने 'वन्दे मातरम' में विज्ञापन छपवाया था कि 'भगत सिंह जहाँ भी हो लौट आयें उन की दादी सख्त बीमार है।' समय की बात यह विज्ञापन श्री गणेशशंकर 'विद्यार्थी' ने पढ़ा था पर तब उन्हें क्या पता था कि उन का लाड़ला बलवन्त सिंह ही भगत सिंह है और विख्यात क्रान्तिकारी सरदार किशन सिंह और सरदार अजीत सिंह का वंश-पुष्प है।

श्री जयदेव गुप्ता और श्री रामचन्द्र जब विद्यार्थी जी के पास पहुँचे तब यह भेद खुला। पत्र में सम्भवतः पता 'विद्यार्थी जी' का ही था। वहाँ से ये लोग शादीपुर गये। भगत सिंह ने उन्हें दूर से देख लिया और विद्यार्थियों को महमानों की खातिर करने और अपने बारे में कुछ न बताने की बात कह इधर उधर हो गये। ये लोग फिर विद्यार्थी जी के पास आये और उन का आश्वासन पा घर लौटे। सब समाचार सुन सरदार

किशन सिंह ने कानपुर के काँग्रेसी नेता मौलाना हसरत मोहानी (वाद मे लीग के नेता) को पत्र लिखा कि वे 'विद्यार्थी' जी के द्वारा भगत सिह से मिले और उन्हे घर लौटने को कहे। भगत सिह के नाम भी एक पत्र उसी लिफाफे मे भेजा, जिस से वे विश्वास कर सकें। पत्र मे विवाह के लिए आग्रह न करने का वचन था और दादी जी के वीमार होने की वात कही गयी थी। 'विद्यार्थी' जी और मौलाना साहव ने जोर डाला और दादी की वीमारी ने उन्हे मर्माहत किया। भगत सिह कोई छह महीने वाद घर लौटे। घर का उदास वातावरण उन के आने से खिल उठा और किसी ने भी उन से विवाह की वात नही की। वे पूरी तल्लीनता से दादी की सेवा मे जुट गये। अच्छी से अच्छी नर्स जो सेवा नही कर सकती थीं, वह उन्हो ने की। दवा और खुराक का ध्यान तो रखा ही, उन्हे खूब हँसाया भी। वे कुछ दिन मे स्वस्थ हो गयी। अव स्थिति यह हो गयी कि भगत सिह कभी दादी के पास वगा मे रहते थे तो कभी लाहौर चले जाते, कभी दूसरे दिन ही लौट आते, कभी कई-कई दिन न लौटते। उत्तर भारत मे क्रान्ति सगठन मे जो नया ताना-वाना पूरा जा रहा था, उसी मे वे लगे हुए थे।

उन्ही दिनो एक घटना ने सिद्ध कर दिया कि भगत सिह मे कितनी संगठन-शक्ति है और वे किसी मौके पर पिस्तौल का घोड़ा दवा कर धमाका कर देने वाले जोशीले जवान ही नही, किसी पार्टी का नेतृत्व कर सकने के योग्य नेता है। यह १९२४ के मार्च महीने की वात है।

अकाली आन्दोलन का मोर्चा ननकाना साहव से हट कर जैतो मे जम गया था। ननकाना साहव के गोलीकाण्ड और राक्षसी लाठी चार्ज से हुए शहीदो को श्रद्धाजलि देने के लिए शोक-दिवस मनाया गया। उस मे भुजा पर काली पट्टी वाँध कर सव शामिल हुए। आशा के विरुद्ध नाभा के महाराज रिपुदमन सिह काली पट्टी वाँध कर जुलूस और जलसे मे शामिल हुए। वे स्वतन्त्र विचारो के नरेश है, यह तो सुना था सव ने, पर वे इतना साहस कर वैठेंगे, यह किसी को आशा न थी, क्यो कि यह तो खुले आम अँगरेजी सरकार का विरोध था। वायसराय उन से सख्त नाराज हुआ और वे गद्दी से उतार कर देहरादून मे नजरवन्द कर दिये गये। इस पर अकालियो के जत्थे जैतो (नाभा) जाने लगे और वडा खूखार मोर्चा वहाँ जम गया।

जैतो जाने वाला एक जत्था सरदार किशन सिह के गाँव वगा हो कर गुजरने वाला था। सरकार और सरकार-परस्त लोग इन जत्थो को महत्वहीन सिद्ध करने मे लगे थे पर राष्ट्रीय लोग इन का धूमधाम से स्वागत करते थे। जत्थेदार सरदार करतार सिंह और सरदार ज्वाला सिह लाहौर जा कर सरदार किशन सिह से मिले कि वगा मे जत्थे के स्वागत का प्रवन्ध करने के लिए वे आये, वे जरूर आते, पर उन का वीमे के काम से वम्वई जाना तय हो चुका था। फिर भी उन्हो ने स्वागत की जिम्मेदारी ले ली और व्यवस्था करने के लिए भगत सिह को गाँव भेज दिया। स्वागत क्या, यह तो एक मोर्चा था, क्यो कि सरदार किशन सिंह के कुटुम्ब भाई सरदार वहादुर दिलवाग सिह,

फर्स्ट क्लास ऑनररी मजिस्ट्रेट एलान कर चुके थे कि इस इलाके में खाना-पीना तो क्या जत्थे वालों को पेड़ का सूखा पत्ता भी नहीं मिलेगा। वे जत्थेदार इसी कारण लाहौर गये थे। इस मोरचे पर पिता-द्वारा भगत सिंह को पूरी जिम्मेदारी सौंपना क्या स्पष्ट नहीं करता कि उन्हें अपने पुत्र पर पूरा भरोसा था। भगत सिंह उस समय केवल सत्रह वर्ष के नवयुवक थे। वे मोरचे पर पहुँच गये।

अब एक तरफ थे सरदार बहादुर दिलबाग सिंह, दूसरी तरफ था सत्रह वर्ष का एक नवयुवक।

सरदार बहादुर का सारे इलाके में रोब और दबदबा था। वे अंगरेज सरकार का दाहिना हाथ समझे जाते थे और कहा जाता था कि उन की मर्जी के बिना इलाके में पत्ता भी नहीं खटक सकता। उस नवयुवक को तब लोग अच्छी तरह जानते भी न थे क्यों कि गाँव से दूर लाहौर में वह अभी तक पढ़ता रहा था और छुट्टियों में ही कभी घर आता था।

हाँ, दोनों में कोई जोड़ न था, कोई तुलना न थी, पर दोनों में एक तरह का शीत-युद्ध छिड़ गया था। हारने पर सरदार बहादुर की प्रतिष्ठा का वृक्ष कुम्हला सकता था और जीतने पर नवयुवक की प्रतिष्ठा का पहला अंकुर उग आने वाला था।

दोनों दो दुश्मनों की तरह जूझ रहे थे, पर दुश्मन न थे। रिश्तेदार ही नहीं, एक ही वंश-वृक्ष के दो टहने थे। दोनों की देह में एक ही पुरखे का रक्त था, पर दोनों के कदम भिन्न दिशाओं की ओर थे। सरदार बहादुर अंगरेज सरकार के जमे रहने में अपनी वृद्धि के सपने देखते थे, तो नवयुवक अँगरेज सरकार को उखाड़ फेंकने में ही देश की समृद्धि के सपने सजाता था।

एक के पास धन का बल था, तो दूसरे के पास मन का। एक के साथ पुलिस की शक्ति थी, तो दूसरे के साथ देश-भक्ति की। सफलता की कसौटी यह थी कि जनता किस के साथ होगी। पहले ने भय का गर्जन किया, जो मेरा साथ नहीं देगा, उसे उखाड़ फेंका जायगा। दूसरे ने प्यार का निमन्त्रण दिया— यह हमारे गाँव के सम्मान का प्रश्न है।

मोरचा यह था कि अकालियों का तेरहवाँ शहीदी जत्था जैतों जा रहा था। सरकार इस जत्थे के विरोध में थी। इस लिए गाँवों में यह आदेश भिजवाया गया था कि किसी गाँव में यदि जत्था आ कर रुके, तो उस के लिए खान-पान का कोई सामान न पहुँचाया जाय। जनता इस जत्थे के पक्ष में थी, पर जनता को सरकारी भय ने जकड़ा हुआ था और उस में सामने आने का साहस न था। बंगा गाँव में भी सब चाहते थे कि जत्थे का स्वागत किया जाय, पर सरदार बहादुर दिलबाग सिंह चाहते थे कि सिवाय दुत्कार के जत्थे वालों को यहाँ कुछ न मिले। यहाँ तक कि गाँव में ढिंढोरा पिटवा दिया गया कि कुओं पर से डोल उठा लिए जायें, ताकि जत्थे वाले माँग कर भी पानी न पा सकें।

व्यवस्था और भय का जो जाल सरदार बहादुर ने विछाया था, उसे चारो ओर घूमती पुलिस ने और भी मजबूत कर दिया, पर सगठन-शक्ति और योजना-चातुर्य की बलिहारी कि विना सरदार बहादुर को चौंकाये वह नवयुवक उस जाल के भीतर ही शान्त भाव से अपना काम कर रहा था, इस तरह कि जैसे वह कुछ नही कर रहा है—धीमे-धीमे, गहरे-गहरे, चौकस और चौकन्ने भाव से। सरदार बहादुर पूरी व्यवस्था करने के बाद अब निश्चिन्त थे। उन्हे विश्वास हो गया था कि वे गवर्नर के सामने अपने कारनामे का बखान खुशामद मे लिपटी शान से कर सकेंगे, जिस की भाषा होगी यह कि हुजूर, यह आप का इकबाल है, पर जिस का मतलब यह होगा कि हुजूर देखा आप ने मेरा इकबाल।"

निश्चित तारीख पर जत्था आया और गाँव के बाहर ठहरा, तो जत्थे के स्वागत मे उस नवयुवक ने जोरदार भाषण दिया। उस की खास बात यह थी कि उस मे गोपी-नाथ साहा (बगाल के शहीद) और दूसरे क्रान्तिकारियो की साफ शब्दो मे प्रशसा की गयी थी। गाँव के कुछ लोग पास आ गये थे और कुछ दूर से भाषण सुनते रहे थे। उसी समय जत्थे के स्वागत मे आतिशबाजी भी छोडी गयी, जो उस नवयुवक ने पहले से ही खरीद कर रखी थी। लोगो ने जब एक नवयुवक की यह हिम्मत देखी, तो उन के मन पर से आतक की वह काली चादर हट गयी, जिसे सरदार बहादुर ने यत्नपूर्वक फैलाया था। फिर भी झिझक अभी बाकी थी। रातो-रात मनो दूध, टोकरो रोटियाँ, घडो सब्जियाँ, सब-कुछ घरो-घरो से तैयार हो कर उस नवयुवक के घर पहुँच जाता और दिन निकलने से पहले ही वह नवयुवक और उन के हम-उम्र साथी, उसे सिरो पर उठा कर ले जाते और जत्थे के पास पहुँचा देते। इतना ही नही, दूसरे गाँवो से भी लोग रोटियाँ लाते, गन्ने के खेत मे निश्चित जगह पर रख जाते और जत्थे वाले उठा लेते। यह सब उस नवयुवक के संगठन-कौशल का ही चमत्कार था। जत्था एक दिन के बजाय तीन दिन ठहरा और खूब धूम-धाम रही। जब जत्था चला तो जत्थे वाले गा रहे थे—

"लाज रख ली, लाज रख ली, भगत सिंह प्यारे ने लाज रख ली।"

हाँ, वह नवयुवक भगत सिंह ही थे। भगत सिंह, जिस ने इस घटना के सात वर्ष बाद हँसते-हँसते अपने जीवन की बलि दे कर इतिहास मे शहीदे-आजम भगत सिंह का अमर नाम पाया।

सरदार बहादुर की शान टुकडे-टुकडे हो गयी थी। वे प्रतिशोध की भावना मे भर उठे और उन्हो ने सरकार पर जोर डाला कि भगत सिंह को जेल मे बन्द किया जाये, पर वे नाबालिग थे, सरकार झिझक रही थी। सरदार बहादुर ने इसे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया, तो गिरफ्तारी का वारण्ट निकाला गया। भले ही भगत सिंह नाबालिग थे, पर उन की बुद्धि तो बालिग थी। वे कन्नी काट गये और हाथ नही आये।

भगत सिंह अब दिल्ली में थे और दैनिक अर्जुन के सम्पादकीय विभाग में काम कर रहे थे। नाम था—बलवन्त सिंह। कुछ दिन बाद फिर कानपुर गये। गंगा में बाढ़ आयी हुई थी। इस अवसर पर रात-गश्ती करना उन का दैनिक कृत्य था। लोगों को बचाने और सामान बचाने में जुट गये। आखिर क्रान्तिकारी यही थे। पार्टी को रुपये की बड़ी जरूरत थी। तरह-तरह का खर्चा भारी हो रहा था। उपाय था यही कि कहीं डकैती डाली जाय। डाली गयी और कई में भगत सिंह भी शामिल हुए। पहली बार जब वे डकैती में गये थे तो उस रात की कुरूपता उन पर इस हद तक छा गयी थी कि उन्हें घृणा हो गयी थी। अब वे कुरूपता का वर्णन करते थे पर मन में उन पर इसका असर पड़ता था कि उनके अन्दर का रंग बदल जाता था और गम्भीरतापूर्वक सोचने पर भी वे घृणा से भरे रहते थे। यह गम्भीरता भी बहुत साधारण होती थी। उन की निगाह आज के आतंक पर नहीं बल्कि जन-क्रान्ति पर केन्द्रित था।

भगत सिंह अब लाहौर में थे और पूरी शक्ति से नौजवान भारत सभा की स्थापना में जुट गये थे। उस का प्रगतिशील संविधान बनाने में श्रेष्ठ मनुष्य श्रेष्ठ गायी और श्रेष्ठ क्रान्तिकारी था भगवतीचरण कदम-ब-कदम उन के साथ थे। इस स्थापना के पीछे उन का यह सहज चिन्तन था कि जन-मानस से जोड़ बिना सशस्त्र क्रान्ति का प्रयत्न महज आतंकवाद के सहारे सफल नहीं हो सकता था। इस के साथ ही यह चिन्तन भी जो डकैतियों की कुरूपता से उन के मन में जमा था उन्हें प्रेरित कर रहा था। इन दोनों के साथ एक अनुभव भी था जो उन्हें १९२४ में केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव के समय हुआ था। लाला लाजपत राय जी ने महामना मालवीय जी के साथ मिल कर 'इण्डिपेण्डेण्ट कांग्रेस' पार्टी के नाम से कांग्रेस के मुकाबले पर चुनाव लड़ने की नयी पार्टी बना ली थी। साफ-साफ बात यह थी कि लाला जी उस साम्प्रदायिक वातावरण में बह गये थे जो हिन्दू मुस्लिम दंगों के रूप में सारे देश में उन दिनों पैदा हुआ था। भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह कांग्रेस के साथ थे और उन्होंने लाला जी से जम कर टक्कर ली थी। इस टक्कर में भगत सिंह ने पूरे जोश के साथ उन्हें सहयोग दिया था। जल्से किये थे। भाषण दिये थे। धुआँधार नारे लगाये थे। पोस्टर चिपकाये थे। हैण्डबिल बाँटे थे। भाग दौड़ की थी और इन सब के बीच एक सार्वजनिक आन्दोलन का रोमांचकारी उल्लास अनुभव किया था। इस सार्वजनिक आन्दोलन के इस रोमांचकारी उल्लास को वे गुप्त सशस्त्र क्रान्ति आन्दोलन के साथ जोड़ना चाहते थे। नौजवान भारत सभा उसी का एक उपकरण थी।

श्री रामकिशन बी० ए० (कौमी) सभा के प्रसीडेण्ट बने भगत सिंह जनरल सेक्रेटरी और भगवतीचरण प्रचार मन्त्री। कांग्रेस में हमेशा दो ग्रुप रहे हैं एक नरम एक गरम। समाजवादी ग्रुप का विकास तो कांग्रेस में १९३५ के बाद हुआ उस समय तो व्यक्तियों के रूप में ही कुछ प्रगतिशील लोग थे। उन सब लोगों ने भारत नौजवान सभा का साथ दिया। ऐसे लोगों में सब श्री केदारनाथ सहगल डॉक्टर सफ़्दीन

किचलू, लाला पिण्डीदास, लाला लालचन्द फलक और डॉक्टर सत्यपाल आदि थे। क्रान्तिकारी साथियो का सहयोग तो था ही—यह सस्था ही उन की थी। कुछ ही दिनो मे नौजवान भारत सभा की शाखाएँ दूर-दूर तक फैल गयी। जब सभा ने गदर-पार्टी के शहीद युवक शिरोमणि करतार सिह सरावा का वलिदान दिवस एक खुले उत्सव के रूप मे मनाया तो सनसनी फैल गयी। उत्सव मे सरावा का एक वडा चित्र (जो इसी अवसर के लिए बनवाया गया था सफेद खद्दर से ढँक कर रखा गया। जब महान् क्रान्तिकारिणी श्रीमती दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी ने अपनी-अपनी उँगली काट कर उस खद्दर पर खून के छीटो का अभिषेक किया तो उपस्थित जनता देश-भक्ति और वलिदान की भावना से अभिभूत हो उठी। एक शहीद क्रान्तिकारी का वलिदान दिवस इस तरह मनाना एक ऐतिहासिक घटना थी और सरावा के चित्र का अनावरण गुप्त आन्दोलन का जनता के मानस-क्षेत्र में प्रथम उद्घाटन ही था।

भारतीय भाषाओ और सस्कृति की रक्षा, शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य को बढाना और कुरीतियो को दूर करना भी सभा का उद्देश्य था, पर यह सब किले की दीवार की तरह थे। असली उद्देश्य था इन के सहारे जनता मे पहुँच कर राजनैतिक लक्ष्य की सिद्धि करना। सभा का सदस्य बनते समय हरेक को शपथ लेनी पडती थी कि वह अपने हित से देश के हित को श्रेष्ठ समझेगा। नौजवान भारत सभा के उद्देश्य इस प्रकार थे—

१ समस्त भारत के मजदूरो और किसानो का एक पूर्ण स्वतन्त्र गणराज्य स्थापित करना।

२ एक अखण्ड भारत-राष्ट्र के निर्माण के लिए देश के नौजवानो मे देश-भक्ति की भावना उत्पन्न करना।

३ उन आर्थिक, सामाजिक और औद्योगिक आन्दोलनो के साथ हमदर्दी रखना, सहायता करना, जो साम्प्रदायिकता-विरोधी हो और किसान मजदूरो के आदर्श गणतान्त्रिक राज्य की प्राप्ति मे सहायक हो।

४ किसान और मजदूरो को संगठित करना।

इस सविधान का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि नौजवान भारत सभा ने पूर्ण स्वतन्त्रता की यह घोषणा १९२६ के आरम्भ मे की, जब कि देश के सबसे वडे राजनैतिक दल कॉंग्रेस ने ऐसी घोषणा १९२७ की मद्रास कॉंग्रेस मे की, जिस के सभापति डॉक्टर अन्सारी थे। मजेदार बात यह है कि यह प्रस्ताव कॉंग्रेस के कई अधिवेशनो मे पेश हो कर फेल हो चुका था और इस बार भी उस के पास होने का कारण श्रीमती एनी बेसेण्ट की खामोशी और उन्ही दिनो युरॅप से लौटे पण्डित जवाहर-लाल नेहरू की गरमी थी।

क्रान्तिकारी दल के लिए जोशीले सदस्यो को छाँटना भी सभा का एक उद्देश्य था। इसी काम के लिए भगत सिंह ने लाहौर के विद्यार्थियो की भी एक यूनियन

संगठित की था, जो नौजवान भारत सभा की सह-संस्था थी। एक बात स्पष्ट है कि भगत सिंह के इन सब प्रयत्नों का उद्देश्य था—जनता में राजनीतिक जागरण पैदा करना और उस जागरण का समय पर उपयोग करने के लिए क्रांतिकारी दल को मजबूत बनाना।

समय-समय पर नौजवान भारत सभा अपने जलसे करती थी। उन में जो भाषण होते थे उन की टोन दूसरे सार्वजनिक भाषणों से भिन्न होती थी। जनता उन्हें पसन्द करती थी, उन में दिलचस्पी लेती थी। सामाजिक क्रान्ति का समर्थन देने वाले आयोजन भी सभा करती थी जिस से अंधविश्वासों और कुरीतियों पर चोट पड़े, समाज के लोग एक-दूसरे के नजदीक आयें, भेदभावों की दीवारें टूटें। सभा का नारा था—हिन्दुस्तान जिन्दाबाद। श्री मुजफ्फर अहमद ने अपने एक लेख में लिखा है कि भगत सिंह बाद में सभा की तरफ से उदासीन हो गये थे क्योंकि वह एक सार्वजनिक संगठन बन कर रह गयी थी और क्रांति के काम को आगे बढ़ाने में असफल रही थी। मैं समझती हूँ यह कथन ठीक नहीं है। सभा ने अपने समय पर अपना काम बखूबी किया और *भगत सिंह की पूरी दिलचस्पी जीवन के अन्त तक नौजवान भारत सभा के साथ रही* और वे जेल से भी सभा का मार्गदर्शन करते रहे और १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन को उस से बहुत लाभ पहुँचा। इस से भी बढ़ कर यह कि १९२५ के साम्प्रदायिक अंधेरे में एक राजनीतिक संगठन की स्थापना करने की सूझ और उसे जमा कर खड़ा कर देने की शक्ति भगत सिंह के उस समय के व्यक्तित्व को हमारे सामने एक चमत्कार रूप में प्रस्तुत करती है। एक और चीज भी इस बात की गवाह है कि भगत सिंह विचार की दृष्टि से उस समय पूर्णता तक पहुँच गये थे। यह चीज है—हिन्दी साहित्य सम्मेलन पंजाब की [illegible] होड़ (कम्पटीशन) में लिखा पंजाब की भाषा-समस्या पर लेख। भाषा शैली और विवेचन की दृष्टि से यह उन की पक्की प्रौढ़ता का प्रमाण है।[१]

इस बीच काकोरी केस में भगत सिंह बराबर दिलचस्पी लेते रहे और जेल में बन्द उस के अभियुक्तों से भी सम्पर्क बनाये रहे। एकाध बार शानदार वेश-भूषा में मुकदमा सुनने भी गये। श्री योगेशचन्द्र चटर्जी के शब्दों में—"सरदार भगत सिंह गोरा रंग, ब्राउन (ब्रिजिस) पहने तथा सिर पर कमीश की हुई पगड़ी पहने अदालत में आये। वे हमारे वकील के ठीक आगे की सीट पर बैठ गये और उन्हों ने जरा भी इस बात की चिन्ता नहीं की कि वहाँ अनेक सी० आई० डी० अधिकारी उपस्थित थे जिन्हों ने अदालत को घेर रखा था। वे मस्त और निर्भीक क्रान्तिकारी थे।" श्री चन्द्रशेखर आजाद इस मुकदमे के विख्यात फरार थे। श्री विजय कुमार सिन्हा भी बाहर थे और दूसरे कई मुख्य सदस्य भी। सब लोग पार्टी के संगठन को मजबूत

१ यह लेख सुरक्षित है। 'हिन्दी सन्देश' के २८ फरवरी १९३३ के अंक में श्री भीमसेन विद्यालंकार ने इसे छपवाया था। बाद में [illegible] द्वारा सम्पादित '[illegible]' साहित्य के दूसरे अंक में भी यह छापा गया।

वनाने मे लगे हुए थे। केन्द्रीय समिति का दफ्तर आगरे मे ही था। इस वीच का०का०। केस के अभियुक्त श्री योगेशचन्द्र चटर्जी को जेल से छुडाने की जो योजनाएँ वनी (वे सफल नही हुई) उन मे भगत सिंह पूरी तरह शामिल थे। दल मे उस समय उन का स्थान उन के अध्ययन, स्वभाव और तेजस्विता के कारण वहुत ऊँचा हो गया था—वे विना चुनाव ही दल के नेता माने जाने लगे थे।

उन का व्यक्तित्व तेजी से अपने लक्ष्य तक पहुँच रहा था। उन के राष्ट्रीय व्यक्तित्व के सम्वन्ध मे एक उल्लेख यही उचित होगा। भारत के कम्युनिस्ट नेता श्री शौकत उस्मानी जव मास्को मे भारत लौटते समय स्टालिन महान् से मिले, तो उन्हो ने यह सन्देश दिया—"भगत सिह से कहना, वे मास्को आयें।" उस्मानी साहव यहाँ आने पर मेरठ षड्यन्त्र केस मे गिरफ्तार हो गये और वह सन्देश भगत सिंह को नही दे सके। यह वात उस्मानी साहव ने अपने लेख मे कही है। एक प्रश्न यह उठता है कि स्टालिन महान् भगत सिह से कैसे परिचित हुए। सम्भव है उस्मानी साहव ने उन से भगत सिंह के सम्वन्ध मे कुछ कहा हो, पर एक सूत्र और भी है। रूसी नेतृत्व के सीधे तत्त्वावधान मे सरदार गुरमुख सिह और सरदार सन्तोख सिह जो सगठन वना रहे थे वे भगत सिह को उस मे लेने मे असफल हो गये थे। वहुत सम्भव है उन्हो ने रूस मे यह खवर भेजी हो कि हमारे आन्दोलन को भगत सिंह भारतीय रूप दे सकते है और उसी आधार पर स्टालिन ने उन से मिलना चाहा हो। जो हो, भगत सिंह का राष्ट्रीय व्यक्तित्व अव पूरे निखार पर आ रहा था और उन का साधनाकाल पूर्ण हो गया था।

■ ■

पहली गिरफ्तारी

यह थी सन १९२७ की २९ जुलाई। भगत सिंह अपने काम का ताना बाना पूरा कर बाहर से लौटे और अमृतसर के स्टेशन पर उतरे। अपनी आदत के अनुसार इधर उधर भाँपने की कोशिश की कि कोई पीछा तो नहीं कर रहा है और बहुत चौकन्ने भाव से स्टेशन से बाहर आये। कुछ आगे बढ़े तो एक पुलिस वाला उन की तरफ बढ़ता नज़र आया। वे झपटे, वह और भी तेज़ झपटा। वे दौड़े, वह भी उन के पीछे दौड़ने लगा। भरा हुआ पिस्तौल उन की जेब में था पर उन्होंने सन्तुलन बनाये रखा। अब आँख मिचौनी आरम्भ हुई। वे एक गली में घुसते दूसरी में जा निकलते। पीछा करने वाला भी तेज़ था। वह भी उस गली में जा पहुँचता। वे और आगे बढ़ जाते।

श्री रणवीर सिंह के शब्दों में— यूँ ही दौड़ते-बचते एक मकान के बोर्ड पर उन की निगाह पड़ी। लिखा था—सरदार शार्दूल सिंह एडवोकेट। वे आँख बचा कर मकान के भीतर चले गये। एडवोकेट साहब मेज़ पर बैठे फाइलें देख रहे थे। भगत सिंह ने स्थिर और शान्त भाव से सारी बातें उन से कह दीं और पिस्तौल उन की मेज़ पर रख दिया। एडवोकेट साहब ने पिस्तौल मेज़ की दराज़ में रखा, भगत सिंह को नाश्ता कराने का आदेश नौकर को दिया और द्वार पर जा टहलने लगे। कुछ देर बाद पुलिस वाला भी जा पहुँचा।

वकील साहब, इधर एक सिक्ख नौजवान आया है? सिपाही ने पूछा।

हाँ आया तो था, लम्बा-चौड़ा एक नौजवान। कुर्ता पाजामा पहने था, वही तो नहीं?

जी हाँ, वही तो है। बड़ा मशहूर चोर है, किधर गया?

वकील साहब के मकान में कुछ आगे क्रान्तिकारी विचारों के पंजाबी मासिक 'किर्ती' का दफ्तर था। वकील साहब ने उधर इशारा करते हुए कहा— 'उस दफ्तर की तरफ गया है।' वान टार की क्रान्तिकारी भगत सिंह 'किर्ती' की तरफ नहीं जायेगा तो कहाँ शरण पायेगा। भगत सिंह जब भागा कर रहे थे तब 'किर्ती' का दफ्तर पुलिस से घिरा हुआ था।

युगद्रष्टा भगत सिंह

सोचती हूँ तो सोचती ही रह जाती हूँ कि कौन-सी भावना थी वह, जिस के वशीभूत हो कर एक वकील सब कुछ जानते-बूझते भी भयकर खतरे से खेल रहा था। बात खुल जाती तो वकालत का लायसेंस जब्त होता, जेल मे चक्की पीसनी पडती और परिवार सकट मे फँसता। फिर भगत सिह उन के कौन थे, जिन के लिए वे इतने बडे खतरे से जूझ रहे थे? यह देश-भक्ति का भाव था, यह वीर-पूजा का भाव था। मानना पडेगा कि सरदार शार्दूल सिह उस राष्ट्रीय-भावना के श्रेष्ठ प्रतिनिधि थे, जो उस युग मे जन-साधारण की सहज मनोवृत्ति वन गयी थी।

दिन-भर भगत सिंह घर के भीतर रहे और रात मे पिस्तौल वकील साहव के पास छोड, छहराटा स्टेशन से रेल मे वैठ गये। लाहौर स्टेशन पर उतर कर वे कुछ देर प्लेटफॉर्म पर खडे रहे। पिस्तौल उन के पास नही था, इसलिए वे काफी निश्चिन्त थे। जब कोई उन के पास नही आया तो वे स्टेशन से वाहर निकले और ताँगे मे वैठ कर चल पडे। कुछ दूर जाने पर ताँगा पुलिस ने घेर लिया और उन के हाथो मे हथ-कडियाँ डाल दी। पुलिस उन्हे थाने ले जा रही थी, कोई परिचित मिल गया तो उन्हो ने अपने पिता को गिरफ्तारी की सूचना भिजवा दी।

इस गिरफ्तारी का आधार कुछ था, पर नाम कुछ था। लाहौर मे दशहरे का जो मेला होता था, उस की भीड पर किसी ने वम फेक दिया था। दस-वारह आदमी मर गये थे और पचास से ज्यादा घायल हुए थे। इसे दशहरा वम-काण्ड कहा गया। आम जनता क्रान्तिकारियो को वम-पार्टी कहती थी। यह वात सारा देश जानता था कि क्रान्तिकारी लोग वम-पिस्तौल से अँगरेजो को डराना चाहते थे। चाँदनी चौक मे लॉर्ड हार्डिग्ज पर २३ दिसम्वर १९१२ मे वम फेका जा चुका था। काकोरी केस तो १९२५ मे ही हुआ था, जिस मे चलती ट्रेन रोक कर सरकारी खजाना लूट लिया गया था।

इस पृष्ठभूमि मे जब १९२६ के दशहरे पर वह वम फटा तो सब के ध्यान मे क्रान्तिकारी कौंध गये। अँगरेजी सरकार की खुफिया पुलिस ने इस अवसर का पूरा फायदा उठाया, और यह वम क्रान्तिकारियो ने फेंका है, सन्देह की इस चिनगारी को खूब हवा दी। इस से उसे दो फायदे थे। पहला यह कि जनता मे क्रान्तिकारियो के प्रति नफरत फैलती थी, दूसरा यह कि सन्दिग्ध क्रान्तिकारियो को फँसाने मे पुलिस को सुविधा प्राप्त होती थी।

ऊपर से देखने से ऐसा लगता था और कहा भी यही जाता था कि भगत सिह की गिरफ्तारी दशहरा वम-काण्ड के सिलसिले में हुई हैं, पर इस वात मे कोई तुक न थी। चन्नणदीन नाम के आदमी ने वम फेका था। जानकार लोग उसे पुलिस का ही आदमी कहते है। वह पुलिस के इशारे पर ही साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने के लिए यह सब करता था। वाद मे वह दुष्टात्मा साँप के काटने से मर गया। भगत सिंह को गिरफ्तार कर के पुलिस काकोरी केस के फरारो और दूसरे सम्वन्धित क्रान्तिकारियो

की राज-खबर लेना चाहती थी। काकोरी काण्ड का अन्तिम रूप देने के लिए क्रान्तिकारियों की जो बैठक मेरठ में हुई था, उसमें भगत सिंह निमन्त्रित थे। —व उसमें जा न सके थे—इस की सूचना पुलिस के पास थी। यह बात इससे भी सिद्ध है कि काकोरी बम के निर्माता पुलिस अधिकारी खान बहादुर तसद्दुकहुसैन स्वयं लाहौर आये थे और उन्हों ने भगत सिंह से पूछताछ की थी।

भगत सिंह ने इस बन्दी-जीवन में अद्भुत क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया। पुलिस के त्रास सहन में वे चट्टान सिद्ध हुए और अपने रहस्यों को छिपाये रखने में अल्पन की। उन्होंने ऐसा अभिनय किया कि चालाक अफसर भी दुविधा के चक्कर में पड़ गये। पुलिस की हवालात अब भी गाँव की चौपाल नहीं है कि आदमी वहाँ आराम से बैठा बातें करता रहे, फिर यह तो अंगरेजी राज की बात है। छान-बीन भी एक ऐसे क्रान्तिकारी की हो रही थी, जिस पर पुलिस की निगाह तो बहुत दिनों से थी—(१९२४ में) पर अपनी होशियारी की वजह से जो पुलिस के हाथ नहीं आ रहा था और अब लाहौर के किले में एकदम उस की मुट्ठी में था।

दशहरा बम-काण्ड तो बहाना था। पूछ-ताछ का निशाना तो दल और काकोरी के फरार अभियुक्त थे। पुलिस अफसर अपनी बातों पर आते, तो भगत सिंह दशहरा बम-काण्ड की गैर इनसानी हरकत की निन्दा करने लगते। यह सब वे इतने निश्चिन्त भाव से करते कि उन का चेहरा एकदम शान्त रहता। अफसरों के कागज कुछ कहते भगत सिंह के बोल कुछ। अफसर सब-कुछ कर सकते थे। उन के गुस्से पर किसी की रोक न था। उन्हों ने क्या-क्या किया और भगत सिंह ने क्या क्या वहाँ सहा इस बार में उन्हों ने कभी किसी से ज्यादा नहीं कहा। उन के प्रिय साथी श्री जयदेव गुप्त से जब मैं ने पूछा कि क्या आप के साथ भगत सिंह जी का इस मामले में कोई बातचीत हुई? तो कुछ देर सोचने के बाद वे बोले 'ऐसी कोई बात उन्हों ने मुझे नहीं बतायी।' इस न बताने का कारण यह है कि वे दूसरों के कष्ट को सवाया देखते थे और अपने कष्ट को बिल्कुल न कहते थे। यह उन के चरित्र की खास बात थी। पर हाँ हमारे खानदान के कागजों में एक लाइन मिलती है— आप को शाही किला लाहौर में तरह तरह की अज़ारें दी गयी। सिर्फ चाची हरनाम कौर को ही उन्हों ने इस सम्बन्ध में कुछ संकेत दिये थे।

१९४२ की जनक्रान्ति में देश के विख्यात नेता श्री जयप्रकाश नारायण और श्री राममनोहर लोहिया लाहौर के इसी किले में रहे थे और तब उन पर वहाँ होने वाले अत्याचारों की कहानियाँ पत्रों में छपी थीं। १९६७ में प्रकाशित और श्री ओंकार शरद-द्वारा लिखित डॉ० राममनोहर लोहिया की जीवनी में लोहिया जी पर लाहौर किले में हुए अत्याचारों की लम्बी कहानी देने के बाद पृष्ठ १४३ पर लिखा है— "जो अफसर जो लोहिया को यातना देने के लिए खास तौर पर मुकर्रर किया गया था, वह कहा था

जो चौदह वर्ष पूर्व[1] भगत सिंह के लिए मुकर्रर हुआ था। उस अफसर ने लोहिया से कहा था कि भगत सिंह ने भी वाद मे भेद वता दिया था। "चौदह वर्ष पहले भारत के लाडले भगत सिंह को तो इसी किले मे..."

भगत सिंह के भेद वताने की वात गप्प है। पुलिस अफसरो का यह खास नुस्खा था कि वे हरेक अभियुक्त को अलग-अलग रख कर यह धोखा दिया करते थे कि उन्हे दूसरे साथी से पूरा भेद मिल गया है। यह सब अभियुक्त को हताश—(डिमॉरेलाइज) करने की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया थी। वे अभियुक्त के मन पर यह असर डालने का प्रयत्न करते थे कि वच तो मै अव सकता नही, फिर वेकार कष्ट क्यो सहूँ, सव रहस्य कह क्यों न दूँ। अफसरो की निरन्तर पूछ-ताछ और दूसरी सख्तियाँ इस हिसाव से एक के वाद एक होती थी कि अभियुक्त रहस्यो को छिपाये रखने की शक्ति और चेतना से वचित हो जाये और जो वह कहना नही चाहता, उसे कह दे। भगत सिह १५ दिन लाहौर के किले मे रहे और वाद मे वोर्स्टल जेल मे भेज दिये गये। उन के पिता सरदार किशन सिंह के प्रभाव और कानूनी कार्यवाहियो के कारण पुलिस भगत सिह को मैजिस्ट्रेट के सामने पेश करने को वाध्य हुई। वह उन से कोई वात कहलवा न सकी थी, इस लिए कुछ ही सप्ताह वाद भगत सिंह जेल से मुक्त हो गये। मुक्ति का कारण था हाईकोर्ट-द्वारा जमानत की स्वीकृति। यह जमानत उस युग की पत्रकारिता के लिए एक विशेष समाचार वन गयी थी, क्यो कि यह जमानत ६० हजार रुपये की थी। इस से स्पष्ट है पुलिस ने उन के भयकर मनुष्य होने के वारे मे कैसी रिपोर्ट दी होगी। फिर भी हाईकोर्ट के जज जमानत मानने को मजवूर थे, क्यो कि उस रिपोर्ट मे भगत सिह के विरुद्ध सन्देह चाहे लाख थे, पर भगत सिह की स्वीकृति का कोई शब्द तो न था और न कोई ऐसा प्रमाण ही, जो अदालत मे टिक सके।

६० हजार रुपये उस युग मे वहुत थे। फिर एक सरकार-विरोधी आदमी की जमानत के लिए तो वे वहुत से भी ज्यादा थे। सरदार किशन सिंह के मित्र वैरिस्टर दुनीचन्द (लाहौर वाले) ने ३० हजार की जमानत दी, श्री दौलत राम ने ३० हजार की। दौलतराम जी आदमी तो सरकार-परस्त थे, पर किसी की जमानत करना उन का कुछ धार्मिक जैसा विश्वास था। सोचती हूँ भगत सिह सीखचो के उस पार तप कर रहे थे, तो सरदार किशन सिंह सीखचो के इस पार क्रान्ति-यज्ञ की वेदी सजा रहे थे। कहने की वात इतनी है कि भगत सिंह की जमानत हो गयी, पर इन तीन शब्दो को सत्य वनाने मे सरदार किशन सिंह को कितनी परेशानियाँ उठानी पडी होगी। भगत सिंह ने अपनी साधना मे रक्त की अजलि दी, पर सरदार किशन सिह ने उस साधना मे पसीने की जो अजलि दी, वह क्या इतिहास के भण्डार को कोई कम कीमती धरोहर है।

---

[1] भगत सिंह २९ जुलाई १९२७ को गिरफ्तार हुए थे और और लोहिया जी पकडे गये थे २० मई १९४४ को। इस तरह दोनो के लाहौर किले में रहने का अन्तर १४ का नही १६ वर्ष का है।

पिता पुत्र में मतभेद था, पर जीवन के आदर्श का नहीं उस आदर्श के लिए जीवन के आचरण का ही यह मतभेद था। सरदार किशन सिंह का सिद्धान्त था दुश्मन पर चोट करो पर चोट खाओ मत। अपने को बचाओ, जिस से बार-बार चोट कर सको।' यह गुप्त आतंकवादी दृष्टिकोण था। भगत सिंह का दृष्टिकोण दूसरा था। वे उस गुप्त आतंकवाद को क्रांति का जन-आन्दोलन बनाने की दिशा में बढ़ रहे थे। उन का जीवन दर्शन था— इस तरह चोट खाओ इस तरह अपनी आहुति दो कि चोट मारने का काम कुछ लोगों का न रहे और उसे जनता अपने हाथ में ले ले। अपने आदर्श के लिए भगत सिंह ने ऐसा कर्म किया कि देश के इतिहास में उस का कोई जोड़ नहीं, पर उस कर्म के लिए उन के पिता ने इतना सहा कि वह भी बेजोड़ है।

■ ■

डेरी और डायरी

भगत सिंह मे बगावत और अनुशासन का अजब मिलाप था। वे इस बात को खूब अच्छी तरह समझते थे कि जिन्हो ने ६० हजार रुपये की जमानत दी है, उन के प्रति उन का क्या उत्तरदायित्व है। वे ऐसा कोई काम नही कर सकते थे, जिस से उन के जमानती किसी तरह के खतरे मे पडे। लाहौर के पास खासरियाँ मे उन के पिता ने एक डेरी खुलवा दी। भगत सिंह डेरी का काम देखने लगे। उन्हो ने इन दिनो अपनी व्यापारिक प्रतिभा का बहुत अच्छा परिचय दिया। वे स्वय पिता जी के साथ जा कर भैंसे खरीद कर लाये और दूसरे प्रबन्धो मे भी उन्हो ने दिलचस्पी ली।

सुबह चार बजे से उठ कर भैसो का दूध निकालना, दिन निकलने के साथ ही ताँगे मे दूध के बरतन लाद कर लाहौर ले जाना, अपने ग्राहको को उसे देना, उन का हिसाब रखना, उन से पैसा लेना और जरूरत की चीजें खरीदना। यह सब काम वे एक समझदार व्यापारी की तरह करते थे। किसी दिन नौकर न हो तो गोबर भी अपने हाथ से उठाते थे। उन का सौन्दर्यबोध बहुत ऊँचे दरजे का था। क्या वे अपने जीवन के मूल कार्य—क्रान्ति से इन दिनो दूर हो गये थे? प्रश्न का उत्तर है यह प्रश्न कि—क्या आत्मा और शरीर कभी जीवन मे अलग हो सकते है। डेरी दिन मे डेरी रहती थी, रात मे क्रान्तिकारियो की धर्मशाला बन जाती थी। भगत सिंह एक बडा भिगौना (टोपिया) और एक स्टोव खरीद लाये थे। गरम दूध साथियो को ठाठ से मिलता था। वही सलाह-मशवरे होते थे, योजनाएँ बनती थी, गपशप भी होती थी।

फिर भी भगत सिंह जमानत से जकडे हुए थे और इस जकडन को तोडने मे लगे हुए थे। वे स्वयं ही सरकार को जमानतियो की तरफ से लिखते रहते थे कि या तो भगत सिंह पर मुकदमा चलाओ, या फिर जमानत समाप्त करो। पत्रो मे भी इस सम्बन्ध मे चर्चा होती रहती थी। सरकार के लिए यह एक प्रश्नचिह्न था। तभी श्री बोधराज ने पजाब कौन्सिल मे सवाल उठाया कि सरकार के पास सबूत है तो वह भगत सिंह के खिलाफ मुकदमा क्यो नही चलाती? बाद मे डॉ० गोपीचन्द भार्गव ने भी ऐसे ही प्रश्न का नोटिस दिया। सरकार ने जमानत समाप्त होने की

घोषणा कर दी और भगत सिंह मुक्त हो कर अपने काम में लग गये।

इसी बीच भगत सिंह को डेरों में जो एकान्त मिला, उस का उपयोग उन्हों ने कलम की साधना में लगाया। अपने अधूरे लेखों को पूरा किया और नये लेख लिखे। सब का सम्बन्ध क्रान्तिकारियों से था। भगत सिंह ने बहुत परिश्रम से क्रान्तिकारियों के चित्र और चरित्र खोज निकाले थे। उन चित्रों की उन्हों ने स्लाइड्स बनवायी। नौजवान भारत सभा के मंच पर मजिक लालटेन के द्वारा ब्रेडला हाल (लाहौर) में समय-समय पर उन का प्रदर्शन होता था और उन की वीरगाथा सुनाया जाती थी। काकोरी के शहीदों की स्मृति में काकोरी डे मनाया गया। उसी जलसे में मजिक लालटेन से काकोरी के शहीदों का परिचय दिया जा रहा था कि लालटेन खराब हो गयी। बिना रोशनी तसवीर परदे पर कैसे आये। किसी को कुछ सूझा नहीं पर भगत सिंह ने तुरंत एक मोटी मोमबत्ती जला कर एक हाथ में ले ली और दूसरे से उसे हवा से बचाते रहे। कभी-कभी हवा का ज़रा तेज़ झोंका आता मोमबत्ती की लपट हाथ को छू जाती हाथ को जलन महसूस होती तब भी हाथ वहीं का वहीं रहता।

प्रगतिशील विचारों की पत्रिका 'किर्ती' (अमृतसर) से उन का सम्पादक मण्डल के सदस्य-जैसा ही सम्बन्ध जुड़ गया था। वे उस में पंजाबी में लिखते थे। साथ ही वे उर्दू में भी लिखते थे। 'अकाली' पत्र से तो उन का सम्बन्ध १९२४ से ही था। वे बेलगाँव कांग्रेस (१९२४) में उस के प्रतिनिधि हो कर गये थे। 'चाँद' का 'फांसी अंक' जो नवम्बर १९२८ में प्रकाशित हुआ उस के अन्त में 'विप्लव यज्ञ की आहुतियाँ' के नाम से ८० पृष्ठों में क्रान्तिकारियों के जो जीवन चित्र छपे हैं (कुछ को छोड़ कर) भगत सिंह के ही लिखे हैं। कुछ उन्हों ने हिन्दी में लिखे थे और कुछ पंजाबी उर्दू में भगत सिंह के अनन्य साथी और विख्यात क्रान्तिकारी श्री शिव वर्मा द्वारा हिन्दी में रूपान्तरित किये गये थे।

जमानत टूटते ही डेरों में भगत सिंह का ध्यान टूट गया। ग्राहकों का समय पर दूध नहीं पहुँचा तो ग्राहक टूट और ग्राहक क्या टूटे डेरा ही टूट गयो। इस टूट का बोझ भी सरदार किशन सिंह पर ही पड़ा। अप्रैल-मई १९२८ तक भगत सिंह का घर से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध बना रहा। इस के बाद वे पूरी तरह अन्तर्ध्यान हो गये। अपने जीवन की पूर्णाहुति में जुट गये। इस के बाद की उल्लेखनीय घटना ८-९ सितम्बर १९२८ को दिल्ली के पुराने किले फिरोजशाह के खण्डहरों में हुई क्रान्तिकारी दल की बैठक है। इस बैठक का भगत सिंह के जीवन में उत्तर भारत के क्रान्तिकारी संगठन के जीवन में और भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक अविस्मरणीय ऐतिहासिक महत्व है।

इस बैठक में पंजाब, युक्तप्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) बिहार और राजपूताना के क्रान्तिकारी आये थे। श्री चन्द्रशेखर आजाद इस में नहीं आ सके थे। उन्हों ने अपना सन्देश भेज दिया था कि जो सब तय करेंगे मुझे स्वीकार होगा। इस प्रकार पूरे दल का सर्वोच्च नेतृत्व इस बैठक में भगत सिंह के हाथों में ही था। इस में दल का नाम

समिति का निर्माण कर भगत सिह ने दल को नया रूप दिया और उन्हो ने क्रान्तिकारी सगठन का नाम हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोशियेशन (हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र सघ) से वदल कर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोशियेशन (हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सघ) कर दिया। इस का साफ़ अर्थ था क्रान्ति के उद्देश्य की पहली वार स्पष्ट घोषणा। निश्चय ही उस मे रूस की क्रान्ति का प्रभाव था और इस विचार को पूर्ण रूप से ग्रहण करने मे श्री विजय कुमार सिनहा, श्री शिव वर्मा और श्री सुखदेव-जैसे कई साथी भगत सिंह के सहायक थे। इस वैठक मे एक विशेषता यह थी कि उत्तर भारत के क्रान्तिकारी संगठन ने पहली वार वगाल के दादागाही नेतृत्व की अधिनायकता मानने से इनकार कर दिया। साथ ही उत्तर भारत के क्रान्तिकारी सगठन पर शिथिलता के जो बूढे साये वुरी तरह छाये हुए थे, उन्हे भी पूरी तरह दूर कर दिया। अब यह सगठन एक ताजादम सगठन था। भगत सिंह की जीवन-साधना के पथ मे दिल्ली की वैठक एक मील-पत्थर है, इस मे सन्देह नही।

इस वेठक मे विभिन्न साथी विभिन्न प्रान्तो के इचार्ज नियुक्त किये गये और भगत सिह एवं श्री विजय कुमार सिनहा को प्रान्तो के वीच कडियाँ जोडने का काम दिया गया। इस रूप मे निश्चित था कि भगत सिह को देश-भर मे घूमना पडेगा। इस घूमने मे उन के दाढी और केश वाधक थे। इस लिए पार्टी ने फैसला किया कि भगत सिह वाल कटा दे। कुछ ही दिन वाद फिरोज़पुर जा कर वाल कटा दिये गये, पर कटाने से पहले वे काटे गये। पहले साथियो ने उन वालो पर कैंची की कारीगरी दिखायी। वाद मे नाई को वुलाया गया, जिस से सन्देह पैदा न हो। अव भगत सिंह सिखवीर की जगह राष्ट्रवीर हो गये और उन के गुणो के अनुरूप ही उन्हे पार्टी नाम मिला रणजीत।

उन्ही दिनो का एक महत्त्वपूर्ण और इतिहास की कडियो को जोडने वाला सस्मरण श्री कमलनाथ तिवारी (लाहौर षड्यन्त्र केस के अभियुक्त और वाद मे ससद्-सदस्य) के शब्दो मे—"साण्डर्स हत्याकाण्ड से कुछ दिन पहले भगत सिह देशी वम वनाने के लिए कुछ आवश्यक केमिकल्स खरीदने के उद्देश्य से कलकत्ता आये। यह काम मुझे सौंपा गया। उन का वाजार मे जाना सन्देहास्पद हो सकता था। मै वहुत-सी दुकानो पर गया। अधिकतर दुकानदारो ने सरकारी प्रतिवन्ध के कारण केमिकल्स देने से इनकार कर दिया। वाद मे क्रान्तिकारी दल से सहानुभूति रखने वाले दुकानदारो के यहाँ मै भाई वैजनाथ सिंह 'विनोद' (वाद मे 'जायसवाल युवक' और 'विश्ववाणी' के सम्पादक) के साथ गया। उन मे आवश्यक केमिकल्स मिल गये। उन मे वी० पाल का नाम मुझे आज भी याद है।

उन केमिकल्स को एक भूटिया मजदूर के सिर पर रखवा हम दोनो आर्य-समाज (उस समय क्रान्तिकारियो का केन्द्र) लौट रहे थे कि भूटिया की टोकरी उस के सिर से गिरने को हुई। हम ने उस को ऐसे डॉट-डपट करनी शुरू कर दी जैसे कि हमारा उस

से कोई सम्बन्ध हो न हो। बात यह थी कि सामने ही एक सार्जेण्ट खड़ा था। हमें भय हुआ कि यदि कहीं उस को कमिश्नर के बारे में सन्देह हो गया, तो हम दोनों उस चंगुल से न बच सकेंगे। हमारी डाँट डपट काम आ गयी। भूरिया सम्भल कर आगे बढ़ गया और सार्जेण्ट का ध्यान उस की ओर से हट कर हम पर लग गया। उस ने हम को समझाया कि उस मामूली-सी बात पर गरीब भूरिया को डाँटने की क्या जरूरत थी। थोड़ी दूर जा कर सामान रिक्शा पर रख लिया गया और हम दोनों सकुशल सामान के साथ आर्यसमाज पहुंचे।

दूसरे दिन सवेरे भगत सिंह, फणीन्द्रनाथ घोष (बाद में सरकारी गवाह) और यतीन्द्रनाथ दास (बाद में शहीद) एक साथ आर्यसमाज में आये। तीनों ने मिल कर देसी बम में काम आने वाली गन कॉटन तैयार की। शेष कैमिकल्स और गन कॉटन ले कर भगत सिंह आगरा के लिए रवाना हो गये।

असल में इसी यात्रा में भगत सिंह का यतीन्द्रनाथ दास से परिचय हुआ था। भगत सिंह को आगरा के लिए ऐसे आदमी की जरूरत थी जो बम बनाना सिखा सके। बाद में यतीन्द्रनाथ ने ही आगरा आ कर बम बनाने की शिक्षा दी थी। गन कॉटन कलकत्ता में ही इस लिए बनायी गयी थी कि उसे बनाने में बरफ की जरूरत थी और सर्दियों में उतनी बरफ आगरे में मिल नहीं सकती थी। जो बम बाद में असेम्बली में फेंका गया वह आगरा में ही दिल्ली लाया गया था। भगत सिंह तेजी और मुस्तैदी से अपने काम में लगे थे। सचमुच उन में अथाह संगठन शक्ति थी।

लाहौर से दिल्ली, दिल्ली से कानपुर, कानपुर से आगरा, आगरा से कलकत्ता और कलकत्ता से फिर लाहौर। आज यहाँ तो कल वहाँ, कल वहाँ तो परसों न जाने कहाँ। भाग-दौड़ के ये साल भगत सिंह ने कैसे बिताये। निश्चय ही ये वर्ष भीषण संघर्ष के रहे। मन में बड़े भारी मनसूबे थे और जेब में एक पैसा नहीं था, दिमाग स्वप्नों से भरा था पर पेट खाली था, इरादे शहंशाही थे और देह पर ठीक कपड़े भी नहीं थे। कभी अखबार बेच कर रोटी के पैसे इकट्ठे किये तो कभी चने चबा कर और कभी पानी पी कर ही सो रहे। घर से गये तो देह पर कमीज-कोट और पाजामा थे पर लौटे तो कमीज नहीं थी, कोट से ही देह ढकी हुई थी और कोट को कोट बनाये रखने के लिए पाजामे के पाँयचे आस्तीनों की जगह उस में सिले हुए थे। सोचता हूं कैसे लगते रहे होंगे उस वेश में भगत सिंह। रेल के मुसाफिरों ने उन्हें क्या समझा होगा— भिखारी या आधा पागल। कंगाल समझना तो स्वाभाविक था ही। कलेजा मुंह को आने लगता है यह सोचते-सोचते कि जीवित इतिहास सब के बीच था पर कोई भी उसे पहचान न पा रहा था।

■ ■

साण्डर्स-वध

भगत सिंह को जो पढना था पढ चुके थे, जो सोचना था सोच चुके थे और जो निर्णय करना था, निर्णय भी कर चुके थे। यह निर्णय था मरना, पर इस तरह मरना कि मृत्यु सस्ती नही, महँगी हो जाये और उस से देश की आजादी के लिए देशव्यापी क्रान्ति का वातावरण खरीदा जा सके। वे अब मौके की तलाश मे थे। वह मौका स्वय उन्हे अँगरेजी सरकार ने दे दिया।

भारत के शासन-सुधारो की जॉच कर के इग्लैण्ड की सरकार को अपनी रिपोर्ट देने के लिए लॉर्ड साइमन की अध्यक्षता मे एक कॅमीशन भारत आयेगा, इस की घोषणा वायसराय ८ नवम्बर १९२७ को कर चुके थे। ३ फरवरी १९२८ को वह कॅमीशन बम्बई भी पहुँच गया। भारत का जन-जीवन १९२४ से ही साम्प्रदायिक दगो के जाल मे फँसा हुआ था, पर साइमन साहब भारत क्या आये, भारत का सोयापन ही एकदम से जाग उठा। उस दिन सारे देश मे हडताल मनायी गयी और बम्बई मे 'साइमन गो बैक' (साइमन लौट जाओ) के नारो के साथ ऐसा गरम प्रदर्शन हुआ कि अँगरेजी सरकार भौचक रह गयी। बम्बई के बाद दिल्ली मे काले झण्डे दिखाये गये, मद्रास मे पुलिस ने गोली चलायी, जिस से तीन प्रदर्शनकारी मारे गये। कलकत्ता मे भी तगडी मुठभेड हुई। कुछ लिबरल राजनीतिज्ञो को छोड कर सारा देश कॅमीशन के बहिष्कार मे उठ खडा हुआ।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के शब्दो मे—"जहॉ-जहॉ कॅमीशन गया, वहाँ-वहॉ विरोधी जनसमूहो ने 'साइमन गो बैक' के नारे लगा कर उस का 'स्वागत' किया और इस तरह भारत के तमाम लोगो की बहुत बडी तादाद न सिर्फ सर जॉन साइमन का नाम ही जान गयी, बल्कि अँगरेजी के 'गो बैक' ये दो शब्द भी उसे मालूम हो गये। ऐसा मालूम पडता है कि इन शब्दो से कॅमीशन के मेम्बरो के कान भडकते थे और अपनी उसी भडक की वजह से वे चौक पडते थे। कहते है कि एक मर्तबा जब वे नयी दिल्ली के वेस्टर्न होटल मे ठहरे हुए थे, तब उन्हे रात के अँधेरे मे 'साइमन गो बैक' का नारा सुनाई देने लगा। इस तरह रात मे पीछा किये जाने पर मेम्बर लोग बहुत चिढे, जब कि असल बात यह थी कि वह आवाज उन गीदडो की थी, जो शाही राजधानी के ऊजड प्रदेशो मे रहते है।"

उत्तर भारत म क्रान्तिकारी दल इस समय पूरी तरह सगठित हो चुका था और भगत सिह कोई-न-कोई चमत्कार करने का वचन थ । दल व साथी भी उन से सहमत थे। उन्हों ने दल क सामने प्रस्ताव रखा कि साइमन कमीशन पर बम फेंका जाय और इस तरह उस खत्म कर क जनता को जागृत किया जाये। प्रस्ताव शानदार था और दिल्ली चाँदनी चौक में लॉर्ड हार्डिंग्ज पर जो बम २३ दिसम्बर १९१२ को फेंका गया था, उस की कहानी का चरमोत्कर्ष (क्लाइमेक्स) तक पहचान वाला था। क्रान्तिकारी दल की केन्द्रीय समिति न उसे स्वीकार कर लिया पर इस पूरा करने क लिए जिन साधनों की आवश्यकता थी, व न जुट सके। दल घोर आर्थिक सकट म गुजर रहा था। प्रस्ताव कायरूप म परिणत न किया जा सका।

इन्हीं परिस्थितियों म अक्तूबर १९२८ क अन्तिम सप्ताह म साइमन कमीशन लाहौर आ रहा था और लाहौर की जनता उस क बहिष्कार क लिए उफन उठी थी। स्टेशन पर उतरते ही साइमन कमीशन को काले झण्डे दिखाने और पूरी भीड के साथ वापस जाओ कहने की योजना थी। इस प्रदर्शन म सभी सगठन शामिल थ पर इस आयोजन का नेतृत्व नौजवान भारत सभा' क हाथों म था। उस क क्रान्तिकारी सदस्यों की टोली स्टेशन पर उस जगह जा अडी थी, जहाँ स गुजरने के सिवा साइमन कमीशन के सदस्यों क लिए और कोई चारा न था। भगत सिंह स्वय लाला लाजपत राय क पास गय थ और उन्हें भीड के आग रहने को राजी कर आय थ। लाला जी को क्रान्तिकारियों की टोली न अपने में घेर लिया था और एक युवक ने उन पर छतरी भी तान ली थी।

भीड अथाह थी और लाहौर क पुलिस सुपरिण्टण्डेण्ट मिस्टर स्काट अपने दूसरे अफसरों के साथ स्वय स्टेशन पर थ। उन्हों ने मौके का निरीक्षण कर तुरन्त ताड लिया कि जब तक लाला जी और नौजवानों की यह टोली यहाँ से न हटे साइमन कमीशन के सदस्यों को प्रदर्शन की तेज बौछारों स नहीं बचाया जा सकता। इस लिए उन्हों ने अपने डिप्टी असिस्टेण्ट पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर साण्डर्स को रास्ता साफ करने का काम सौंपा और जरूरत पडे तो लाठी चार्ज करने की बात भी कही। पहले जनता की भीड पर लाठी चलाया गयी। समारोह मे जोश के साथ इकट्ठे हो जाना एक बात ह और विग्रह म होश क साथ जमे रहना दूसरी बात ह। जनता पहली स्थिति म थी। लाठी चार्ज से वह पीछे हटी लौटी बिखरी इधर उधर हट कर जमी और रास्ता काफी खुला, पर लाला लाजपत राय अभी अपनी जगह पर थ और नौजवानों की टोली अपनी जगह। इस का अर्थ ह कि प्रदर्शन का मोरचा अभी ज्यों-का-त्यों कायम था और सरदार किशन सिंह एव भगत सिंह उसे अपना बल दे रह थ।

स्काट से सलाह कर साण्डर्स इस टोली के सामने आये और पुलिस क सिपाहियों को भीड धकेलने का आदेश दिया, पर यह रेत की दीवार न थी कि हट जा पोलादी

चट्टान थी। तब साण्डर्स बडा डण्डा ले कर आगे आये और बहुत तेजी से बाज की तरह टूट पडे। जिधर भी उन का हाथ उठा, उन्हो ने डण्डा चलाया। बहुतो को चोट आयी ही, पर उन्हो ने लाला जी को भी बख्शा नही। भगत सिह और उन के साथियो की कोशिशो के बावजूद लाला जी का छाता टूट गया और उन के कन्धे और छाती मे भी चोट आयी। शाम को मोरी दरवाजे के मैदान मे कांग्रेस के आह्वान पर जो सार्वजनिक सभा हुई, उस मे आदमी-ही-आदमी थे। लाला लाजपत राय भाषण-कला के बादशाह थे, पर उस दिन तो वे और भी गरमा कर बोले। पुलिस के अँगरेज अफसर भी जलसे मे थे, इस लिए उन्हो ने अँगरेजी मे कहा—"आई डिक्लेयर दैट द ब्लोज स्ट्रक ऐट मी विल बी द लास्ट नेल्स इन द काफिन ऑव द ब्रिटिश रूल इन इण्डिया—मै घोषणा करता हूँ कि मुझ पर जो चोट पडी है, वह भारत मे अँगरेजी राज के कफन की आखिरी कील साबित होगी।"

चोट शारीरिक भी थी और मानसिक भी। शायद मानसिक अधिक थी। उन के स्वाभिमान को इस चोट से बहुत ठेस पहुँची थी। एक पुलिस अफसर लाहौर मे पजाब-केसरी पर खुले-आम डण्डा चलाये, यह उन की कल्पना से बाहर की बात थी। वे अब भी घूमते-फिरते थे, कांग्रेस की मीटिग मे दिल्ली गये थे, वहाँ पण्डित जवाहरलाल नेहरू से टकराये थे, लौट कर उन्हो ने अपने अँगरेजी साप्ताहिक 'पीपुल' मे नेहरू के विचारो के विरोध मे एक लेखमाला लिखनी आरम्भ की थी। इस लेखमाला का एक लेख छप भी गया था, पर जब वे दूसरा लिख रहे थे तब १७ नवम्बर १९२८ को उन की मृत्यु हो गयी। उन की मृत्यु से देश की जनता मे उन के प्रति अपार श्रद्धा और अँगरेजी सरकार के प्रति अपार क्रोध उफन पडा।

भगत सिह की दूरदर्शी आँखो ने परिस्थिति की इस अनुकूलता को भाँप लिया और दल के सामने प्रस्ताव रखा कि लाला जी पर आघात के रूप मे जो राष्ट्र का अपमान किया गया है, उस का बदला लिया जाये। साइमन कमीशन को बम से उडाने की योजना साधनो की कमी के कारण सफल न हो सकी थी। इस प्रस्ताव की खूबी यह थी कि वह जनता के क्रोध को तृप्त कर के जनता की आदर भावना को क्रान्तिकारियो से जोडता था और दल को उस असफलता के भाव से बचाता था। ९-१० दिसम्बर को लाहौर मे दल की मीटिग हुई, जिस मे गहरे चिन्तन और विचार के बाद प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

लाला जी का अपमान पुलिस ने किया था, पुलिस अध्यक्ष थे मिस्टर स्कॉट। लाठी उन्ही के हुक्म से चलायी गयी थी। इस लिए उन्हे ही निशाना बनाना तय हुआ, पर हत्या हो गयी साण्डर्स की। मुकदमे में जो बयान जयगोपाल ने दिया, उस से स्पष्ट है कि वह साण्डर्स को ही स्कॉट समझता रहा। सचाई यह थी कि स्कॉट उन दिनो लाहौर मे था ही नही। भारतीय सशस्त्र क्रान्ति इतिहास मे ऐसा और मौको पर भी हुआ है कि हुलिए या वातावरण की समानता के कारण किसी के बदले कोई

से दे ही रहे थे कि राजगुरु झपट कर मृत्यु और अमरता के दूत की तरह सामने आ गये। उन्हो ने पिस्तौल उठायी, उन की उँगलियो ने साण्डर्स की उँगलियो से पहले अपना काम किया—मोटर साइकिल घूमने से पहले ही पिस्तौल का घोडा दव गया। साण्डर्स और मोटर साइकिल दोनो लुढके, भगत सिह आगे वढे, पिस्तौल चली, पाँच धडाके हुए और साण्डर्स का सिर ही नही, कन्धे तक छिद गये। इतिहास का नया अध्याय लिखा गया, दिन-दहाडे खुले-आम ब्रिटिश सिंह का एक मजबूत दाँत तोड दिया गया।

भगत सिंह और राजगुरु तेजी से डी० ए० वी० कॉलेज की ओर वढे, जहाँ नरसिह आजाद अपना माउजर साधे जंगल के पीछे खडे थे। ट्रैफिक इन्सपेक्टर मिस्टर फर्न और दो सिपाही इन दोनो के पीछे दौडे। भगत सिह के चौकन्ने दिमाग ने उन के पैरो की आहट पहचानी, पिस्तौल फिर सधा, और मुड कर गोली दाग दी। निशाना फर्न पर था। वचने की कोशिश मे वह लुढक गया। उन के गिरते ही सिपाही ठहर गये। भगत सिह ने फर्न को खत्म करने के लिए फिर पिस्तौल उठायी थी कि चन्द्र-शेखर की ललकार आयी—"चलो।" इस ललकार मे कितनी मीठी पुचकार थी। भगत सिंह की पिस्तौल रुक गयी, दोनो तेजी से वढे।

पुलिस का हेड कान्स्टेवल चन्दन सिंह उन दोनो के पीछे भागा। वह गुस्से मे इतना अन्धा हो रहा था कि भागते-भागते गालियाँ भी दे रहा था। भगत सिंह और राजगुरु जँगले के पार हो गये थे और आजाद स्वयं रास्ता रोके खडे थे। आजाद ने अपना माउजर उठाया, चन्दन सिंह को तेजी से घूरा और ललकारा—"ऐ, पीछे हटो, भागो।" मगर चन्दन सिह जोश मे था, वह नही रुका और आगे वढा। आजाद की उँगलियाँ हिली, माउजर से गोली छूटी, चन्दन सिंह धडाम से धूल मे लेट गया। वह क्या धूल मे लोटा, पुलिस का साहस ही धूल मे लोट गया—फिर किसी ने पीछा नही किया, हरेक के सामने अपनी मौत खडी थी। डी० ए० वी० कॉलेज के छात्रा-वास से दो साइकिलें चली। एक पर आजाद और राजगुरु थे और दूसरी पर भगत सिंह। सव अपने-अपने काम मे लगे थे, केवल इतिहास उन्हे देख रहा था, मुसकरा रहा था। कुछ ही क्षणो मे सव साथी मौजग हाउस (लाहौर मे क्रान्तिकारियो के निवास) पहुँच गये। लाहौर का सरकारी क्षेत्र सन्नाटे मे था और जनता का क्षेत्र एक मानसिक रोमाच से पुलकित था। भगत सिह उस सन्ध्या को वेहद उत्फुल्ल थे।

ठीक है, सरकारी क्षेत्र मे सन्नाटा था और जनता के क्षेत्र मे पुलकित रोमाच था, पर वोध तो कही भी नही था। सरकार के विख्यात गुप्तचर विभाग को लकवा मार गया था—इतनी वडी घटना हो गयी और हमे सुरसुराहट भी न मिली। खुली सडक पर योजना का पूर्वाभ्यास हुआ होगा और खुली सडक पर पुलिस दफ्तर के सामने एक अँगरेज अफसर दिन-दहाडे मार डाला गया। यह किस ने किया, क्यो किया? इस के पीछे कौन है? जनता के लिए यह चमत्कारी धडाका था। उस के पीछे क्या आदर्श है, या क्या योजना है, इस से वह भी अपरिचित थी, पर दूसरे दिन सुवह

सूरज निकलने से पहले ही सरकारी पक्ष और जनता पक्ष दोनों के सामने बात साफ हो गया। दीवारों पर जगह-जगह अंगरेजी के छोटे पोस्टर चिपकाये गये थे। इन पोस्टरों का कागज गुलाबी था और स्याही लाल थी। उन पर लिखा था—

"हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना

नोटिस

नौकरशाही सावधान

जे० पी० साण्डर्स की मृत्यु से लाला लाजपत राय की हत्या का बदला ले लिया गया।

यह सोच कर कितना दुःख होता है कि जे० पी० साण्डर्स-जैसे एक मामूली अफसर के कमीने हाथों देश की तीस करोड़ जनता-द्वारा सम्मानित एक नेता पर हमला कर के उन के प्राण ले लिये गये। राष्ट्र का यह अपमान हिन्दुस्तानी नवयुवकों और मर्दों को चुनौती था।

आज संसार ने देख लिया है कि हिन्दुस्तान की जनता निष्प्राण नहीं हो गयी है। हिन्दुस्तानियों का खून जम नहीं गया है। वे अपने राष्ट्र के सम्मान के लिए प्राणों की बाजी लगा सकते हैं। यह प्रमाण देश के उन युवकों ने दिया है जिन की इस देश के नेता, निन्दा और अपमान करते हैं।

अत्याचारी सरकार सावधान

इस देश की दलित और पीड़ित जनता की भावनाओं को ठेस मत लगाओ। अपनी शैतानी हरकतें बन्द करो। हिन्दुस्तानियों को हथियार न रखने देने के लिए बनाये तुम्हारे सब कानूनों और चौकसी के बावजूद पिस्तौल और रिवाल्वर इस देश की जनता के हाथ में आते ही रहेंगे। यदि यह हथियार सशस्त्र क्रान्ति के लिए पर्याप्त न भी हुए तो भी राष्ट्रीय अपमान का बदला लेते रहने के लिए तो काफी रहेंगे ही। हमारे अपने लोग हमारी निन्दा और अपमान करें विदेशी सरकार चाहे हमारा कितना भी दमन कर ले परन्तु हम राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए और विदेशी अत्याचारियों को सबक सिखाने के लिए सदा तत्पर रहेंगे। हम सब विरोध और दमन के बावजूद क्रान्ति की पुकार को बुलन्द रखेंगे और फाँसी के तख्तों से भी पुकारते रहेंगे—

इन्कलाब जिन्दाबाद

हमें एक व्यक्ति की हत्या का खेद है। परन्तु यह व्यक्ति उस निर्दयी, नीच और अन्यायपूर्ण व्यवस्था का एक अंग था जिसे समाप्त कर देना आवश्यक है। इस व्यक्ति की हत्या हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन के कारिन्दे के रूप में की गयी है। यह सरकार संसार की सब से अत्याचारी सरकार है।

मनुष्य का रक्त बहाने के लिए हमें खेद है परन्तु क्रान्ति की बेदी पर रक्त बहाना अनिवार्य हो जाता है। हमारा उद्देश्य ऐसी क्रान्ति से है जो मनुष्य-द्वारा मनुष्य

लाहौर से कलकत्ता

भारत के सशस्त्र क्रांति के इतिहास में सूरज और चाँद की तरह चमकते सब चेहरे यहाँ आ कर कुहरे में छिप जाते हैं। वे अपने पूरे महत्त्व के साथ उपस्थित हैं, पर दिखाई नहीं देते। क्या पण्डित चन्द्रशेखर आजाद, क्या सरदार भगत सिंह और क्या राजगुरु किसी का चेहरा सामने नहीं है। बस दो भोली सुंदर और युवती स्त्रियों के चेहरे ही इतिहास के दर्पण में दिखाई दे रहे हैं। इन में पहला चेहरा है श्रीमती दुर्गा भाभी का और दूसरा चेहरा है सुशीला दीदी का। ये दोनों इस तरह जगमगा रहे हैं जैसे मन्दिर की नयी प्रतिमाएं। एक और भी चेहरा यहाँ है, जो दिखाई नहीं देता, पर जिस की एक हल्की झलक दिखाई देती है। यह श्रीमती दुर्गा भाभी के पति श्री भगवती चरण का चेहरा है। कुछ लोग इस लिए मुँह छिपाते हैं कि उन्हें नजर न लग जाय, कुछ लोग इस लिए मुँह छिपाते हैं कि उन का मुँह दिखाने लायक नहीं होता और कुछ लोग इस लिए मुँह छिपाते हैं कि उन में मुँह दिखाने की हिम्मत नहीं होती। इन सब के विरुद्ध भगवती चरण अपना मुँह इसलिए छिपाते रहे हैं कि उन के साथी का मुँह दुनिया को पूरी तरह दिखाई दे।

सांडर्स-वध के समय क्रांतिकारी दल के सभी प्रमुख सदस्य लाहौर में थे। सांडर्स-वध के बाद उन में से अधिकांश इधर उधर चले गये, पर मुख्य प्रश्न तो भगत सिंह को निकालने का था, वे बहुत दिन से फरार थे, पुलिस उन के फिराक में थी। पुलिस में उन्हें पहचानने वाले लोग थे। दशहरा बम-काण्ड के समय चुपचाप लिया गया उन का फोटो भी पुलिस के पास था। सांडर्स-वध के समय एक सिख नौजवान को पुलिस ने देखा था (बाल कटवा लेने के बावजूद भगत सिंह उस दिन सिर पर पगड़ी बाँधे थे। मुखबिर जयगोपाल ने अपने बयान में यह बताया है) फिर लाहौर के चप्पे चप्पे पर पुलिस का पहरा और सी० आई० डी० की नजर थी। मौत की राह से कभी कोई निकल भी आये पर लाहौर से निकलना असम्भव था, पर असम्भव को सम्भव बनाने वाले ही तो क्रान्तिकारी होते हैं।

श्री भगवती चरण की सूझ पर बलिहारी। वे स्वयं मेरठ षड्यन्त्र में फरार थे। फिर भी एक दिन चुपचाप घर जा कर दुर्गा भाभी को १०००

रुपया पास रखने को दे गये थे, विना कुछ वताये। वे रुपये घर मे थे। एक नकली नाम से फर्स्ट क्लास का छोटा डिव्वा (कूपे) लाहौर से कलकत्ता के लिए रिजर्व था। तारे आसमान मे हलके-हलके झमझमा रहे थे। सुवह पाँच वजे की वात है। एक नौजवान साहव वहादुर सिर पर तिरछा फैल्ट हैट लगाये, ऊँचे उठे कालर का ओवर कोट पहने, वायी तरफ अपने वेटे को इस तरह गोद मे सँभाले कि उधर से चेहरा ढँक जाये, दायाँ हाथ ओवर कोट की जेव मे डाल पिस्तौल के घोडे पर उँगली टिकाये और अपनी वॉयी तरफ अपनी सुन्दर पत्नी को लिये शान्त धीर-गति से प्लेटफॉर्म पार कर अपने रिजर्व डिव्वे मे आ वैठे। साथ मे शानदार विस्तर अटैची थी और पीछे-पीछे पुरानी दरी मे लिपटा विस्तर लिये नौकर था। ये साहव वहादुर भगत सिह थे, उन की पत्नी वनी दुर्गा भाभी थी, भगत सिंह की गोद मे भाभी का वेटा शची था और ये नौकर राजगुरु थे।

पुलिस की रिपोर्ट मे भगत सिह दाढी केश वाले थे, कुँआरे थे। फिर वह सपत्नीक और पिता वने भगत सिंह को कैसे पहचानती। और वह पहचानती तो भाग्य का चक्र कैसे घूमता। कलकत्ता मेल उस दिन लाहौर से क्या चली, इतिहास-पुरुष का रथ ही चला—महान् विजय के पथ पर। अव यह कहने मे क्या लगता है कि लाहौर से कलकत्ता मेल चली, पर उस दिन कलकत्ता मेल का चलना कितनी वडी वात थी। भगत सिंह तो मौत से खेल ही रहे थे, पर दुर्गा भाभी के लिए क्या कहा जाये, जिन के पति स्वेच्छा से मृत्यु के साथ पजा लडाते हुए अज्ञातवास कर रहे थे और जो अपने अकेले पुत्र को ले कर उस दिन जलती हुई होली के वीच खडी हो गयी। श्री चन्द्रशेखर आजाद भी रामनामी दुपट्टा ओढे, माथे पर चन्दन लगाये, हरिओम् के साथ डकार लेते मथुरा का पण्डा वने इसी ट्रेन के किसी डिव्वे मे वैठे जा रहे थे। एक रहस्यवादी कविता ही वन गयी थी उस दिन कलकत्ता मेल।

लखनऊ स्टेशन आ गया। राजगुरु आजाद पहले ही उतर चुके थे। साहव वहादुर भगत सिह और आधुनिका दुर्गा भाभी शान से प्लेटफॉर्म पर उतरे, वेटिंग रूम मे भी कुछ देर वेठे और कलकत्ता तार दिया—"भाई साहव के साथ आ रही हूँ।" यह तार सुशीला दीदी को दिया गया था। वे उन दिनो कलकत्ता मे सर सेठ छज्जूराम की वेटी की शिक्षक अभिभावक थी और उन्ही की तिमजिली कोठी मे रहती थी।

कलकत्ता मेल रोज ही लाहौर से कलकत्ता जाती थी, उस दिन भी वह अपने सदा के रास्ते पर सदा की तरह कलकत्ता पहुँची, पर उस की उस यात्रा के वे लगभग चालीस घण्टे उस के एक डिव्वे मे कैसे वीते सोच कर ही दिल की धडकन वेकावू होने लगती है। डिव्वे की तरफ देखने वाली हर आँख डिव्वे मे वेठे दो मुसाफिरो को यमराज की आँख दिखाई देती होगी। डिव्वे की तरफ वढता हर आदमी का कदम आदमी का कदम हो कर भी शायद मौत का कदम दिखाई देता होगा। वुद्धि तकाजा करती होगी—तुम्हे हर क्षण स्वाभाविक मुद्रा मे रहना होगा, चेहरे पर भावो का

उतार चढाव आना वर्जित ह पर चहरा ता हृदय क भावा का दपण ह। जब हृदय म तूफान ह ता चेहरा फिर शान्त क्स रहे। ठाक ह, पर जो हृदय क तूफान और बुद्धि क उफान पर नियन्त्रण रख सकते ह वे ही तो ससार की डगमगाती नाव का पार लगाते ह। फिर भी युगा बाद मेरा मन मुझ स पूछता ह—रास्ते म वे कसे रहे होग ? उन्हा ने कमे अपना सन्तुलन बनाय रखा हागा ? कसे भोजन किया होगा ? रात आने पर वे कसे सोये हागे। शायद एक सोया होगा और दूसरा पिस्तौल पर हाथ रख बठा रहा हागा। सम्भवत यह चालीस घण्टे चालीस युगा की तरह बीते हाग और कलकत्ता पहुँचना जीते-जागते स्वग पहुँचने जसा लगा होगा। हम सभी सफर करत ह उस का सुख पात ह पर एस सफर का सौभाग्य तो इतिहास-पुरुषा क भाग्य की ही विभूति ह। धय ह लाहौर स कलकत्ता तक के वे चालीस घण्ट जिन्होन राष्ट्र के प्रवाह की धारा ही मोड दी।

भगत सिंह और दुर्गा भाभी कलकत्ता स्टशन पर उतर तो सुशीला दीदी भगवती चरण भी वहा उपस्थित थे। अपनी फरारी म वे दीदी क पास रह रह थे। दुर्गा को उन्हा ने इस रूप में दखा तो आश्चय मुग्ध रह गये। असल म दुर्गा जी की शक्ति का उन क लिए भी यह नया प्रदशन था। उन के मुँह से निकल पडा— वाह म ने तुम्हें आज पहचाना। क्रान्तिकारियो में एक से एक विशिष्ट व्यक्तित्व हुए ह पर भगवतीचरण अपनी जगह अनुपम ह अकेले ह। अपनी पत्नी का इस रूप म देख कर किसी क भी मन मे क्षोभ हो सकता ह पर कितना विशाल मन था उन का कि हल्की बात वे साच ही नही सकत थे। सचमुच वे क्रान्तिकारी और लक्ष्यदर्शी मानव थ। भगवतीचरण और दुगा भाभी की क्राति जोडी को प्रणाम !

भगत सिंह और दुर्गा भाभी एक दिन हाटल में रहे दूसर दिन सर सेठ छज्जूरामकी काठी म चले गय और एक सप्ताह से अधिक वहा रहे। सर सेठ का भवन हाने के कारण वह स्थान सी० आई० डी० के सन्देह से सुरक्षित था पर क्या सर सठ विश्वसनीय थे। इस प्रश्न का उत्तर मन की मानवीयता क अमत से भर दता ह। भगत सिह का वहा रखने की और निश्चिन्त रहने की स्वीकृति सर सेठ की पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदवी ने ही सुशीला दीदी का दी थी। इन लागो का उपर की मंजिल म ठहराया गया था और भोजन आदि की व्यवस्था स्वय लक्ष्मी दवी ही करती थी उन दो के अतिरिक्त भगत सिंह का सही परिचय किसी का भी न था। यह सुशीला दीदी का चरित्र ह कि उन्हा ने माता लक्ष्मी दवी स सब-कुछ कह दिया यह माता लक्ष्मी देवी का चरित्र ह कि सुशीला दीदी उन स सब-कुछ कह सकी और यह इतिहास का चरित्र ह कि उस न एक सप्ताह क आतिथ्य के बदले में माता लक्ष्मी देवी और उन के पति सर सठ छज्जूराम के नाम का सदा के लिए अपना अतिथि बना लिया।

भगत सिंह जब कलकत्ता पहुँचे ता वहाँ कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। राजनतिक दृष्टि स वातावरण बहुत उत्तेजनात्मक था। कांग्रेस में विचार का मुख्य

विपय था अँगरेज़ी सरकार को यह अल्टीमेटम देना कि यदि एक वर्ष के भीतर नेहरू कॅमिटी की रिपोर्ट (लगभग औपनिवेशिक स्वराज्य) को स्वीकार न करेगी, तो फिर कांग्रेस कभी भी पूर्ण स्वराज्य से कम पर राजी न होगी। नौजवानो के नेता पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभापचन्द्र वोस सरकार को समय देने के विरुद्ध थे और इस प्रकार पुरानी और नयी पीढी मे गहरी कशमकश थी। वातावरण उत्तेजना का था और माण्डर्स-वध की घटना ने उसे और भी गरम कर दिया था। पण्डित मोतीलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष थे।

देश-भर के राजनैतिक नेता कलकत्ता आये हुए थे और सरकार के गुप्तचर भी। भगत सिह बगाली ढंग की धोती-कुरता पहने और ऊपर शाल ओढे उत्तेजना और उल्लास के इस वातावरण मे घूम रहे थे, पर क्या एक निष्क्रिय सैलानी दर्शक की तरह ? भगत सिह युगद्रष्टा थे, वे तमाशे के दर्शक कहाँ हो सकते थे ? उन की दृष्टि लक्ष्यवेधी थी और वह इस वात पर टिकी हुई थी कि कांग्रेस अपने मद्रास निर्णय (पूर्ण स्वराज्य) से पीछे हट कर औपनिवेशिक स्वराज्य से भी कम पर आ गयी थी। उन की आत्मा ने कहा, यह तो प्रगति नही है, यह तो पीछे हटना है, अगति है। वे वेचैन हो उठे कि इस समय कुछ ऐसा काम करना चाहिए कि पीछे हटने की इस मनोवृत्ति पर एक तगडी मनोवैज्ञानिक चोट पडे।

सोचती हूँ कलकत्ते का यह सप्ताह ही भगत सिह के जीवन का सर्वोत्तम काल है, क्यो कि उन्हो ने अपने जीवन का सर्वोत्तम निर्णय इसी सप्ताह लिया था और वे अपने ऐतिहासिक व्यक्तित्व के सर्वोच्च ऐतिहासिक शिखर पर इसी सप्ताह पहुँचे। सोच कर अक्ल हैरान हो जाती है कि देश का परिपक्व नेतृत्व जब समझौते के पैवन्द लगाने की बात सोचने मे लगा हुआ था, तब एक इक्कीस साल का युवक जो अभी-अभी विद्रोह का धडाका कर चुका था, क्रान्ति का नया तूफान उठाने के मनसूबे बाँध रहा था।

भगत सिह के मन मे नेशनल कॉलेज के समय से ही फ्रान्सीसी अराजकतावादी वेलाँ का (जिस ने फ़्रान्स की असेम्बली में वम फेंका था) चित्र सजा हुआ था। उन की अनुपम मृत्यु साधना का प्रेरक यह चित्र ही था। सकल्प की स्वर्णकिरण उन के मन मे चमक उठी—"यही समय है, यही समय है।" उन की बुद्धि ने कहा—"अब नही तो फिर कभी नही।" किरण ने निर्णय के सूर्य का रूप ले लिया और उन्हे महसूस हुआ कि उन का हाड़-माँस का शरीर अब फौलाद का हो गया है। यह सकल्प का, निर्णय का, दृढता का, अटलता का अनुभव था। यह उन के जीवन का दिव्य क्षण था। उन्हो ने दिल्ली केन्द्रीय असेम्बली मे बम फेंकने का निर्णय कर लिया और वे अपनी मँहगी और भारी मृत्यु के द्वार पर आ खडे हुए थे।

श्री योगेशचन्द्र चटर्जी के शब्दो में—"भगत सिह ने असेम्बली भवन मे बम फेंकने की योजना के बारे मे अनुशीलन समिति नामक गुप्त सगठन के एक उच्च कोटि के नेता स्व० प्रतुलचन्द्र गाँगुली के साथ चर्चा की। श्री गाँगुली ने भगत सिह की

योजना को पसन्द किया। असम्बली में बम फेंकने के बाद गिरफ्तार होने पर जो रिवाल्वर उन के पास पकड़ा गया था वह भगत सिंह का श्री गांगुली ने ही लिया था। कुछ बम भी कलकत्ता से ही न लिए गए थे। भगत सिंह का जो प्रसिद्ध चित्र फेल्ट हैट पहने हुए मिलता है वह भी कलकत्ता में ही लिया गया था।'

ईशावास्य उपनिषद में एक बहुत सुन्दर मन्त्र आता है। उस का भाव यह है कि सत्य स्वर्ण के प्याले से ढँका हुआ है और आवश्यकता है कि वह प्याला हटे जिस से हम सत्य का दर्शन कर सकें। कलकत्ता प्रवास के इस एक सप्ताह में भी ऐसा ही हुआ। वहाँ दो अट्टामरम तयार हुए। पहला कांग्रेस के प्रस्ताव के रूप में और दूसरा भगत सिंह के निर्णय के रूप में। कांग्रेस का प्रस्ताव स्वर्ण का प्याला था उसे संसार ने देखा पर भगत सिंह का निर्णय तो ढँका हुआ था उसे किसी ने नहीं देखा। उस निर्णय का, भगत सिंह का, क्रान्तिकारी दल का और देश का हित भी इसी में था कि उस अभी कोई न देखे कोई न जाने। दल के सदस्य इस बात में सहमत थे कि कांग्रेस का नरम दल का पीछे हटना देश के लिए अहितकर होगा इस लिए कोई ऐसा काय इस समय किया जाना चाहिए जिस से प्रगति की धारा में नयी तेजी आय। भगत सिंह और दूसरे साथियों के लिए आगरे में दूसरे सुरक्षित मकान का प्रबन्ध हो गया और वे सब सब की कोठी से वहाँ बदल दिये गये। कुछ दिन वे उस में रहे और तब आगरा चले गये।

हरि (कलकत्ते में भगत सिंह का नाम) जब कलकत्ते से चले तो सुशीला दीदी ने अपने रक्त से उन के मस्तक पर तिलक किया और उन्हें ऐसे ही विदा किया जैसे राजपूतनियाँ युद्ध में जाते समय अपने भाइयों को विदा किया करती थी। जो लोग एक दूसरे से हमेशा के लिए विदा हो रहे थे वे कितने खुश थे कितने गौरवान्वित।

अब भगत सिंह आगरा में थे और दूसरे अनेक क्रान्तिकारी भी। हींग की मण्डी और नमक की मण्डी में दो मकान ले लिये गये थे और बम बनाने और बनाना सिखाने का काम जोरों से चल रहा था। साण्डर्स-वध के बाद दल को साधनों की पहले-जैसी कमी न रही थी और सब काम बड़े पैमाने पर हो रहे थे। सहारनपुर और लाहौर में भी बम फैक्टरियाँ खोल दी गयी थी। इस संगठन के साथ असम्बली में बम फेंकने की भगत सिंह की योजना केन्द्रीय समिति ने स्वीकार कर ली थी। दिल्ली के बाजार सीताराम में एक मकान ले लिया गया था और श्री जयदेव कपूर परिस्थितियों की जाँच करने के लिए वहाँ बड़े गये थे। भगत सिंह आगरा से दिल्ली आते-जाते रहते थे और योजना की बारीकियों का अध्ययन कर रहे थे। देश में सरकार के गुप्तचर अपना जाल फैला रहे थे पर उन्हें साण्डर्स के वध का कोई सूत्र नहीं मिल रहा था जब कि वायसराय के सामने हो उस से बड़े काण्ड की तयारी हो रही थी।

■ ■

असेम्बली बम-काण्ड

असेम्बली मे बम फेंकने की बात भगत सिंह के मन में नेशनल कॉलिज मे ही पक्की हो गयी थी, जब उन्हो ने फ्रान्सीसी अराजकतावादी श्री वेलाँ का फ्रान्स की असेम्बली मे बम फेंकने के बाद दिया गया बयान पढा था, पर अब वे और उन के विचारक साथी अनुभव करते थे कि उस का समय आ गया है। कलकत्ता से जब भगत सिंह आगरा के लिए चले, तो उन के मन में कार्य की पूरी रूपरेखा थी, जिस की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि मैं ऊपर दे चुकी हूँ।

श्री चन्द्रशेखर आजाद भी इस से सहमत हो गये थे और दूसरे साथी भी। बात यह थी कि सभी अनुभव करते थे कि दल को इस समय कुछ ऐसा काम करना चाहिए जो अद्भुत हो। काकोरी काण्ड के अभियुक्तों को जेल से छुडाने मे जो असफलता मिली थी, उस पर भगत सिंह रो पडे थे, पर दूसरे लोग भी क्षुब्ध थे। साइमन कॅमीशन पर बम न फेंक सकने की खिन्नता भी तकाजा कर रही थी। साण्डर्स-वध की सफलता ने उबाल उठा दिया था और आगरा मे जो बम इन दिनो बने थे, वे अपने उपयोग के लिए ज़िद कर रहे थे। असेम्बली में बम फेंकना इन सब बातो का समाधान था। श्री जयदेव कपूर दिल्ली मे उस का ताना-बाना पूर रहे थे। उन्हो ने असेम्बली के सदस्यो मे ऐसा विश्वसनीय सम्पर्क जोड लिया था कि जब वे चाहे उन्हें असेम्बली में जाने के लिए पास मिल जाये। इन पासो से भगत सिंह, आजाद और दूसरे कई साथी भी असेम्बली में हो आये थे। सब परिस्थितियाँ और स्थान देख आये थे कि कहाँ से बम फेंका जाये और कहाँ जा कर वह गिरे, नक्शा अब पूरी तरह तैयार था।

अब तीन प्रश्न विचारणीय थे पहला यह कि बम फेंकने असेम्बली मे कौन जाये, दूसरा यह कि बम फेंकने के बाद गिरफ्तार हुआ जाये या भाग आया जाये, और तीसरा यह कि बम कब फेंका जाये ?

व्यूह-रचना के महापण्डित श्री चन्द्रशेखर आजाद इस बात पर दृढ थे कि बम फेंक कर भाग आया जाये। असेम्बली मे जा कर और सब रास्तो को देख कर वे मानते थे कि बम फेंक कर सुरक्षित लौटा जा सकता है। उन की योजना थी कि वे बाहर मोटर मे रहेंगे और बम फेंकने वालो

को उड़ा ले जायेंगे। मोटर की व्यवस्था भी सम्भव थी, पर भगत सिंह के मन में तो बेलों का नक्शा था। वे तो गुप्त आन्दोलन को जनता का आन्दोलन बनाने की बात पर दृढ़ थे। इस लिए उन का कहना था कि भागना ठीक नहीं। वहीं गिरफ्तार हो कर मुकद्दमे का दल के विचारों के प्रचार का मोरचा बनाया जाये क्यों कि जो बातें बम नहीं कही जा सकती व अदालत में खुल्लम-खुल्ला कही जा सकती हैं जो खबरें बन कर पत्रों में छप कर जनता तक पहुँच सकती हैं। असेम्बली में बम फेंकने की योजना भगत सिंह की थी और यह भी सब जानते थे कि बम फेंकने भी वही जायेंगे इस लिए उन की बात का महत्व मिल रहा था। श्री विजय कुमार सिनहा के समर्थन से यह महत्व और भी बढ़ गया। बाद में दो आदमियों के जाने की बात तय हुई और भगत सिंह के साथ जयदेव कपूर और राजगुरु के नाम पर चर्चा हुई।

यह छानबीन हो रही थी कि एक शानदार समाचार मिला—होली के दिन सेक्रेटेरियट (सचिवालय) के सचिवों और असम्बली के सरकार-परस्त सदस्यों की दावत में वायसराय ने आना स्वीकार कर लिया है। दल के सदस्य कुछ-न-कुछ करने का वचन थे, इस लिए खुली सड़क पर उन की मोटर को बम से उड़ाने की योजना बनायी गयी। यह योजना सफल न हुई क्यों कि वायसराय उस रास्ते से आये ही नहीं। तब फिर पूरा ध्यान असेम्बली पर केन्द्रित हो गया।

संयोग की बात अवसर भी अच्छा मिल गया। केन्द्रीय असम्बली में दो बिल पेश थे। एक पब्लिक सेफ्टी बिल (जन-सुरक्षा बिल) और दूसरा ट्रेड डिस्प्यूटस बिल (औद्योगिक विवाद बिल)। पहले का भीतरी मकसद देश में उठते युवक आन्दोलन को कुचलना था और दूसरे का मजदूरों को हड़ताल के अधिकार से वंचित रखना। भगत सिंह का बहुत चौकन्ना और राजनीतिक प्रश्नों पर सदा जागरूक ध्यान इस बात पर गया था कि केन्द्रीय असेम्बली के कांग्रेसी सदस्य कुछ दूसरे प्रगतिशील सदस्यों के साथ मिल कर इन कानूनों को पास नहीं होने देंगे। उस हालत में अंगरेजी सरकार उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेगी और वायसराय इन्हें अपने विशेषाधिकार (वीटो पावर) से पास कर देंगे।

उन्हों ने पार्टी की मीटिंग में प्रस्ताव किया कि जब वायसराय की इन बिलों को पास करने की घोषणा असम्बली में हो उसी समय बम फेंका जाये और अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने वाले पर्चे भी। बम कौन फेंके? इस प्रश्न पर मतभेद था। प्रस्ताव भगत सिंह का था। वे मुकद्दमे को सर्वोत्तम ढंग से लड़ सकते थे और पार्टी के नाम और लक्ष्य को जनता तक पहुँचा सकते थे पर दल के कई सदस्यों की राय में दल की उन्नति और संगठन के लिए उन का और आजाद का बचे रहना बहुत आवश्यक था। इस लिए वे भगत सिंह की आहुति देने को तैयार न थे। अन्त यह मान लिया गया था कि जो जायेगा लौटेगा नहीं वहीं गिरफ्तार होगा। इस लिए दल की केन्द्रीय समिति में भगत सिंह की जगह श्री बटुकेश्वरदत्त और श्री विजय कुमार सिनहा का

नाम निश्चित हुआ ।

श्री सुखदेव को यह खबर मिली, तो वे बौखलाये हुए भगत सिह के पास आये और उन्हें बहुत देर तक जाने क्या-क्या कहते रहे, जब भगत सिंह ने अनुशासन के कारण साथियो का निर्णय मानने की बात कही तो गुस्से मे भर कर सुखदेव ने कहा—"इस निर्णय के लिए इतिहास तुम्हे कायर कहेगा।" उस समय भगत सिह ने उन्हे झिडक दिया पर दूसरे ही दिन केन्द्रीय समिति की बैठक फिर बुलवायी और जिद कर के असेम्बली मे बम फेंकने के लिए अपना और बटुकेश्वरदत्त का नाम निश्चित कराया। इस के बाद उन दोनों ने एक दिन दिल्ली मे ही अपना फोटो खिचवाया। सगठन की खूबी यह थी कि बम-काण्ड के बाद यही चित्र बहुत से पत्रो मे छपे। उसी समय का एक कोमल शब्द-चित्र श्री शिव वर्मा के शब्दो मे—"दिल्ली मे जब निश्चित रूप से यह फैसला हो गया कि भगत सिह और बटुकेश्वरदत्त ही असेम्बली मे बम फेंकने जायेगे, तो मुझे और जयदेव को छोड कर सब साथियो को आदेश दिया गया कि वे दिल्ली से बाहर चले जाये। आजाद को झाँसी जाना था। जब वे चलने लगे तो मैं स्टेशन तक उन के साथ हो लिया। रास्ते मे बोले—"प्रभात (श्री शिव वर्मा का पार्टी नाम), अब कुछ ही दिनो मे ये दोनो (उन का मतलब भगत सिह और दत्त से था) देश की सम्पत्ति हो जायेंगे, तब हमारे पास इन की याद रह जायेगी। तब तक के लिए मेहमान समझ कर इन की आराम-तकलीफ का ध्यान रखना।" उस दिन रात-भर वे भगत सिंह और दत्त की बातें करते रहे। वे भगत सिह को इस काम के लिए भेजने के पक्ष मे नही थे। भगत सिह और सुखदेव की जिद के सामने सिर झुका कर ही उन्हो ने वह फैसला स्वीकार किया था, लेकिन अन्दर से भगत सिह को खोने के विचार से वे दु खी थे।

असेम्बली ने दोनो बिलो को फेल कर दिया था और वायसराय ने उन दोनो को अपने विशेषाधिकार से पास कर दिया। ८ अप्रैल १९२९ को वायसराय की घोषणा असेम्बली मे सुनाई जाने वाली थी। निर्णय हुआ कि उसी दिन बम फेंका जाये। जयदेव कपूर ने भगत सिंह और बटुकेश्वरदत्त को असेम्बली मे ले जा कर उस जगह बैठा दिया, जहाँ से बिना किसी सदस्य को नुकसान पहुँचाये बम फेंका जा सकता था। भगत सिह और बटुकेश्वरदत्त खाकी कमीज और नेकर पहने हुए थे। ज्यो ही विशेषाधिकार से बिलो को वायसराय-द्वारा पास करने की घोषणा होने को हुई, भगत सिह और बटुकेश्वरदत्त अपने स्थान पर खडे हो गये। फुर्ती के साथ अखबार मे लिपटा हुआ बम भगत सिह ने अपने हाथ मे लिया और सरकारी बेंचो के पीछे वाली खाली जगह पर लकडी की दीवार के पास फेंक दिया। धडाका इतने जोर से हुआ कि कानो के परदे हिल गये और दिल की धडकने बढने लगी। लोग सँभल भी न पाये थे, एक सपाटे के साथ भगत सिंह ने दूसरा बम फेंका। उस के धडाके ने लोगो के रहे-सहे होश भी गुम कर दिये। तभी उन्हो ने छत की ओर हाथ उठा कर पिस्तौल से दो

गोलियां छोड़ीं। साइमन साहब भी वायसराय की गैलरी में बैठे असेम्बली देख रहे थे। सब से पहले वे भागे, सर जॉर्ज शुस्टर अपने डेस्क के नीचे छिप गये। कुछ सदस्य भाग कर बाहर आ गये, कुछ गलरी में चले गये और कुछ बाथरूमों में जा छिपे। बमों के फटने से जो नीला धुआं पूरे हाउस में भर गया था, जब वह साफ हुआ तो हाउस खाली था। सदस्यों में पण्डित मोतीलाल नेहरू श्री मुहम्मद अली जिन्ना, पण्डित मदनमोहन मालवीय अपनी जगह पर ज्यों के त्यों बैठे थे। दर्शक गैलरियां भी बिल्कुल खाली थीं। उन में अपनी जगह सन्नद्ध भाव से खड़े थे भगत सिंह और दत्त। उन्हों ने पूरे जोर से नारा लगाया—इन्कलाब ज़िन्दाबाद, साथ ही दूसरा नारा गूंजा—साम्राज्यवाद का नाश हो। उसी समय बटुकेश्वरदत्त ने कुछ परचे हाउस में फेंके। इन में अंगरेज़ी में लिखा था—

हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र सेना

बहरों को सुनाने के लिए ऊंची आवाज़ की ज़रूरत होती है। फ्रान्स के अराजकतावादी शहीद बेलाँ के ऐसे ही अवसर पर कहे गये इन अमर शब्दों से क्या हम अपने काम का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं?

शासन सुधारों के नाम पर ब्रिटिश हुकूमत द्वारा पिछले दस वर्षों में हमारे देश का जो अपमान किया गया है उस निन्दनीय कहानी को हम दोहराना नहीं चाहते। हम भारतीय राष्ट्र के नेताओं के साथ किये गये अपमानों का भी उल्लेख नहीं करना चाहते, जो इस असेम्बली द्वारा किये गये हैं, जिसे भारत की पार्लियामेण्ट कहा जाता है।

हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि कुछ लोग साइमन कमीशन के द्वारा सुधारों के नाम से जो जूठे टुकड़े मिलने की सम्भावना है, उस की आशा लगाये हुए हैं और मिलने वाली ताज़ा हड्डियों के बंटवारे के लिए झगड़ा तक कर रहे हैं। इसी समय सरकार भी भारतीय जनता पर दमनकारी कानून लादती जा रही है जैसे कि 'पब्लिक सेफ्टी बिल', ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल इन्हीं के साथ उस ने प्रेस सिडीशन बिल को असेम्बली के अगले अधिवेशन के लिए सुरक्षित रख लिया है। मजदूर नेता जो खुले रूप में अपना काम कर रहे थे, उन की अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार का रुख क्या है?

इन बहुत उत्तेजक परिस्थितियों में 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' ने पूर्ण गम्भीरता के साथ अपना उत्तरदायित्व अनुभव करते हुए अपनी सेना को यह कार्य करने का आदेश दिया है, जिस से कानून का यह अपमानजनक मज़ाक बन्द हो। विदेशी सरकार का शोषक नौकरशाही चाहे जो करे, परन्तु उस का नग्न रूप तो जनता के सामने लाना बहुत आवश्यक है।

जनता के चुने हुए प्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्रों में लौट जायें और जनता को आने वाली क्रान्ति के लिए तैयार करें। सरकार को यह जान लेना चाहिए कि

सेफ्टी बिल और ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल और लाला जी की नृशंस हत्या का असहाय भारतीय जनता की ओर से विरोध करते हुए हम इस पाठ पर जोर देना चाहते हैं, जिसे कि बहुत बार इतिहास ने दोहराया है कि व्यक्तियों की हत्या कर टालना आसान है, लेकिन तुम विचारो की हत्या नहीं कर सकते। बड़े-बड़े साम्राज्य नष्ट हो गये, जब कि विचार जीवित रहे। (फ्रान्स के) बूर्वॉ और (रूस के) जार समाप्त हो गये, जब कि क्रान्तिकारी विजय की सफलता के साथ आगे बढ़ गये।

हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य मे विश्वास रखते है जिस में प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का उपभोग करेगा। हम मानव रक्त बहाने के लिए अपनी विवशता पर दुःखी है, परन्तु क्रान्ति-द्वारा सब को समान स्वतन्त्रता देने और मनुष्य-द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए क्रान्ति में कुछ व्यक्तियों का बलिदान अनिवार्य है।

इन्कलाब जिन्दाबाद।

ह० बलराज

कमाण्डर-इन-चीफ

इस समय का एक और अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्द-चित्र भी श्री शिव वर्मा के शब्दो मे—"असेम्बली बम काण्ड के कुछ दिनो बाद मै आजाद से झाँसी मे फिर मिला। उस समय हमारे सामने दो योजनाएँ थी : पहली, जब देहरादून मे वायसराय शिकार खेलने आयें तो उस पर बम फेंकने की, और दूसरी, दिल्ली से लाहौर ले जाते समय रास्ते मे भगत सिह और दत्त को छुडाने की। इन्ही योजनाओ पर आजाद से बात करनी थी। इस समय हमारा केन्द्रीय हेड क्वार्टर सहारनपुर मे था और वहाँ से इन दोनो योजनाओ का संचालन आसानी से किया जा सकता था।

झाँसी केन्द्र पर उस दिन काफी भीड थी। सभी लोग दिल्ली के बारे मे अधिक से अधिक जानने के लिए उत्सुक थे, खास कर दत्त और भगत सिंह के बारे मे। भगत सिंह और दत्त के चित्र देख कर सभी साथियो की आँखो मे आँसू आ गये, लेकिन आजाद अपने ऊपर काबू किये बैठे रहे। इसी बीच एक साथी किसी काम से उठ कर कमरे के बाहर जाने लगा, तो उस का पैर सामने पडे अखबार पर पड गया, जिसे मैं अपने साथ ले गया था। उस मे हमारे दोनो साथियो के चित्र छपे थे। हम लोग बात मे काफी भूले हुए थे, पर आजाद ने चित्रो पर पैर पडते देख लिया। वे गरज उठे। शीघ्र ही अपने पर काबू पा कर उन्हो ने उस साथी का हाथ पकड कर अपने पास बिठा लिया। उन की आँखो मे आँसू छलछला आये थे। बोले—'ये लोग अब देश की सम्पत्ति हैं, शहीद है, देश इन को पूजेगा। अब इन का दरजा हम लोगो से बहुत ऊँचा है। इन के चित्रो पर पैर रखना देश की आत्मा को रौंदने के बराबर है।' कहते-कहते उन का गला भर आया।

स्वर्गीय बैरिस्टर और कांग्रेस नेता श्री आसफअली ने असेम्बली मे बम फेंकने

की ओर-रुगा हाल इस प्रकार वर्णन किया है—"जब मैं असेम्बली भवन में पहुँचा, तो मुझे बैठने का स्थान न मिल सका। मैं आगे बढ़ता गया और प्रेस की गैलरी में उस स्थान पर खड़ा हो गया जहाँ मेरे ठीक सामने भगत सिंह बैठे थे। मैं ने देखा कि श्री बृजलाल नेहरू भी वहीं थे हैं और हम दोनों खड़े-खड़े ही असेम्बली की कार्यवाही देखने लगे। ज्यों ही प्रेसीडेण्ट श्री वी० ज० पटेल ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल पर अपना रूलिंग देने के लिए उठने वाले थे, त्यों ही पं० बृजलाल नेहरू ने मुझ से कहा कि अब श्री पटेल अपना बम फेंकने वाले हैं।

उन की बात पूरी हुई ही थी कि मैं ने पहली और दूसरी सरकारी बेंचों के बीच एक चमक देखी। क्षण भर के लिए मैं ने सोचा क्या हमारा प्यारा बयान ये लिए सरकार ने आतिशबाजी शुरू की है। तभी दूसरा बम फेंका गया। बड़ी बड़ी आवाज के साथ फटा और सारा भवन धुएं से भर गया। इस के बाद कुछ गोलियाँ छोड़ी गयीं। सदन में चीख-पुकार मच गयी और लोग बाहर जाने लगे। प्रेसीडेण्ट पटेल ने दो बार ऑर्डर-ऑर्डर कह कर सदन को शान्त करने की चेष्टा की और वे अपनी कुरसी छोड़ कर चले गये। दर्शक-गैलरी कुछ ही क्षणों में खाली हो गयी और लोग दरवाजा व शीशे तोड़-ताड़ कर भागे। मैं बृजलाल नेहरू तथा एक और सज्जन वहीं रह गये क्यों कि हमारी पत्नियाँ महिला गैलरी में थीं और हम उन्हें साथ लेना चाहते थे।

अपनी पत्नी को खोज कर मैं फिर पुरुषों की गैलरी में आ गया। भगत सिंह के चेहरे पर गहरा तनाव था और वे इन्स्पेक्टर मिस्टर जॉनसन से कह रहे थे— चिन्ता मत करो हम सारे संसार को बता देंगे कि यह हम ने किया है।

श्री आसफअली बटुकेश्वरदत्त के वकील थे। उन्हों ने इस रहस्य पर से भी परदा उठा दिया है कि इन दोनों ने एक एक बम फेंका या दोनों बम भगत सिंह ने ही फेंके। उन्हीं के शब्दों में— बहुत कम लोग इस तथ्य से परिचित हैं कि बी० के० दत्त ने बम नहीं फेंका था। जब अदालत में वक्तव्य देने का समय आया तो उन्हों ने यह स्वीकार करने का आग्रह किया कि एक बम उन्हों ने भी फेंका था। जब मैं ने इस झूठी स्वीकारोक्ति से रोकना चाहा तो वे बहुत गम्भीर मुद्रा में मुझ से बोले— मैं और भगत सिंह लम्बे समय से साथ रहे हैं। मुझे विश्वास है कि आप के द्वारा पैरवी किये जाने के बावजूद उन्हें लम्बी कैद की सजा दी जायगी। मान लीजिए कि मुझे छोड़ दिया गया तो मैं भगत सिंह के बिना क्या करूंगा कैसे रहूँगा। मुझे उन के साथ ही रहना चाहिए। मैं उन के निश्चय में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, उन्हों ने मेरी एक नहीं सुनी। अपनी प्रथम भेंट में ही भगत सिंह ने मेरे सामने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि वे अपने काम से इनकार नहीं करेंगे और न अपने बचाव के लिए अपने को निरपराध सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे।

असेम्बली भवन में अपनी जगह काफी देर खड़े रहने के बाद साजण्ट टेरी उन के पास आये और बाद में इन्स्पेक्टर मि० जॉनसन। दोनों घबराहट में थे, भगत सिंह

ने पिस्तौल, जिस में उस समय भी कई गोलियाँ थी, सामने के डेस्क पर रख दिया। उन के इस व्यवहार से वे शान्त हुए। सार्जेण्ट टेरी के शब्दो मे—"भगत सिह बच्चो की तरह अपनी उँगलियो के सहारे पिस्तौल से खेल रहे थे।" जो परचे इन लोगो ने फेंके थे, वे उन के उद्देश्य को एक जोशीली घटना से हटा कर एक महान् राष्ट्रीय कार्य-क्रम का रूप देते थे। इस लिए वे सब बटोर लिये गये और पूरा प्रयत्न हुआ कि उन की गन्ध भी बाहर न जाये, पर दिल्ली के अँगरेजी दैनिक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संवाददाता ने अपनी होशियारी और फुर्ती से एक परचा उडा लिया और वह शाम के संस्करण मे छप भी गया।

सरकार ने तार-फोन द्वारा असेम्बली बम-काण्ड की खबर बाहर भेजने पर रोक लगा दी थी—सब साधन उस के लिए सुरक्षित ही थे, पर उस समय दिल्ली मे 'स्टेट्समैन' के संवाददाता लाला दुर्गादास थे। उन्हो ने उसी समय असेम्बली बम-काण्ड का समाचार फोन या तार-द्वारा कलकत्ता भेजना चाहा, परन्तु समाचार भेजने के सभी साधन सरकारी काम के लिए रिजर्व थे। लाला दुर्गादास ने इस समय पत्रकार की विशेष सूझ दिखायी। उन्हो ने यह समाचार, 'स्टेट्समैन' के लन्दन दफ्तर को भेज दिया। लन्दन से यह समाचार वायरलैस-द्वारा कलकत्ता को भेज दिया गया। जिस समय एसोशियेटेड प्रेस ऑव इण्डिया-द्वारा इस घटना का समाचार कलकत्ता के दूसरे पत्रो को मिला, 'स्टेट्समैन' का विशेषाक भी बाजार मे पहुँच चुका था।[1]

भगत सिह और बटुकेश्वरदत्त को जब पुलिस कोतवाली ले चली तो उन्हो ने फिर नारा लगाया . 'इन्कलाब जिन्दाबाद'। यह नारा सॉण्डर्स-वध के बाद लाहौर मे जो पोस्टर दीवारो पर लगाया गया था, उस मे भी था, पर वास्तव मे समूचे देश ने असेम्बली बम-काण्ड के समय ही यह सुना। यह नारा सशस्त्र क्रान्ति के इतिहास को भगत सिह का विशेष उपहार है। सुविज्ञ क्रान्तिकारी श्री विजयकुमार सिनहा के शब्दो मे—"भगत सिह को एक महान् देशभक्त मात्र समझना भूल होगी, क्यो कि वे हमारे राष्ट्रीय संघर्ष मे एक नवीन युग के (जिस ने हमारे राजनैतिक आन्दोलन मे नवीन आदर्शो तथा विचारो का समावेश किया) आदर्श प्रतिनिधि के रूप मे महानतर थे। उन का शानदार क्रान्तिकारी जीवन संघर्परत भारतीय जनता की उद्दाम भावना का प्रतीक था। इस का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण यह है कि सरदार भगत सिह-द्वारा राष्ट्र को दिया हुआ 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा जनता ने आश्चर्यजनक तेजी से स्वीकार कर लिया। १९०५ से असेम्बली बम-काण्ड तक 'वन्दे मातरम्' ही हमारा प्रिय राष्ट्रीय नारा था। भगत सिह के इस नारे ने जनता का ध्यान आकृष्ट कर लिया, क्यो कि इस मे बिना समझौता किये लडते रहने के दृढ सकल्प तथा दरिद्रता एवं कष्ट को सदा के लिए दूर करने वाली एक नवीन सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करने की आशा इस के द्वारा समुचित व्यक्त होती थी।"

---

१ 'सिहावलोकन' भाग १, पृष्ठ १९८।

कोतवाली में जब पुलिस ने उन से अपना बयान देने को कहा तो उन्हों ने जवाब दिया कि हमें पुलिस के सामने कोई बयान नहीं देना है। जो कुछ भी हम कहना है हम अदालत के सामने ही कहेंगे। पुलिस ने उन्हें दिल्ली जेल भेज दिया। वहाँ से उन्हों ने अपने पिता को यह पत्र लिखा—

पूज्य पिताजी महाराज

वन्दे मातरम — दिल्ली जेल
२६ ४ २९

अर्ज है कि हम लोग २२ अप्रैल को पुलिस की हवालात से दिल्ली जेल में मुन्तकिल (तब्दील) कर दिये गये थे और इस वक्त दिल्ली जेल में ही हैं। मुकद्दमा ७ मई को जेल के अन्दर ही शुरू होगा। गालिबन (सम्भवत) एक माह में सारा ड्रामा खत्म हो जायगा। ज्यादा फिक्र करने की जरूरत नहीं है। मुझे मालूम हुआ कि आप यहाँ तशरीफ लाये थे और किसी वकील वगैरह से बातचीत की थी और मुझ से मिलने की कोशिश भी की थी मगर तब सब इन्तजाम न हो सका। कपड़े मुझे परसों मिले। मुलाकात आप जिस दिन तशरीफ लायें हो सकेगी। वकील वगैरह की कोई खास जरूरत नहीं है। दो एक आमूर पर थोड़ा-सा मशवरा लेना चाहता हूँ मगर वह कोई खास अहमियत नहीं रखते। आप ख्वामखाँह ज्यादा तकलीफ न कीजिएगा। अगर आप मिलने के लिए आयें तो अकेले ही आइयेगा। वाल्दा साहिबा (माता जी) को साथ न लाइयेगा। ख्वामखाँह वोह रो देंगी और मुझे भी कुछ तकलीफ जरूर होगी। घर के सब हालात आप से मिलने पर ही मालूम हो सकेंगे।

हाँ अगर हो सके तो गीता रहस्य नेपोलियन की मोटी सुआन उमरी (जीवन चरित्र) जो आप को मेरी कुतुब में मिल जायेगी अंगरेजी के कुछ आला नावल लेते आइएगा। द्वारकादास लायब्रेरी वालों से शायद कुछ नॉवल मिल सकें। सर देस के चरणों में नमस्कार। रणवीर सिंह और कुल्तार सिंह को नमस्ते। बापू जी (दादा जी) के चरणों में नमस्ते अर्ज कर दीजिएगा। वाल्दा साहिबा भाभी साहिबा माताजी (दादी जी) और चाची साहिबा हमारे साथ निहायत अच्छा सलूक हो रहा है। आप किसी किस्म की फिक्र न कीजिएगा। मुझे आप का एड्रेस मालूम नहीं है इस लिए इस पते (कांग्रेस दफ्तर) पर लिख रहा हूँ।

आप का ताबेदार

भगत सिंह

२ मई १९२९ को सरदार किशन सिंह दिल्ली जेल में भगत सिंह से मिले। बैरिस्टर आसफअली भी उन के साथ थे। बातचीत का जो विवरण हमारे परिवार में प्राप्त है उस के अनुसार सरदार किशन सिंह पूरी ताकत और ढंग से मुकद्दमा लड़ने के पक्ष में थे पर भगत सिंह बचाव की दृष्टि से मुकद्दमा लड़ने के विरुद्ध थे। उन के लिए तो वह सिद्धान्तों के प्रचार का एक मोर्चा था। श्री आसफअली से उन्हों ने कुछ कानूनी प्वाइण्ट पूछे और बातचीत समाप्त हो गयी।

सेशन जज की अदालत में

७ मई १९२९ को एडीशनल मैजिस्ट्रेट मिस्टर पूल की अदालत मे जेल मे ही सुनवाई आरम्भ हुई। चुने हुए पत्र-प्रतिनिधि और अभियुक्तो के निकट सम्बन्धियो और वकीलो के अतिरिक्त और किसी को अदालत मे आने नही दिया गया। सरकार ने अपना पक्ष प्रस्तुत किया, पर भगत सिंह ने कहा— "हम लोग अपना बयान सेशन जज की अदालत मे ही देंगे।" इस लिए केस भारतीय दण्ड विधान की धारा ३ के अधीन सेशन जज मिस्टर मिडलटन की अदालत मे भेज दिया गया। दिल्ली जेल मे ४ जून १९२९ को मुकदमे की सुनवाई शुरू हुई। सरकारी गवाहो के बयान के बाद भगत सिंह ने अपने और बटुकेश्वरदत्त की ओर से ६ जून १९२९ को यह ऐतिहासिक बयान दिया :

बयान—

"हमारे विरुद्ध गम्भीर अपराधो के आरोप लगाये गये है, हम इस समय अपने आचरण का स्पष्टीकरण करना चाहते है।

इस सम्बन्ध मे निम्न प्रश्न उठते है—

१. क्या सदन मे बम फेंके गये थे ? यदि ऐसा हुआ तो इस का क्या कारण था ?

२ निम्न न्यायालय ने जिस प्रकार आरोप लगाया है, वह सही है अथवा नही ?

प्रथम प्रश्न के पूर्वार्द्ध के लिए हमारा उत्तर स्वीकारात्मक है, परन्तु कुछ साक्षियो ने घटना का असत्य विवरण प्रस्तुत किया है। हम बम फेंकने का दायित्व स्वीकार करते है अत हम यह अपेक्षा करते है कि हमारे इस वक्तव्य का सही मूल्यांकन किया जा सकेगा। उदाहरणार्थ हम इस बात की ओर संकेत करना चाहते है कि सार्जेण्ट टैरी का यह कथन कि उन्हो ने हम मे से एक के हाथ से पिस्तौल छीन ली, जान-बूझ कर बोला गया असत्य है। वस्तुत जिस समय हम ने आत्म-समर्पण किया, उस समय हम दोनो मे से किसी के पास पिस्तौल नही थी। जिन साक्षियों ने यह कहा कि उन्हो ने हमे बम फेंकते हुए देखा, उन्हे भी बे-सिर-पैर का झूठ बोलने मे कोई झिझक नही आयी। हमे आशा है कि जिन लोगो का ध्येय न्यायिक शुद्धता तथा

निष्पक्षता की रक्षा करता है वे इन तथ्यों से स्वयं निष्कर्ष निकालेंगे। साथ ही हम स्वीकार करते हैं कि अभी तक सरकारी पक्ष ने औचित्य की रक्षा की है तथा न्यायालय ने न्यायपूर्ण रवैया अपनाये रखा है।

प्रथम प्रश्न के उत्तरार्द्ध का उत्तर कुछ विस्तार से देना होगा जिस से कि हम उन प्रयोजनों और परिस्थितियों को एक पूर्ण और खुले रूप में स्पष्ट कर सकें जिन के परिणामस्वरूप वह घटना हुई है, जिस ने अब ऐतिहासिक स्वरूप ले लिया है। जेल में हमारे साथ पुलिस-अधिकारियों ने भेंट की, उन में से कुछ ने जब हमें यह बताया कि विचाराधीन घटना के पश्चात् दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए लार्ड इरविन ने यह कहा कि हम लोगों ने बम फेंक कर किसी व्यक्ति पर नहीं वरन् स्वयं एक संविधान पर आक्रमण किया है उस समय हमें तुरन्त यह आभास हुआ कि उस घटना के वास्तविक महत्त्व का सही मूल्यांकन नहीं किया गया है।

मानव-मात्र के प्रति हमारा प्रेम किसी से भी कम नहीं है अतः किसी व्यक्ति के प्रति विद्वेष रखने का प्रश्न ही नहीं उठता इस के विपरीत हमारी दृष्टि में मानव-जीवन इतना अधिक पवित्र है कि उस पवित्रता का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। छद्म समाजवादी दीवान चमनलाल ने हमें जघन्य आक्रमणकारी और देश के लिए अपमानकारक बताया है साथ ही लाहौर के समाचार-पत्र 'ट्रिब्यून' ने तथा कुछ अन्य लोगों की यह धारणा भी असत्य है कि हम उन्मत्त हैं।

हम नम्रतापूर्वक यह दावा करते हैं कि हम ने इतिहास, अपने देश की परिस्थिति तथा मानवीय आकांक्षाओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है एवं हम पाखण्ड से घृणा करते हैं।

हमारा ध्येय उस संस्था के विरुद्ध अपना व्यावहारिक प्रतिरोध प्रकट करना था जिस ने अपने आरम्भ से केवल अपनी निरुपयोगिता का ही नहीं, वरन् हानि पहुंचाने की दूरगामी शक्ति का भी नग्न प्रदर्शन किया है। हम ने जितना अधिक चिन्तन किया हम उतने ही अधिक इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि इस संस्था—(विधान मण्डल) के अस्तित्व का प्रयोजन संसार के समक्ष भारतीय दीनता और असहायता का प्रदर्शन करना है तथा यह एक अनुत्तरदायी एवं स्वेच्छाचारी शासन की दमनकारी सत्ता की प्रतीक बन गया है।

जनता के प्रतिनिधियों की राष्ट्रीय माँग को बार-बार रद्दी की टोकरी में फेंक दिया जा रहा है। सदन-द्वारा पारित पवित्र प्रस्तावों को तथाकथित भारतीय संसद के फर्श पर तिरस्कारपूर्वक पांवों तले कुचला जाता रहा है। दमनकारी एवं स्वेच्छाचारी क़ानूनों के निवारण से सम्बन्धित प्रस्तावों की सब से अधिक अपमानपूर्वक उपेक्षा की गयी तथा निर्वाचित प्रतिनिधियों ने जिन सरकारी क़ानूनों और प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया, उन को भी सरकार द्वारा स्वेच्छाचारितापूर्वक स्वीकृति प्रदान की जा रही है।

संक्षेप मे, ईमानदारी के साथ प्रयत्न करने पर भी हमारी समझ मे यह नही आ रहा है कि एक ऐसी संस्था का अस्तित्व किस प्रकार न्यायसंगत माना जा सकता है, जिस की शान-शौकत बनाये रखने के लिए भारत के करोड़ो लोगो के गाढे पसीने की कमाई व्यय की जाती है तथापि जो सारहीन अभिनय और शैतानी से भरा षड्यन्त्र-मात्र बन कर रह गयी है।

इसी प्रकार हम उन नेताओ की मनोवृत्ति के औचित्य को समझ नही पा रहे है जो भारत की इस असहाय-पराधीनता के पूर्व-नियोजित प्रदर्शन पर सार्वजनिक समय और धन नष्ट कर रहे है। हम इस विषय मे तथा ट्रेड डिस्प्यूट विधेयक प्रस्तुत किये जाने के समय श्रमिक आन्दोलन के नेताओ की व्यापक गिरफ्तारियो पर गम्भीरता से चिन्तन करते रहे है और जब इस विषय पर होने वाले विवाद की आँखो-देखी जानकारी प्राप्त करने के लिए हम असेम्बली मे आये तो हमारी यह धारणा और भी पुष्ट हो गयी कि भारत के करोडो मेहनतकशो को एक ऐसी संस्था से कुछ भी प्राप्त नही हो सकता जो शोषको की दम घोटने वाली सत्ता और असहाय श्रमिको की पराधीनता का एक खतरनाक स्मारक-मात्र बन कर रह गयी है।

अन्तत समूचे देश के प्रतिनिधियो को इस प्रकार अपमानित किया गया है, जिसे हम अमानवीय और बर्बर कहते है। साथ ही देश के करोडों भूखे तथा दरिद्र लोगो को उन के मौलिक अधिकारो तथा आर्थिक हित के एकमात्र साधन से वचित कर दिया है।

कोई भी ऐसा व्यक्ति जिस के हृदय मे मूक और पराधीन श्रमिको की दुर्दशा के प्रति हमारे-जैसी सहानुभूति है, इस दृश्य को शान्ति-पूर्वक नही देख सकता तथा जिस के हृदय मे उन श्रमिको के लिए करुणा है, जिन्हो ने उन शोषको के आर्थिक ढाँचे के निर्माण के लिए मौन रह कर अपना जीवन-रक्त गिराया है, जिन की यह सरकार अधिक समर्थक है, निर्दय, निर्दलन के फलस्वरूप उठने वाले आत्मा के क्रन्दन को दबा नही सकता। परिणामतया हम ने गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद् के भूतपूर्व विधि-सदस्य स्वर्गीय श्री सी० आर० दास के उन शब्दो से प्रेरणा ग्रहण की, जो उन्हो ने अपने पुत्र के नाम एक पत्र मे लिखे थे और जिन का तात्पर्य यह था कि इंग्लैण्ड को उन के दु स्वप्न से जगाने के लिए बम आवश्यक है और हम ने उन लोगो की ओर से प्रतिरोध प्रकट करने के लिए असेम्बली के फर्श पर बम फेंका, जिन के पास अपनी हृदय-विदारक व्यथा की अभिव्यक्ति का कोई दूसरा मार्ग नही रह गया है। हमारा एकमात्र उद्देश्य यह था कि हम बहरो को अपनी आवाज़ सुनायें और समय की चेतावनी उन लोगो तक पहुँचायें जो उस की उपेक्षा कर रहे हैं। दूसरे लोग भी हमारी ही तरह सोच रहे है और यद्यपि भारतीय जाति ऊपर से एक शान्त समुद्र की भाँति दिखाई दे रही है तथापि भीतर-ही-भीतर एक भयकर तूफान उफन रहा है। हम ने उन लोगो को खतरे की चेतावनी दी है जो सामने आने वाली गम्भीर परिस्थितियो की चिन्ता किये बिना सरपट दौड़े जा रहे है। हम ने उस काल्पनिक अहिंसा की समाप्ति की घोषणा की है

जिस की निरपयागिता के बार म नयी पीढ़ी के मन म किसी प्रकार का सन्देह नही बचा है। हम ने ईमानदारी एवं सद्भावना तथा मानव जाति के प्रति अपने प्रेम के कारण उन भयंकर खतरों के विरुद्ध चेतावनी देने के लिए यह मार्ग चुना है जिन का पूर्वाभास हमें भी देश के करोड़ो लोगो की भांति स्पष्ट रूप से हुआ है।

हम ने पिछले पैरो म काल्पनिक अहिंसा शब्द का प्रयोग किया है हम उस की व्याख्या करना चाहते है। हमारी दृष्टि से बलप्रयोग उस समय अन्यायपूर्ण होता है जब वह आक्रामक रीति से किया जाय और यह हमारी दृष्टि में हिंसा है, परन्तु जब शक्ति का उपयोग किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाये तो वह नैतिक दृष्टि से न्यायसंगत हो जाता है। बलप्रयोग का पूर्ण बहिष्कार कोरी काल्पनिक भ्रान्ति है। इस देश म एक नया आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है जिस की पूर्व सूचना हम दे चुके हैं। यह आन्दोलन गुरु गोविन्द सिंह और शिवाजी कमालपाशा और रिजाखाँ वाशिंगटन और गैरी बाल्डी तथा लाफायेत और लेनिन के कार्यों से प्रेरणा ग्रहण करता है।

हम ऐसा लगा कि विदेशी सरकार और भारत के सार्वजनिक नेताओं ने इस आन्दोलन की ओर से आँख मूँद ली है तथा उन के कानों म इस की आवाज नहीं पड़ी है। अतः हम यह कर्तव्य प्रतीत हुआ है कि हम ऐसे स्थानों पर चेतावनी दें जहाँ हमारी आवाज अनसुनी न रह सके।

हम ने अभी तक विचाराधीन घटना के पीछे निहित प्रयोजनो की चर्चा की है, अब हम अपने प्रयोजनो की मर्यादा के बारे में भी कुछ कहना चाहते है।

हमारे मन म उन लोगो के प्रति कोई व्यक्तिगत द्वेष अथवा वैर नहीं था जिन को इस घटना के दौरान मामूली चोटें आयी है। इतना ही नहीं, असम्बली म उपस्थित किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध हम कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं था हम तो यहाँ तक कह सकते है कि हम मानवीय जीवन को शाश्वत रूप म पवित्र मानते है तथा किसी को चोट पहुँचाने के बजाय मानव-जाति की सेवा के लिए हम अपने प्राण देने को तत्पर है। हम साम्राज्यवादी सेनाओ के उन भाड़ेत सैनिकों की भाँति नहीं है जो हत्या करने म रस लेते है। इस के विपरीत हम मानव-जीवन की रक्षा का प्रयत्न करेंगे। इस के बावजूद भी हम यह स्वीकार करते है कि हम ने जान बूझ कर असम्बली भवन म बम फेंके। तथ्य स्वयं मुखर है तथा हमारा अनुरोध है कि हमारे प्रयोजनो को हमारे कार्य के परिणाम से आँका जाना चाहिए न कि काल्पनिक परिस्थितियो तथा पूर्व मान्यताओ के आधार पर। सरकारी विशेषज्ञ द्वारा किये गये प्रमाणो के बावजूद सत्य यह है कि हम ने असम्बली भवन में जो बम फेंके उन से एक खाली बेंच को मामूली क्षति पहुँची और आधे दरजन से भी कम लोगो को मामूली खरोंचें आयी। सरकार के वैज्ञानिकों ने इस घटना को चमत्कार कहा है परन्तु हमारी दृष्टि म यह पूर्णतया एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। पहली बात तो यह कि दो बम डेस्कों और बेंचो के बीच खाली जगह म फटे दूसरी यह कि जो लोग विस्फोट से केवल दो फुट दूर पर थे—जैसे श्री राऊ श्री शंकर राव तथा श्री जार्ज

शुस्टर, उन लोगों को या तो विलकुल चोट नही आयी या केवल कुछ खरोचें आयी। यदि वमो के भीतर पोटैशियम क्लोरेट और पिकरेट के प्रभावशाली तत्त्व भरे होते तो उन्हो ने अवरोधो को खण्डित कर दिया होता तथा विस्फोट-स्थल से कई गज की दूरी पर बैठे वहुत से लोग आहत हो गये होते, एव यदि उन के भीतर उस से भी अधिक प्रभावशाली विस्फोटक तथा विनाशकारी तत्त्व भरे होते तो वे विधान-सभा के अधिकाश सदस्यो की जीवन-लीला को समाप्त कर सकते थे। हम यह भी कर सकते थे कि हम उन्हे सरकारी वॉक्स मे फेकते, जहाँ महत्त्वपूर्ण लोग बैठे थे और आखिरकार हम यह भी कर सकते थे कि उस समय अध्यक्ष-दीर्घा मे बैठे हुए सर जॉन साइमन पर चोट करते, जिस के दुर्भाग्यपूर्ण कमीशन को देश के सभी विवेकवान् लोग घृणा करते है, परन्तु हमारा प्रयोजन यह सव नही था और वमो का जिस प्रयोजन के लिए निर्माण किया गया था, उन्हो ने उस से अधिक काम नही किया। इस मे कोई चमत्कार नही था, हम ने जान-बूझ कर यह ध्येय निश्चित किया था कि सभी लोगो का जीवन सुरक्षित रहे।

इस के पश्चात् हम ने अपने कार्य के परिणामस्वरूप दण्ड प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से अपने-आप को प्रस्तुत कर दिया और साम्राज्यवादी शोपको को यह वता दिया कि वे व्यक्तियो को कुचल सकते है, विचारो की हत्या नही कर सकते। दो महत्त्वहीन इकाइयो को कुचल देने से राष्ट्र नही कुचला जा सकता। हम इस ऐतिहासिक निष्कर्प पर वल देना चाहते है कि फ्रान्स मे लैटर्स डे कैटचैट तथा वैस्टाइल्स की घटनाओ से क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचला नही जा सका। फॉसी की रस्सी और साइवेरिया मे विछायी गयी माइन् रूसी क्रान्ति की ज्वाला को नही वुझा सकी। इसी प्रकार यह भी असम्भव हे कि अध्यादेश और सुरक्षा विधेयक भारतीय स्वाधीनता की लपटो को वुझा सकें। पड्यन्त्रो का भेद खोजने, उन की जोरदार शब्दो मे निन्दा करने तथा महत्तर आदर्शों का स्वप्न देखने वाले सभी नौजवानो को फॉसी के तख्ते पर चढा देने से क्रान्ति को गति अवरुद्ध नही की जा सकती। यदि हमारी इस चेतावनी की उपेक्षा नही की गयी तो यह जीवन की हानि और व्यापक उत्पीडन को रोकने मे सहायक सिद्ध हो सकती है। यह चेतावनी देने का भार हम ने स्वय अपने कन्धो पर लिया और कर्त्तव्य का पालन किया।"

निम्न न्यायालय मे भगत सिह से पूछा गया था कि क्रान्ति से वे क्या समझते है? प्रश्न के उत्तर मे उन्होने कहा था कि—"क्रान्ति मे घातक सघर्पो का अनिवार्य स्थान नही है, न उस मे व्यक्तिगत रूप से प्रतिशोध लेने की ही गुजायश है। क्रान्ति वम और पिस्तौल की सस्कृति नही है। क्रान्ति से हमारा प्रयोजन यह हे कि अन्याय पर आधारित वर्तमान व्यवस्था मे परिवर्तन होना चाहिए। उत्पादक अथवा श्रमिक समाज के अत्यन्त आवश्यक तत्त्व हे तथापि शोपक लोग उन्हे श्रम के फलो और मौलिक अधिकारो से वचित कर देते है। एक ओर सव के लिए अन्न उगाने वाले कृपक सपरिवार

जिस की निरपयागिता क बारे म नयी पीढी के मन म किसी प्रकार का सन्देह नही बचा ह । हम ने ईमानदारी, पूण सद्भावना तथा मानव जाति के प्रति अपन प्रेम क कारण उन भयकर खतरो के विरुद्ध चेतावनी देने क लिए यह माग चुना ह जिन का पूर्वाभास हमें भी देश के करोडो लोगो की भाँति स्पष्ट रूप से हुआ ह ।

हम ने पिछले परा म काल्पनिक अहिसा शब्द का प्रयोग किया ह हम उस की व्याख्या करना चाहते ह । हमारी दष्टि से बलप्रयोग उस समय अयायपूण होता ह जब वह आक्रामक रीति से किया जाय और यह हमारी दष्टि म हिसा ह, परन्तु जब शक्ति का उपयोग किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाये तो वह नतिक दष्टि से न्यायसगत हो जाता ह । बलप्रयोग का पूण बहिष्कार कोरी काल्पनिक भ्रान्ति ह । इस देश म एक नया आन्दोलन उठ खडा हुआ ह जिस की पूव सूचना हम द चुके ह । यह आदोलन गुरु गोविन्द सिंह और शिवाजी कमालपाशा और रिजाखाँ वाशिंगटन और गरी बाल्डी तथा लाफायते और लनिन के कार्यों से प्रेरणा ग्रहण करता ह ।

हम एसा लगा कि विदेशी सरकार और भारत क सावजनिक नताओ ने इस आदोलन की ओर से आख मूद ली ह तथा उन के कानो म इस की आवाज नही पडी ह । अत हम यह कत्तव्य प्रतीत हुआ ह कि हम एसे स्थानो पर चेतावनी दें जहाँ हमारी आवाज अनसुनी न रह सक ।

हम न अभी तक विचाराधीन घटना के पीछे निहित प्रयोजनो की चचा की ह अब हम अपने प्रयोजनो की मर्यादा के बारे म भी कुछ कहना चाहते ह ।

हमार मन म उन लोगो के प्रति कोई व्यक्तिगत द्वेष अथवा वर नही था जिन को इस घटना के दौरान मामूली चोटें आयी ह । इतना ही नही असेम्बली म उपस्थित किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध हमें कोई व्यक्तिगत द्वेष नही था हम तो यहाँ तक कह सकते ह कि हम मानवीय जीवन को शब्दातीत रूप म पवित्र मानते ह तथा किसी को चोट पहुँचाने क बजाय मानव-जाति की सेवा के लिए हम अपने प्राण देने को तत्पर ह । हम साम्राज्यवादी सेनाओ के उन भडत सनिको की भाति नही ह जो हत्या करने म रस लेते हैं । इस के विपरीत हम मानव-जीवन की रक्षा का प्रयत्न करेंग । इस के बावजूद भी हम यह स्वीकार करत ह कि हम ने जान बूझ कर असम्बली भवन में बम फेंके । तथ्य स्वय मुखर ह तथा हमारा अनुरोध ह कि हमारे प्रयोजनो को हमार काय के परिणाम से आका जाना चाहिए न कि काल्पनिक परिस्थितियो तथा पूव मान्यताओं के आधार पर । सरकारी विज्ञापन द्वारा दिय गये प्रमाणो क बावजूद सत्य यह ह कि हम ने असेम्बली भवन में जो बम फेंक उन म एक खाली बच को मामूली क्षति पहुंची और आधा दरजन से भी कम लोगो को मामूली खरोंचें आयी । सरकार के वज्ञानिको ने इस एक चमत्कार कहा ह परन्तु हमारी दृष्टि म यह पूणतया एक वज्ञानिक प्रक्रिया ह । पहली बात तो यह कि दो बम डस्को और बेंचो क बीच खाली जगह म फटे दूसरी यह कि जो लोग विस्फोट स कवल दो फुट दूर पर थे—जस श्री राऊ श्री शकर राव तथा श्री जाज

शुस्टर, उन लोगो को या तो बिलकुल चोट नही आयी या केवल कुछ खरोंच आयी। यदि बमो के भीतर पोटैशियम क्लोरेट और पिकरेट के प्रभावशाली तत्त्व भरे होते तो उन्हो ने अवरोधो को खण्डित कर दिया होता तथा विस्फोट-स्थल से कई गज की दूरी पर बैठे बहुत से लोग आहत हो गये होते, एव यदि उन के भीतर उस से भी अधिक प्रभावशाली विस्फोटक तथा विनाशकारी तत्त्व भरे होते तो वे विधान-सभा के अधिकाश सदस्यो की जीवन-लीला को समाप्त कर सकते थे। हम यह भी कर सकते थे कि हम उन्हे सरकारी बॉक्स मे फेकते, जहाँ महत्त्वपूर्ण लोग बैठे थे और आखिरकार हम यह भी कर सकते थे कि उस समय अध्यक्ष-दीर्घा मे बैठे हुए सर जॉन साइमन पर चोट करते, जिस के दुर्भाग्यपूर्ण कमीशन को देश के सभी विवेकवान् लोग घृणा करते है, परन्तु हमारा प्रयोजन यह सब नही था और बमो का जिस प्रयोजन के लिए निर्माण किया गया था, उन्हो ने उस से अधिक काम नही किया। इस मे कोई चमत्कार नही था, हम ने जान-बूझ कर यह ध्येय निश्चित किया था कि सभी लोगो का जीवन सुरक्षित रहे।

इस के पश्चात् हम ने अपने कार्य के परिणामस्वरूप दण्ड प्राप्त करने के लिए स्वेच्छा से अपने-आप को प्रस्तुत कर दिया और साम्राज्यवादी शोषको को यह बता दिया कि वे व्यक्तियो को कुचल सकते है, विचारो की हत्या नही कर सकते। दो महत्त्वहीन इकाइयो को कुचल देने से राष्ट्र नही कुचला जा सकता। हम इस ऐतिहासिक निष्कर्ष पर बल देना चाहते है कि फ्रान्स मे लैटर्स डे कैटचेट तथा बैस्टाइल्स की घटनाओ से क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचला नही जा सका। फाँसी की रस्सी और साइबेरिया मे बिछायी गयी माइन् रूसी क्रान्ति की ज्वाला को नही बुझा सकी इसी प्रकार यह भी असम्भव है कि अध्यादेश और सुरक्षा विधेयक भारतीय स्वाधीनत की लपटो को बुझा सकें। षड्यन्त्रो का भेद खोजने, उन की जोरदार शब्दो मे निन्द करने तथा महत्तर आदर्शो का स्वप्न देखने वाले सभी नौजवानो को फाँसी के तख्ते प चढा देने से क्रान्ति की गति अवरुद्ध नही की जा सकती। यदि हमारी इस चेतावनी क उपेक्षा नही की गयी तो यह जीवन की हानि और व्यापक उत्पीडन को रोकने मे सहा यक सिद्ध हो सकती है। यह चेतावनी देने का भार हम ने स्वय अपने कन्धो पर लिय और कर्त्तव्य का पालन किया।"

निम्न न्यायालय मे भगत सिह से पूछा गया था कि क्रान्ति से वे क्या समझते है प्रश्न के उत्तर मे उन्होने कहा था कि—"क्रान्ति मे घातक सघर्षो का अनिवार्य स्था नही है, न उस मे व्यक्तिगत रूप से प्रतिशोध लेने की ही गुजायश है। क्रान्ति बम औ पिस्तौल की सस्कृति नही है। क्रान्ति मे हमारा प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आध रित वर्तमान व्यवस्था मे परिवर्तन होना चाहिए। उत्पादक अथवा श्रमिक समाज अत्यन्त आवश्यक तत्त्व है तथापि शोपक लोग उन्हे श्रम के फलो और मौलिक अधि कारो से वंचित कर देते है। एक ओर सब के लिए अन्न उगाने वाले कृपक सपरिवा

भूखों मर रहे हैं। सारी दुनिया के बाजारों में कपड़े की पूर्ति करने वाले बुनकर अपने और अपने बच्चों के तन को ढांकने के लिए पूरे कपड़े प्राप्त नहीं कर पाते। भवन निर्माण, लोहारी और बढ़ईगिरी के कामों में लगे लोग शानदार महलों का निर्माण करके भी गन्दी बस्तियों में रहते और मर जाते हैं। दूसरी ओर पूंजीपति शोषक और समाज पर घुन की तरह जीने वाले लोग अपनी सनक पूरी करने के लिए करोड़ों रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। यह भयंकर विषमताएं और विकास के अवसरों की कृत्रिम समानताएं समाज को अराजकता की ओर ले जा रही हैं। यह परिस्थिति सदा तक नहीं रह सकती तथा यह स्पष्ट है कि वर्तमान समाज-व्यवस्था एक ज्वालामुखी के मुख पर बैठी आनन्द मना रही है और शोषकों के अबोध बच्चों की भांति हम एक खतरनाक चट्टान के किनारे पर खड़े हैं। यदि सभ्यता के ढांचे को समय रहते नहीं बचाया गया तो यह शीघ्र ध्वस्त हो जायगा। अतः क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस आवश्यकता को अनुभव करते हैं उनका यह कर्तव्य है कि वे समाज का समाजवादी आधारों पर पुनर्गठन करें। जब तक यह नहीं होता और एक मनुष्य के द्वारा दूसरे मनुष्य का तथा एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण होता रहेगा, जिसे साम्राज्यवाद कहा जा सकता है तब तक उससे उत्पन्न होने वाली पीड़ाओं और अपमानों से मानव जाति को नहीं बचाया जा सकता एवं युद्ध मिटाने तथा सार्वभौमिक शान्ति के युग का सूत्रपात करने के बारे में की जाने वाली समस्त चर्चाएं कोरा पाखण्ड है। क्रान्ति से हमारा प्रयोजन अन्ततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना है जिसको इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पड़े और जिसमें सर्वहारा वर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाय। इसका परिणाम यह होगा कि विश्वसंघ मानव-जाति को पूंजीवाद के बन्धनों तथा युद्ध से उत्पन्न होने वाली बरबादी और मुसीबतों से बचा सकेगा।

हमारा आदर्श यह है और इस आदर्श से प्रेरणा ग्रहण करके हमने एक समुचित और काफी जोरदार चेतावनी दी है। यदि इसकी भी उपेक्षा कर दी जाती है तथा वर्तमान शासन-व्यवस्था नवोदित प्राकृतिक शक्तियों के मार्ग को अवरुद्ध करने का क्रम जारी रखती है तो एक भीषण संघर्ष उत्पन्न होना निश्चित है जिसके परिणामस्वरूप समस्त बाधक तत्वों को उठा कर फेंक दिया जायगा तथा सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य होगा जिससे क्रान्ति के लक्ष्य की उपलब्धि हो सके। क्रान्ति मानव जाति का जन्मजात अधिकार है। स्वतन्त्रता सभी मनुष्यों का एक ऐसा जन्मसिद्ध अधिकार है जिसे किसी भी स्थिति में छीना नहीं जा सकता। श्रमिक वर्ग समाज का वास्तविक आधार है। लोकप्रभुता की स्थापना श्रमिकों का अंतिम ध्येय है। इन आदर्शों तथा इस आस्था के लिए हम उन सब कष्टों का स्वागत करेंगे जो हमें न्यायालय द्वारा दिये जायेंगे। क्रान्ति की इस वेदी पर हम अपना यौवन धूपबत्ती की भांति जलाने के लिए सन्नद्ध हुए हैं। इतने महान् ध्येय के लिए कोई भी बलिदान बड़ा नहीं माना जा

सकता। हम क्रान्ति के उत्कर्ष की सन्तोषपूर्वक प्रतीक्षा करेंगे। इन्कलाब जिन्दाबाद!"

इस वक्तव्य का ऐतिहासिक महत्त्व है। इस महत्त्व को समझने के लिए विस्तृत विवेचन की आवश्यकता है। उस के लिए यहाँ अवसर नही है, इस लिए कुछ सकेत ही प्रस्तुत कर रही हूँ। इस शताब्दी के आरम्भ मे स्वामी विवेकानन्द ने भारत की गुलामी और पीडित मानव-आकाक्षा को अमेरिका के साथ जोडा था। अमेरिका उस समय संसार मे प्रगति का सर्वोत्तम प्रतीक था और भारत के जीवन मे अगति का अँधेरा भरा हुआ था। स्वामी विवेकानन्द भारत के लिए ऐतिहासिक उपहार है कि इस स्थिति मे भी उन्होने भारत को एक दीन भिखारी के रूप मे परिचित नही कराया। वरावरी के स्तर पर ही रखा। उन्हो ने कहा—अमेरिका वैभव और विज्ञान मे भारत को वहुत-कुछ दे सकता है, पर भारत भी अपने अध्यात्म और दर्शन के रूप मे अमेरिका को वहुत-कुछ देने की स्थिति में है। इस प्रकार भारत की आकाक्षा का दृष्टि-विन्दु अमेरिकी समाज वना।

इस के वाद आयरलैण्ड स्वतन्त्रता का आन्दोलन उस के लिए प्रेरक हुआ, पर १९१७ की रूसी क्रान्ति का सारे संसार के साथ भारत पर भी प्रभाव पडा। उस क्रान्ति को भारत ने पूरी तरह तुरन्त ही नही समझ लिया, पर यह सूत्र हमारे जागरण का मूलसूत्र जरूर वन गया कि रूस मे शहनशाहियत खत्म कर दी गयी है और उस शहनशाहियत को अपने कन्धो पर ढोने वाले जमीदार-जैसे वर्ग भी समाप्त कर दिये गये है। अमेरिका की प्रेरणा प्रजातन्त्र की थी, रूस की प्रेरणा समानता की थी, नये जीवन की ओर वढते भारत ने इन दोनो को ही ग्रहण किया।

सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास मे इस प्रभाव का पहला स्पर्श हमे श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल के विचारो मे मिलता है। उन्हो ने उत्तर भारत के अपने क्रान्तिकारी दल का नाम असहयोग आन्दोलन की असफलता के वाद ही वदला 'द हिन्दुस्तान रिपव्लिकन एसोशियेशन' और उस के उद्देश्य मे कहा—"सार्वजनिक मताधिकार की नीव पर इस प्रजातन्त्र का संगठन होगा और इस मे उन सव व्यवस्थाओ का अन्त कर दिया जायेगा, जिन से एक मनुष्य के द्वारा दूसरे के शोषण का अवसर मिल सकता है।" यह सव सामग्री जनता तो दूर दल के सदस्यो तक भी नही पहुँच सकी और पुलिस के हाथ पड गयी।

सरदार सन्तोख सिंह और सरदार गुरुमुख सिंह ने जो सगठन वनाया, उस का आधार शुद्ध रूप मे कम्युनिज्म था, पर यह संगठन शुद्ध सिख संगठन था। इस प्रकार अमेरिका और रूस की प्रगति की किरणें इस देश मे आयी, पर वह किरणे धूप-छाँही थी। भगत सिंह के इस वक्तव्य ने प्रगति की इन किरणों को साफ-साफ एक नयी समाज-व्यवस्था के संकल्प के रूप मे देश के सामने रखा और इसी कारण वे इस देश मे समाजवाद के उद्घोषक माने गये। यह वक्तव्य जव पत्रो मे छपा और यह छपना खुद अपने मे भगत

हाईकोर्ट के कटघरे में

असेम्वली वम-काण्ड मे वचाव का प्रयत्न विलकुल नही किया गया था, फिर भी हाईकोर्ट मे सेशन जज के फैसले की अपील कर दी गयी। यह सव-कुछ योजनापूर्वक हो रहा था। उस योजना का सार था—गुप्त सगस्त्र प्रयत्नो को सार्वजनिक क्रान्ति आन्दोलन का रूप देना और इस प्रकार उसे जनता के मानस से जोडना।

जस्टिस फोर्ड और जस्टिस एडीसन के सामने हाईकोर्ट (लाहौर) मे अपील पेश हुई। भगत सिह ने दिल्ली की अदालत मे वयान देने मे जिस तेजस्विता का परिचय दिया था यहाँ उस मे चार-चाँद लग गये। वहस, प्रश्न-उत्तर और व्यवहार सव मे अद्भुत सजीवता थी। नीचे की अदालत मे उन्हो ने अपने उद्देश्य को कार्य की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया था, पर सेशन जज ने उद्देश्य को महत्त्व न दे कर कार्य को ही महत्त्व दिया था। इस का स्पष्टीकरण करते हुए जिस तेजस्विता के साथ भगत सिंह ने अपना दूसरा वयान दिया, उस पर कोई भी कानून-विशारद गर्व कर सकता है। वह वयान इस प्रकार है—

"माई लॉर्ड,

हम न वकील है, न अँगरेजी के विशेषज्ञ और न हमारे पास डिग्रियाँ ही है, इस लिए हम से शानदार भाषणो की आशा न की जाये। हमारी प्रार्थना है कि हमारे वयान की भाषा-सम्बन्धी त्रुटियो पर ध्यान न देते हुए उस के वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयत्न किया जाये। दूसरे तमाम मुद्दो (प्वाइण्ट्स) को अपने वकीलो पर छोडते हुए मै स्वय एक मुद्दे पर अपने विचार प्रकट करूँगा। यह मुद्दा इस मुकदमे मे वहुत महत्त्व-पूर्ण है। मुद्दा यह है कि हमारी नीयत क्या थी और हम किस हद तक अपराधी है।

यह वडा पेचीदा मामला है, इसलिए कोई व्यक्ति भी आप की सेवा मे विचारो के विकास की वह ऊँचाई प्रस्तुत नही कर सकता, जिस के प्रभाव मे हम एक खास ढग से सोचने और व्यवहार करने लगे थे। हम चाहते है कि इसे दृष्टि मे रखते हुए ही हमारी नीयत और अपराध का अनुमान लगाया जाये। प्रसिद्ध कानून-विशारद सालोमन के अनुसार किसी

भी व्यक्ति को उस के अपराधी उद्देश्य को जाने बिना उस समय तक सजा नहीं मिलनी चाहिए जब तक वे कानून विरोधी आचरण सिद्ध न हो।

सेशन जज की अदालत में हम ने जो लिखित बयान दिया था वह हमारे उद्देश्य की व्याख्या करता था और इस रूप में हमारी नीयत की व्याख्या करता था लेकिन सेशन जज महोदय ने कलम की एक ही नोक से यह कह कर कि आम तौर पर अपराध को व्यवहार में लाने वाली बात कानून के कार्य को प्रभावित नहीं करती और इस देश में कानूनी व्याख्याओं में कभी-कभार उद्देश्य और नीयत की चर्चा होती है—हमारी सब बातें बेकार कर दीं।

माई लार्ड, इन परिस्थितियों में सुयोग्य सेशन जज के लिए उचित था कि या तो अपराध का अनुमान परिणाम से लगाते या हमारे बयान की मदद से मनोवैज्ञानिक पहलू का फैसला करते, पर उन्होंने इन दोनों में से एक भी काम न किया।

पहली बात यह है कि असेम्बली में हम ने जो दो बम फेंके, उन से किसी भी व्यक्ति की शारीरिक या आर्थिक हानि नहीं हुई। इस दृष्टिकोण से जो हमें सजा दी गयी है, वह कठोरतम ही नहीं है, बदला लेने की भावना वाली भी है। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय, तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाये, उस के असली उद्देश्य का पता हो नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाय, तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय नहीं हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को नजरों में न रखने पर संसार के बड़े-बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नजर आयेंगे, सरकारी कर वसूल करने वाले अधिकारी चोर-जालसाज दिखाई देंगे और न्यायाधीशों पर भी कत्ल करने का अभियोग लगेगा। इस तरह तो समाज-व्यवस्था और सभ्यता, खून खराबा, चोरी और जालसाजी बन कर रह जायेगी। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाये तो किसी हुकूमत को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय करने को कहे? उद्देश्य की उपेक्षा की जाय, तो हर धर्म प्रचारक झूठ का प्रचारक दिखाई देगा और हरेक पैगम्बर पर अभियोग लगेगा कि उस ने करोड़ों भोले और अनजान लोगों को गुमराह किया। यदि उद्देश्य को भुला दिया जाय, तो हजरत ईसा मसीह गड़बड़ करने वाले, शांति भंग करने वाले और विद्रोह का प्रचार करने वाले दिखाई देंगे और कानून के शब्दों में वह खतरनाक व्यक्तित्व माने जायेंगे।

लेकिन हम उन की पूजा करते हैं। उन का हमारे दिलों में बड़ा आदर है, उन की मूर्ति हमारे दिलों में आध्यात्मिकता का स्पन्दन पैदा करती है। यह क्यों? यह इसलिए कि उन के प्रयत्नों का प्रेरक एक उच्च आदर्श का उद्देश्य था। उस युग के शासकों ने उन के उद्देश्य को नहीं पहचाना। उन्होंने उन के बाहरी व्यवहार को ही देखा। लेकिन उस समय से ले कर इस समय तक उन्नीस शताब्दियाँ बीत चुकी हैं। क्या हम ने तब से ले कर अब तक कोई तरक्की नहीं की? क्या हम वैसी गलतियाँ दोहरायेंगे। अगर ऐसा हो तो मानवता की कुर्बानियाँ, महान् शहीदों के प्रयत्न

बेकार रहे और आज भी हम उसी स्थान पर है, जहाँ आज से बीस शताब्दियाँ पहले थे।

कानूनी दृष्टि से उद्देश्य का प्रश्न खास महत्त्व रखता है। जनरल डायर का उदाहरण लीजिए, उन्हो ने गोली चलायी और सैकडो निरपराध और शस्त्रहीन व्यक्तियो को मार डाला, लेकिन फौजी अदालत ने उन्हे गोली का निशाना बनाने का हुक्म की जगह लाखो रुपये इनाम दिये। एक और उदाहरण पर ध्यान दीजिए—श्री खड्गबहादुर सिह ने, जो एक नौजवान गोरखा है, कलकत्ता मे एक अमीर मारवाडी को छुरे से मार डाला। यदि उद्देश्य को एक तरफ रख दिया जाये, तो खड्ग सिह को मौत की सजा मिलनी चाहिए थी, लेकिन उन्हे कुछ वर्षो की सजा दी गयी और अवधि से बहुत पहले ही मुक्त कर दिया गया। क्या कानून मे कोई दरार रखनी थी, जो उसे मौत की सजा न दी गयी? या उस के विरुद्ध हत्या का अभियोग सिद्ध न हुआ? उस ने हमारी ही तरह अपना अपराध स्वीकार किया था, लेकिन उस का जीवन बच गया और वह स्वतन्त्र है। मै पूछता हूँ उसे फाँसी की सजा क्यो न दी गयी? उस का कार्य नपा-तुला था। उस ने पेचीदा ढंग की तैयारी की थी। उद्देश्य की दृष्टि से उस का कार्य (ऐक्शन) हमारे कार्य की अपेक्षा ज्यादा घातक और संगीन था। उसे इस लिए बहुत ही नर्म सजा मिली, क्यो कि उस का मकसद नेक था। उस ने समाज को एक ऐसी जोक से छुटकारा दिलाया, जिस ने कई एक सुन्दर लडकियो का खून चूस लिया था। श्री खड्ग सिह को महज कानून की प्रतिष्ठा बचाये रखने के लिए कुछ वर्षो की सजा दी गयी। यह सिद्धान्तो का विरोध है, जो कि यह है—'कानून आदमियों के लिए है, आदमी कानून के लिए नही है।' इन दशाओ मे क्या कारण है कि हमे भी वे रियायते न दी जाये, जो श्री खड्गबहादुर को मिली थी, क्यों कि उसे नर्म सजा देते समय उस का उद्देश्य दृष्टि मे रखा गया था, अन्यथा कोई भी व्यक्ति जो किसी दूसरे को कत्ल करता है, फाँसी की सजा से नही बच सकता। क्या इस लिए हमे आम कानूनी अधिकार नही मिल रहा कि हमारा कार्य हुकूमत के विरुद्ध था या इस लिए कि इस कार्य का राजनीतिक महत्त्व है।

माई लॉर्ड, इन दशाओं मे मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाये कि जो हुकूमत इन कमीनी हरकतो मे आश्रय खोजती है, जो हुकूमत व्यक्ति के कुदरती अधिकार छीनती है, तो उसे जीवित रहने का कोई अधिकार प्राप्त नही। अगर यह कायम है तो आरजी तौर पर और हजारो बेगुनाहो का खून इस की गरदन पर है। यदि कानून उद्देश्य नही देखता, तो न्याय नही हो सकता और न ही स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है।

आटे मे संखिया (जहर) मिलाना जुर्म नही, बशर्ते कि इस का उद्देश्य चूहो को मारना हो, लेकिन यदि इस से किसी आदमी को मार दिया जाये, तो यह कत्ल का अपराध बन जाता है। लिहाजा ऐसे कानूनो पर, जो युक्ति (दलील) पर आधारित नही और न्याय के सिद्धान्त के विरुद्ध है, उन्हे समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे ही

न्याय विरोधी कानूनों के बदले श्रेष्ठ बौद्धिक लोगों ने बगावत के काम किये हैं।

हमारे मुकदमे के तथ्य बिल्कुल सादे हैं। 8 अप्रैल 1929 को हम ने सेण्ट्रल असेम्बली में दो बम फेंके। उन के धमाके से चन्द लोगों को खरोचें आयीं। चेम्बर में हंगामा हुआ, सैकड़ों दर्शक और सदस्य बाहर निकल गये। कुछ देर बाद खामोशी छा गयी। मैं और साथी बी० के० दत्त खामोशी के साथ दर्शक गैलरी में बैठे रहे और हम ने स्वयं अपने को प्रस्तुत किया कि हमें गिरफ्तार कर लिया जाय। हमें गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग लगाये और हत्या करने के अपराध में सजा दी गयी। लेकिन बमों से चार-पाँच आदमियों को मामूली-सा नुकसान पहुँचा और जिन्हों ने यह अपराध किया उन्हों ने बिना किसी किस्म के हस्तक्षेप के अपने आपको गिरफ्तारी के लिए पेश कर दिया। सेशन जज ने स्वीकार किया कि यदि हम भागना चाहते तो हम भागने में सफल हो सकते थे। हम ने अपना अपराध स्वीकार किया और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए बयान दिया। हमें सजा का भय नहीं है, लेकिन हम यह नहीं चाहते कि हमें गलत तौर पर समझा जाय। हमारे बयान से कुछ पैराग्राफ काट दिये गये हैं। यह वास्तविक स्थिति की दृष्टि से हानिकारक है।

समग्र रूप से हमारे वक्तव्य के अध्ययन से साफ प्रकट होता है कि हमारे दृष्टिकोण से हमारा देश एक नाजुक दौर से गुजर रहा है। इस दशा में काफी ऊँची आवाज में चेतावनी देने की जरूरत थी और हम ने अपने विचार के अनुसार चेतावनी दी है। सम्भव है कि हम गलती पर हों, हमारा सोचने का ढंग जज महोदय के सोचने के ढंग से भिन्न हो, लेकिन इस का अर्थ यह नहीं कि हमें अपने विचार प्रकट करने की स्वीकृति न दी जाय और गलत बातें हमारे साथ जोड़ी जायें।

इन्कलाब जिन्दाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद के सम्बन्ध में हम ने जो व्याख्या अपने बयान में दी है उसे उड़ा दिया गया है, हालाँकि यह हमारे उद्देश्य का खास भाग है। इन्कलाब जिन्दाबाद से हमारा वह उद्देश्य नहीं था जो आम तौर पर गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं लाते, बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी जिसे हम प्रकट करना चाहते थे। हमारे इन्कलाब का अर्थ पूँजीवाद और पूँजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अन्त करना है। मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया को समझे बिना किसी के सम्बन्ध में निर्णय देना उचित नहीं है। गलत बातें हमारे साथ जोड़ना साफ-साफ अन्याय है।

इस को चेतावनी देना बहुत आवश्यक था। बेचैनी रोज रोज बढ़ रही है। यदि उचित इलाज न किया गया तो रोग खतरनाक रूप ले लेगा। कोई भी मानवीय शक्ति इस की रोकथाम न कर सकेगी। अब हम ने इस तूफान का रुख बदलने के लिए यह कार्यवाही की। हम इतिहास के गम्भीर अध्येता हैं। हमारा विश्वास है कि यदि सत्ताधारी शक्तियाँ ठीक समय पर सही कार्यवाही करतीं, तो फ्रांस और रूस की खूनी

क्रान्तियाँ न बरस पडती । दुनिया की कई बडी-बडी हुकूमते विचारो के तूफान को रोकते हुए खून-खराबी के वातावरण मे डूब गयी, सत्ताधारी लोग परिस्थितियो के प्रवाह को बदल सकते हैं । हम पहली चेतावनी देना चाहते थे और यदि हम कुछ व्यक्तियो की हत्या करने के इच्छुक होते, तो हम अपने मुख्य उद्देश्य मे असफल हो जाते ।

माई लार्ड, इस नीयत (भावना) और उद्देश्य को दृष्टि मे रखते हुए हम ने कार्यवाही की और इस कार्यवाही के परिणाम हमारे बयान का समर्थन करते हैं । एक और नुक्ता (प्वाइण्ट) स्पष्ट करना आवश्यक है, यदि हमे बमो की ताकत के सम्बन्ध मे कोई ज्ञान न होता, तो हम पण्डित मोतीलाल नेहरू, श्री केसकर, श्री जयकर, श्री जिन्ना-जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय व्यक्तित्वो की उपस्थिति मे क्यो बम फेंकते ? हम नेताओ के जीवन को किस तरह खतरे मे डाल सकते थे ? हम पागल तो नही हैं और अगर पागल होते, तो जेल मे बन्द करने के बजाय हमे पागलखाने मे बन्द किया जाता । बमो के सम्बन्ध मे हमे निश्चित जानकारी थी । उसी के कारण ऐसा साहस किया । जिन बेंचो पर लोग बैठे थे, उन पर बम फेकना कही आसान काम था, लेकिन खाली जगहो पर बम फेकना निहायत मुश्किल काम था । अगर बम फेंकने वाले सही दिमाग के न होते, या वे परेशान (असन्तुलित) होते, तो बम खाली जगह की बजाय बेंचो पर गिरते, मै तो कहूँगा कि कि खाली जगह के चुनाव के लिए जो हिम्मत हम ने दिखाई, उस के लिए हमे इनाम मिलना चाहिए । इन हालतो मे माई लॉर्ड, हम सोचते हे हमे ठीक तरह समझा नही गया । आप की सेवा मे हम सजाओ की कमी कराने नही आये, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए आये हैं । हम तो चाहते है कि न तो हम से अनुचित व्यवहार किया जाये और नही हमारे सम्बन्ध मे अनुचित राय दी जाये । सजा का सवाल हमारे लिये गौण है ।

ससार के इतिहास की बात मै नही जानती, हमारे देश के विशिष्ट मुकदमो के इतिहास मे यह बयान अपनी जगह अद्भुत है, अनुपम है । हमारे नये युग के राजनैतिक इतिहास मे पहला बयान १८५७ की सशस्त्र क्रान्ति के बाद बादशाह बहादुरशाह जफर ने दिया था । उस मे अपने निर्दोष होने की बात नम्र शब्दावली मे कही गयी थी । जीवन की थकान और निराशा से भरा था यह बयान । इस के बाद लोकमान्य तिलक का बयान आता है । इस मे विद्वत्ता है, व्यक्तित्व है, राजनैतिक प्रौढता है, और वकालत है । इस के बाद मौलाना अबुलकलाम आजाद का बयान है, इस मे विद्वत्ता है, व्यक्तित्व है, राजनैतिक चैतन्य है और आस्था है । इस के बाद महात्मा गान्धी का बयान है—जिस मे सन्तुलन है, शालीनता है, स्वीकृति है । इस के बाद भगत सिंह का यह बयान है । सेशन जज की अदालत मे और हाईकोर्ट मे उन्हो ने जो बयान दिये हैं, मैं उन्हे एक ही बयान के दो भाग मानती हूँ । हम यह भी कह सकते है कि हाईकोर्ट का बयान सेशन जज के सामने दिये बयान का स्पष्टीकरण या व्याख्या है । यह बयान भगत सिंह के विराट् व्यक्तित्व का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते है और उन के जीवन की

विचिन्तनता, अध्ययनशीलता स्मरण-शक्ति, बहुश्रुत-वृत्ति तर्क-शक्ति ओजस्विता निर्भयता मृत्यु के प्रति निर्लिप्तता क्रान्ति मानसिकता स्पष्ट दृष्टि आदि का ऐसा समग्र चित्र प्रस्तुत करता है कि हम उन्हें एक ही स्थान में पगनया पा लेते हैं। असल में यह नयी पीढ़ियों के नाम उन की वसीयत है और इस रूप में राष्ट्र की कीमती धरोहर है।

बयान महत्त्वपूर्ण था। महत्त्वपूर्ण आत्मा का था पर यह महत्त्वपूर्ण आत्मा एक गुलाम देश का निवासी था और उस की बात एक गुलाम की बात थी। इस लिए सत्ता के मद में अंग्रेजों ने उसे स्वीकार नहीं किया और सेशन जज के फैसले को बहाल रखते हुए १३ जनवरी १९३० को भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को आजन्म कारावास दण्ड सुना दिया।

भूख-हड़ताल की अग्नि-शय्या पर

असेम्बली बम-काण्ड का जो मुकदमा दिल्ली मे चला, उस मे भगत सिंह और बटुकेश्वरदत्त को युरॅपियन क्लास मे रखा गया था और उन के साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया गया था। एक तो यह घटना ही निराली थी। दूसरे उस घटना से भगत सिंह का नाम अन्तर्राष्ट्रीय हो गया था, पर क्या भगत सिंह कोई व्यक्ति थे जो व्यक्तिगत दृष्टिकोण से जीवन के प्रश्नो पर विचार करते। व्यक्ति की सब से बडी आकांक्षा जीवित रहने की है, पर भगत सिंह तो मृत्यु की साधना कर रहे थे। व्यक्ति की दूसरी सब से बडी आकांक्षा है आराम से रहने की, पर भगत सिंह ने तो अपनी जीवन-सेज पर अपने हाथो काँटे बिछाये थे। वे व्यक्ति कहाँ थे। वे तो समाज-जीवी, समाज-दर्शी, समाज-निर्माता महापुरुष थे, जो समाजमय हो कर जिया करते है। इस लिए युरॅपियन क्लास मे आराम से रहते हुए भी उन्हो ने इस मुकदमे के तुरन्त बाद भूख-हडताल की अग्नि-शय्या पर सोने का, प्रह्लाद की तरह अग्नि के स्तम्भ से लिपटने का निश्चय किया तो क्या आश्चर्य।

भूख-हडताल के निर्णय की पृष्ठभूमि क्या थी? यह गम्भीर प्रश्न है कि उन के मन मे इस भयकर निश्चय का जन्म कैसे हुआ? कही कोई विशेप उल्लेख नही मिलता। ऐसी स्थिति मे मन मे ही मन मे उतरना पडता है। स्थूल प्रमाण जहाँ काम नही करते, वहाँ सूक्ष्म अनुमान ही इतिहास-लेखक और जीवन-चिन्तक की गति है। वे अपनी मृत्यु को महँगी और भारी बनाने की योजना को ले कर चल रहे थे, यह स्पष्ट है। इस भारी-महँगी मृत्यु से वे अंगरेजी हुकूमत को, भारत की गुलामी को खोल-खोल करना चाहते थे, यह भी स्पष्ट है। अँगरेजी हुकूमत की और भारत की गुलामी का सब से कडवा और कुरूप प्रदर्शन जेलों मे होता है, यह वे १९१९ जलियाँवाला काण्ड के मुकदमो मे पढ चुके थे। लाला लालचन्द फलक, डॉ० सत्यपाल चौधरी, रामभजदत्त, डॉ० सैफुद्दीन किचलू, दीवान मगलसेन, लाला हरकिशन लाल और अच्युत राव कोल्हटकर—जैसे लोगों के जेल की नरक यातनाओं के सम्बन्ध मे संस्मरण पढ चुके थे।

फिर वे स्वयं भुक्त-भोगी भी तो थे। दशहरा बम-काण्ड के नाम

पर जब १९२७ म भगत सिह को गिरफ्तार कर पन्द्रह दिन तक माजा कम्पा की तरह बदनाम लाहौर किले में रखा गया तो कौन-सा अत्याचार ह जो उन पर नहीं हुआ कौन-सा मुसीबत ह जो उन पर नहीं टूटी। लगातार जिरह और प्रश्न नीन न देना घण्टा खड़ रखना और इन सब म भी भयकर यह कि तारकोल की तारग महू पर बाँध देना नीन म उस भरना जिस स उस की गरम हो साँस म मर जाय और शरीर क तार-तार को परेशान कर द। क्या नहा सहा था उन्हा न। और क्रान्तिकारी की तो भावना नम्बर एक यह होती ह कि अगली पीढ़ी को यह सब न सहना पड़, जो हम ने सहा ह यह भावना ही तो नया समाज-व्यवस्था को जन्म देती ह।

अण्डमान क किले म भारत क क्रान्तिकारियों के साथ जो रोमहर्षक अत्याचार हुए थे उन की कहानियाँ भी भगत सिह पढ चुक थ और नानाजी वालिजी की कलमा म अपन प्रोफेसर भाइ परमानन्द जी म स्वय थाम कर सुन चुक थ। फिर व यह भी जानते थे कि जेल ही वे कारखान ह जो क्रान्तिकारी मकसदों को खराब करने क लिए मुखबिर—(सरकारी गवाह) तयार करता ह। भगत सिह यह कस सह सकत थ कि इन कारखानों को विमनिया घमण्ड के साथ धुआँ फेंककर साफ आकाश को गन्दा करता रह और वे उस घमण्ड को गरम न मगाए। सोचती हूँ इन्हा सब पृष्ठभूमियों म दिल्ली जल छोड़ने स पहले ही भगत सिह ने भूख-हड़ताल का निश्चय कर लिया था और बटुकेश्वर दत्त एक समर्पित मित्र की तरह उन क साथ थ। निश्चय ही ६३ दिन जेल म अनशन कर शहीद होने वाले मक्स्विनी की वीरगाथा भी इन के लिए प्रेरक थी और अन्दमान में यज्ञोपवीत के लिए भूख-हड़ताल कर शहीद होन वाले पण्डित रामरक्षा की मार्मिक कहानी भी।

क्या इस भूख-हड़ताल का उद्देश्य कुछ दिन भूखे रह कर सरकार पर एक सस्ते क़िस्म का दबाव डालना था। नहीं इस का उद्देश्य था अपनी आहुति द कर जेल की दशा को बदलना। भूख हड़ताल करने क बाद भी जीवन बच सकता ह या सरकार उसे नष्ट होन से बचा सकती ह। भूख हड़ताल आरम्भ करत समय भगत सिह को इस का भान ही नहीं था। श्री सुखदव क नाम लिखे अपने पत्र म उन्हा न लिखा था—

बन्दी होने के पश्चात हमारी संस्था क राजनतिक बन्दियों की दशा अत्यत दयनीय थी। हम ने प्रयास आरम्भ कर दिया। म आप को पूरी गम्भीरता स बतलाता हू कि हम यह विश्वास था कि हम बहुत कम समय क भीतर ही मर जाएँगे। हम उपवास क दिनों में कृत्रिम रीति स भोजन (फोर्सफुल फीडिंग) दिय जान का न तो कोई अनुभव ही था न यह विचार ही हम सूझा था। हम तो मत्यु क लिए तयार थ।

८ सितम्बर को जब श्री बटुकेश्वर दत्त पहली बार हमार घर आय तो उन्हा न कहा था— १२ जून १९२९ को हम दोनों को—असेम्बली बम-काण्ड म आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। हम दोनों को दिल्ली स एक ही ट्रेन क अलग-अलग डिब्बों में ले जाया गया। मुझ लाहौर जल म और भगत सिह को मियाँवाली जेल म

रखा गया। रास्ते मे पुलिस का अँगरेज सार्जेण्ट हम से बहुत प्रसन्न रहा और लाहौर पहुँचने मे कुछ स्टेशन पहले ही वह सरदार को मेरे डिब्बे मे ले आया। मुझे इस की आशा तनिक भी न थी। हम दोनो मिले तो भगत सिह ने मुझे फिर यह बात याद दिलायी कि हमे जेल पहुँचते ही भूख-हडताल आरम्भ कर देनी है। इस प्रकार १४ जून १९२९ से हमारी भूख-हडताल आरम्भ हो गयी जो अक्तूबर १९२९ के प्रथम सप्ताह तक चली।"

मै ने उन से पूछा था—अलग-अलग जेलो मे रहते हुए आप के मन मे यह आशका नही आयी कि शायद आप के साथी ने भूख-हडताल समाप्त कर दी हो या जेल मे पहुँच कर आरम्भ ही न की हो।

उन का उत्तर था—"हमे एक-दूसरे पर अटूट विश्वास था। अविश्वास की भावना कभी मन मे नही आयी। जब मेरे सामने भोजन लाया जाता, तो मुझे ध्यान आता कि भगत सिह भूखा है और मै भोजन की ओर आँख उठा कर भी न देखता। बस यही हाल उन का भी था।"

हमारे परिवार मे एक और सस्मरण भी सुरक्षित है। जिस ट्रेन के दो डिब्बो मे बैठे भगत सिह और बटुकेश्वरदत्त दिल्ली मे लाहौर जा रहे थे, उसी ट्रेन के एक डिब्बे मे सरदार किशन सिह भी यात्रा कर रहे थे। वे बीच-बीच मे स्टेशनो पर उतर कर भगत सिह से मिल लेते थे। जब-जब मै ने यह बात सुनी है या मुझे याद आयी है, मेरे मन मे प्रश्न उठा है—कैसे पिता थे सरदार किशन सिह। उन्हो ने अपने को अपने महान् पुत्र का रक्षा-कवच बना लिया था। वे छाया की तरह हर समय उन के साथ थे। पुत्र का जीवन ही उन का जीवन था, पुत्र का सुख-दु ख ही उन का सुख-दु ख था। वे पुत्रमय हो कर जी रहे थे। भारत के क्रान्तिकारियो मे ऐसा प्रेमी-सहयोगी पिता क्या किसी और भी क्रान्तिकारी को मिला? मेरी स्मृतियाँ और अलमारियाँ इस प्रश्न पर मौन है और यह मौन मेरे मस्तक को बार-बार उस महान् ममतालु पिता के प्रति झुका देता है।

जब वे घर लौटे, तो उन मे पूछा गया—"आप ने भगत सिह को कुछ खिला-पिला भी दिया था।" उन का उत्तर था—"भूख-हडताल आरम्भ कर देने की वजह से उन्हो ने रास्ते मे कुछ नही खाया।" इस का अर्थ है कि जिस ऐतिहासिक भूख-हडताल की घोषणा १५ जून १९२९ को समाचार पत्रो मे छपी, वह दिल्ली से चलते समय ही आरम्भ हो चुकी थी। यह बात तो है ही कि भगत सिह के दिल्ली जेल मे रहते-रहते ही उन की माँगों की चर्चा पत्रो मे आ गयी थी। प्रहार और प्रचार के दोनों पक्ष भगत सिह में कितने पुष्ट और कितने परिपूर्ण थे।

१७ जून १९२९ को भगत सिह ने मियाँवली जेल मे यह पत्र लिखा—

सेवा में,

इंसपेक्टर जनरल जेल

पंजाब जेल्स, लाहौर

प्रिय महोदय

इस सचाई के बावजूद कि सांडर्स शूटिंग केस में गिरफ्तार दूसरे नौजवानों के साथ ही मुझ पर भी मुकद्दमा चलेगा, मुझे दिल्ली से मियांवाली बदल दिया गया है। उस केस की सुनवाई २६ जून १९२९ से शुरू होने वाली है। मैं यह समझने में सर्वथा असमर्थ रहा हूं कि मुझे यहां तबादला करने के पीछे क्या भावना काम कर रही है?

जो भी हो, न्याय की मांग है कि हरेक अभियुक्त—(अण्डर ट्रायल) को वे सब सुविधाएँ मिलनी चाहिए, जिन से वह अपने मुकद्दमे की तैयारी कर सके और मुकद्दमा लड़ सके। लेकिन मैं यहां रहते कैसे अपना वकील नियुक्त कर सकता हूं, क्योंकि यहां रहते हुए मुझे अपने पिता या दूसरे रिश्तेदारों से सम्पर्क रखना कठिन है। यह स्थान काफी अलग थलग है, रास्ता कठिन है और लाहौर से काफी दूर है।

मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे तुरन्त लाहौर सेण्ट्रल जेल में बदलने का आदेश दें, जिस से कि मुझे अपना केस लड़ने की तैयारी करने का उचित अवसर मिले। आशा है शीघ्र ध्यान दिया जायेगा।

आप का इत्यादि

भगत सिंह

आजन्म कैदी, मियांवाली जेल

१७-६-१९२९

बात में बल था, कानून उन की मांग का समर्थक था, इस लिए जून के अन्तिम सप्ताह में उन्हें लाहौर सेण्ट्रल जेल में बदल दिया गया। हालत यह थी कि उन्हें कोठरी तक पहुँचाने के लिए स्ट्रेचर का उपयोग करना पड़ा। १० जुलाई १९२९ को लाहौर के मजिस्ट्रेट श्री श्रीकृष्ण की अदालत में साण्डर्स हत्या केस आरम्भिक कार्यवाही के लिए शुरू हो गया।

जब भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को स्ट्रेचर पर अदालत में लाया गया तो दर्शकों में हाहाकार मच गया। देश भर के समाचार पत्र भूख-हड़ताल के समाचारों से भर गये—'रंग लायगी हमारी फाकामस्ती एक दिन।' सचमुच फाकामस्ती रंग लाने लगी। उसी दिन बोर्स्टल जेल के उन के साथी अभियुक्तों ने भी उन की सहानुभूति में अनशन आरम्भ करने की घोषणा मजिस्ट्रेट की अदालत में ही कर दी। यतीन्द्रनाथ दास चार दिन बाद भूख-हड़ताल में शामिल हुए।

१४ जुलाई १९२९ को भगत सिंह ने भारत सरकार के होम मेम्बर—(गृह सदस्य) को जो पत्र भेजा, उस में निम्नलिखित मांगें थीं—

१ राजनैतिक कैदी होने के नाते हमें अच्छा खाना दिया जाना चाहिए, इस लिए हमारे भोजन का स्तर युरॅपियन कैदियो-जैसा होना चाहिए। हम उसी तरह की ख़ुराक की माँग नही करते बल्कि ख़ुराक का स्तर वैसा चाहते है।

२ हमे मुशक्कत के नाम पर जेलो मे सम्मानहीन काम करने के लिए बाध्य नही किया जाना चाहिए।[1]

३ बिना किसी रोक-टोक के पूर्व स्वीकृत (जिन्हे जेल अधिकारी स्वीकृत कर लें) पुस्तकें और लिखने का सामान लेने की सुविधा मिलनी चाहिए।

४ कम से कम एक दैनिक पत्र हरेक राजनैतिक कैदी को मिलना चाहिए।

५ हरेक जेल मे राजनैतिक कैदियो का एक विशेष वार्ड होना चाहिए, जिस मे उन सभी आवश्यकताओ की पूर्ति की सुविधा होनी चाहिए, जो युरॅपियनो के लिए होती है। और एक जेल में रहने वाले सभी राजनैतिक कैदी उस वार्ड मे इकट्ठे रहने चाहिए।

६ स्नान के लिए सुविधाएँ मिलनी चाहिए।

७ अच्छे कपड़े मिलने चाहिए।

८ यू० पी० जेल-सुधार कॅमिटी मे श्री जगतनारायण और खान बहादुर हाफिज़ हिदायत हुसैन की इस सिफारिश को कि राजनैतिक कैदियो के साथ अच्छी क्लास के कैदियों-जैसा व्यवहार होना चाहिए, हम पर भी लागू किया जाये।

यह प्रार्थना-पत्र भेजने के दूसरे ही दिन पंजाब सरकार ने (भूख-हड़ताल शुरू होने के एक महीने बाद) स्वास्थ्य के आधार पर भोजन मे कुछ सुधार किये, पर वे इतने मामूली थे कि भगत सिंह ने उन पर विचार भी नही किया। उन की माँग का उन से या स्वास्थ्य से क्या सम्बन्ध था? अगले ही दिन सुधारो का यह आदेश सरकार ने पत्रो मे छपाया तो उस मे से मेडिकल ग्राउण्ड शब्द हटा दिये और बहुत अच्छा खाना पेश किया। भगत सिंह ने कहा—"ये सुधार सरकारी गज़ट मे छपें और सब राजनैतिक कैदियो के लिए स्थायी रूप मे हो तो हम इन पर विचार करेंगे।"

सरकार के लिए यह भूख-हड़ताल प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गयी। भगत सिंह का वजन ३० जुलाई १९२९ तक लगभग ५ पौण्ड प्रति सप्ताह के हिसाब से घटता रहा। बाद मे वजन ठहर गया था। भूख-हड़ताल आरम्भ करते समय उन का वजन १३३ पौण्ड था। यतीन्द्रनाथ दास को जब पहली बार बलपूर्वक नली से दूध दिया गया, तो वह साँस की नली मे पहुँच गया और वे बेहोश हो गये। असल मे उन्हो ने मरण के लिए ही अनशन किया था। वे एक भावुकतावादी तरुण थे, जब कि भगत सिंह यथार्थवादी। भगत सिंह संघर्ष कर रहे थे, यतीन्द्रनाथ दास जीवन का हवन कर रहे

---

१ दो तरह की कैद होती है एक सादी, दूसरी सख्त। सख्त कैद में कैदी को काम करना पड़ता है, सादी में नहीं। मूज कूटना बान बँटना, चक्की चलाना और कोल्हू में बैल की तरह जुड़ कर तेल निकालना आदि काम होते हैं।

थे। देश भर के समाचार पत्र भूख-हड़ताल की खबरों से युद्ध की खबरों की तरह भर रहे थे। नगर-नगर में जुलूसों जलसों का तांता बँध गया था। भगत सिंह अपने लक्ष्य में सफलता पा रहे थे जनता जाग उठी थी। मानसिक रूप से समस्त आन्दोलन के साथ आ खड़ी हुई थी उस की चेतना रोष का रूप ले रही थी। देश भर की दूसरी जेलों के अनेक राजनैतिक बंदियों ने भी उन की सहानुभूति में अनशन आरम्भ कर दिया था।

ये लोग अपनी जान से खेल रहे थे और सरकार इन से खेल रही थी। भूख हड़ताल में भोजन का त्याग होता है पर पानी लिया जाता है। सचाई यह है कि पानी लेना भूख-हड़ताल का आवश्यक अंग है। ये लोग भी पानी लेते थे पर जेल अधिकारियों ने पानी के घड़ों में दूध भर कर रख दिया जिस से ये लोग प्यास से विवश हो कर पानी की जगह दूध पी लें। इन लोगों ने इस का प्रतिवाद किया लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई। तब इन्होंने घड़े फोड़ने आरम्भ कर दिये। दूध का जो घड़ा जेल अधिकारी रखते ये लोग उसे ही फोड़ डालते। यह बड़ा कड़ा परीक्षा थी, पर इस में सफल हुए भूख हड़ताल करने वाले युवक ही। जेल अधिकारियों को हार माननी पड़ी और फिर कोठरियों में पानी रखवाया गया।

तब उन्होंने दूसरा दाव चला कि वे कोठरियों के आस-पास फल मिठाई आदि खाने की चीजें रख देते थे और स्वयं हट जाते थे। पहरे पर एक मामूली आदमी रहता था। उद्देश्य यह था कि यदि इन में से किसी एक में भी कमजोरी आ जाय तो ये लोग इन सभी को बदनाम करें और भूख-हड़ताल के समाप्त होने की घोषणा भी कर दें।

बलपूर्वक दूध देने का एक खुला उद्देश्य तो यह था ही कि भूख-हड़ताल करने वाले मृत्यु से बचे रहें पर दूसरा कूटनीतिक रूप यह भी था कि चार-पाँच दिन बाद बलपूर्वक पेट में दूध पहुँचने से भूख बहुत जोर से उभरती थी। जब भूख हड़ताल करने वाला दो सुने हुए सुखों के बीच आ जाता था। एक तरफ भूख की ज्वाला दूसरी तरफ खाने की चीजें। कितना कठिन है ऐसे में स्थिर रहना सन्तुलित रहना अडिग रहना। पुराणों में तपस्वियों का तप भंग करने के लिए इन्द्र के प्रलोभनों का वर्णन मिलता है। सोचती हूं क्या अंगरेजी सरकार के प्रलोभन इन्द्र के प्रलोभनों से कम आकर्षक थे?

ये कौन थे जो इन चुम्बकीय आकर्षणों के बीच सहज भाव से खड़े थे। श्री अजय घोष लिखते हैं कि किशोरीलाल ने तेज गरम पानी से अपना गला जला कर लाल मिर्चें खा ली थीं। इस से गला इतना खराब हो गया था कि नली अन्दर डालते ही उन्हें तेज खाँसी उठ जाती थी और डॉक्टर नली तुरन्त न निकाले तो मृत्यु हो सकती थी। और ये अजय घोष साहब।—उन्होंने ऐसा आविष्कार किया कि दुनिया के आविष्कारक मात खा गये। डॉक्टर और दूसरे लोग दूध पिला कर हटे कि इन्होंने पकड़ कर दो मक्खियाँ निगल लीं—सब दूध बाहर आ गया। इस तरह ये बार मौत से खेल रहे थे और अंगरेजी सरकार इन से खेल रही थी।

है। ये परिस्थितियाँ मानव-समाज की उन्नति मे गतिरोध का कारण वन जाती है। क्रान्ति की इस भावना से मनुष्य-जाति की आत्मा स्थायी तौर पर ओत-प्रोत रहनी चाहिए, जिस से कि रूढिवादी शक्तियाँ मानव-समाज की प्रगति की दौड मे बाधा डालने को सगठित न हो सकें। यह आवश्यक है कि पुरानी व्यवस्था सदैव वदलती रहे और वह नयी व्यवस्था के लिए स्थान रिक्त करती रहे, जिस से कि यह आदर्श व्यवस्था संसार को विगडने से रोक सके। यह है हमारा वह अभिप्राय जिस को हृदय मे रख कर हम 'इन्कलाव जिन्दावाद' का नारा ऊँचा करते है।"

अपनी कमजोरी और सरकारी अत्याचारो की शहजोरी से इस केश मे सरकारी गवाहो की एक पूरी टोली तैयार हो गयी थी। उन से जिरह करना और इस प्रकार उन की वातो का प्रचार कर क्रान्तिकारी वातावरण तैयार करना भगत सिह की प्रचार-योजना का ही एक अग था। इस योजना का चमत्कार सिद्ध हुए सरकारी गवाहो के वयान। पुलिस के वडे अफसरो ने अपनी पूरी कारीगरी से उन्हे इस तरह तैयार कराया था कि सरकार जनता से यह कह सके कि इन खूनी और सिर-फिरे लोगो ने उपद्रव मचाने की जो कोशिश की थी, उसी से सरकार को दमन करना पडा। भगत सिह ने इन वयानो का एक उपयोग तो यह किया कि नये क्रान्तिकारी इन से काम करना सीखे और दूसरा यह कि जनता यह जाने कि हमारे क्रान्तिकारी कितने साहसी है। यही नही कि समय पर वे किसी अँगरेज को गोली मार देते हैं, वल्कि उन के पास एक विशाल योजना और गम्भीर उद्देश्य है।

जव सरकारी गवाह फणीन्द्रनाथ घोप कटघरे मे आये और दल के रहस्य खोलने लगे, तो शिव वर्मा ने उन पर जिरह करने मे कमाल कर दिया। उन्हो ने इस तरह प्रश्न पूछे कि फणीन्द्र घोप धीरे-धीरे यह वताने के लिए विवश हो गये कि वम कैसे वनता है। अदालत की कार्यवाही तव तक प्रति दिन पत्रो मे छपा करती थी। इस प्रकार नयी पीढी के क्रान्तिकारियो को शिव वर्मा की कारीगरी से वम वनाने की तरकीव प्राप्त हो गयी।

इस प्रकार योजना का एक वहुत ही कूटनीतिक, पर वहुत ही सूक्ष्म पहलू था अदालत मे काकोरी-दिवस, लेनिन डे, पहली मई, लाजपत राय-दिवस आदि मनाना। पुराने क्रान्तिकारी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा की जर्मनी मे मृत्यु हो जाने पर भी अदालत मे शोक-सभा हुई और हिन्दुस्तान एसोसियेशन ऑव सेण्ट्रल युरॅप, वर्लिन के नाम ५ अप्रैल १९३० को निम्नलिखित समवेदना तार भेजा—

"प्लीज कन्वे प्रॉपर क्वार्टर्स आवर सिंसियर सारोज ऐट सैड डिमाइस ऑव कॉमरेड श्यामजी कृष्ण वर्मा वन ऑव द पायनियर्स सोशलिस्ट-रेवोल्यूश्नरीज मूवमेण्ट इन इण्डिया। हिज लाइफ लाग फाइट इन काज ऑव इण्डियाज इमेंसिपेशन इज ए नेशनल एसैट दैट वुड एवर इन्स्पायर वर्कर्स इन वैटल फॉर फ्रीडम।

लाहौर कॉन्स्पीरेसी केस
अण्डर ट्रायल्स"

इसी प्रकार हगरी म एक राजनैतिक कैदी के अनशन-हड़ताल में मरने पर भी शोक दिवस मनाया और इस प्रकार अपने राष्ट्रीय प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय स्रोतों से जोड़ दिया। इन अवसरों पर भगत सिंह और उन के साथी सन्देश देते थे और दिन मनाने का ऐसा ढंग अपनाते थे कि अदालत की कार्यवाही में इन्हें रकॉर्ड किया जाये। भगत सिंह अपनी चतुरता से सरकार को बेवकूफ बनाते जा रहे थे और सरकार अपनी चतुरता के नशे में बेवकूफ बनती जा रही थी। सरकार सोचती थी कि इन सन्देशों से इन लोगों का राजद्रोह सिद्ध होता है और फांसी देने की राह साफ हो रही है, पर भगत सिंह सोचते थे—इन से हमारा रूप जनता के सामने आता है कि हम उस के हैं उस के लिए ही जीवन दे रहे हैं। इन बयानों से सरकार मुकदमे को मजबूत करने का जो काम ले रही थी, उस की चिन्ता न भगत सिंह को था, न अधिकांश दूसरे साथियों को क्यों कि वे तो फाँसी पर झूलने के लिए ही घर से निकले थे।

श्रीमती सुभद्रा जोशी के इन शब्दों में इन वीरों के मानस का भी रेखा चित्र है और उस अदालत का भी—'अदालत में दोपहर के खाने के समय सम्बन्धियों को अभियुक्तों के साथ मिलने की अनुमति होती थी। निकट के एक कमरे में मिलने वालों को बैठा दिया जाता था। हम लोग मिल मिला कर कुछ ऐसा ढंग निकाल लेते थे कि जिस दिन मुझे सरदार भगत सिंह से मिलना होता था उस दिन उन के किसी सम्बन्धी को साथ ले लिया जाता था। उस समय खाने-पीने का सामान देने पर भी कोई प्रतिबन्ध नहीं था परन्तु नियम यह था कि वह सामान वहीं खाना होता था। हम प्रतिदिन एक दो ऐसी चीजें ले जाते थी, जो जेल में नहीं मिलती थी और जिन्हें सरदार और उन के साथी बहुत पसन्द करते थे। अनेक बार तो वे स्वयं ही बता दिया करते थे कि कल यह चीज लाना। दही-बड़े तो सब बड़े चाव से खाते थे। सरदार भगत सिंह को केक बहुत पसन्द था। सरदार को अपने हाथ से दूसरों को खिलाने का बहुत चाव था। एक दिन उन्हों ने मुझे केक का टुकड़ा खिलाने की बहुत कोशिश की, पर उस में अण्डा था इस लिए मैं न खा सकी। दोपहर के खाने के समय का यह डेढ़-दो घण्टा अच्छा-खासी दिल्लगी में बीत जाता था।

मृत्यु जिन के सिर पर अपने भयानक रूप में मँडरा रही थी काल-पानी का दण्ड जिन के भाग्य में लिखा जा चुका था उन की यह हँसी और अट्टहास भरी गूंज देखते ही बनती थी। भारतमाता के इन लाडलों का अन्तर्द्वन्द्व के कम्पन में अपना मृत्यु के साथ खिलवाड़ करते देख कर प्रत्येक व्यक्ति दाँतों-तले उँगली दबाने के लिए विवश हो जाता था। अदालत की ओर से उन की उपेक्षा और सरकार की ओर से उन की तरफदारी कुछ ऐसा था मानो उन के लिए कुछ हो ही न रहा हो। कचहरी व्यंग्य के रूप में सरदार भगत सिंह कोई ऐसा प्रश्न खड़ा किया करते थे या कोई ऐसा बढ़िया उलझन भरा प्रश्न उठा देते थे कि मजिस्ट्रेट भी चकरा जाता था।

पढ़ कर आश्चर्य होता है कि यह मौत का इतना आनन्द का वचन किया अदालत

के लंच का वर्णन है या किसी शानदार फिल्म के इण्टरवल का ? सच यह है कि विश्व के मुकदमों के इतिहास मे भगत सिंह के कामो ने लाहौर पड्यन्त्र केस को ऐसी ऊँचाई पर बैठा दिया है कि जहाँ तक दूसरा मुकदमा नही पहुँचता, न अपनी सरसता की दृष्टि से, न सजीवता की दृष्टि से, न सफलता की दृष्टि से। १९२४ से १९२९ तक खूनी साम्प्रदायिक दंगो का जाल रच कर राष्ट्रीयता के वातावरण को धुँधला करने के लिए अँगरेजो हुकूमत ने योजना-पूर्वक जो कीचड उछाली थी, साण्डर्स-वध, असेम्बली बम-काण्ड के द्वारा भगत सिंह ने उसे समेटा और इस मुकदमे के द्वारा धो कर फेंक दिया। राजनीति के सूर्य को जो पूर्ण ग्रहण लग गया था, वह उस से उभर आया और पूर्ण प्रकाश से चमक उठा। भगत सिह क्रान्तिवीर तो है ही, पर विश्व की अदालतो के इतिहास के भी हीरो है।

अदालत का कर्णधार न्यायाधीश होता है, पर इस अदालत के कर्णधार तो भगत सिंह थे। श्रीमती सुभद्रा जोशी के ही शब्दो मे—"न्यायालय के कमरे मे न्यायाधीश ज्यो ही कुरसी पर आ कर बैठते, वह राष्ट्रीय गीतों और नारो से गूँज उठता। चारों ओर सन्नाटा छा जाता, न्यायाधीश सिर झुकाये कुरसी पर मौन बैठे रहते, वकील एक-दम मौन हो, अपने स्थान से हिलते तक न थे। अर्दली, सिपाही और दूसरे सरकारी कर्मचारी भी सिर झुकाये खडे या बैठे रहते थे। अभियुक्तो के सम्बन्धियो पर एक विचित्र-सी गम्भीरता छा जाती थी। सरदार और उन के साथी अदालत पर पूरी तरह छा जाते थे। सारा कमरा ही बलिदान के रंग मे रँगे होने का दृश्य उपस्थित करता था।"

यह अदालत उन दिनो लाहोर की सब से दिलचस्प जगह थी। अदालत का मुख्य द्वार बिलकुल सडक पर था। कॉलेजो-स्कूलो के विद्यार्थी छुट्टी होते ही दौड कर वहाँ आ जाते थे और इस तरह अदालत के बाहर भी अच्छी-खासी भीड जुड जाती थी। भगत सिंह खूब जोर से बोलते थे कि आवाज बाहर तक पहुँचे। जब अभियुक्त भीतर कमरे मे गाते थे, तो बाहर खडे लोग भी गाने लगते थे। शहीदो के शहीद कवि श्री ओमप्रकाश की ये पक्तियाँ उन दिनो घर-घर गायी जाती थीं—

कभी वो दिन भी आयेगा कि जब आजाद हम होगे,
ये अपनी ही जमी होगी, यह अपना आस्माँ होगा !
शहीदो की चिताओ पर जुडेगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशाँ होगा !!

यो ही मुकदमे का मजाक चल रहा था कि एक दिन अचानक सीन बदल गया। सरकारी गवाह कटघरे मे आया, तो उस ने अभियुक्तो की तरफ देख कर मूँछे ऐंठी और व्यंग्य किया। अभियुक्त दहाड उठे—"शेम ! शेम !!"

प्रेमदत्त अभियुक्तो मे सब से छोटी उम्र के थे। उन्हो ने अपना जूता जयगोपाल पर फेंक मारा। मैजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों के हाथो मे हथकडी लगाने का हुक्म दिया।

नही जब वह झूठा मुकदमा उन के विरुद्ध सिद्ध नही हो सका तो गुरदासपुर में उन के विरुद्ध धारा १२४ ए में एक नया मुकदमा खड़ा कर दिया गया है।

मैं स्वयं पर समय के लिए वकील नही रख सकता, इस लिए मैं चाहता था कि मेरे आदमी अदालत में रहें लेकिन बिना कोई कारण बताये उन्हें स्वीकृति न दे कर लाला अमरदास एडवोकेट को जगह दे दी गयी है। इंसाफ के नाम पर खेले जाने वाले इस नाटक को हम हरगिज पसन्द नही करते क्योंकि इस से हमें अपनी सफाई पेश करने में कोई सुविधा या लाभ नहीं पहुँचता।

एक और बड़ी शिकायत हमें अखबार न मिलने की है। हवालाती (अण्डर ट्रायल) कैदियों से दण्ड प्राप्त कैदियों-जैसा व्यवहार नही किया जा सकता। इन को रोजाना कम से कम एक अखबार जरूर मिलना चाहिए। अंगरेजी न जानने वाले के लिए भी हम एक दैनिक चाहते हैं इस लिए विरोध के तौर पर हम 'ट्रिब्यून' भी वापस कर रहे हैं। इन्हीं कारणों से हम ने २९ जनवरी १९३० को अदालत में न जाने की घोषणा कर दी थी। इन असुविधाओं के दूर होते ही हमें अदालत में आने में कोई आपत्ति न होगी।" उन्हीं दिनों का एक सजीव दृश्य, क्रान्तिकारी काशीराम के शब्दों में—

"ठण्ड के दिन थे, दिसम्बर का महीना। लाहौर षड्यन्त्र-केस की कार्यवाही सण्ट्रल जेल के अन्दर चहारदीवारी के दक्षिण कोने की सीमा में एक बरक में हुआ करती थी। बरक बहुत लम्बी-चौड़ी थी। दीवार में एक बड़ा-सा फाटक था उसी में एक छोटी खिड़की-द्वारा दर्शकों के अन्दर आने-जाने का रास्ता था।

यथा समय मैं अदालत में दर्शकों के बीच जा कर खड़ा हो गया। भगत सिंह के सन्देश भेजने पर मैं यहाँ आया था। मेरे पहुँचते ही अभियुक्तों के कटघरे में हलचल-सी मच गयी। आँखों ने आँखों से ही नमस्ते की और कुशल-समाचार पूछा। सब साथी खिल उठे। भगत सिंह उस दिन मौज में थे जाने शहादत की मस्ती में दूर से ही बात दिखानी शुरू की। कटघरे में जोर का एक कहकहा लगा मजिस्ट्रेट और पुलिस अधिकारी चौंके। पूछा—'क्या मामला है?' सब अपनी धुन में, जवाब कौन देता? पुलिस चौकन्नी हो कर इस का कारण खोजने लगी इधर मेरा भी खुशी और हँसी से बुरा हाल था पर मैं न तो हँस सकता था और न उन लोगों के मजाक में हिस्सा ले सकता था बल्कि पुलिस की तेज निगाहों से बचने के लिए दर्शकों की भीड़ में छिपने की कोशिश कर रहा था।

बन्दियों के द्वारा इस प्रकार लगातार गड़बड़ करने के कारण अदालत की कार्यवाही का चलना असम्भव हो गया। थोड़ी देर के लिए अदालत स्थगित करनी पड़ी। बरक के पीछे कैम्प लगे थे। वहाँ पर बन्दियों से मिलने का भी प्रबन्ध था। मैं उधर ही जा पहुँचा। अजब दृश्य था। सब साथी परेड की मुद्रा में खड़े थे मानो फौजी जवान मैदान में किसी निरीक्षण की तैयारी में हों।

मैं सीधा भगत सिंह के पास पहुँचा। मेरे कुछ भी कहने से पहले ही भगत सिंह फौजी तरीके मे एक कदम आगे बढे, फौजी सैल्यूट मारा और हम बगलगीर हुए। भगत सिंह के हाथ में एक रसगुल्ला था, वह उस ने मेरे मुँह मे दे दिया। मैं रसगुल्ला खाने को हुआ, तो वह बोला—'अबे, सब नही, आधा।' मैं बोल तो सकता नहीं था और रसगुल्ला छोडना भी नही चाहता था, पर वह बार-बार कह रहा था—'अबे आधा ही।' उस की उँगलियाँ मेरे दाँतो के बीच कटी जा रही थी, पर हम दोनो ही अपनी-अपनी जिद पर अडे थे। आखिर हार कर मै ने उस की उँगलियाँ छोडी और आधे रसगुल्ले पर ही सन्तोष किया। आधा वह खुद खा गया। इस के बाद उसी फौजी तरीके से एक कदम पीछे हट कर लाइन मे खडा हो गया।

इसी प्रकार एक के बाद एक सभी साथी आगे बढे। सभी के हाथ मे खाने की कोई-न-कोई चीज थी। सैल्यूट, बगलगीर होना, फिर उसी तरह खाना। राजगुरु ने मुझे घेर लिया, लिपट गया। मुझे ऐसा लगा कि कुश्ती लडने पर उतारू है। बहुत खफा हो कर बोला—"तुम जो कुछ लाते हो जयदेव कपूर के वास्ते ही लाते हो। उसे शाल दिया, पेन दिया' और पता नही क्या-क्या बकता रहा। उस दिन वह बडे धडल्ले से अँगरेज़ी बोल रहा था। हम लोग साल-डेढ साल बाद मिले थे, खुशी मे सब-कुछ भूले हुए। रसगुल्ला (मिस्टर नियाज़ अहमद, पंजाब खुफिया पुलिस के मुख्य अधिकारी) कब से हमारे पास आ कर हमारी बाते सुन रहे थे, इस का हमे पता ही न लगा। मुझे पता लगा तब, जब रसगुल्ला महाशय मुझ से कहने लगे—'मालूम होता है आप राजगुरु को बाहर से ही जानते हैं।' मै ने कहा—'हो सकता है, जयदेव मेरा भाई है, यह उस से मिलने आते होगे। मै तो पहचान न सका, इन्हो ने ही पहचान लिया।'

नियाज़ अहमद ने जोश के साथ कहा—"आई विल पुट यू बिफोर द कोर्ट ऐज विटनेस ऐण्ड यू विल हैव टू टेल दैट राजगुरु नोज़ इंगलिश ऐण्ड हिन्दी—मैं तुम्हे कचहरी मे गवाह के तौर पर पेश करूँगा, यह बतलाने के लिए कि राजगुरु अँगरेजी और हिन्दी दोनो जानता है।" क्रोध से मेरी आँखें लाल हो उठी, यह देख कर नियाज़ अहमद सकपका गया। मै ने ज़रा तेज़ी मे ही कहा—'तुम किस से बातें कर रहे हो, दिमाग खराब हो गया है क्या? यू प्लीज गो अवे फ्रॉम हियर—तुम मेहरबानी कर के यहाँ से चले जाओ।' वह बेचारा चुपचाप वहाँ से चला गया।

■ ■

मरता क्या न करता जैसी हालत हो गयी थी पिछले छह महीनों में सरकार की। भूख-हड़ताल और यतीन्द्र नाथ के बलिदान ने उस के मुँह पर तार कोल पोत दिया था और मजिस्ट्रेट की अदालत में भगत सिंह की सूझ-बूझ ने उस कहीं का न छोड़ा था। खाज वाला कुत्ता जैसे मक्खियों से बचता फिरता है वैसी ही हालत सरकार की थी। वह किसी भी तरह अब इस मुकदमे से पीछा छुड़ाना चाहती थी।

१२ सितम्बर १९२९ को अँगरेजी सरकार ने उसी केन्द्रीय असेम्बली में एक बिल पेश किया, जिस में भगत सिंह ने ८ अप्रैल १९२९ को बम फेंके थे। बिल का भाव यह था कि यदि अभियुक्त अपने को अदालत में आने के अयोग्य बना लें, तो न्यायाधीशों को अधिकार होगा कि वे उन की अनुपस्थिति में भी अदालत का काम जारी रखेंगे। सरकार का चाव यह था कि अदालत में दुर्व्यवहार करने पर अभियुक्त अदालत में आना बन्द कर देंगे और इस प्रकार मुकदमा जल्दी समाप्त हो जायेगा।

इस बिल पर असेम्बली सभा में जो बहस हुई वह बहुत गरम थी। उस समय असेम्बली में विरोधी दल के नेता पण्डित मोतीलाल नेहरू थे। उन के साथियों में भी अनेक तेजस्वी वक्ता थे। जो सदस्य मुलायम थे वे भी इस बिल पर सरकार का साथ नहीं दे सकते थे क्योंकि भगत सिंह ने इस मुकदमे को देशव्यापी ख्याति दे दी थी। जनता पूरी तरह क्रान्तिकारियों के पक्ष में थी। इस लिए सरकार के पक्ष में जाने वाला कोई भी सदस्य अलोकप्रिय हुए बिना न रह सकता था। असेम्बली का वातावरण इतना विरोधी था कि सरकार ने चार दिन बाद ही १६ सितम्बर १९२९ को अपना बिल जनमत के लिए प्रसारित करना स्वीकार कर लिया। साथ ही सरकार ने यह भी कह दिया कि आवश्यकता हुई तो वह अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करेगी।

१ मई १९३० को गवर्नर जनरल लॉर्ड इरविन ने लाहौर षड्यन्त्र केस आर्डिनेन्स के नाम से एक विशेष आर्डर जारी किया। इस के अनुसार तीन जजों का स्पेशल ट्रिब्यूनल नियत किया गया। इस ट्रिब्यूनल को अधिकार दिया गया कि अभियुक्तों की अनुपस्थिति में सफाई के वकीलों

और सफाई के गवाहों के उपस्थित हुए विना और सरकारी गवाहो पर जिरह के अभाव मे भी वह मुकदमे का फैसला एक-तरफा कर सकता है। साफ-साफ वात यह कि मई १९२९ मे श्री हैरीसन की अध्यक्षता मे जलियाँवाला काण्ड के अभियुक्तो का फैसला करने के लिए जो फौजी ट्रिव्यूनल वनाया गया था, इसे उस से भी अधिक नादिरशाही अधिकार प्राप्त थे। हाँ, दो वातो मे दोनो ट्रिव्यूनल समान थे। पहली यह कि उस मे भी दो अँगरेज और एक मुसलमान जज थे और इस मे भी और वह भी मई महीने मे घोषित हुआ था और यह भी।

नया ट्रिव्यूनल पजाव हाईकोर्ट ने वनाया था और उस मे निम्नलिखित सदस्य थे —जस्टिस जे० कोल्डस्ट्रीम, प्रेसीडेण्ट, जस्टिस आगा हैदर, सदस्य, जस्टिस जी० सी० हिल्टन, सदस्य।

सर टेकचन्द वख्शी उन दिनो हाईकोर्ट के जस्टिस थे। उन्हो ने ट्रिव्यूनल की नियुक्ति के दूसरे ही दिन भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह से कहा था—"हम ने सरकार की जाढ मे आगा हैदर का जम्बूड अडा दिया है। निश्चिन्त रहो, अव वेटे को फाँसी नही हो सकती।" ५ मई १९३० को ट्रिव्यूनल की पहली वैठक हुई। मिस्टर एम० सी० एच० कार्डननोड सरकारी वकील थे।

भगत सिंह पर उस ट्रिव्यूनल की नियुक्ति का वहुत अच्छा असर पडा, जो उन की मृत्यु को जल्दी पास लाने के लिए वनाया गया था। उन्हो ने अपने साथियो से कहा कि हम ने मुकदमे मे जो रुख अख्त्यार किया और राजनैतिक दाँव चला, आर्डीनेन्स इस वात का सवूत है कि सरकार उस से परेशान हुई। इस प्रकार यह हमारी नैतिक विजय है। उन की खुशी का दूसरा आधार यह था कि इस आर्डीनेन्स से अँगरेजी सरकार के कानून का खोखलापन सिद्ध होता था। भगत सिंह की दृष्टि कितनी लक्ष्यवेधी थी, यह उन के इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है, पर उन का क्रान्तिकारी नेतृत्व यही नही रुका, इस से भी आगे वढ गया। उन्हो ने साफ-साफ कहा कि अव हमे शुद्ध और पूर्ण क्रान्तिकारी व्यवहार का परिचय देना चाहिए और अव अदालत से अपना सम्वन्ध विच्छेद कर लेना चाहिए। उन की दृष्टि थी कि अदालत से असहयोग कर के हम अँगरेजी हुकूमत के खिलाफ एक तरह से अविश्वास का प्रस्ताव पास करेंगे। उन की दृष्टि की गहराई इस वात को समझने-परखने मे थी। पहली जनवरी १९३० को कॉंग्रेस अपने लाहौर अधिवेशन मे पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास कर चुकी थी, २६ जनवरी १९३० को भारत के नगर-नगर और गाँव-गाँव में आजादी की प्रतिज्ञा गम्भीरता और जोश के साथ दोहरायी जा चुकी थी, १२ मार्च १९३० को गान्धी जी अपने ८१ चुने हुए साथियो के साथ दाण्डी मार्च आरम्भ कर उसे पूरा कर चुके थे, देश के हर नगर कस्बे और गाँव मे नमक कानून तोडा जा चुका था, तोडा जा रहा था या तोडे जाने की तैयारी हो रही थी और इस प्रकार भारत अपने इतिहास के सव से वडे, व्यवस्थित और गहरे खुले आन्दोलन मे उफन उठा था। इस समय ट्रिव्यूनल की अदालत का

बहिष्कार करना उस विराट जन-आंदोलन का बल देना भी था और उस से बल ग्रहण करना भी था।

सचाई यह कि इस समय भगत सिंह कोई व्यक्ति न रह थे। वे जनता के मानस का समझने परखने और बल देने वाले सहस्र बुद्धि, सहस्र चक्षु और सहस्र बाहु महापुरुष हो उठे थे। वे अब अपनी ही बुद्धि के वाहन न थे। व तो इस समय युग की आकांक्षा और प्रवृत्ति के दवी वाहन थे। धर्म के संत अनेक हुए, पर व तो इस समय अपने समय की क्रांति के युगसन्त हो गय थे।

कुछ साथी भगत सिंह से सहमत थे, पर कुछ उन के मत से असहमत थ। उन का दृष्टिकोण यह था कि हमें अदालत की कार्यवाही म हिस्सा लेना चाहिए और ठीक समय पर वैसा ही एक बयान इस अदालत में भी देना चाहिए जैसा कि भगत सिंह दिल्ली के सेशन जज की अदालत मे हाईकोर्ट म दे चुके है। भगत सिंह के य साथी वही कह रहे थ जो असेम्बली म बम फेंकने की योजना को पास करते समय केंद्रीय समिति म भगत सिंह ने कहा था। उस समय श्री चन्द्रशेखर आजाद तक न भगत सिंह का विरोध किया था और इस समय स्वय भगत सिंह वही बात कह रहे थे। क्या बात है यह? बात यही है कि भगत सिंह ने जिन परिस्थितियो म वह बात कही थी अपने प्रयत्नो से भगत सिंह उन परिस्थितियो को बहुत आगे खीच लाय थे और नयी परिस्थितियो म नये दृष्टिकोण स देख रहे थ। इस के विरुद्ध ये साथी अभी उन पुरानी परिस्थितियो के ही वातावरण में सांस ले रह थे और नयी परिस्थितियों को समझ न पा रहे थे। भगत सिंह अपने म स्पष्ट थे पर अधिनायकतावादी नही पूर्ण प्रजातन्त्री मानव थे। इसी भावना के अधीन व केंद्रीय समिति में उस दिन चुप रह गय थे, जिस दिन उन की जगह दूसरे साथियो का नाम असेम्बली म बम फेंकने के लिए चुना गया था और इसी भावना के अधीन उन्हो ने अदालत की कार्यवाही में भाग लेने की बात मान ली।

एक बात और भगत सिंह अपने से मतभेद रखने वाले साथियो की ईमानदारी में उतना ही विश्वास रखते थे, जितना उन के वे साथी इन की ईमानदारी में। मतभेद की रेखा बहुत सूक्ष्म थी। भगत सिंह राजनैतिक प्रभाव से नैतिक प्रभाव को अधिक महत्त्व दे रहे थे। उन के साथियो की राय था कि क्रांतिकारी पार्टी के पास कोई मंच नहीं है जहा वह अपना दृष्टिकोण जनता के सामने रखे। इस के विरुद्ध भगत सिंह का दृष्टिकोण यह था कि फांसी और कालेपानी की भयंकर सजाओं के सामने क्रांतिकारी युवको की निर्लिप्तता एक व्यापक नैतिक प्रभाव डालेगी और नयी पीढ़ी को एसी निर्भीकता देगी, जो बहुत महत्त्वपूर्ण होगी। नम्रता के साथ सोचती हू बाहर मैदान म गांधी जी देश की जनता में जेलो और लाठियों के प्रति निडरता का जो भाव पैदा कर रहे थे जेल के सीखचो म बैठे भगत सिंह कालेपानी की यातनाओ और फांसियों के प्रति वही निडरता भावी पीढ़ियों के प्रति बो रहे थे उगा रहे थे पनपा रहे थे।

५ मई १९३० को लाहौर षड्यन्त्र केस की कार्यवाही ट्रिब्यूनल के सामने आरम्भ हुई। अभी तक मुकदमा उस अदालत मे होता था जो सेण्ट्रल जेल के साथ ही थी और जिस मे जाने को जेल के भीतर से ही एक छोटा-सा द्वार था। भगत सिह एवं दत्त तो वहाँ थे ही, वोर्स्टल जेल के अभियुक्त (अण्डर-ट्रायल हवालाती) वही ले आये जाते थे। अब अदालत मैजिस्ट्रेट की नही, माननीय जस्टिसो की थी और जेल मे उन्हे बुलाना उन की शान के विरुद्ध था। इस लिए पुंच हाउस मे अदालत बनायी गयी और वही अभियुक्तो को लॉरी से लाने की व्यवस्था हुई। मै एक बार हरिद्वार गयी थी। तब कोई धार्मिक पर्व था। उस बस मे गाँव की स्त्रियाँ थी। वे सारे रास्ते गीत गाती और गंगा मैया की जय के नारे लगाती चली गयी। मुझे उस दिन ध्यान आया था—इसी तरह भगत सिह और उन के साथी भी जेल से कचहरी तक गीत गाते और नारे लगाते चले जाते रहे होगे। रास्ते मे लोग समय पर खडे हो जाते थे और गीत सुन कर रोमाचित होते थे, बलिदान का नशा अनुभव करते थे और उत्साहित होते थे। उस लॉरी के आगे-पीछे पुलिस की लॉरियाँ और मोटर साइकिलें होती थी, जैसे वायसराय कही जा रहे हो। बाहर नमक-सत्याग्रह का वातावरण पूरे जोर मे था। गुलामी के विरुद्ध हिंसा और अहिसा एक साथ, पर अपने-अपने ढग से लड़ रही थी, जैसे अँगरेजो से कह रही थी चाहे इसे चुनो, चाहे उसे, पर तुम्हे इस देश से जाना पडेगा और तुम न चुनो तो एक दिन हम दोनो मिल कर तुम्हे ऐसा धक्का देगी कि तुम जाओगे नही, भरभरा कर गिर पड़ोगे।

भगत सिह और उन के साथी देश के वीर और क्रान्ति के हीरो की शान से झूमते हुए अदालत मे आते, जैसे विश्वविद्यालय के सर्वोत्तम छात्र किसी भाषण-प्रतियोगिता के मच पर आ रहे हो। आते ही वे नारा लगाते—'इन्कलाब-जिन्दाबाद' और सगीत उभरता—'सुजलाम् सुफलाम्' या 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल मे है'। दर्शक स्तब्ध रह जाते, मुग्ध हो जाते—क्या मस्ती है, क्या चुस्ती है, क्या खुशी है और सब से बढ कर मृत्यु के प्रति बेफिक्री है! नीचे की अदालत मे हिन्दुस्तानी मैजिस्ट्रेट नारो और गानो के बीच शान्त बैठा रहता था। ट्रिब्यूनल मे पहले ही दिन अँगरेज न्यायाधीशो ने नारो पर नाक-मुँह बनाया और सरकारी वकील से खुद अँगरेजी मे अनुवाद कराया। इस वातावरण से वे काफी भडके, पर सयत रहे।

सरकार नीचे की अदालत से ही पाठ पढ चुकी थी कि कार्यवाही पत्रो मे छाप कर और जल्सो मे चर्चा का विषय बना कर उन लोगो को, जिन्हे वह हत्यारो और डाकुओ की तरह मार डालना चाहती है, शहीदो और राष्ट्रवीरो का रूप मिल रहा है, इस लिए अदालत की कार्यवाही के प्रकाशन पर उस ने पाबन्दी लगा दी थी, पर जनता के दिलो पर रावण, हिरण्यकशिपु और कस पाबन्दी नही लगा सके, तो अँगरेज़ क्या लगाता ?

अदालत मे वही अठारह अभियुक्त उपस्थित थे, जो मैजिस्ट्रेट की अदालत मे।

ट्रिब्यूनल ने एक-एक अभियुक्त से पूछा—"आप वकीलों के जरिये अपना मामला पेश करना चाहेंगे या सरकार के खर्चे पर यह किया जायगा। सुखदेव, आज्ञाराम, जयदेव, शिव वर्मा और गयाप्रसाद निगम ने इनकार कर दिया। किशोरीलाल, अजय घोष, और प्रमदत्त ने कहा— सरकार विजय सिंह—डिफेंस कमेटी से सलाह कर के उत्तर देंगे। गयाप्रसाद और जतीन्द्रनाथ सान्याल ने कोई जवाब नहीं दिया और बैठे रहे। कमलनाथ और कुन्दनलाल ने कहा— मैं इस अदालत में किसी भी प्रश्न का जवाब देने से इनकार करता हूँ। सुरेन्द्र पाण्डेय, विजयकुमार सिन्हा और राजगुरु ने कहा— मुझे कोई सहायता नहीं चाहिए। महावीर सिंह का उत्तर था— मैं इस अदालत की किसी कार्यवाही में हिस्सा नहीं लूंगा।

जब अदालत में अजय घोष की यह भावुकता जनित बात हो रही थी, भगत सिंह ने सन्तुलित भाव से कहा— मुझे एक वकील की जरूरत है, कानूनी सलाहकार के रूप में। न वे सरकारी गवाहों पर जिरह करेंगे, न अदालत में बहस करेंगे, सिर्फ अदालत की कार्यवाही को ध्यान से देखते रहेंगे। उन्होंने बैरिस्टर दुनीचन्द का नाम इस के लिए सुझाया। उन की बात ट्रिब्यूनल ने मान ली। राजगुरु ने नया अड़ंगा लगाया कि वह अदालत की भाषा नहीं समझता, इस लिए उसे मराठी का दुभाषिया मिलना चाहिए। सरकारी वकील ने नाक भौं सिकोड़ी पर अदालत ने तुरन्त दुभाषिये की बात मान ली।

यह सब था पर यह साफ दीख रहा था कि ट्रिब्यूनल के अँगरेज जस्टिस खास कर प्रेसीडेण्ट श्री कोल्डस्ट्रीम अभियुक्तों के नारों और गानों से परेशान हैं। शायद उन के जस्टिस होने का गर्व उन्हें भड़काता था, शायद उन का अपराजित भारतीय विद्रोह के प्रति क्रुद्ध होती थी। 'यह स्पेशल अदालत है या शालामार बाग?' कुछ इस तरह का भाव था उन के चेहरे पर। फिर भी वे संयत रहे और प्रमुख मुखबिर जयगोपाल का बयान चलता रहा। यह मुकदमा भारत के मुकदमों में ऐतिहासिक प्रभाव और महत्त्व की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुआ, पर वास्तव में यह सब से गन्दा और लज्जाजनक केस था, क्या कि पचीस अभियुक्तों में सात सरकारी गवाह बन गये थे—जयगोपाल, हंसराज वोहरा, ललित कुमार मुकर्जी, फणीन्द्रनाथ घोष, मनमोहन मुकर्जी, रामशरण दास और ब्रह्मदत्त। अन्त के दो बाद में बदल गये थे और उन्हों ने रहस्य नहीं खोले, बोले बहुत इधर उधर बता कर हां रह गये। इस केस की दूसरी घटिया बात यह थी कि यह (चार दिन को छोड़ कर) अभियुक्तों और उन के वकीलों की गैरहाजिरी में ही सुना गया था।

हिटलर महान ने अपने प्रमुख लेफ्टीनेण्टों को एक सूत्र दिया था— 'प्रथम श्रेणी की योजना घटिया तरह घटिया हाथों-द्वारा लागू होने पर द्वितीय श्रेणी की रह जाती है, पर तृतीय श्रेणी की योजना बढ़िया हाथों के द्वारा लागू होने पर द्वितीय श्रेणी की हो जाती है।" भगत सिंह की प्रतिभा का यह विस्मरणीय चमत्कार था कि इस

गन्दे केस मे उन्हों ने चमक और खुशबू पैदा कर दी थी। चालू भाषा मे मैं कहना चाहती हूँ—'वर्स्ट' को उन्हो ने 'बेस्ट' वना दिया था। सचाई यह कि अपनी दिग्विजयिनी क्रान्ति-प्रतिभा के कारण 'वर्स्ट' (सब से रद्दी) को 'बेस्ट' (सब मे श्रेष्ठ) वना कर ही तो वे 'भगत सिंह' से 'भगत सिंह महान्' हो गये थे।

अदालत बैठी, तो भगत सिंह ने अपने मीठे और कूक-भरे स्वर मे क्रान्ति-कवि ओमप्रकाश की ये पंक्तियाँ गायी—

"वतन की आवरू का पास देखें कौन करता है,
सुना है आज मकतल में हमारा इम्तहाँ होगा!
इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आस्माँ होगा!"

जब पहले छन्द का भाव प्रेसीडेण्ट कोल्डस्ट्रीम को पता चला, तो वे गुस्से से 'हॉट-स्टीम' हो गये। उन्हो ने ऊपर के स्तर पर सलाह की और अदालत आरम्भ होने के चार दिन वाद वे समय से पहले ही कुरसी पर आ बैठे। ज्यो ही अभियुक्त आये और उन्हो ने नारे लगाये, उन्हों ने उन्हें वन्द करने का आदेश दे दिया। भगत सिंह और उन के साथी ऐसे आदेश मानते तो क्रान्तिकारी क्यो होते? वे और भी जोश और जोर से नारे लगाने और गाने लगे। क्रान्ति-कवि ओमप्रकाश की ये पंक्तियाँ, जैसे जस्टिस कोल्डस्ट्रीम को जवाव देने के लिए ही लिखी गयी थी—

"अपनी किस्मत में अजल से ही सितम रखा था,
रंज रखा था, मुहिम रखी थी, गम रखा था,
किस को परवा थी और किस में ये दम रखा था,
हम ने जब वादि-ए-गुरबत में कदम रखा था,
दूर तक यादे वतन आयी थी समझाने को!"

जस्टिस कोल्डस्ट्रीम ने पुलिस को आदेश दिया कि वह इस गाने को वन्द करवाये। पुलिस अभियुक्तो के बीच कूद पडी और १२ मई १९३० को वही वात फिर दोहरायी गयी, जो स्पेशल मैजिस्ट्रेट की अदालत मे हुई थी। लातो, घूँसो और डण्डो से अभियुक्तो की पिटाई आरम्भ हो गयी। इस घटना से अदालती इतिहास के संग्रहालयों मे एक नया चेहरा स्थापित हो गया। यह जस्टिस आगा हैदर का चेहरा था। वे कुरसी से उठ कर वाहर जाने को तैयार हुए, जिस से न्यायालय मे हो रहे इस अन्यायपूर्ण कार्य को न देख सके। वे उठ जाते, तो ट्रिब्यूनल का मुँह काला हो जाता, इस लिए प्रेसीडेण्ट जस्टिस कोल्डस्ट्रीम ने उन से व्यक्तिगत प्रार्थना (पर्सनल रिक्वेस्ट) की कि वे बैठे रहे। तब जस्टिस आगा हैदर बैठे तो रहे, पर उन्हो ने अपना मुँह अखवार से ढँक लिया—"कम से कम खुदा से मैं यह तो कह सकूँगा कि हाँ अन्याय तो हुआ था, पर मैं ने उसे अपनी आँखो से नही देखा!"

तक भी जा पहुँची । अँगरेजी सरकार अजगर की कुण्डली मे फँस गयी थी । वायसराय ने नये आर्डिनेन्स के द्वारा पुराने ट्रिव्यूनल को तोड कर दूसरा ट्रिव्यूनल वनाया· जस्टिस जी० सी० हिल्टन, अध्यक्ष, जस्टिस अव्दुलकादिर, सदस्य; जस्टिस जे० के० टैप, सदस्य ।

वायसराय ने एक साथ दो शिकार किये कि जस्टिस आगा हैदर से पीछा छुडाया और उन के साथ ही कोल्डस्ट्रीम को भी हटा कर अभियुक्तो से कहा कि उन की वात मान ली गयी है, अव वे अदालत मे आना आरम्भ करें, पर भगत सिंह राजनैतिक चैतन्य मे अँगरेज राजनीतिज्ञो से पीछे नही थे। उन्हो ने कहा—"जो लोग हमारे अपमान के लिए जिम्मेदार है उन मे जस्टिस हिल्टन भी हैं । वे क्षमा-याचना करें, तो हम अदालत मे आये ।" अँगरेजी हुकूमत की नाक पहले ही काफी कट चुकी थी, इस लिए वह और न झुकी और एक-तरफा मुकदमे की कार्यवाही आरम्भ हो गयी ।

जिन दिनो भगत सिंह और उन के साथी जेल से अदालत में ले जाये जाते थे । यह योजना वनी कि भगत सिंह को पुलिस के हाथो से वलपूर्वक छीन लिया जाये । यह विशेष अदालत पुंच हाउस मे वैठती थी और क्रान्तिकारियो का मुख्य कार्यालय वहावल-पुर रोड पर स्थित था, जो जेल और अदालत के वीच मे पडता था। योजना वहुत विस्तृत थी, पर उस का मोटा रूप यह था कि वम फेंक कर पुलिस को अस्त-व्यस्त कर दिया जायेगा और भगत सिंह अपने साथियो मे आ मिलेंगे । यह योजना सफल न हो सकी । इस विषय मे क्रान्तिकारी क्षेत्रो मे कुछ वेहद कडवी किंवदन्तियाँ है, पर उन मे जाना मेरी सीमा के वाहर है ।

भगत सिंह को जव असेम्वली वम-काण्ड के वाद दिल्ली से पजाव ले जाया जाना था, तव भी सहारनपुर के आस-पास श्री शिव वर्मा के नेतृत्व मे उन्हे रेल से भगाने की योजना वनी थी, पर इस तरह की दूसरी योजनाओ की तरह वह भी असफल रही थी । सचाई शायद यह है कि ये योजनाएँ असाधारण उत्साह का फल थी और इन्हे सफल करने के लिए जितने मनुष्यो और साधनो की आवश्यकता होती है, वे क्रान्तिकारी दल के पास न थे । यह कार्यवाही लगभग तीन महीने चलती रही । पुलिस ने चार सौ से अधिक गवाह पेश किये । २६ अगस्त १९३० को अदालत का काम पूरा हो गया, पर कागजी कार्यवाही तो उसे करनी ही थी । दूसरे दिन अभियुक्तो को सन्देश भेजा गया कि आप अपने वचाव के लिए स्वयं या वकील के द्वारा जो कहना चाहते हैं, कह सकते हैं, या अपने गवाह पेश कर सकते हैं । अभियुक्तो मे से कोई भी इस के लिए तैयार नही था ।

ज्यों ही अभियुक्तो ने सफाई देने से इनकार किया, वे समझ गये थे कि ट्रिव्यूनल अव अपना फैसला देने ही वाला है । भगत सिंह के इन दोनो पत्रो में उस समय की परिस्थितियाँ और मन स्थितियाँ साफ झलकती है—

सण्ट्रल जेल लाहौर १६ सितम्बर १९३०

मादर अजीज कुल्बीर जी, सतश्री अकाल

आप को मालूम ही होगा कि बमूजिब अहकाम अफसराना बाला (ऊँचे अफसरों के आदेश से) मेरी मुलाकातें बन्द कर दी गयी हैं। अन्दरीन हालात फिल हाल मुलाकात न हो सकेगी और मेरा ख्याल है कि अनकरीब ही फैसला सुना दिया जायगा। इस के चन्द रोज बाद किसी दूसरी जेल को चालान हो जायगा। इस लिए किसी दिन जेल में आ कर मेरी कुतुब (किताबें) व पारचात व दीगर अशिया ले जाना। मैं बरतन कपड़े, कुतुब, दीगर कागजात जेल के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट के दफ्तर में भेज दूँगा, आ कर ले जाना। नामालूम मुझे बार बार यह ख्याल क्यों आ रहा है कि इसी हफ्ता के अन्दर अन्दर या ज्यादा से ज्यादा इसी माह में फैसला और चालान हो जायगा। इन हालात में अब तो किसी दूसरी जेल में मुलाकात हो तो हो, यहाँ तो उम्मीद नहीं है।

वकील को भेज सको तो भेजना। मैं प्रिवी कौंसिल के सिलसिले में एक जरूरी बात दरयाफ्त करना चाहता हूँ। वालिदा साहिबा को तसल्ली देना घबरायें नहीं।

आप का भाई

—भगत सिंह

सण्ट्रल जेल, लाहौर

२५ सितम्बर १९३०

मादर अजीज कुल्बीर सिंह जी, सतश्री अकाल

मुझे यह मालूम कर के कि एक दिन आप वालदा को साथ ले कर आये और मुलाकात की इजाजत न मिलने पर मायूस लौट गये। बड़ा अफसोस हुआ। आखिर तुम्हें तो मालूम हो चुका था कि जेल वाले मुलाकात की इजाजत नहीं देते। फिर वालदा को क्यों साथ लाये। मैं जानता हूँ वो इस वक्त सख्त घबरायी हुई हैं मगर इस घबराहट और परेशानी का क्या फायदा। नुकसान जरूरी है क्यों कि जब से मुझे मालूम हुआ कि वे बहुत रो रही हैं मुझे खुद भी बेचैनी हो रही है। घबराने की कोई बात नहीं और इस से कुछ हासिल भी नहीं। सब हौसला से हालात का मुकाबिला करें। आखिर दुनिया में दूसरे लोग भी तो हजारों मुसीबतों में फँसे हुए हैं और फिर अगर लगातार एक साल मुलाकातें कर तबियत सैर (तृप्त) नहीं हुई, तो दो चार मजीद-और मुलाकातों से भी तसल्ली न हो सकेगी। मेरा ख्याल है कि फैसला और चालान के बाद मुलाकातें खुल जायेंगी, लेकिन अगर फर्ज किया जाय कि फिर भी मुलाकात की इजाजत न मिले, तो घबराने का क्या फायदा ?

तुम्हारा-भगत सिंह

५ अक्तूबर १९३० की रात मे जेल मे अन्तिम डिनर हुआ। अभियुक्तो के साथ इस मे जेल के कुछ अफसर भी शामिल हुए और सब ने एक-दूसरे से विदाई ली। अफसर भौंचक थे कि ये कैसे मौत के परवाने है, जो अपनी जिन्दगी के बारे मे कुछ सोचते ही नही। यह डिनर एक आनन्दपूर्ण समारोह था। इस मे हँसी थी, अट्टहास थे, छेड-छाड थी, लतीफे-चुटकुले थे, दगा-मस्ती थी, जैसे किसी कॉलेज का फेयरवेल हो। अभियुक्त जेल के अफसरो के प्रति आत्मीय थे, तो अफसर भी अभियुक्तो के प्रति आदर और आत्मीयता से अनुरंजित थे। सचाई यह है कि भारत की जेलो ने ऐसे कैदी अपने जीवन में न इस से पहले देखे थे, न इस के बाद ही देखे। भगत सिंह क्रान्ति और अदालत के ही हीरो नही थे, जेलो के भी हीरो सिद्ध हुए। अफसरो के लिए वे सचमुच एक आश्चर्य थे।

दूसरे ही दिन पता चला कि जेल के चारो ओर सशस्त्र पुलिस का पहरा लगा दिया गया है और बहुत सावधानी बरती जा रही है। ७ अक्तूबर १९३० को सुबह ट्रिव्यूनल का एक विशेष सन्देशवाहक जेल मे आया और उस ने अभियुक्तो को ट्रिव्यूनल का फैसला सुनाया। यह व्यवस्था इस लिए की गयी, क्यो कि अभियुक्त जब मुकदमे के लिए ही अदालत मे नही जा रहे थे, तो फैसला सुनने के लिए कैसे जाते ?

फैसला इस प्रकार था—भगत सिह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी, कमलनाथ तिवारी, विजयकुमार सिनहा, जयदेव कपूर, शिव वर्मा, गया प्रसाद, किशोरी लाल और महावीर सिंह (बाद मे कालेपानी मे अनशन के नवें दिन शहीद) को आजन्म कालापानी। कुन्दनलाल को सात साल और प्रेमदत्त को तीन साल। मास्टर आशाराम, अजय घोष, सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय, देशराज और जितेन्द्रनाथ सान्याल को रिहा कर दिया गया। यह फैसला ६८ पृष्ठो मे लिखा गया था।

बहुत सावधानी रखी गयी थी कि फैसले की खबर एकदम जनता मे न फैले, पर वह हवा के झोको पर चढ कर घर-घर पहुँच गयी। भगत सिह की कोठरी एक ट्रान्समीटर या तारघर की तरह थी, जो चारो ओर से खबरे ले सकती थी और चारो ओर खबरे भेज सकती थी। सरकार ने फैसला होते ही लाहौर मे धारा १४४ लगा कर जलसे-जुलूसो पर पाबन्दी लगा दी थी, पर बिना किसी डोडी, पोस्टर या हैण्डबिल के म्युनिसिपल ग्राउण्ड मे बडा भारी जलसा हुआ। उस मे कडी सजा की, एक तरफा मुकदमा होने की और वायसराय के आर्डिनेन्स की खूब आलोचना हुई। प्रभावशाली पत्रो के विशेष अंक बात की बात मे प्रकाशित हो गये। उन मे भगत सिह और उन के साथियो के फोटो भी छपे थे। सरकार के गुप्तचर परेशान हो गये कि ये फोटो कब, कहाँ, किस ने, कैसे लिये और पत्रो को ये कैसे मिले। वे बेचारे भगत सिंह और उन के साथियो के जादू से अब भी अपरिचित थे।

आठ अक्टूबर १९३० को लाहौर और देश की जनता जोश से उत्तेजित हो

और अब ट्रिब्यूनल के सामने

उठी और युवक युवतियां उबल पड़े। लाहौर में स्टूडण्टस यूनियन के आह्वान पर हड़ताल हुई। अधिकांश स्कूल-कालेज आप-ही आप बन्द हो गये और जो स्वयं बन्द न हुए, उन्हें धरना दे कर बन्द कराया गया। सत्रह महिलाएं गिरफ्तार हुईं और बहुत से विद्यार्थी भी। डी० ए० वी० कालेज के एक प्रोफेसर और ८० विद्यार्थियों ने पुलिस पर धावा बोल दिया। कई जगह लाठी चार्ज हुए, पर उस शाम को एक बड़ा जुलूस निकला, नारे गूंजे और ब्रेडलाहाल में युवकों का जलसा हुआ। कांग्रेस के निमन्त्रण पर मोरी गेट के बाहर एक बड़ा जलसा अलग हुआ, जिस में १२ हजार से कम आदमी न थे। देश के दूसरे नगरों कलकत्ता बम्बई, मद्रास, नागपुर दिल्ली, पटना लखनऊ आदि की प्रतिक्रिया भी हड़तालों और जुलूसों के रूप में काफी उग्र रही। सभी के मन पर भगत सिंह को फांसी की सज़ा दिये जाने का गहरा दुःख था और उन की बलिदान भावना का सभी ने अभिनन्दन किया।

ट्रिब्यूनल के अन्याय को समाप्त करते हुए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उल्लेख बस और। सितम्बर १९३० के आरम्भ में ही यह साफ दीखने लगा था कि ट्रिब्यूनल सरकार के इशारों पर नाच रहा है और वह और चाहे कुछ करे न करे पर भगत सिंह को फांसी अवश्य देगा। सरदार किशन सिंह ने स्पेशल ट्रिब्यूनल के द्वारा वायसराय के नाम एक प्रार्थना-पत्र दिया जो कानूनी दृष्टि से एक अद्भुत दांव था। इस में कहा गया था कि जिस दिन साण्डर्स का वध हुआ, उस दिन भगत सिंह कलकत्ता में थे। उन्हों ने वहां से उसी दिन खद्दर भण्डार परी महल लाहौर के मनेजर श्री रामलाल को एक पत्र लिखा था जो डाक विभाग-द्वारा बाकायदा उन्हें पहुँचा। मैं उन्हें गवाह के रूप में पेश कर सकता हूँ या अदालत गवाहों कानून के अनुसार उन्हें बुला सकती है। सरकारी गवाहों से वे अधिक प्रतिष्ठित नागरिक हैं। इस स्थिति में यह उचित है कि भगत सिंह को सफाई का अवसर दिया जाये।

भगत सिंह को जेल में यह समाचार मिला तो वे तिलमिला उठे। वे अपने पिता की भावना को समझते थे। जानते थे कि सरदार किशन सिंह एक क्रान्तिकारी हैं जिस का उद्देश्य अपने को बचा कर दुश्मन पर चोट करना होता है। फिर वे एक प्रेमी पिता हैं और कोई भी पिता किसी भी कीमत पर अपने पुत्र को मृत्यु के ग्रास होने से बचाना चाहे यह स्वाभाविक है। बात ठीक है पर भगत सिंह बच कर चोट करने की नीति पर नहीं जल कर जलाने की नीति पर चल रहे थे। इस लिए उन के लिए यह प्रार्थना पत्र उन की पूरी नीति में पलीता लगाने वाला था। फिर उन के साथियों ने उन्हीं के आदेश और आदर्श पर मुकदमे में बचाव की नीति का त्याग किया था। उन्हें फँसा कर अपने बचाव का प्रयत्न क्या अर्थ रखता?

उन्हों ने तुरन्त अपने पिता को जो पत्र लिख भेजा उस के कुछ मार्मिक अंश इस प्रकार हैं—

"मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि आप ने स्पेशल ट्रिब्यूनल को मेरे बचाव के लिए एक प्रार्थना-पत्र भेजा है। यह समाचार इतना दु:खदायी था कि मैं इसे शान्त हो कर सहन नही कर सकता।"

आप का बेटा होने के नाते मैं आप की पैतृक भावनाओ एवं इच्छाओ का पूरा सम्मान करता हूँ, परन्तु इस के साथ ही मैं समझता हूँ कि आप को मेरे साथ परामर्श किये बिना मेरे विषय मे कोई प्रार्थना-पत्र देने का अधिकार न था।

मुझे विश्वास है कि आप को यह बात स्मरण होगी कि आप आरम्भ से ही मुझे यह बात मना लेने के लिए प्रयत्न करते रहे है कि मैं अपना मुकदमा समझदारी से लड़ूँ एवं अपना बचाव ठीक रूप से उपस्थित करूँ। यह बात भी आप की जानकारी मे है, कि मै सदैव इस का विरोध करता रहा हूँ।

मेरा यह दृष्टिकोण रहा है कि समस्त राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ को ऐसी दशा में अदालत की अवहेलना एवं उपेक्षा दिखानी चाहिए और उन को जो कठोर से कठोर दण्ड दिया जाये, वह उन्हे हँसते-हँसते सहन करना चाहिए।

मेरा जीवन इतना मूल्यवान् नही है जितना आप समझते है। कम से कम मेरे लिए जीवन का इतना महत्त्व नही है कि इसे सिद्धान्तों की अमूल्य निधि बलिदान कर के बचाया जाये।

पिता जी, मै बड़ी चिन्ता अनुभव कर रहा हूँ। मुझे डर है कि आप पर दोष लगाते हुए या इस से भी अधिक आप के इस कार्य की निन्दा करते हुए मै कहीं सभ्यता की परिधि को न लाँघ जाऊँ और मेरे शब्द अधिक कठोर न हो जाये। फिर भी मै स्पष्ट शब्दो मे इतनी बात अवश्य कहूँगा कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति मेरे प्रति इस प्रकार का बरताव करता, तो मै उसे देशद्रोही से कुछ कम न समझता, परन्तु आप की परिस्थिति मे यह बात नही कह सकता।

बस इतना ही कहूँगा कि यह एक कमजोरी थी, निम्न कोटि की मानसिक दुर्बलता। यह एक ऐसा समय था, जब हम सब की परीक्षा हो रही थी। पिता जी, मै यह कहना चाहता हूँ कि आप उस परीक्षा मे असफल रहे है। मै जानता हूँ कि आप उतने ही सच्चे देशभक्त रहे है जितना कोई भी व्यक्ति हो सकता है। मैं जानता हूँ कि आप ने अपना समस्त जीवन भारत की स्वतन्त्रता के लिए न्यौछावर कर दिया है, परन्तु इस महत्त्वपूर्ण घड़ी पर आप ने ऐसी दुर्बलता क्यो दिखाई, मैं यह बात समझ नही पाया।"

भगत सिह की इच्छा के अनुसार यह पत्र सरदार किशन सिंह ने हिन्दी, उर्दू, अँगरेजी के अनेक पत्रो मे तुरन्त छपा दिया और पत्र मे उन की जिन्दगी का हर क्षण भगत सिंह के ध्यान, गुणगान और काम मे लगा रहा। उन्हो ने जो पत्र ट्रिब्यूनल को भेजा था, उस मे पहले कहे हुए कारण तो थे ही, पर शायद एक गलत-फहमी भी थी

जिस का उल्लेख स्वय भगत सिह ने इसी पत्र म किया ह—"भूख हड़ताल क दिनो म मै न जो इण्टरव्यू दी थी, उस का अथ गलत समझा गया और समाचारपत्रों म प्रकाशित कर दिया गया कि मुकदमे में मै अपना स्पष्टीकरण दना चाहता हूँ।" जो भी हो, इस घटना म पिता का वात्सल्य सहिष्णुता, और राजनतिक चातुय सुरक्षित ह तो पुत्र का प्रचण्ड व्यक्तित्व भी। विश्व के साहित्य भण्डार म कलेजे की आग से लिख जो दस्तावज सुरक्षित ह, निश्चय ही उन म भगत सिह का यह पत्र बहुत चमत्कार ह।

■ ■

काल-कोठरी या साधना-कक्ष ?

लाहौर षड्यन्त्र केस की डिफेन्स कॅमिटी सन्नद्धता और सुन्दरता के साथ अपना काम करती आ रही थी। यही नही कि उस ने मुकदमे की कानूनी कार्यवाही पर ही ध्यान दिया, अभियुक्तो की सुख-सुविधा का और लाहौर आने वाले उन के अभिभावको के ठहरने आदि का भी प्रवन्ध किया। इस के साथ ही उस ने यह भी ध्यान रखा कि किसी अभियुक्त का परिवार यदि आर्थिक सकट मे है, तो उस तक अपना हाथ पहुँचाया जाये।

डिफेन्स कॅमिटी अव ट्रिव्यूनल के फैसले के विरुद्ध प्रिवी कौन्सिल (लन्दन स्थित उस समय का सर्वोच्च भारतीय न्यायालय) मे अपील करने की तैयारी कर रही थी, पर भगत सिंह अपील के विरुद्ध थे। इस केस मे न तो अभियुक्त उपस्थित हुए थे, न उन के वकील, सरकारी गवाहो पर न जिरह हुई थी, न वहस मे सरकारी आरोपो का उत्तर दिया गया था। इस दृष्टि से केस कमजोर था और ससार-भर मे इस से ब्रिटिश न्याय का रग फीका पडा था। भगत सिंह को डर था कि इस सव का यह असर हो सकता है कि प्रिवी कौन्सिल के न्यायाधीश यदि निष्पक्ष रहे, तो ट्रिव्यूनल का फैसला खत्म हो जाये। यह न हो तो कम से कम उन की फाँसी ही रुक जाये, तो उन के सव किये-कराये पर पानी फिर जाये। उन की आत्मा की अन्त करण की माँग थी—मृत्यु, वलिदान, आहुति, और वे इस के विरुद्ध कुछ भी करने-सुनने को तैयार न थे। अपनी काल-कोठरी मे इसी विषय पर सलाह के लिए आये अपने साथी विजयकुमार सिनहा से उन्हो ने कहा था—"भाई ऐसा न हो कि फाँसी रुक जाये। हम मर कर ही क्रान्ति की सेवा कर सकते है।"

अपनी शहादत के सम्बन्ध मे उन का दृष्टिकोण उस पत्र से भी स्पष्ट है, जो उन्हो ने फाँसी का हुक्म सुनने के वाद नवम्बर १९३० मे अपने प्रिय साथी श्री वटुकेश्वर दत्त को लिखा था, जो उस समय मुलतान जेल मे थे और वहाँ से सलेम (मद्रास) जेल मे भेजे जा रहे थे। उस पत्र की एक विशेषता यह है कि वह मरण को महत्त्व देते हुए भी जीवन के महत्त्व को वहुत ऊँचा उठा देता है। पत्र इस प्रकार है—

"मुझे दण्ड सुना दिया गया है और फाँसी का आदेश हुआ है। इन कोठरियों में मेरे अतिरिक्त फाँसी की प्रतीक्षा करने वाले बहुत से अपराधी हैं। ये लोग यही प्रार्थना कर रहे हैं कि किसी तरह फाँसी से बच जाय, परन्तु उन के बीच शायद मैं ही एक ऐसा आदमी हूँ जो बड़ी बेताबी से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जब मुझे अपने आदर्श के लिए फाँसी के फन्दे पर झूलने का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं इस खुशी के साथ फाँसी के तख्ते पर चढ़ कर दुनिया को दिखा दूँगा कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए कितनी वीरता से बलिदान दे सकते हैं।

मुझे फाँसी का दण्ड मिला है, किन्तु तुम्हें आजीवन कारावास का दण्ड मिला है। तुम जीवित रहोगे और तुम्हें जीवित रह कर दुनिया को यह दिखाना है कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए केवल मर ही नहीं सकते बल्कि जीवित रह कर हर मुसीबत का मुकाबला भी कर सकते हैं। मृत्यु सांसारिक कठिनाइयों से मुक्ति प्राप्त करने का साधन नहीं बनना चाहिए, बल्कि जो क्रान्तिकारी संयोगवश फाँसी के फन्दे से बच गये हैं उन्हें जीवित रह कर दुनिया को यह दिखा देना चाहिए कि वे न केवल अपने आदर्शों के लिए फाँसी पर चढ़ सकते हैं बल्कि जेलों की अन्धकारपूर्ण छोटी कोठरियों में घुल घुल कर निकृष्टतम दरजे के अत्याचारों को सहन भी कर सकते हैं।

यह सब होते हुए भी कुछ ऐसी बातें थीं जो उन्हें अपील के लिए आकर्षित कर रही थीं। डिफेंस कमिटी ने मुकदमे में शानदार काम किया था और वह अपील करने को आतुर थी आवश्यक समझती थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने रोगशय्या पर पड़े पड़े शिमला से अनुरोध किया था कि अपील अवश्य की जाये, जिस से सब क्रान्तिकारियों की रिहाई के लिए प्रयत्न करने का समय मिल सके। एडवोकेट श्री प्राणनाथ मेहता स्वयं जेल जा कर भगत सिंह को समझा-बुझा गये थे और अब भगत सिंह का मन तेजी से अपील करने के पक्ष में सोचने लगा था पर यह सोच एक आत्मनिर्लिप्त महान मानव की सोच थी।

वे सोचते थे—प्रिवी कौन्सिल में अपील करने में विश्व भर में भारतीय क्रान्ति के उद्देश्यों को प्रचारित करने का अवसर मिलेगा भारत में राजनैतिक बंदियों पर होने वाले अत्याचारों की गाथा सभ्य देशों में पहुँच कर मानवीय सहानुभूति प्राप्त करेगी यतीन्द्रनाथ दास का निःस्वार्थ और महान बलिदान संसार के सामने आयगा और दुनिया के विचारक जान सकेंगे कि भारत अपनी गुलामी के विरुद्ध किस शान से जूझ रहा है। अपील का एक गहरा उद्देश्य यह भी सामने था कि इस से इंगलैण्ड के दुश्मनों का ध्यान इस बात पर आकर्षित होगा कि भारत में समाजवादी क्रान्तिकारी पार्टी का क्या स्थान और क्या प्रभाव है।

भगत सिंह इस से भी गहरे उतर गये इतने गहरे कि जितने गहरे तक सन्त या पैगम्बर ही उतर सकते हैं। उन्हों ने अपने कानूनी सलाहकार (वकील) को समझाया—ब्रिटिश कानूनों की रचना का फायदा उठा कर हमारी सजाओं में कमी करान

की कोशिश न की जाये और न बचाव के लिए यही कहा जाये कि हम क्रान्तिकारी नही है ।

महात्मा गान्धी के नेतृत्व मे उस समय कांग्रेस का अहिंसात्मक आन्दोलन पूरे वेग मे चल रहा था । देश में वायसराय आर्डिनेन्सो के जरिये हुकूमत कर रहे थे और अपने कलकत्ता के भाषण मे उन्हो ने पूरी ताकत से आन्दोलन को कुचलने की बात कही थी । सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के समझौता-प्रयत्नो को एक बार उन्हो ने उपेक्षा से ठुकरा दिया था । कांग्रेस का नेतृत्व भी आन्दोलन को और तेज़ करने की दिशा मे अग्रसर था । इस पर भी दोनो मे कही समझौते की बात न थी । इग्लैण्ड मे सर होर-जैसा भारत-विरोधी और रूखे स्वभाव का भारतमन्त्री बैठा हुआ था, जिस के मन मे सहानुभूति या नरमी का एक कण भी न था । पहली गोलमेज कान्फ्रेन्स बिना कांग्रेस के सम्मिलित हुए ही धूमधाम से लन्दन मे हो गयी थी । देश के लिए कुछ करने मे वह असफल रही थी, पर उस से इतना लाभ अवश्य हुआ था कि भारत की गुलामी के सम्बन्ध मे इग्लैण्ड की जनता और विश्व का लोकमत पहले से अधिक जागरूक हो गया था । इन परिस्थितियो मे भगत सिंह ने कहा था—"अपील का उद्देश्य यह हो कि अभी हमारी फाँसी रुकी रहे और वह तब हो, जब कांग्रेस का समझौता सरकार से हो और वह अपने परिणामो से शानदार सिद्ध न हो. युवक वर्ग में इस से असन्तोष फैल रहा हो, बस उन्ही घड़ियों मे हमे फाँसी लगे और इस प्रकार कांग्रेस की बागडोर उग्रतावादियों के हाथ मे चली जाये ।"

अपील के सम्बन्ध मे साथियो के साथ बात करते समय एक अद्भुत वाक्य सामने आया था—"फाँसी तब हो, जब देश की जनता का जोश अपने पूरे उफान पर हो और उस का ध्यान पूरी तरह इस की (फाँसी की) ओर केन्द्रित हो ।"

अपील के लिए उन्हो ने सूत्र दिया—अपील का आधार यह हो कि वायसराय का आर्डिनेन्स, जिस के द्वारा ट्रिब्यूनल की स्थापना हुई, गैर-कानूनी है, इस लिए उस के द्वारा दी गयी सजाएँ भी गैरकानूनी है । इस सूत्र का साफ मतलब यह था कि इस रूप मे अपील शर्तिया खारिज हो जायेगी और फाँसी को भी उस के सर्वोत्तम समय के लिए टाला जा सकेगा । भगत सिंह की यह रण-नीति कितनी गहरी और सुदृढ थी, इस का प्रमाण आगे की घटनाओ ने दिया और वे इतिहास के महान् युगद्रष्टा सिद्ध हुए । ऐसा लगता है कि भूत, भविष्यत् और वर्तमान, तीनो एक साथ उस के इशारो पर नाच रहे थे, जैसे सेना के सिपाही अपने सेनापति के सकेतो पर 'लेफ्ट-राइट' कर रहे हो । निरन्तर एक ही दिशा मे चिन्तन और लक्ष्य के लिए पूर्ण समर्पण भावना ने उन मे आध्यात्मिक आवेग पैदा कर दिया था और उन्हे युग की प्रगति का वाहन बना दिया था ।

प्रिवी कौन्सिल मे अपील कर दी गयी थी, यह नवम्बर १९३० था, पर भगत सिंह मई १९३० से जेल मे और अब फाँसी की कोठरी मे बैठे क्या कर रहे थे ? क्या वे जल्लाद की प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह किसी दिन आयेगा और फाँसी का फन्दा गले

म डाल दगा ? यह कमे सम्भव था ? रथ के भीतर बैठा मानव नींद में टूल सकता है और विचारो में भूल सकता है पर जिस के हाथ में घोड़ों की रास है, वह पल भर को भी अपने जीवनपन से कैसे मुक्त हो सकता है ? भगत सिंह तो अपने क्रान्ति रथ के सारथी थे। वे उस स्थान तक उस रथ को पहुँचा कर और दूसरों के हाथों में घोड़ों की रास सौंप कर चले जायेंगे, यह वे जानते थे पर वे चाहते थे कि उन नये आदमियों के लिए अपने अनुभव और निर्देश तैयार कर दें। इस चाह की पूर्ति के लिए अपनी फाँसी की कोठरी को उन्हों ने विचारों की प्रयोगशाला का रूप दे दिया था।

जब वे चौथी क्लास में पढ़ते थे उन्हों ने सरदार अजीत सिंह, लाला हरदयाल और सूफी अम्बाप्रसाद की किताबें पढ़ डाली थी। अध्ययन का यह चाव नेशनल कॉलेज में आ कर एक गहरे और व्यवस्थित भाव में बदल गया था यह हम देख चुके हैं। यह भाव अब किस रूप में था इस का पता श्री जयदेव गुप्ता के नाम लिखे उन के इस पत्र से लगता है—

सेण्ट्रल जेल, लाहौर

२४-७-३०

मेरे प्यारे जयदेव,

कृपया मेरे नाम द्वारकादास लाइब्रेरी से ले कर निम्नलिखित पुस्तकें शनिवार को कुलबीर के साथ भेज देना—

मिलिटेरिज्म काल लिबक्नट

व्हाई मेन फाईट बा० रसल

सोवियट्स एट वर्क

कुलैप्स ऑव सेकण्ड इण्टरनेशनल

म्यूचुअल एड प्रिंस क्रोपाटकिन

फील्डस, फैक्टरीज एण्ड वर्कशाप्स

सिविल वार इन फ्रान्स मार्क्स

लैण्ड रिवॉल्यूशन इन रशिया

स्पाइ अप्टन सिंक्लेयर

कृपा कर एक और पुस्तक पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी से ले कर भेजने का प्रबन्ध करें—'हिस्टॉरिकल मटीरियलिज्म बुखारिन'—लाइब्रेरियन से यह भी पूछें कि बोर्स्टल जेल में कुछ पुस्तकें भेजी हैं या नहीं ? उन के पास पुस्तकों का भयानक अकाल है। उन्हों ने सुखदेव के भाई जयदेव के द्वारा पुस्तकों की एक लिस्ट भेजी थी, लेकिन अभी तक कोई पुस्तक नहीं मिली। अगर उनके पास लिस्ट न हो, तो कृपा कर लाला फिरोजचन्द से कहो कि वे अपनी पसन्द की कुछ दिलचस्प पुस्तकें भेज दें। इस रविवार को जब मैं वहाँ जाऊँ, तो उन के पास किताबें पहुँच चुकी होनी चाहिए। कृपा कर यह ध्यान रखना कि यह काम हर हालत में हो जाय।

इस के साथ ही डार्लिंग्स की लिखित 'पीजेण्ट्स इन प्रोस्पैरिटि एण्ड डेब्ट' और इसी तरह की २-३ किताबें 'डॉक्टर आलम' के लिए भी। आशा है तुम इस कष्ट के लिए क्षमा करोगे। मैं भविष्य में और कष्ट नही दूँगा, यह मेरा आश्वासन है। कृपा कर मेरे सब मित्रो को मेरी याद दिलाना। लज्जावती जी को मेरा आदर भाव दें। मुझे आशा है कि अगर दत्त की बहन आयी, तो वे मुझ से मिलने के लिए आने का कष्ट करेगी।

आदर भाव के साथ—आप का
भगत सिंह

जेल विभाग के द्वारा भेजे पत्रो के अतिरिक्त वे गुप्त रूप से भी पत्र भेजते रहते थे। उन मे भी पुस्तक की माँग रहती थी। कौन पुस्तक किस पुस्तकालय से मिलेगी, या किस मित्र के पास से, यह तो वे लिखते ही थे, ज्यादातर पुस्तको के नाम के साथ वे यह भी लिख देते थे कि पुस्तकालय के रजिस्टर मे किस पुस्तक का क्या नम्बर है। चार्ल्स डिकेन्स उन का प्रिय लेखक था। 'रीड्स'-द्वारा लिखित 'टेन डेज दैट शुक द वर्ल्ड' रोपशिन लिखित 'रशियन डेमोक्रेसी' और मैक्सिविनी लिखित 'प्रिन्सिपल्स ऑव फ्रीडम' उन्हो ने इन्ही दिनो पढी। गोर्की, मार्क्स, उमर खैयाम, एजिल्स, ऑस्कर वाइल्ड, जार्ज बर्नार्ड शॉ उन को काल-कोठरी के साथी थे। लेनिन को उन्हो ने बहुत ध्यान से इन दिनो पढा था और रूसी क्रान्ति, उस के तरीको और परिणामो को समझने के लिए उन्हो ने रात-दिन अध्ययन किया। सोचती हूँ जब अँगरेजी सरकार उन को अन्तर्ध्यान करने के लिए बल लगा रही थी, वे राष्ट्र के लिए ज्ञान का अमरफल तैयार कर रहे थे।

अध्ययन की इस गम्भीरता और विशालता को देखते ही मेरा भौंचक ध्यान इस बात पर जाता है कि अँगरेजी मे उन की शिक्षा पर्याप्त नही थी। ज्यादा दिन पहले नही, १९२४ मे ही अँगरेजी का उन का ज्ञान बेहद अधूरा था। श्री यशपाल के शब्दो मे—"अर्जुन मे काम करते समय एक रोज अनुवाद करने के लिए उसे (भगत सिंह को) एक तार दिया गया। तार था—'चमनलाल एडीटर डिफक्ट नेशन एराइव्ड ऐट लाहौर'। भगत सिंह ने उस का अनुवाद किया—'डिफक्ट नेशन के सम्पादक मिस्टर चमनलाल लाहौर आ गये।' अनुवाद अर्जुन मे छप भी गया। इन्द्र जी ने अनुवाद की ओर भगत सिह का ध्यान दिलाया, परन्तु भगत सिह को इस मे कोई भूल दिखाई न दी। उस का ख़याल था कि चमनलाल 'डिफक्ट नेशन' नामक पत्र के सम्पादक हैं। इन्द्र जी ने जब उसे डिक्शनरी देखने को कहा तब भगतसिंह को मालूम हुआ कि डिफंक्ट का अर्थ 'बन्द हो चुका पत्र' है।"

ये ही भगत सिंह अपनी एकान्त कोठरी मे राजनीति, अर्थशास्त्र, विश्व क्रान्ति और समाजशास्त्र का गम्भीरतम साहित्य पचा रहे थे। श्री यशपाल के ही शब्दो मे—"अपने ही स्वाध्याय से भगत सिंह ने अँगरेजी पर इतना अधिकार कर लिया था कि

असम्बली बमकाण्ड के समय उस ने जो परचे फेंके थे और अदालत के सामने जो अंगरेजी में लिखित बयान दिये थे उन की भाषा की प्रशंसा प्रायः सभी लोगों ने की थी। कुछ लोगों ने कल्पना कर ली थी कि वे बयान भगत सिंह के नहीं वकीलों के लिखे हुए हैं। इस कल्पना में कोई तथ्य नहीं है, अध्ययन भगत सिंह का स्वभाव बन गया था। जब भी देखो उस के लम्बे कोट की जेब में कोई-न-कोई पुस्तक रखी हो रहती थी। खाली सड़क पर चलता हो तो चलते चलते भी वह पढ़ता रहता था।'

क्या यह पढ़ना कोई शौक था। क्या यह पढ़ना अपने को मृत्यु की चिन्ता से दूर रखने के लिए पुस्तकों में डुबाये रखने का बहाना था? कौन कहेगा इस पर हाँ और कस कहेगा? दिल और दिमाग की हालत तो यह थी कि पढ़ते पढ़ते वे जाने किस मस्ती में झूम उठते और पुस्तक छोड़ कर अपनी काल-कोठरी में इधर से उधर घूमते हुए शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की यह पंक्तियाँ गाने लगते—

"मेरा रँग दे बसन्ती चोला।
इसी रंग में रँग के शिवा ने माँ का बन्धन खोला॥
मेरा रँग दे बसन्ती चोला।
यही रंग हल्दीघाटी में खुल कर के था खेला।
नव बसन्त में भारत के हित वीरों का यह मेला
मेरा रँग दे बसन्ती चोला।"

जेल के वार्डर दूर से मिठास और ओज से भरा कण्ठ-स्वर सुन कर काल कोठरी के आस पास आ जाते सुनते दूर से ही झाँक कर देखते स्तब्ध रह जाते मुग्ध होते और सोचते—किस धातु का बना है यह भगत सिंह। लोग पल-पल जीने के लिए तरसते हैं पर यह मौत के लिए तड़प रहा है। उन्हों ने जीवन भर ऐसे आदमी देखे थे जिन पर मौत आक्रमण करती है पर इस बार वे ऐसा आदमी देख रहे थे जो उल्टे मौत पर आक्रमण कर रहा है और सचमुच मौत उस के सामने मरी जा रही है। इस विचार ने भगत सिंह को उन के लिए एक फरिश्ता बना दिया था और उन की बात मानना उन का कोई काम कर सकना वे लोग अपने जीवन का सौभाग्य मानते थे।

विख्यात क्रान्तिचिन्तक और क्रान्तिकारी श्री शिव वर्मा के शब्दों में— भगत सिंह और सुखदेव को छोड़ कर और किसी ने न तो समाजवाद पर अधिक पढ़ा ही था और न मनन ही किया था। भगत सिंह और सुखदेव (मैं नम्रतापूर्वक इन दोनों के साथ श्री भगवतीचरण जी का नाम जोड़ना भी उचित समझता हूँ) का ज्ञान भी हमारी तुलना में अधिक ही था। वर्ग समाजवाद के हर पहलू को पूरे तौर पर वे भी नहीं समझ पाये थे। यह काम तो पकड़े जाने के बाद लाहौर जेल में सम्पन्न हुआ। भगत सिंह की महानता इस में थी कि वे अपने समय के दूसरे लोगों के मुकाबले राजनीतिक तथा सैद्धान्तिक सूझ-बूझ में काफी आगे थे।

गया मे एक वृक्ष खडा है। कोई असाधारण वृक्ष नही मामूली वृक्ष है। वैसे वृक्ष हमारे देश मे और भी अनेक है। पर वह वृक्ष ससार-भर के करोडो लोगो के लिए तीर्थ हो गया है। वह गया-विहार-का बोधि-वृक्ष है। वह वही वृक्ष है, जिस के नीचे बैठ कर भगवान् बुद्ध ने तप किया था और मानव-जीवन के दुखो को दूर करने का उपाय खोजा था। भगत सिंह भी अपनी काल-कोठरी मे मानव के दुखो को दूर करने का उपाय खोज रहे थे। फिर वह काल-कोठरी कहाँ थी, वह तो साधना-कक्ष था, उस साधक को जो मृत्यु की साधना के द्वारा राष्ट्र को जीवन की सिद्धि देने मे जुटा था।

यह जीवन की सिद्धि दो भागो मे बँटी हुई थी, पहला भारत को जकडने वाली गुलामी की जजीरे टूटे और दूसरा यह कि उस के बाद यहाँ ऐसी समाज-व्यवस्था स्थापित हो, जिस मे समाज के कुछ लोग नही, सब लोग सुखी हो और समान रूप से सब गौरव का अनुभव करें। उन्हो ने काल-कोठरी मे रहते-रहते इस गम्भीर अध्ययन के साथ जो पुस्तके लिखी वे ये है—१ आत्मकथा, २ दि डोर टू डेथ (मौत के दरवाजे पर), ३ आइडियल ऑव सोशलिज्म (समाजवाद का आदर्श), ४ स्वाधीनता की लडाई मे पंजाब का पहला उभार।

पहली पुस्तक मे उन का अपना जीवन-चरित्र इस ढग पर लिखा गया था कि भारत के क्रान्तिकारी दल का पूरा सघर्ष सामने आ जाये। उद्देश्य यह था कि देश के युवक मानसिक रूप से क्रान्तिकारी दल से सम्बद्ध हो जायें। दूसरी पुस्तक मे आयरलैण्ड, इटली, फ्रान्स, रूस और इसी तरह अनेक देशो के उन शहीदो और वीरो के जीवन-परिचय दिये गये थे, जिन्हो ने अपने-अपने देश की गुलामी के विरुद्ध सघर्ष किया। उद्देश्य यह था कि देश के युवको को क्रान्तिकारी कार्यों के लिए प्रेरणा मिले और वे जाने कि राजनैतिक सघर्ष किस प्रकार किया जाता है। तीसरी पुस्तक मे समाजवाद का उद्देश्य और विधान मुख्य रूप से चित्रित किया गया था, जिस से देश के भावी नेता स्वतन्त्रता का सविधान बनाते समय कोहरे मे भटक न जायें, साफ सूरज की रोशनी मे देश के नवनिर्माण का रास्ता देख सके। चौथी पुस्तक मे पजाब के सर्वप्रथम राजनैतिक आन्दोलन—भारतमाता सोसायटी का पूरा इतिहास दे कर १९१५-१६ के गदर-पार्टी आन्दोलन का साकेतिक स्पर्श दे दिया था। इस का उद्देश्य पजाब के पिछडे क्रान्तिकारी जीवन को उभार कर खडा करना था।

प्रिवी कौन्सिल मे भगत सिंह के जीवन-मरण की चर्चा हो रही थी और काल-कोठरी मे बैठे भगत सिंह राष्ट्र के जीवन-मरण की चिन्ता मे पल-पल लगे हुए थे। प्रिवी कौन्सिल की अपील खारिज हो गयी। भगत सिंह की मृत्यु-साधना अपनी सिद्धि के द्वार आ लगी। लहरो-भँवरो-तूफानो और मगरमच्छो से टकराती और बचती उन की कामना की नाव लक्ष्य के किनारे के पास आ पहुँची थी।

उन्ही दिनो का एक मार्मिक दृश्य और—दिसम्बर १९३० की बात है। रात के सन्नाटे मे श्री शिव वर्मा की काल-कोठरी खुली और उन्हे बाहर लाया गया। हर कैदी

जानता है कि इस का अर्थ किसी दूसरी जेल में भेजा जाना है। जेलर इन लोगों के प्रति आदर रखते थे इस लिए उन्हों ने शिव वर्मा को अपने साथियों से मिलने की सुविधा दे दी।

जब शिव वर्मा भगत सिंह की काल-कोठरी के द्वार पर थे। बेड़ी की झनझनाहट सुन भगत सिंह जाग उठे और कूद कर जंगले में आ लगे। उन्हों ने अपना भुजाएं जंगले से बाहर निकालीं और शिव वर्मा ने अपनी भुजाएं जंगले के अन्दर डालीं। हृदयों के बीच में लोहे की सलाखें थीं पर भुजाओं ने दोनों को एक जगह समेट दिया था। सोचता हूँ राम समुद्र के इस पार थे सीता समुद्र के उस पार थी। कितनी बड़ी दूरी थी दोनों की देहों के बीच, पर कितना सामीप्य था दोनों के हृदयों के बीच और जब समुद्र दो हृदयों को दूर नहीं कर सकता तो लोहे के सीखचे क्या कर सकते।

यह गहरे सुख की घड़ी थी। जीवन मरण के दो साथी अचानक आ मिले थे। यह दारुण दुःख की घड़ी थी। जीवन-मरण के दो साथी सदा के लिए बिछुड़ रहे थे। आँखें आँखों को आखिरी बार देख रही थीं। कान बातों को आखिरी बार सुन रहे थे। देह देह का स्पर्श आखिरी बार अनुभव कर रही थी। दोनों एक-दूसरे में समाये रहे थे। शिव वर्मा की आँखें बरस पड़ीं। भगत सिंह हँस कर बोले— प्रान्तिकारी पार्टी में आते समय मैं ने सोचा था कि अगर मैं 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा देश के कोने-कोने तक पहुँचा सका तो समझूँगा मेरे जीवन का मूल्य मुझे मिल गया पर आज तो मैं फाँसी की इस कोठरी में भी अपने उस नारे की गूँज सुन रहा हूँ।' उन्हों ने आलिंगन को ढीला कर शिव वर्मा के दोनों कन्धे पकड़ लिए और पूरे आत्म विश्वास एवं पूरे आत्मगौरव की ज्योति में जगमगा कर कहा— मैं समझता हूँ इस छोटी-सी जिन्दगी का इस से अधिक मूल्य और हो भी क्या सकता है।

शिव वर्मा के हाथ भी ढीले पड़ गये और उन्हों ने भगत सिंह का हाथ अपने हाथ में ले लिया। भगत सिंह ने उन का हाथ दबाया और उत्साह से दबाते हुए कहा— मैं तो कुछ ही दिनों में सारे झंझटों से छुटकारा पा जाऊँगा लेकिन तुम लोगों को लम्बा सफर पार करना पड़ेगा। मैं विश्वास करता हूँ तुम इस लम्बे अभियान में थक कर रास्ते में नहीं बैठ जाओगे। एक बार दोनों हाथ पूरी गरमी से मिले और अलग हो गये फिर कभी न मिलने के लिए।

• ८

साधना-कक्ष या सचिवालय ?

जब भगत सिंह मरण की तूलिका मे जीवन का चित्र बना रहे थे, देश की परिस्थितियाँ क्या थी। साइमन कमीशन, जिस ने साण्डर्स-वध की भूमिका तैयार की थी, १४ अप्रैल १९२९ को अपना दौरा पूरा कर इंगलैण्ड लौट गया था। मई १९२९ के चुनाव मे कजरवेटिव पार्टी हार गयी थी और इगलैण्ड मे मजदूर सरकार कायम हो गयी थी। लाहौर मे पण्डित जवाहरलाल नेहरु के नेतृत्व मे कॉग्रेस का गरमागरम अधिवेशन हो चुका था। समझौते की फालतू बातो के बाद कॉग्रेस ने गान्धी जी को अपने आन्दोलन की बागडोर सौंप दी थी। अपना नमक सत्याग्रह उन्हो ने आरम्भ कर दिया था। सारे देश मे नमक कानून खुले-आम तोडा जा रहा था। धरासना और वडाला के नमक-गोदामो पर सत्याग्रहियो का आक्रमण अहिंसात्मक होते हुए भी काफी गरम था। जलसे-जुलूसो की बाढ आ गयी थी और गिरफ्तारी मामूली बात हो गयी थी।

जगह-जगह गोलियाँ भी चली थी, लोग मरे थे, पर उन से लोग डरे नही, उन का उत्साह बढा ही था। गान्धी जी गिरफ्तार कर लिये गये थे और कॉग्रेस के दूसरे बडे नेता भी। पेशावर मे गढवाली फौज ने अँगरेज़ अफसरो के आदेश के विरुद्ध सत्याग्रहियो पर गोली न चला कर अहिंसा का एक चमत्कार ही कर दिया था। बगाल के क्रान्तिकारी दल के महान् वीर श्री सूर्यसेन के नेतृत्व में चटगाँव शस्त्रागार को लूट लेने के पश्चात् जो घटनाएँ हुईं, उन्हो ने हिंसा की शक्ति का भी शानदार प्रदर्शन कर दिया था। इस सब के आरम्भ मे ही वायसराय की ट्रेन पर जिस वैज्ञानिक ढग से श्री यशपाल ने बम मारा था, उस की किरणे भी वातावरण मे छिटक रही थी और हरिकृष्ण द्वारा पंजाब गवर्नर पर चलायी गोली की सनसनी भी हवा मे तैर रही थी। साण्डर्स-वध, असेम्बली बम-काण्ड और मुकदमे ने देश की नयी पीढी को नयी राजनीतिक चेतना दी थी, वह और भी आगे बढ रही थी। पहली गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स नवम्बर १९३० मे जिस बुरी तरह असफल हुई थी, उस ने देश की जनता के असन्तोष को भडकाया ही था। कॉग्रेस ने उस कॉन्फ्रेन्स के निर्णय पर विचार कर के अपने आन्दोलन मे कोई परिवर्तन न करने की घोषणा कर दी थी।

इस प्रकार जब देश की जनता मानसिक रूप में पूरी तरह आन्दोलित थी और वायसराय लॉर्ड इरविन धड़ाधड़ आर्डिनेन्स निकाल कर अपना झुंझलाहट का परिचय दे रहे थे, प्रिवी कौंसिल ने भगत सिंह और उन के साथियों की अपील खारिज कर दी। भगत सिंह ने अपील का आधार ही ऐसा रखा था कि उसे खारिज करने के सिवा कोई चारा न हो। अपील खारिज होने का वही प्रभाव पड़ा जो भगत सिंह ने सोचा था, चाहा था। जनता भड़क उठी और पेशावर से मद्रास तक इस के विरोध में जुलूस निकले, जलसे हुए। जो जलसे कांग्रेस के द्वारा संगठित हुए उन में भी भाषणों का मुख्य विषय भगत सिंह ही हो गये। लोग जोश के साथ उन की वीरता का बखान करते, उन की जय बोलते और उन का नारा इन्कलाब जिन्दाबाद गूँजाते।

जलसे जुलूसों के साथ देश भर में हस्ताक्षर आन्दोलन शुरू हो गया और भगत सिंह की जीवन रक्षा के लिए लाखों हस्ताक्षरों से भरे अनुरोध पत्र वायसराय को भेजे गये। इस में कौन असहमत होगा कि कलम से किये इन लाखों हस्ताक्षरों के साथ करोड़ों अलिखित हस्ताक्षर भी थे। हजारों तार वायसराय को भेजे गये और सैकड़ों इंगलैण्ड में भारत-मन्त्री को। नगर-नगर में ऐसे परचे छपे बँटे जिन में भगत सिंह के बचाव का अनुरोध था तो खून का बदला खून का प्रतिशोध भी था। यही नहीं बीकानेर और दूसरे कई राज्यों के नरेशों ने वायसराय से प्रार्थना की और इंगलैण्ड की पार्लमेण्ट के अनेक सदस्यों ने भी वायसराय को तार दिये कि वे भगत सिंह के जीवन की रक्षा करें। भगत सिंह भारत की हर माता के लाडले बेटे और हर बहन के लाडले भाई बन चुके थे इस लिए हर माता और बहन उन के जीवन को बचाना चाह रही थी। सोचती हूँ यह इतिहास का कैसा मार्मिक क्षण था कि देश का हर नागरिक उस जीवन को बचाने के लिए उत्सुक और आकुल था जिस की योजना पूर्वक आहुति देने के लिए भगत सिंह उत्सुक और आकुल थे।

बाहर यह सब हो रहा था और भीतर अपनी काल-कोठरी में बैठे भगत सिंह अपने अध्ययन, चिन्तन और लेखन की गहराइयों में उतर रहे थे। गीता में अनासक्ति योग का वर्णन है, पर भगत सिंह तो मृत्यु और कष्ट के प्रति अनासक्ति के जीवित उदाहरण ही बन गये थे। जब देश का बच्चा बच्चा उन की मृत्यु की सम्भावना से त्रस्त था, विह्वल था, वे कितने निर्लिप्त, कितने शान्त और कितने सजीव थे यह उन के उस पत्र से सिद्ध है जो उन्हों ने अपने साथी सुखदेव को काल-कोठरी से लिख भेजा था। सुखदेव भी अपनी काल-कोठरी में बैठे फाँसी की प्रतीक्षा कर रहे थे पर अपने विचारों की चंचलता से ग्रस्त थे। उस पत्र के कुछ उद्बोधक अंश इस प्रकार हैं —

'एक दिन मैं ने आत्महत्या के विषय पर आप को बताया था कि कई परिस्थितियों में आत्महत्या उचित हो सकती है, परन्तु आप ने विरोध किया था। अब आप उस कुछ अवस्थाओं में न केवल उचित वरन अनिवार्य एवं आवश्यक समझते हैं। मेरा इस विषय में अब वही राय है, जो आप की थी अर्थात् आत्महत्या एक

घृणित अपराध है और यह पूर्ण कायरता का कार्य है।" "

"आप कहते हैं कि आप यह नहीं समझ सके कि केवल कष्ट सहन करने से आप अपने देश की सेवा कैसे कर सकते हैं। मैं समझता हूँ कि आप ने अधिक से अधिक सम्भव सेवा की। अब वह समय है कि जो कुछ आप ने किया, उस के लिए कष्ट सहन करें। दूसरी बात यह है कि यही वह अवसर है जहाँ आप को सम्पूर्ण जनता का नेतृत्व करना है। क्या आप का यह विचार है कि यदि हम ने इस दया के लिए गिड़गिड़ाते हुए दण्ड से बचने का प्रयत्न किया होता, तो हमारा यह कार्य उचित होता। नहीं, इस का प्रभाव लोगों पर उलटा होता। अब हम अपने लक्ष्य में पूर्णतया सफल हुए हैं।

हमें धैर्यपूर्वक फाँसी की प्रतीक्षा करनी चाहिए। यह मृत्यु सुन्दर होगी, परन्तु आत्महत्या करना केवल कुछ दुःखों से बचने के लिए अपने जीवन को समाप्त कर देना तो कायरता है। मैं आप को बताना चाहता हूँ कि आपत्तियाँ व्यक्ति को पूर्ण बनाने वाली होती हैं।

यदि आप यह अनुभव करते हैं कि जेल का जीवन वास्तव में अपमानपूर्ण है, तो आप उस के विरुद्ध आन्दोलन कर के उसे सुधारने का प्रयास क्यों नहीं करते। सम्भवत: आप यह कहेंगे कि यह संघर्ष सफल नहीं हो सकता, परन्तु यह तो वही तर्क है, जिस की आड़ ले कर साधारणतया निर्बल लोग प्रत्येक आन्दोलन से बचना चाहते हैं।

भगत सिंह की दृष्टि फाँसीघर की काल-कोठरी में स्फटिक की तरह साफ है और एक्सरे की तरह अन्तर्दर्शी है। समय का जो प्रवाह बह रहा है, वह उस के नेता भी हैं और कमाल है कि तट पर बैठे एक निर्लिप्त दर्शक भी हैं। इसी पत्र में उन के शब्द हैं —

"यदि हम इस क्षेत्र में न उतरे होते तो क्या कोई भी क्रान्तिकारी कार्य कदापि न हुआ होता? यदि आप ऐसा सोचते हैं तो भूल है। यद्यपि यह ठीक है कि हम भी वातावरण को बदलने में बड़ी सीमा तक सहायक सिद्ध हुए हैं तथापि हम तो केवल अपने समय की आवश्यकता की उपज हैं। मैं तो यह भी कहूँगा कि साम्यवाद का जन्मदाता मार्क्स वास्तव में इस विचार को जन्म देने वाला नहीं था, वरन् युरॅप की औद्योगिक क्रान्ति ने ही एक विशेष विचार वाले व्यक्ति उत्पन्न किये थे, जिन में मार्क्स भी एक था। अपने स्थान पर मार्क्स भी निस्सन्देह कुछ सीमा तक समय के चक्र को एक विशेष प्रकार की गति देने में अवश्य सहायक सिद्ध हुआ था। मैं ने और आप ने इस देश में समाजवाद या साम्यवाद के विचारों को जन्म नहीं दिया है, वरन यह तो हमारे ऊपर हमारे समय एवं परिस्थिति के प्रभाव का परिणाम है। निस्सन्देह हम ने इन विचारों का प्रचार करने के लिए कुछ साधारण एवं तुच्छ कार्य अवश्य किये हैं।"

मैं जब जब इस पत्र को पढ़ती हूँ, मुग्ध भाव से सोचती हूँ यह पत्र है या भगत सिंह के महान व्यक्तित्व का फोटो है ? और जब-जब उन परिस्थितियों को याद करती हूँ, जिन में यह लिखा गया है तो स्तब्ध भाव से सोचती हूँ क्या वे मानसिक रूप से उसी स्थिति में पहुँचे हुए मनुष्य नहीं थे जिसे गीता में मनुष्यता की सर्वश्रेष्ठ परिणति वाली स्थिति कहा गया है और वह स्थिति प्राप्त करने वाले को स्थितप्रज्ञ ?

जब यह सब हो रहा था २५ जनवरी १९३१ को वायसराय ने गांधी जी कांग्रेस वर्किंग कमिटी के सदस्य तथा कुछ अन्य प्रमुख कांग्रेस नेताओं को जेल से छोड़ दिया। अपनी विज्ञप्ति में उन्हों ने कहा कि—(प्रथम) गोलमेज कॉन्फ्रेन्स के निर्णयों पर नेता लोग आपस में खुला विचार विनिमय कर सकें इस लिए जेल के द्वार खोल दिये गये हैं। इस घटना ने वातावरण में एक नयी चमक पैदा कर दी। इस चमक का एक रूप तो यह था कि जनता के मन में यह आशा जाग उठी कि कांग्रेस और सरकार में कोई फैसला होने वाला है और दूसरी बात यह कि उस फैसले के परिणाम-स्वरूप भगत सिंह और उन के साथियों का जीवन बच जायेगा।

१७ फरवरी १९३१ को गांधी जी वायसराय से पहली बार मिले और बातें चार घण्टे तक चली। गांधी जी एक मनुष्य की हैसियत से (उन्हीं के शब्द) मिले थे पर कांग्रेस कार्यसमिति ने उन्हें समझौते के पूर्ण अधिकार दे दिये थे इस से वातावरण में समझौते की हवा अपने शानदार रूप में बह चली। भगत सिंह तो समझौते की बात तब कह और लिख चुके थे जब कहीं दूर पास भी समझौते की गन्ध न थी फिर उस समय वे बस तटस्थ रह सकते थे। उन्हों ने अपनी काल कोठरी के सचिवालय से २ फरवरी १९३१ को गांधी जी के छूटने के कुल आठवें दिन दल में युवकों के नाम एक सन्देश लिख कर भेजा उस के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार हैं—

इस समय हमारा आन्दोलन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों में से गुजर रहा है। एक साल के कठोर संग्राम के बाद गोलमेज कॉन्फ्रेन्स ने हमारे सामने शासन विधान में परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बातें पेश की हैं और कॉंग्रेस के नेताओं को निमन्त्रण दिया है कि वे आ कर शासन विधान तैयार करने के काम में मदद दें। कॉंग्रेस के नेता इस हालत में आन्दोलन को स्थगित कर देने के लिए उद्यत दिखाई देते हैं। वे लोग आन्दोलन स्थगित करने के हक में फैसला करेंगे या उस के खिलाफ यह बात हमारे लिए महत्त्व नहीं रखता। यह बात निश्चित है कि वर्तमान आन्दोलन का अन्त किसी न किसी प्रकार के समझौते के रूप में होना लाजमी है। यह दूसरी बात है कि समझौता जल्दी हो जाय या देर में हो।

वस्तुतः समझौता कोई ऐसा हेय और निन्दनीय वस्तु नहीं है जैसा कि साधारणतया हम लोग समझते हैं बल्कि राजनैतिक संग्रामों का समझौता एक आवश्यक अंग है। कोई भी कौम जो किसी अत्याचारी शासन के विरुद्ध खड़ी होती है यह जरूरी है कि वह प्रारम्भ में असफल हो, और अपनी लम्बी जद्दो जहद के

मध्यकाल में इस प्रकार के समझौतो के जरिये कुछ राजनैतिक सुधार हासिल करती जाये, परन्तु वह अपनी चढ़ाई की आखिरी मंजिल तक पहुँचते-पहुँचते अपनी ताकतो को इतना संगठित और दृढ़ कर देती है कि उस का दुश्मन पर आखिरी हमला ऐसा जोरदार होता है कि शासक लोगो की ताकते उन के उस वार के सामने चकना-चूर हो कर गिर पड़ती है। ऐसा भी होता है कि उस वक्त उसे दुश्मन के साथ कोई समझौता कर लेना पड़े।

जिस बात को मैं बताना चाहता हूँ वह यह है कि समझौता भी ऐसा हथियार है जिसे राजनैतिक जद्दो-जहद के बीच मे कदम-कदम पर इस्तेमाल करना आवश्यक हो जाता है। यह इस लिए कि एक कठिन लड़ाई से थकी हुई कौम को थोड़ी देर के लिए आराम मिल सके और वह अगले युद्ध के लिए अधिक ताकत के साथ तैयार हो सके। इन सारे समझौतो के बावजूद जिस चीज को हमे नही भूलना चाहिए वह हमारा आदर्श है, जो हमेशा हमारे सामने रहना चाहिए।

भारत की वर्तमान लड़ाई ज़्यादातर मध्य श्रेणी के लोगो के बलबूते पर लड़ी जा रही है, जिस का लक्ष्य बहुत सीमित है। कॉग्रेस दुकानदारो और पूँजीपतियो के जरिये इंग्लैण्ड पर अधिक दबाव डाल कर कुछ अधिकार लेना चाहती है, परन्तु जहाँ तक देश के करोडो मजदूरो और किसानों का सम्बन्ध है, उन का उद्धार इनने से नही हो सकता। यदि देश को लड़ाई लड़नी हो तो मजदूरो, किसानों, और सामान्य जनता को आगे लाना होगा, उन्हे लड़ाई के लिए सगठित करना होगा। नेता उन्हे आगे लाने के लिए अभी तक कुछ नही कर सके है। इन किसानो को विदेशी हुकूमत के जुए के साथ-साथ भूमिपतियों के जुए से भी उद्धार पाना है, परन्तु कॉग्रेस का उद्देश्य यह नही है। इस लिए मै कहता हूँ कि कॉग्रेस के लोग पूर्ण क्रान्ति नहीं चाहते। मै यह भी कहता हूँ कि कॉग्रेस का आन्दोलन किसी-न-किसी समझौते या असफलता के रूप में खत्म हो जायेगा।"

इसी सन्देश मे उन्हो ने नये शासन-विधान को परखने के लिए तीन कसौटियाँ दी—१ शासन की जिम्मेदारियाँ कहाँ तक भारतवासियो को सौपी जाती है, २ शासन-विधान को चलाने के लिए किस प्रकार की सरकार बनायी जाती है और उस मे हिस्सा लेने का आम जनता को कहाँ तक मौका मिलता है, ३ भविष्य मे उस से क्या आशाएँ की जा सकती है और उस पर कहाँ तक प्रतिबन्ध लगाये जाते है ?

समझौते के सम्बन्ध मे गहरा विश्लेषण करते हुए उन्हो ने कहा—"इन सब अवस्थाओं पर विचार कर के मै इस परिणाम पर पहुंचा हूँ कि सब से पहले हमें सारी अवस्थाओ का चित्र साफ तौर पर अपने सामने अंकित कर लेना चाहिए। मैं यह मानता हूँ कि समझौते का अर्थ कभी आत्मसमर्पण या पराजय स्वीकार करना नहीं, किन्तु एक कदम आगे बढ़ना और फिर कुछ आराम करना है। साथ ही यह भी समझ

रही है। नम्रता के साथ कहूँ, भारत में समाजवाद के प्रथम उद्घोषक भगत सिंह इस सन्दर्भ में समाजवादी शासन के प्रथम विधाता महान् लेनिन के स्तर से बोले हैं और उन के बोलने की शैली भी लेनिन की विवेचनात्मक शैली का प्रतिरूप हो उठी है। मन इस कल्पना से सम्मोहित और अभिभूत हो उठता है कि परिस्थितियाँ उन्हें जीने देतीं, तो वे भारत के लेनिन ही सिद्ध होते।"

हैं, मगर मुझे खयाल नहीं है कि उन के बारे में निश्चित खबर हो। मुझे यह भी पता नहीं वे मर गये है या जीते है।"

इस के कुछ दिन बाद सरदार अजीत सिंह का पत्र किसी दूसरे व्यक्ति की मार्फत मिल गया था। वे ब्राजील मे थे और यद्यपि उन्हे भगत सिंह के बारे मे कुछ पता न था, फिर भी यह एक अद्भुत बात है कि जैसे भगत सिंह की उन में दिलचस्पी थी, उन की भी भगत सिंह मे दिलचस्पी थी। पत्र में लिखा था—"अगर भगत सिंह की शिक्षा पूरी हो चुकी हो, वे उस मे निमट चुके हो, तो उन्हे ब्राजील भेज दिया जाये।" भगत सिंह ने प्रयत्न किया था कि उन के छोटे भाई कुलबीर सिंह ब्राजील आ जायें, पर यह सम्भव न हो सका। बहरहाल काल-कोठरी में रहते और फाँसी की प्रतीक्षा करते समय भी उन्हे सरदार अजीत सिंह मे बेहद दिलचस्पी थी। एक क्रान्तिकारी दूसरे क्रान्तिकारी के ध्यान मे रमलीन था। ठीक भी है, क्रान्ति की जो वेदी भगत सिंह के द्वारा हवनकुण्ड का रूप ले रही थी, उस की पहली समिधाएँ तो सरदार अजीत सिंह ने ही रखी थी।

लाला पिण्डीदास जी के शब्दो मे—"मैं भगत सिंह से आखिरी बार मिला तो पूछा—'कहो भगत, कोई आखिरी ख़्वाहिश, कोई आखिरी पयाम?' भगत बोला—'चाचा जी, सिर्फ एक ख़्वाहिश है। काश, कोई मुझे मरने से पहले मेरे महबूब चाचा (सरदार अजीत सिंह) से मिला दे, जिन को बे-देखे मैं उन का आशिक बना, जिन के नक्शे-कदम (पद-चिह्न) पर चल कर मैं ने इस अश्क की वादी—(आँसुओं की भूमि) में कदम रखा और जिन के प्यार ने मुझे मंजिल तक पहुँचा दिया।' आँखों पर रूमाल रखे मैं लौट आया। मुनासिब मुकाम तक इस ख़्वाहिश को पहुँचाया गया, पर कामयाबी न हुई।"

३ मार्च १९३१ को भगत सिंह के साथ परिवार वाले अन्तिम बार मिले। मुलाकात—अपनो का अपनो से मिलना—हमेशा ही बडी बात होती है, फिर जेल में मुलाकात तो जिन्दगी की एक बरकत है, क्यो कि वह अपनो को उन अपनो से मिलाती है जो बिछुड गये हैं और यह विश्वास दिलाती है कि बिछोह अस्थायी है, बाहरी है। वे अब भी भीतरी रूप मे, मन से, एक हैं और देर-सबेर फिर एक हो कर रहेंगे, पर अन्तिम मुलाकात? इस का दर्द वही जान सकते हैं, जिन्हो ने कभी किसी अपने से अन्तिम मुलाकात की हो। सोच कर ही कलेजा फटने लगता है। दिल चाहता है कि अपने लाडले को अपने मे समा लें, छिपा ले, ले भागे, किसी की नजर न लगने दें, पर परिस्थितियाँ चाह का साथ नही देती। मन मे हजारो बातें उमडती रहती हैं, पर बाहर एक नही आती। बाहर आते है आँसू। हाय, कम्बख्त आँसू, जो आँखो को देखने भी नही देते, आखिरी बार अपने लाडले को और उन्हे डुबा लेते है अपने मे।

उस दिन की मुलाकात में माता-पिता थे, दादा जी थे, चाची थी और भाई थे। सब से अधिक अधीर थे दादा सरदार अर्जुन सिंह, जिन्हो ने इस वंश मे क्रान्ति का

पौधा रोपा था और जिस का फल उन के सामने था। वह ऐसा फल था जिसे पा कर ऐसा गौरव मिले जो देवताओं के लिए भी ईर्ष्या की वस्तु हो पर जिस के साथ इतने तेज काँटे हों कि रोम रोम में बिच्छू के डंक की तरह ज़हर भर दें।

वे भगत सिंह के पास एक बार आये और उन्हों ने उन के सिर पर इस तरह हाथ फेरा जैसे भगत सिंह एक छोटे से बालक हों। उन्हों ने बहुत-कुछ चाहा कि वे कुछ कहें पर उच्छ्वास इतना प्रबल था कि बोल कण्ठ को पार कर जीभ तक आये ज़रूर पर अधरों की कातर कपकँपी ने उन्हें शब्दों का रूप न लेने दिया और न एक भीगी फुसफुसाहट बन कर रह गये। उद्वेग इतना प्रबल था कि पास खड़े रहना असम्भव हो गया और वे दूर जा खड़े हुए—उन के भाव आँसू बन कर बराबर बहते रहे।

जिस माँ ने जन्म दिया जिन चाचियों ने गोद खिलाया, वे भी कहने भर को पास थीं पर हज़ारों लाखों मील दूर। सच भी तो है जो अपने में खुद ही खोया हुआ हो वह किसी के पास क्या होगा। जो अपने ही दुख में डूबा हुआ है वह किसी से क्या कहेगा? भाइयों के मन में कितनी स्मृतियाँ थीं मीठी-मीठी पर वे इस क्षण कितनी कड़वी लग रही थीं। बुखार के बीमार को धनिये-पोदीने की चटनी भी नीम लगती है। जिन क्षणों में हम स्वयं कड़वे हों उन में हम कौन मीठा कर सकता है?

और जिस के छिनने के दुख में सब विह्वल थे उस की क्या दशा थी। वे थे भगत सिंह और वे सत्व की भांति पूर्ण शान्त और पूर्ण प्रसन्न थे और परिवार वालों को अपना वज़न बढ़ जाने का समाचार खुशी-खुशी सुना रहे थे। उन के भीतर की ज्योति पूरी तरह जागत थी। सब का विश्वास था—अभी और भी मुलाकातें होंगी पर भगत सिंह का विश्वास था यह अन्तिम मुलाकात है। उन्हों ने अपनी माता जी से कहा— बब जी दादा जी अब ज्यादा दिन नहीं जियेंगे। आप वहाँ जा कर इन के पास ही रहना।' सब से उन्हों ने अलग-अलग बात की सब को धीरज दिया, सांत्वना दी। अन्त में बबे जी को पास बुला कर हँसते हँसते पूरी मस्ती से भर स्वर में कहा— लाश लेने आप मत आना। कुलबीर को भेज देना। कहीं आप रो पड़ीं तो लोग कहेंगे कि भगत सिंह की माँ रो रही है। इतना कह कर वे इतने ज़ोर से हँसे कि जेल-अधिकारी उन्हें फटी आँखों से देखते रह गये। सोचती हूँ यह हँसी, उन के पारिवारिक जीवन-यज्ञ का स्वस्ति-वाचन थी अखण्ड पाठ की अरदास थी जीवन-काव्य का उपसंहार थी। उन्हों ने जीवन में क्षण-क्षण समाज पर हँसी बिखेरी और राष्ट्र के आँसुओं को हँसी में बदलने के लिए अपने खून की एक-एक बूँद लगा दी। अब समाज और राष्ट्र उन की स्मृतियों पर अपने महकते फूल बरसा रहा है।

सब मिल कर लौट आये। भगत सिंह ने उसी दिन अपने छोटे भाई कुलबीर सिंह को पत्र लिखा और तब उन से छोटे भाई (उस समय उम्र १२ वर्ष) कुलतार सिंह को यह पत्र लिखा—

सेण्ट्रल जेल, लाहौर
३ मार्च १९३१

अजीज कुलतार,

आज तुम्हारी आँखों मे आँसू देख कर बहुत दु:ख हुआ। आज तुम्हारी बातों मे बहुत दर्द था, तुम्हारे आँसू मुझ से सहन नहीं होते। बर्खुरदार हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का खयाल रखना। हौसला रखना और क्या कहूँ—

उसे फ़िक्र है हरदम नया तर्ज़े जफा क्या है,
हमे यह शौक देखे सितम की इन्तहा क्या है।
दहर से क्यो खफा रहें, चर्ख का क्यो गिला करें,
सारा जहाँ अदू सही आओ मुकाबला करे॥
कोई दम का मेहमाँ हूँ, ए अहले महफिल
चराग़े सहर हूँ, बुझा चाहता हूँ।
मेरी हवा में रहेगी ख़्याल की बिजली
यह मुश्ते खाक है फ़ानी रहे, न रहे॥
अच्छा रुख़सत। खुश रहो अहले वतन, हम तो सफ़र करते है।
हौसला से रहना। नमस्ते।

तुम्हारा भाई—भगत सिंह

भगत सिंह के जीवन का यही निजी अन्तिम पत्र था, जो उन की वीरता का भी प्रतीक है और इन्सानियत का भी। इस के द्वारा वे अपने राष्ट्र की जनता को अपना सन्देश भी दे गये और शुभकामना भी। सन्देश था—'सारा जहाँ अदू सही, आओ मुकाबला करें और शुभकामना थी—'खुश रहो अहले वतन, हम तो सफर करते हे।"

■ ■

समझौता और समझौता गांधी इरविन समझौता पत्रों की हेड लाइनों पर छा गया था और पत्रों में पहले पृष्ठ पर अब उसी के समाचार छाए रहते थे। कभी खबर आती थी कि गांधी जी और वायसराय समझौते के एकदम पास पहुँच गये हैं और कभी यह कि बात में गाँठ पड़ गयी है। आशा और निराशा की आँधियाँ चल रही थीं पर सब समझौते के लिए उत्सुक थे। ३ मार्च १९३१ को जब भगत सिंह अपने परिवार वालों से अन्तिम बार मिले, तो गांधी जी रात में ढाई बजे तक वायसराय लॉर्ड इरविन और गृह-सचिव श्री इमर्सन से बातें करते रहे। बातें उलझती रहीं बातें सुलझती रहीं और ४ मार्च १९३१ की रात के अन्त में यानी ५ मार्च १९३१ की ब्रह्मवेला में कांग्रेस और अंगरेजी सरकार में समझौता हो गया। इतिहास में इसे कहा गया गांधी इरविन समझौता।

इस समझौते में १६ धाराएँ थीं। ९ वीं धारा इस प्रकार थी—"वे बन्दी छोड़ दिये जायेंगे, जो सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में ऐसे अपराधों के लिए दण्ड भोग रहे होंगे जिन में नाम मात्र की हिंसा को छोड़ कर और किसी प्रकार की हिंसा या हिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो।"

इस का साफ अर्थ था कि भगत सिंह और उन के साथियों की फाँसी रोकने का इस से कोई दूर पार भी वास्ता न था। जनता में इस से गहरी निराशा छा गयी पर गांधी जी ने ५ मार्च १९३१ की शाम को ही पत्रकार सम्मेलन में जिस में अमेरिकी बरतानवी और भारतीय पत्रकार थे अपने वक्तव्य में कहा— "व्यक्तिगत रूप से उन लोगों के जो हिंसा करने के दोषी हैं जेल में भेजे जाने की प्रणाली पर मेरा विश्वास नहीं है। मेरा विश्वास है कि वे लोग महसूस करेंगे कि न्यायपूर्वक उन की रिहाई के लिए नहीं कह सकता था लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि मुझे अथवा कार्यकारिणी के सदस्यों को उन का ख्याल नहीं है।"

यह बात जनता में चर्चा का और क्रान्तिकारियों में रोष का विषय रही है कि गांधी जी सरकार के साथ समझौते की स्थिति होते भी भगत सिंह और उन के साथियों की फाँसी क्यों नहीं रुकवा सके? बात को

उस की जगह तक पहुँचाने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि समझौते से पहले और समझौते के वाद भी गान्धी जी ने भगत सिंह और उन के साथियो की जीवन-रक्षा के लिए निजी तौर पर प्रयत्न किया, पर वे सफल नही हो सके। जो हो, गान्धी जी फाँसी रुकवाने के लिए अपने ढग पर प्रयत्न कर रहे थे और समझौते के कारण देश मे उन का जो प्रभाव वढ गया था, उस के कारण इस सम्वन्ध मे एक मात्र वे ही जनता की आशा के केन्द्र-विन्दु थे।

जिस ट्रिव्यूनल ने भगत सिंह और उन के साथियो को फाँसी की सजा दी थी, अपना काम पूरा कर वह समाप्त हो गया था। सार्ण्डस-वध और असेम्वली वम-काण्ड ने अँगरेज सरकार के मन पर क्रान्तिकारियों की धाक वैठा दी थी। इस लिए ट्रिव्यूनल के सदस्य भारत से वाहर चले गये थे, या फिर इधर-उधर हो गये थे। भगत सिंह के पिता सरदार किशन सिंह सूझ के वादशाह थे। उन्हो ने इस अवसर का तुरन्त लाभ उठाया और ऐसा कानूनी निशाना लगाया कि एक वार तो सरकार भौचक रह गयी। उन्हो ने हाईकोर्ट मे यह प्रश्न उठाया कि जो अदालत फाँसी का आदेश देती है, वही फाँसी की तारीख निश्चित कर सकती है। अव चूँकि फाँसी देने वाली अदालत विना फाँसी की तारीख़ निश्चित किये भग हो गयी है, इस लिए कोई दूसरी अदालत फाँसी की तारीख निश्चित नही कर सकती। इस का अर्थ यह है कि फाँसी अव लग ही नही सकती।

प्रश्न इतना उलझाने वाला था कि हाईकोर्ट के जस्टिस भी इस पर एकदम 'हाँ' या 'ना' न कर सके और उन्हो ने उसे विचाराधीन विपयो मे रख लिया। इस से जनता के मन मे खिचाव भी आया और आशा का भाव भी, पर कानून के ऊँचे स्तर पर यह सलाह हुई कि समझौते का अवसर है, हाईकोर्ट के सामने उलझने है और देश-भर मे फाँसी रोकने की गरमा-गरम माँग है, इस लिए यदि इस समय वायसराय को फाँसी रोकने का आदेश देने के लिए एक अच्छा वहाना दिया जाये तो सफलता निश्चित है। यह वहाना मर्सी पिटीशन—दया की प्रार्थना—ही हो सकता है, पर प्रश्न यह था—क्या भगत सिंह, जो अपील के लिए ही तैयार नही थे इस के लिए तैयार होगे। सव का ध्यान फिर श्री प्राणनाथ मेहता की ओर गया। वे इस केश मे वकील भी थे और भगत सिंह के मन मे उन के लिए एक कोमल कोना भी सुरक्षित था। दोनो की वातचीत भी श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के शब्दो मे—

"प्राणनाथ ने कहा—'गान्धी जी आप लोगो के लिए वहुत प्रयत्न कर रहे है और उन के प्रयत्न सफल हो सकते है, यदि उन्हे आप लोगो का सहयोग मिले'।

राजगुरु ने गम्भीर हो कर पूछा—'हम लोगो का सहयोग कैसा।'

प्राणनाथ ने कहा—'इतने सीरीयस न वनो राजगुरु, तुम्हारा यह रूप देख कर मुझे डर लगता हे।'

वातावरण फिर से हलका हो गया। प्राणनाथ ने कहा—'दोस्तो, तुम इस वात

या तो मानते हो कि हिंदुस्तान की आजादी बहुत दूर नहीं है।'

भगत सिंह ने कहा— जरूर, यही विश्वास तो हमारी प्रेरक शक्ति बना हुआ [illegible]

प्राणनाथ बोले— तो फिर आजाद भारत को तुम लोगों की जरूरत [illegible] अधिक होगी। नये भारत का निर्माण तुम लोगों से भी अधिक अच्छा और कौ[illegible] सकेगा।'

सुखदेव ने कहा— क्या शेखचिल्ली वाली बातें कर रहे हो प्राणनाथ। हम तो भारत की आजादी के नींव के पत्थर हैं ऊपर की इमारत तो बाद के लोग बन[illegible] उस की चिन्ता करना हमारा काम नहीं है।'

प्राणनाथ ने कहा— मेरे बहादुर दोस्तो, इस इमारत की नींव तुम्हीं ने रख[illegible] इंजीनियर नींव रखता है वही इमारत की मजबूती का ठीक अंदाजा लगा सक[illegible] ऊपर की इमारत भी तुम्हें ही बनानी होगी।'

भगत सिंह कुछ कहने ही जा रहे थे कि उन्हें रोक कर प्राणनाथ ने क[illegible] अच्छा भाइयो, पहले मेरी एक बात का जवाब दो। यह बहस बाद में होगी।

किस बात का ?

तुम तीनों का अपने जीवन पर व्यक्तिगत अधिकार है या अपने जीवन को [illegible] लोग देश की धरोहर मानते हो ?' प्राणनाथ ने पूरी गम्भीरता से प्रश्न किया।

भगत सिंह मुसकरा कर बोले—'यार वकीलों वाली बात छोड़ सीधे तौ[illegible] बता—तू कहना क्या चाहता है ?'

यही कि तुम लोगों का जीवन देश की धरोहर है और देश की जनता च[illegible] है कि तुम गांधी जी के हाथ मजबूत करने के लिए वायसराय के नाम एक प्रार्थनापत्र भेज दो।'

तीनों के मुंह एकाएक गम्भीर हो गये। सुखदेव और राजगुरु नाराजगी व[illegible] कुछ कहना चाहते थे पर भगत सिंह ने आंख के इशारे से उन्हें चुप कर दिया [illegible] शान्त स्वर में पूछा— किस तरह की दया प्रार्थना तुम चाहते हो ?'

उत्साहित हो कर प्राणनाथ ने कहा—'मेरा गलत मत समझो मेरे भारत[illegible] लोग ऐसी कोई बात नहीं चाहते जिस से तुम्हारी बहादुरी को बट्टा लगे। आज हमारी कमिटी की बैठक में एक ड्राफ्ट बनाया जायगा जो मैं कल सुबह तुम लो[illegible] पास ले कर आऊंगा।

राजगुरु और सुखदेव गुस्से में तमतमा रहे थे पर भगत सिंह ने उन्[illegible] बहला दिया और मुसकराते हुए कहा— दया की प्रार्थना तो हम भी तैयार कर रख[illegible] मगर हमारे सुखदेव ने तुम्हें एक शानदार वकील जरूर बना दिया है। यार [illegible] दोस्ती का यह एहसान भूलना नहीं।

यह १० मार्च १९३१ की बात है। दूसरे दिन जब भी प्राणनाथ अपना [illegible] ले कर पहुंचे—जिसे दोनों आन्दोलनों ने रात भर जाग कर तैयार किया था—[illegible]

देख कर भगत सिह जोरो से हँस पडे। बोले—"यार रहने भी दो अपना ड्राफ्ट, हम लोगो ने तो दया की प्रार्थना भेज भी दी है। बात यह है कि देर करना ठीक नही था।" कुछ देर यूँ ही छेडछाड रही और तब भगत सिंह ने अपना वह ड्राफ्ट उन्हे दिखाया जो सचमुच उन्हो ने उन के आने से पहले ही पजाब के गर्वनर को भेज दिया था।

उस महत्त्वपूर्ण दया-प्रार्थना के कुछ मार्मिक अंश इस प्रकार है—

"हमारे विरुद्ध सब से बड़ा दोप यह लगाया गया है कि हम ने सम्राट् जार्ज पंचम के विरुद्ध सघर्ष किया है। न्यायालय के इस निर्णय से दो बाते स्पष्ट हो जाती है—प्रथम यह कि अँगरेज जाति और भारतीय जनता के मध्य एक संघर्ष चल रहा है, दूसरी यह कि हम ने निश्चित रूप से उस युद्ध मे भाग लिया है। अतः हम युद्धबन्दी है।

हम यह कहना चाहते है कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनो पर अपना एकाधिकार रखा है। चाहे ऐसे व्यक्ति अँगरेज पूँजीपति हो या अँगरेजी शासक या सर्वथा भारतीय ही हो, उन्हो ने आपस मे मिल कर एक लूट जारी रखी हुई है। चाहे शुद्ध भारतीय पूँजीपतियो के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तो भी इस स्थिति से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

बहुत सम्भव है कि युद्ध भयंकर रूप ग्रहण कर ले। यह उस समय तक समाप्त नही होगा जब तक कि समाज का वर्त्तमान ढाँचा समाप्त नही हो जाता, प्रत्येक वस्तु मे परिवर्तन या क्रान्ति नही हो जाती। मानवी सृष्टि मे एक नवीन युग का सूत्रपात नही हो जाता।

जहाँ तक हमारे भाग्य का सम्बन्ध है, हम बड़े बलपूर्वक आप से यह कहना चाहते है कि आप ने हमें फाँसी पर लटकाने का निर्णय कर लिया है, आप ऐसा करेगे ही, आप के हाथो मे शक्ति है और आप को अधिकार भी प्राप्त है। परन्तु इस प्रकार आप जिस की लाठी उस की भैंस वाला सिद्धान्त ही अपना रहे है और आप उस पर कटिबद्ध है। हमारे अभियोग की सुनवाई इस वक्तव्य को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है, कि हम ने कभी कोई प्रार्थना नही की और अब भी हम आप से किसी प्रकार की दया की प्रार्थना नही करते। हम केवल आप से यह प्रार्थना करना चाहते है कि आप की सरकार के ही एक न्यायालय के निर्णय के अनुसार हमारे विरुद्ध युद्ध जारी रखने का अभियोग है, इस स्थिति मे हम युद्ध-बन्दी है, अतः इस आधार पर हम आप से माँग करते है कि हमारे प्रति युद्ध-बन्दियों-जैसा ही बरताव किया जाये और हमे फाँसी देने के बदले गोली से उड़ा दिया जाये।"

यह दया-प्रार्थना क्या है। यह आकाश मे टूटता हुआ मरण का धूमकेतु है। यह पृथ्वी मे उगता हुआ जीवन का कल्पवृक्ष है। इतिहास मे राणा प्रताप ने मरण की

भावना की थी। एक तरफ था दिल्ली के महाप्रतापी सम्राट अकबर का महाशक्ति, जिस के साथ व भी थे जिन्हें उन के साथ होना था और वे भी जिन्हें प्रताप के साथ होना था। बुद्धि कहता था टक्कर असम्भव है। गणित कहता था विजय असम्भव है। समझदार कहते थे—रुक जाओ। रिश्तेदार कहते थे—झुक जाओ। राणा प्रताप न बुद्धि की बात को गलत मानते थे न गणित के विरोधी थे न समझदारों का प्रतिवाद करते थे न रिश्तेदारों को इनकार, पर कहते क्या थे राणा प्रताप। कहते थे— जब मनुष्य की तरह सम्मान के साथ जीना असम्भव हो तब हम मनुष्य की तरह सम्मान के साथ मर तो सकते हैं।" बिना कहे ही शायद उन के मन में था कि मनुष्य की तरह सम्मान से मर कर हम आने वाली पीढ़ियों के लिए जीवन का द्वार खुला छोड़ें कुत्तों की तरह दुम हिला कर जीते हुए उसे बन्द न कर जायें।

भगत सिंह यही तो कर रहे थे। फाँसी के फंदे की जगह गोली का धड़ाका माँग कर वे एक नागरिक की मृत्यु को रणवीर की मृत्यु का रूप दे रहे थे। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से सहयोग लिये बिना जीवन नहीं चलता, हम दोस्तों से बहुत कुछ माँगना पड़ता ही है दुश्मनों से भी माँगना पड़ता है। भगत सिंह भी अपने दुश्मनों से माँग रहे थे। माँग मनुष्य को दीन बनाती है। पर भगत सिंह की माँग से दुश्मन ही दीन हो उठे थे।

बहुत दिन हुए मैं ने अपने कालेज में एक जादूगर का तमाशा देखा था। उस ने एक डरावना जानवर, शायद बिच्छू था— सब को दिखा कर सब के सामने एक बरतन में डाल दिया। तब सब से कहा— बरतन में हाथ डाल कर इसे बाहर निकालो। बिच्छू को निकालने के लिए कोई हाथ डालने को तैयार न हुआ। तब उस ने स्वयं हाथ डाल कर निकाला पर उस के हाथ में बिच्छू नहीं ताजा खिला हुआ फूल था। जादूगर ने वह फूल सब को दिखाया, सब ने उस की महक अनुभव की। सब जादूगर के जादू का सिक्का मान गये। क्या भगत सिंह की यह दया प्रार्थना भी एक ऐसा जादू न था जिस ने फाँसी के फंदे को विजय माला में बदल दिया। दूसरे दिन ज्यों ही यह पत्र देश के पत्रों में मुखपृष्ठ पर छपा तो देश की जनता के मन पर भगत सिंह का जादू छा गया और वे जनता के लिए पहले से भी आवश्यक हो उठे जिस तरह गोपियों के लिए कृष्ण थे।

भगत सिंह की मनोवैज्ञानिक सूझ देख कर आश्चर्य होता है। उन्हों ने असेम्बली में जो दो बम फेंके उन की तरफ हमारा ध्यान हमेशा जाता है पर उस के बाद उन्हों ने जेल के बाहर और भीतर जो बम फेंके उन के धमाके हम शायद ही कभी सुन पाये हैं। भगत सिंह ने कहा था— हमें फाँसी तब हो, जब देश की जनता पूरे उफान पर हो और उस का ध्यान पूरी तरह फाँसी पर केन्द्रित हो।'

५ मार्च १९३१ को गांधी इर्विन समझौते के फलस्वरूप जेलों से सत्याग्रही छोड़े गये। जनता ने उन्हें बड़े विजेताओं की तरह सिर-आँखों पर लिया। फूल बरसे,

जुलूस निकले, जलसे हुए, दावतो की धूम मच गयी और समाचारपत्रों के कॉलम उन के समाचारो से भर गये। साफ है कि फाँसी की चर्चा इस सब से धीमी पड गयी, कुछ इन समाचारो की चकाचौंध से और कुछ इस आशा से कि भगत सिंह की फाँसी तो अब टल ही जायेगी, पर २० मार्च १९३१ को इस पत्र ने उन सब समाचारो और विचारो को इस तरह दबा दिया, जैसे बरसात का पहला दौगड़ा उडती हुई धूल को दबा देता है। जनता समझौते के कारण जो उन्मुक्तता और उमग अनुभव कर रही थी, उस का लक्ष्य फिर अब भगत सिंह हो गये और जनता का उन्मुक्त उत्साह फिर भगत सिंह पर केन्द्रित हो गया। भगत सिंह जब जनता की उत्तेजना के चरम शिखर पर आ खडे हुए थे, तब व्यक्तिगत रूप मे कहाँ थे। उन के चरित्र का यह एक बहुत ही कोमल पहलू है। लाहौर सेण्ट्रल जेल मे गदर-पार्टी के १९१५-१६ के आन्दोलन मे जेल काटने वाले बाबे लोग (बुजुर्ग सिख) भी अपनी सजाएँ भुगत रहे थे। उन्हे न पढने को समाचारपत्र मिलते थे न राजनैतिक अध्ययन के दूसरे साधन ही। बरसो से जेल का जड जीवन बिताते हुए राजनैतिक और मानसिक दृष्टि से वे भी एक तरह जडता मे ग्रस्त हो गये थे। ये बाबे लोग कभी-कभी जेल-अधिकारियो की उदारता का लाभ उठा कर भगत सिंह तक पहुँच जाया करते थे। भगत सिंह खडे हो कर उन का स्वागत करते थे, उनका पैर छूते थे और बाबे जो कुछ कहते थे, उस से उन के लाख मतभेद हो किन्तु वे कभी प्रतिवाद न करते थे। हमेशा 'हाँ जी', 'हाँ जी' करते रहते थे और अपनी शालीनता से उन्हे पूरी तरह सन्तुष्ट-प्रसन्न कर के ही विदा करते थे। एक बार मुलाकात के समय अपने भाई सरदार कुलतार सिंह को भगत सिंह ने सब बता कर कहा था—"बाबे बेचारे वही है, जहाँ बरसो पहले थे।" भगत सिंह कितने शिष्ट थे, कितने विशिष्ट थे कि उन्हो ने कभी उन की कमियो को महत्त्व नही दिया, बल्कि उन की देशभक्ति और कुरबानी का सदैव सम्मान करते थे।

मृत्यु उन के गले लगने को बेचैन थी, तेजी से उन की ओर दौड़ी आ रही थी, हाईकोर्ट के सामने प्रस्तुत जिस अरजी से फाँसी रुकी हुई थी, उस पर विचार होने की चर्चा आरम्भ हो गयी थी, ऐसे मौके पर सरकार परिवार के लोगो को आखिरी मुलाकात के लिए बुला लेती है पर भगत सिंह से मिलने कोई न आया था। इस से दूसरे कैदियो के मन मे एक हलकी-सी किरण जगती थी—क्या गान्धी जी के प्रयत्न सफल हो रहे है। इसी पृष्ठभूमि मे भारतीय गदर आन्दोलन के नेता और अमेरिका मे बनी गदर पार्टी के प्रथम अध्यक्ष बाबा सोहन सिंह भकना ने एक दिन भगत सिंह से पूछा—"भगत सिंह, तुम्हारे कोई रिश्तेदार मिलने नही आये ?"

हमारे देश मे मनुष्य आमतौर पर परिवार मे जीता है। इस से आगे वह नाते-रिश्तेदारो मे जीता है। इस से भी आगे वह अपनी जाति-बिरादरी और व्यापार-रोजगार मे जीता है, पर भगत सिंह उन मे कहाँ थे, जो इन मे जीते है। उन का अपना जीवन था, अपने रिश्तेदार थे, अपनी जाति-बिरादरी थी, अपना व्यापार-रोजगार था। बोले—

'बाबा जी, मेरा खून का रिश्ता तो शहीदों के साथ है जैसे खुदीराम बोस, और करतार सिंह सराबा। हम एक ही खून के हैं। हमारा खून एक ही जगह से आया है और एक ही जगह जा रहा है। दूसरा रिश्ता आप लोगों से है, जिन्हों ने हमें प्रेरणा दी और जिन के साथ काल-कोठरियों में हम ने पसीना बहाया है। तीसरे रिश्तेदार वे होंगे, जो इस खून पसीने से तैयार की हुई जमीन से नयी पीढ़ी के रूप में पैदा होंगे और इस मिशन को आगे बढ़ायेंगे। इन के सिवा कौन रिश्तेदार है अपना बाबा जी !"

इस उत्तर को पढ़ता हूँ, तो सोचने लगती हैं वे उस अँधेरी एकान्त सूनी काल-कोठरी में भी अकेले कहाँ थे? वे तो शहीदों की तीन-तीन पीढ़ियों की सजी बारात के दूल्हा राजा थे! सचमुच, न जाने किन धातुओं से, उपकरणों से बना था भगत सिंह का मन!

■ ■

ईसा और सुकरात के साथ

"कावर्डस डाई मैनी टाइम्स बिफोर देयर डेथ,
दि वेलिएण्ट नैवर टेस्ट ऑव डेथ बट वन्स,
ऑव ऑल द वण्डर्स दैट आइ यट हैव हर्ड,
इट सीम्स टू मी मोर स्ट्रेंज दैट मैन शुड फीयर
सीइंग दैट डेथ ए नेसेसरी एण्ड,
विल कम, इट विल कम।"

अर्थात्—

"कायर लोग अपनी स्वाभाविक मृत्यु से पहले ही
कई बार मर जाते हैं, पर वीर लोग जीवन मे
केवल एक बार ही मृत्यु का रसास्वादन करते हैं,
मुझे सब से अधिक इसी बात का आश्चर्य है
कि मनुष्य मृत्यु से डरते है,
जब कि प्रत्येक को यह निश्चित पता है
कि वह आयेगी और अवश्य आयेगी।"

—शेक्सपियर

उस दिन २३ मार्च १९३१ का प्रभात था और भगत सिंह की जिन्दगी के २३ वर्ष, ५ महीने और २६ दिन बीत चुके थे, सत्ताईसवाँ दिन आरम्भ हो रहा था। भगत सिंह हमेशा की तरह सुबह-ही-सुबह दैनिक ट्रिब्यून पढ रहे थे। उन का ध्यान पुस्तक-परिचय स्तम्भ पर अटक गया। उस मे लेनिन के जीवन-चरित्र की आलोचना छपी थी। 'ट्रिब्यून' अब भी भगत सिंह के हाथ मे था, उन की आँखें खुली हुई थी, वे अखबार देख रहे थे, पर उन्हे उस का एक भी अक्षर दिखाई न दे रहा था। क्यो ? इस लिए कि उन का ध्यान अखबार की खबरो मे नही, लेनिन के जीवन-चरित्र मे था। वह पढने को कैसे मिले। वे उसे पढने को बेचैन हो उठे। स्वाध्याय उन की मानसिक खुराक थी। फिर लेनिन का जीवन-चरित्र। लेनिन ने रूस मे समाजवादी समाज-व्यवस्था का शिलान्यास किया था। भगत सिंह ने भारत मे समाजवादी समाज-व्यवस्था की स्थापना का पहला दिवा-स्वप्न देखा था, असेम्बली बम-काण्ड के बयान मे उस की पहली सार्वजनिक उद्घोषणा की थी और

काल-कोठरी म बठे बठे अपने देश की जनता क लिए उस की रूप रखा तयार की था। लेनिन का जावन चरित्र पना तो उन के लिए लेनिन स मुलाकात करना था।

मृत्यु घुमन्ती आँधी की तरह उन की ओर बढ़ी चली आ रही थी। उन्हें ठाक पता था कि वह उन की काल-कोठरी के आस-पास आ पहुँची है। एस म हर आत्मा अपनो स मलाकात करना चाहता है। लेनिन स बढ़ कर भगत सिंह का अपना कौन था। व उन क जीवन चरित्र क द्वारा उन स मलाकात करना चाहत थ। उन्हा न अपना काल-कोठरी के सचिवालय का वायरलेस काम म लिया यानी एक जेल क वाडर द्वारा अपने मित्र और वकील श्री प्राणनाथ मेहता के पास गुप्त पत्र भेजा। अन्तिम बसी भत के बहाने तुरत मन से मिलो पर लेनिन का जीवन चरित्र लाना न भूलना।

जब श्री प्राणनाथ लेनिन का जीवन चरित्र खोज रहे थे हाइकाट न सरदार किशन सिंह का वह प्राथना पत्र खारिज कर दिया और सरकारी वकील कार्डन नाड न हाईकोट से फाँसी दन का परवाना भी हाथो-हाथ ले लिया। बात का पूरा तरह गुप्त रखा गया था पर सरदार किशन सिंह की अपना सी० आई० डी० हर जगह थी। बात खुल गयी और यह साफ दीखन लगा कि कल भगत सिंह और उन के साथियों को फासी लग जायगी। जनता जल की और उमड पडी पर आखिरी मुलाकात की जुस्तजू म सरदार किशन सिंह और परिवार क दूसरे लोग भी जेल क बाहर उपस्थित थे। सरदार जी ने जिस दूरदर्शिता का परिचय दिया, उस का वर्णन सरदार किशन सिंह के अध्याय में हो चुका है।

क्या थी भगत सिंह की जिन्दगी? कसे थे भगत सिंह? जब माता पिता आखिरी मलाकात के लिए जेल क बाहर सरकारी अधिकारियों से जूझ रहे थ भगत सिंह लेनिन से आखिरी मलाकात के लिए उत्सुक थे। श्री प्राणनाथ इन्हीं घड़ियो म भगत सिंह की काल-कोठरी म पहुचे। दोनो की मुलाकात उन्ही के शब्दो में —

"उस दिन मै लगभग एक घण्टा भगत सिंह की कोठरी में उन क पास रहा। मैं बहुत बार उसी स्थान पर उन से मिल चुका था। उन की भूख हड़तालों पुलिस के साथ और अदालत क भीतर साहसिक सघर्ष को अपनी आँखों स देख चुका था परन्तु मैं ने यह कभी अनुभव नहा किया था कि वे इतन बहादुर साहसी और महान् हैं। म जानता था और वे भी जानत थे कि मृत्यु के क्षण निकट आ रहे है घड़ी की सुइयाँ फाँसी क समय की ओर तेजी से बढ़ रही है पर इस के बावजूद मैं ने उन्हें प्रसन्न मुद्रा में पाया। उन क चेहरे पर रौनक ज्यों की त्यों थी और जब मैं उन क पास पहुँचा वे पिंजर में बन्द शेर की तरह टहल रह थ।

मर कोठरी में पैर रखत ही उन्हों न अपन खास लहजे में कहा—आप वह पुस्तक ले आय? मैं न क्रान्तिकारी लेनिन चुपके से उन्हें थमा दी, उसे देख कर वे बहुत प्रसन्न हुए।

मैं ने कहा—'देश क लिए अपना सन्देश दीजिए।'

बिना सोचे तुरन्त बोले—'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद, इन्कलाब जिन्दाबाद।'

मैं ने भगत सिंह की मनोभावनाओं को जानने के लिए पूछा—'आज आप कैसा महसूस कर रहे हैं?'

उनका संक्षिप्त उत्तर था—'मैं बिलकुल प्रसन्न हूँ।' मैं ने पूछा—'आप की अन्तिम इच्छा क्या है?' उन का उत्तर था—'बस यही कि फिर जन्म लूँ और मातृ-भूमि की और अधिक सेवा करूँ।' उन्हो ने मुकदमे मे दिलचस्पी लेने वाले नेताओ को अपनी कृतज्ञता और अपने मित्रों—खास कर फरार साथियो के लिए शुभकामनाएँ दीं। अजीब बात यह थी कि मृत्यु के वातावरण से मेरी आवाज मे कँपकँपी थी, पर भगत सिंह तन-मन से पूर्ण स्वस्थ थे। वे इतने निश्चिन्त थे कि मृत्यु के प्रति उन की निर्भीकता और निर्लिप्तता को देख कर उन के मनुष्य नहीं, देवता होने का सन्देह होता था।"

एक दूसरे एडवोकेट श्री बलजीत सिंह के शब्दो मे—"जब मैं अन्तिम बार जेल मे भगत सिंह से मिलने गया, तो मेरा मन परेशान था। जेल के असिस्टेण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कहा—'फाँसी भगत सिंह को लगने वाली है, पर घबराये हुए आप हैं।' मेरा गला भर्राया हुआ था। मैं खड़ा-खड़ा भगत सिंह को ताकता रहा, परन्तु भगत सिंह का आत्मसंयम तो देखिए कि उन्हो ने मेरे कर्त्तव्य का मुझे स्मरण कराया। बोले—'फाँसी तो हमारे काम का एक स्वाभाविक परिणाम है। मैं प्रसन्न हूँ, शान्त हूँ, मेरा कर्त्तव्य समाप्त हो गया है। अब सरदार बलजीत सिंह का कर्त्तव्य आरम्भ होता है।' मैं आश्चर्य से उन की ओर देखता रह गया। भगत सिंह के कारण लाहौर की सेण्ट्रल जेल एक तीर्थ हो गयी थी, जहाँ झुण्ड के झुण्ड लोग उन के दर्शनों के लिए आते थे।"

भगत सिंह जब सब कुछ जानते हुए भी इतने निश्चिन्त थे, लाहौर सेण्ट्रल जेल मे एक आदमी बहुत बेचैन था। उस का दिल उमड़ा आ रहा था। उस के शब्द थे "आप नहीं जानते कि भगत सिंह मेरे लिए क्या है।" विह्वलता की चरम विभोरता मे उस के मुँह से यह भी निकली —"कौन जान सकता है कि मुझ पर इस समय क्या बीत रही है।" ये लाहौर सेण्ट्रल जेल के बड़े जेलर खान बहादुर मोहम्मद अकबर थे। इन की चर्चा रोक कर हम एक घटना पर आयें

"सरदार, आप एक सच्चे इन्कलाबी (क्रान्तिकारी) की हैसियत से बताये कि क्या आप चाहते है कि आप को बचा लिया जाये। इस आख़िरी वक्त मे भी शायद कुछ हो सकता है।" चौदह नम्बर के साथियो ने यह परचा भगत सिंह को भेजा। भगत सिंह के रोम-रोम मे एक चुलबुली उत्सुकता छा गयी, पर क्षण-भर में ही वे गम्भीर हो गये। उन्हो ने अपने साथियो को एक पत्र लिख भेजा —

"जिन्दा रहने की ख्वाइश कुदरती तौर पर मुझ मे भी होनी चाहिए। मैं इसे छिपाना नहीं चाहता, लेकिन मेरा जिन्दा रहना मशरूत (एक शर्त पर) है। मैं

कैद होकर या पाबन्द होकर जिन्दा रहना नहीं चाहता।

मेरा नाम हिन्दुस्तानी इन्कलाब पार्टी (भारतीय क्रान्ति) का निशान (मध्य बिन्दु) बन चुका है और इन्कलाब पसन्द पार्टी (भारतीय क्रान्तिदल) के आदर्शों और बलिदानों ने मुझे बहुत ऊँचा कर दिया है। इतना ऊँचा कि जिन्दा रहने की सूरत में इस से ऊँचा मैं हरगिज नहीं हो सकता।

आज मेरी कमजोरियाँ लोगों के सामने नहीं हैं। अगर मैं फाँसी से बच गया तो वह जाहिर हो जायेंगी और इन्कलाब का निशान मद्धिम पड़ जायगा या शायद मिट ही जाय, लेकिन मेरे दिलेराना ढंग से हँसते हँसते फाँसी पाने की सूरत में हिन्दुस्तानी मातायें अपने बच्चों के भगत सिंह बनने की आरजू किया करेंगी। और देश की आजादी के लिए बलिदान होने वालों की तादाद इतनी बढ़ जायगी कि इन्कलाब को रोकना इम्पीरियलिज्म (साम्राज्यवाद) की तमामतर (सम्पूर्ण) शैतानी शक्तियों (राक्षसी शक्तियों) के बस की बात न रहेगी।

हाँ, एक विचार आज भी चुटकी लेता है। देश और इन्सानियत के लिए जो कुछ करने की हसरतें मेरे दिल में थीं उन का हजारवाँ हिस्सा भी पूरा न कर पाया। अगर जिन्दा रह सकता, तो शायद इन को पूरा करने का मौका मिलता और मैं अपनी हसरतें पूरी कर सकता।

इस के सिवा कोई लालच मेरे दिल में फाँसी से बच रहने के लिए कभी नहीं आया। मुझ से ज्यादा खुश किस्मत कौन होगा? मुझे आजकल अपने आप पर बहुत नाज है। मुझे अब कोई ख्वाहिश बाकी नहीं है। अब तो बड़ी बेताबी से आखिरी इम्तहान का इन्तजार है। आरजू है कि यह और करीब हो जाय।

—आप का साथी भगत सिंह"

भगत सिंह ने बहुत-कुछ लिखा है, बहुत-कुछ कहा है और बहुत-कुछ किया है पर यह पत्र इस दृष्टि से अनुपम है कि इस में भगत सिंह के कारनामों, उन की कामनाओं और उन के इरादों का पूरा रेखाचित्र एक ही जगह हमें मिल जाता है और वे अपनी पूरी ऊंचाइयों में हमारे सामने आ जाते हैं।

ईसा को सलीब पर टाँग दिया गया था और इस तरह सत्ताधारियों ने अपनी शक्ति की हुंकार की थी। तब सलीब पर टँगे टँगे उन्हों ने कहा था— 'हे प्रभु, इन्हें क्षमा कर, क्या कि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।' इस एक वाक्य ने सत्ताधारियों को अपराधियों के कटघरे में खड़ा कर दयनीय बना दिया था और अपराधियों की सूची में लिखे ईसा को महान।

सत्ताधारियों ने सुकरात को गिरफ्तार कर विषपान का दण्ड घोषित किया था। जब वह बन्दी गृह में जल्लाद की प्रतीक्षा कर रहे थे, उन के शिष्यों ने उन्हें भगा ले जाने की योजना बनायी थी, पर जब सुकरात से भाग चलने को कहा गया तो उन्हों ने कहा— 'क्या तुम चाहते हो कि मैं जीवन बचाने के लिए यहाँ से भाग कर यह सिद्ध

करूँ कि मेरे द्वारा प्रचारित सिद्धान्त झूठे है।" इसी एक वाक्य ने मौत को ही नही, उन्हे भी जिन के हाथ मे सुकरात की मौत थी, एकदम हीन और सुकरात को महान् बना दिया था।

क्या भगत सिंह का यह अन्तिम परचा, अन्तिम लेखन और अन्तिम चिन्तन उन्हे भी ईसा और सुकरात की पक्ति मे खडा नही कर देता और ये जीवन-मरण के एक महान् खिलाडी के रूप मे हमारे सामने नही आ जाते ?

जो आदमी साथियो का परचा लाया था, वही भगत सिह का परचा ले कर चल पडा। उसे बुला कर भगत सिह ने कहा—"उन से कहना, यारो, बातें तो बहुत हो ली, अब रसगुल्ले तो खिला दो!" थोडी ही देर मे रसगुल्ले आ गये। भगत सिंह मस्ती से उन्हे खाने लगे। यही उन का अन्तिम भोजन था। सूरज आकाश के बीचो-बीच अपनी पूरी ऊँचाई पर जा पहुँचा था और भगत सिंह भी अपने प्रताप की पूरी ऊँचाई पर जा पहुँचे थे।

सब कैदी इस समय बाहर थे। असिस्टेण्ट जेलर ने सब से अपनी-अपनी जगह बन्द हो जाने को कहा, पर यह बन्द होने का तो समय नही था। अभी तो पूरी तरह दोपहरी भी न ढली थी। वे चौंके—क्या बात है ? हमे बन्द होना चाहिए या नही ?

तभी बडे जेलर मुहम्मद अकबर अकेले चौदह नम्बर की बैरक के पास आ कर खडे हो गये। बेहद तनाव था उन मे। उन के भीतर जाने कैसा अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ था। उन के मुँह से आप-ही-आप निकला—"हाँ, बन्द न हो, जो होगा मैं देख लूँगा।" इसी स्थिति मे वे लौट गये। इतिहास मौन है कि साथियो के इस प्रश्न की कि 'सरदार क्या तुम बचना चाहते हो ?' पृष्ठभूमि क्या थी, पर एक प्रश्न ही और खडा हो जाता है—क्या इस पृष्ठभूमि मे कही दूर पार मुहम्मद अकबर का कोई सकेत था ?

सब कैदी अपनी-अपनी जगह बन्द हो गये। जो कभी नही हुआ था, यह वह हो रहा था कि सन्ध्या के समय बन्द होने वाली जेल दोपहर को ही बन्द हो गयी। सूरज आकाश के मध्य मे था, पर यह दोपहर कहाँ थी ? यह इतिहास की सन्ध्या थी, यह भगत सिह के जीवन की सन्ध्या थी। इस सन्ध्या मे एक सितारा दिखाई दिया। यह विश्वास का सितारा था—एक जेल वार्डर के विश्वास का सितारा, एक क्रान्तिकारी के विश्वास का सितारा।

श्री वीरेन्द्र, (सम्पादक 'प्रताप') के शब्दो मे—"जिस दिन भगत सिंह, सुख-देव, राजगुरु को फाँसी के तख्ते पर लटकाया गया, मैं भी लाहौर की सेन्ट्रल जेल मे बन्द था। फाँसी से पहले एक ऐसी घटना हुई, जो मेरे दिल और दिमाग पर हमेशा के लिए अपना प्रभाव छोड गयी कि सरदार भगत सिंह किस मजबूत इरादे के इनसान थे ?

लाहौर सेण्ट्रल जेल मे उन दिनो चीफ वार्डर एक रिटायर्ड फौजी हवलदार सरदार चतर सिंह था। तीन बजे के लगभग उसे यह सूचना दी गयी कि आज शाम

को इन तीनों को फाँसी दे दी जायगी, इस लिए वह अपने हिस्से की व्यवस्था पूरी कर ले। घार सिंह एक मधुर स्वभाव और ईश्वर भक्त मनुष्य था। गुरुद्वारे में वह गुरुवाणी का पाठ किया करता था। उसे जब मालूम हुआ कि भगत सिंह की जिन्दगी के कुछ घण्टे ही बाकी हैं, तो वह सरदार भगत सिंह के पास गया और कहने लगा—बेटा अब तो आखिरी वक्त आ पहुँचा है। मैं तुम्हारे बाप के बराबर हूँ। मेरी एक बात मान लो।

सरदार भगत सिंह ने हँस कर कहा, 'कहिए क्या हुक्म है?' सरदार चतर सिंह ने जवाब दिया कि—'मेरी सिर्फ एक दरख्वास्त है कि अब आखिरी वक्त में तो वाहे गुरु का नाम ले लो और गुरुवाणी का पाठ कर लो। यह लो गुटका तुम्हारे लिए लाया हूँ।'

सरदार भगत सिंह जोर से हँस पड़े। तब कहा— आप की इच्छा पूरी करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी अगर कुछ समय पहले आप कहते। अब जब कि आखिरी वक्त आ गया है मैं परमात्मा को याद करूँ तो वे कहेंगे कि यह बुज़दिल है। तमाम उम्र तो इसने मुझे याद किया नहीं अब मौत सामने नज़र आने लगी है तो मुझे याद करने लगा है। इस लिए बेहतर यही होगा कि मैंने जिस तरह पहले अपनी ज़िन्दगी गुज़ारी है, उसी तरह मुझे इस दुनिया से जाने दीजिए। मुझ पर यह इल्ज़ाम तो कई लोग लगायेंगे कि मैं नास्तिक था और मैंने परमात्मा में विश्वास नहीं किया, लेकिन यह तो कोई न कहेगा कि भगत सिंह बुज़दिल और बेईमान भी था और आखिरी वक्त मौत को सामने देख कर उस के पाँव लड़खड़ाने लगे।

नहीं, उन के पैर नहीं लड़खड़ाये और वे उन में थे ही कहाँ जिन के पैर लड़खड़ा जाया करते हैं? फिर उन्हें इस समय लड़खड़ाने की फुरसत ही कहाँ थी? वे तो अपने सब से बड़े दोस्त से मुलाकात कर रहे थे। श्री प्राणनाथ उन्हें लेनिन का जो जीवन चरित्र दे गये थे, वे उसे पढ़ रहे थे। इस के उन्होंने अभी कुछ पन्ने ही पढ़े थे कि उन की काल-कोठरी का ताला खुला। जेल के अधिकारी अपनी चमकदार युनिफॉर्म पहने खड़े थे—'सरदार जी, फाँसी लगाने का हुक्म आ गया है आप तैयार हो जायें।"

भगत सिंह के दाहिने हाथ में पुस्तक थी। उन्होंने पुस्तक पर से बिना आँख उठाये बायाँ हाथ उन लोगों की ओर उठा दिया—'ठहरो, एक क्रान्तिकारी दूसरे क्रान्तिकारी से मिल रहा है। आवाज़ में कड़क तो थी ही क्रान्तिकारी दोस्त से मिलने की ललक भी थी। भय और उदासी के भाव तो कहीं दूर पार भी न थे। जेल-अधिकारियों के लिए ऐसे स्वर अनजाने थे। कुछ पैराग्राफ पढ़ कर भगत सिंह ने पुस्तक छत की ओर उछाल दी और उचक कर खड़े हो गये— चलो! काल-कोठरी में कई चेहरे थे। इन में जेल-अधिकारियों के चेहरे थे जिन में किसी की जान लेने की शक्ति थी और एक बन्दी का भी चेहरा था, जो मरने जा रहा था। सत्ताधारियों के चेहरे उदास

थे, सत्ताहीन का चेहरा खुशी से दमक रहा था।

"हमारे हाथो में हथकडियाँ न लगायी जायें और हमारे चेहरो पर कण्टोप न ढँके जायें।" भगत सिह की यह वात मान ली गयी। भगत सिंह ने वहुत ही भाव-विभोर हो कर अपनी कोठरी को एक वार वहुत प्यार से निहारा। शायद वुद्ध ने घर छोडते समय अपनी सोयी हुई यशोधरा को भी ऐसे ही लाड से निहारा होगा!—और वे कोठरी से वाहर आ गये। सुखदेव और राजगुरु भी अपनी कोठरियो से आ गये थे। तीनो ने एक-दूसरे को देखा और गले लगाया।

अव भगत सिंह वीच मे थे, सुखदेव उन के वाये और राजगुरु दायें। भगत सिंह ने अपनी दायी भुजा राजगुरु की वायी भुजा मे डाल ली और वायी भुजा सुखदेव की दायी भुजा मे। क्षण-भर तीनो रुके और तव भगत सिंह ने गाना आरम्भ किया—

"दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उलफत,
मेरी मिट्टी से भी खुशवू-ए-वतन आयेगी!"

पलक झपकते तीनो स्वर एक हो गये। इस सम्मिलित स्वर मे कण्ठो का माधुर्य था, हृदयो का सारस्य था, उल्लास की ऊँचाई थी, तीनो झूम कर गा रहे थे। वातावरण मे चारो ओर अवसर की उदासी थी, पर इन के आसपास रोमाचित उल्लास था। ये तीनो इस तरह एकाकार और एकाग्र हो कर खडे थे, जैसे किसी सुनसान मे एक वडा दीप प्रज्वलित हो।

आगे-आगे कुछ वार्डर चले, अगल-वगल जेल-अधिकारी, पीछे कुछ और वार्डर और वीच मे क्रान्ति के अमर पुत्र अपने गीत की लहर मे डूवे हुए—

"दिल से निकलेगी न मर कर भी वतन की उलफत,
मेरी मिट्टी से भी खुशवू-ए-वतन आयेगी!"

वार्डर ने आगे वढ कर फाँसी का काला दरवाजा खोला। भीतर लाहौर का अँगरेज डिप्टी कॅमिश्नर नियमानुसार खडा था। वह इन तीनो को खुले देख कर जरा परेशान हुआ, पर मुहम्मद अकवर ने उन्हे आश्वस्त कर दिया। तभी भगत सिंह उन की ओर मुखातिव हुए। उन की आँखो मे खुशी की शान्ति थी, होठो पर मित्रता की मुसकराहट और आवाज मे एक राष्ट्रपुरुष-जैसी गम्भीरता। वोले—"वेल मिस्टर मैजिस्ट्रेट, यू आर फार्चुनेट टु वि एवल टुडे टु सी हाऊ इण्डियन रेवोल्यूशनरीज कैन एम्ब्रेस डेथ विद प्लेजर फॉर दि सेक ऑव देयर सुप्रीम आइडियल" अर्थात्—मैजिस्ट्रेट महोदय, आप भाग्यशाली है कि आज आप अपनी आँखों से यह देखने का अवसर पा रहे है कि भारत के क्रान्तिकारी किस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक अपने सर्वोच्च आदर्श के लिए मृत्यु का आलिंगन कर सकते है।"

डिप्टी कॅमिश्नर भगत सिंह के स्वर, शव्द और स्वरूप मे व्याप्त सचाई से प्रभावित हो पानी-पानी हो गया। अव भगत सिंह और उन के साथी फाँसी मंच की सीढियो पर चढ रहे थे। सचमुच इस मंच ने ऐसे पैर कभी न देखे थे, जिन मे न

कँपकपी था, न लड़खड़ाहट और जो तरुणाई की सम्पूर्ण मचमचाहट के साथ वहाँ आ गये थे। तीन फन्दे लटक रहे थे तीनों वीर उसी क्रम से उन के नीचे खड़े हो गये— बीच में भगत सिंह बायें सुखदेव दायें राजगुरु। तीनों एक साथ गरजे— "इन्कलाब ज़िन्दाबाद, साम्राज्यवाद मुर्दाबाद।"

तीनों ने अपना अपना फन्दा पकड़ा और उसे चूम कर अपने ही हाथ से गले में डाल लिया। भगत सिंह ने पास खड़े जल्लाद से कहा— कृपा कर अब इन फन्दों को आप ठीक कर लें।' जल्लाद ने ऐसे लोग कब देखे थे ऐसे स्वर कब सुने थे। काँपते हाथों और डबडबाती आँखों उस ने फन्दे ठीक किये नीचे आ कर चर्खी घुमायी तख्ता गिरा और तीनों वीर भारतमाता को अर्पित हो गये। यह सन्ध्या के ७ बजकर ३३ मिनिट का समय था।

जेल का हर जंगला जेल में बन्द अन्य सब कैदियों के 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' के नारों से टकरा रहा था पर इन नारों को जेल के बड़े दरवाज़े पर फहराते यूनियन जैक ने नहीं सुना, जिसे आज से कुल सोलह वर्ष चार महीने और तेईस दिन इन्कलाब के थपेड़ों से टकरा कर टूट गिरना था।

■ ■

हर हृदय अब हो गया मन्दिर तुम्हारा !......

अँगरेजी सरकार अपनी शैतानी ताकत के सहारे जहाँ तक जा सकती थी जा चुकी थी और भगत सिह का राष्ट्रीय अभिमान से उभरा सिर झुकाने के लिए जो कुछ कर सकती थी, कर चुकी थी, फिर भी वह सिर झुका न था, टूट कर इतना उभर गया था कि एक विशाल राष्ट्र का महान् सिर वन गया था। तव वह सरकार 'खिसियानी विल्ली खम्भा नोचे' की कहावत के अनुसार अपने-आप से ही लडने लगी थी। उस ने फाँसी दिये हुए भगत सिह को फिर एक वार फाँसी देने का इरादा वाँधा और उन की तथा उन के साथियो की लाशो को काट कर टुकडे-टुकडे कर दिया। ये टुकडे वोरियो मे भरे गये, पर मरी हुई देहो के कटे हुए ये टुकडे भी इतने ताकतवर थे कि इन्हे जेल के मुख्य द्वार से वाहर लाने की हिम्मत अँगरेजी फौजी अफसरो को न हुई। वे इन वोरियो को पीछे के छोटे दरवाजे से अपने ट्रक तक ले गये और उन्हे ट्रक मे लाद कर इस तरह भागे, जैसे कोई चोर हडवडाया हुआ भाग रहा हो। यह वही दरवाजा था, जिस से भगत सिह और उन के साथी सरफरोशी की तमन्ना का गीत गाते हुए अदालत मे आया करते थे।

लाहौर सेण्ट्रल जेल मे जव यह सव हो रहा था, मोरी गेट के वाहर हजारो आदमी एक जलसे मे वैठे भगत सिह के पिता सरदार किशन सिह का भाषण सुन रहे थे। वही फाँसी हो जाने की खवर मिली, लोग भडक उठे। सरदार जी ने उन्हे रोक कर स्वय जेल की ओर कदम वढाये। रोकने पर भी काफी लोग उन के पीछे गये, पर वहाँ अव क्या रखा था। ट्रक तेजी से कसूर पहुँचा और पहले से की हुई व्यवस्था के अनुसार वहाँ से एक सिख ग्रन्थी और एक हिन्दू पण्डित को ले कर फिरोजपुर के पास सतलुज के किनारे जा पहुँचा। ट्रक से लाशो के वोरे उतरे और मिट्टी के तेल के डिव्वे भी। लाशें जलने लगी। वह ऊजड क्षेत्र रोशनी से चमक उठा। ग्रन्थी और पण्डित दूर खडे स्तव्ध भाव से यह सव देख रहे थे।

तेज आँधी की तरह यह खवर लाहौर से फिरोज़पुर पहुँच गयी। यह भी कि लाशो का ट्रक फिरोजपुर की ओर गया है। खवर आते ही

फ़िरोजपुर के हज़ारो लोग मशालें लिये इधर उधर चल पडे। वे उस तेज़ रोशनी की ओर बढे। फौजी लोग रोशनी को अपनी ओर आते देख घबराये। उन्हो ने बलचा के सहारे लाशो के अधजले टुकडे सतलुज में फेंक दिये और इधर उधर की रेत से उस जगह को ढाप कर वे अपना टक ले भागे। दूसरे दिन प्रात काल लोगा ने जमीन की गरमी से उस जगह को खोज लिया और खून से सने पत्थर और लाशो के टुकडे उठा लिये।

उसी दिन लोगा ने सुबह-ही-सुबह लाहौर म सरकारी पोस्टर चिपके हुए देखे कि 'सिख ग्रन्थी और हिन्दू पण्डित के द्वारा भगत सिंह सुखदेव और राजगुरु का अन्तिम संस्कार कर दिया गया। इस तरह अँगरजी सरकार ने अपने ही बनाये तमाम कानूनो का उल्लघन करते हुए भगत सिंह का नामोनिशान मिटा दिया पर हुआ यह कि दश के हर निवासी का हृदय एक मन्दिर बन गया और उन की प्रतिमा हमेशा हमेशा के लिए उस म प्रतिष्ठित हो गयी।

दश का कोई नगर नही बचा जिस में जुलूस नही निकले, जल्से नही हुए और देश का कोई गाव एसा नही बचा जहा भगत सिंह का नारा—'इन्कलाब जिन्दा बाद' नही गूजा। अपने बाप का बेटा भगत सिह मर गया था पर अपने राष्ट्र का वीरपुत्र भगत सिंह जी उठा था। भगत सिंह की मरण साधना सफल हो गयी थी क्यो कि उन की शहादत पर देश की जनता शोक से विह्वल हो क्रोध से उफन उठी थी।

सरकार भगत सिंह के इस चमत्कारी और जादू भरे प्रभाव स परेशान हो गयी थी। हर दिल म उन का नाम था तो हर मकान और दुकान पर उन का चित्र विराजमान था। कलेण्डरो पर उन की तसवीर थी तो अखबारो के मुखपृष्ठ उन के चित्र से सुसज्जित थे। दिलो में उन का चेहरा था तो पोस्टरो पर उन की छाप थी। यहाँ वे थे वहाँ व थे व ही वे थे। वे कहाँ कहा थे यह उलझाने वाला प्रश्न है, सही प्रश्न ह यह कि वे कहा न थे? उन की यह व्यापकता अगरज दिमाग को किस तरह झनझना रही थी? भगत सिंह के चित्र छाप कर लिये गये थे चाहे वे कहा भी छप थे और वे परचे पोस्टर और पुस्तकें भी जिन में भगत सिंह की चर्चा थी। भगत सिंह को लाहौर के फाँसीघर म फाँसी लग चुकी थी पर अगरज सरकार उस देश की जमीन के हर टुकडे पर फाँसी दन में लगी हुई थी।

कितनी बेचन थी वह? वह कितना बौखलाया हुई थी। होशियारपुर का अँगरेज पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट घाट पर जा रहा था। दूर स उस ने एक पनवाडी की दुकान पर लगा भगत सिंह की तसवीर देखा। वह घोडे स कूद कर तीव्र गति दुकान पर पहुँचा और उस खींच कर उस ने नाच फेंक दिया। उछल कर वह उस पर खडा हो गया और बहुत देर तक तसवीर का पैरो म मसलता रहा। लोग भौंचक हो देखने रहे। क्या वह किसी पागल स कम था?

मार्च १९३१ के अन्त मे कराँची मे काँग्रेस का जो अधिवेशन सरदार वल्लभ-भाई पटेल की अध्यक्षता मे हुआ, उस मे पहला प्रस्ताव भगत सिंह के सम्बन्ध मे ही था। उस मे 'प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने-आप को अलिप्त रखते हुए उस का विरोध करते हुए भगत सिंह और उन के साथियो की वीरता और आत्मत्याग की प्रशंसा की गयी थी।' उपरोक्त शब्दो का वहाँ घोर विरोध हुआ था, पर भगत सिंह के महान् पिता सरदार किशन सिंह मंच पर उपस्थित थे और इस प्रस्ताव पर बोले भी थे। युवक काँग्रेस मे यह प्रस्ताव जब आया, तो उस मे से वे शब्द निकाल दिये गये थे, पर भगत सिह के बलिदान की सब से बडी उपलब्धि तो थी काँग्रेस मे मनुष्य के मौलिक अधिकारो का प्रस्ताव, जिस मे समाज की आर्थिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया था। भगत सिंह ने अपने वक्तव्यो मे, नारे मे और दूसरे पोस्टरो आदि मे मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण करने वाली समाज-व्यवस्था पर जो हथौडे मारे थे, इस प्रस्ताव मे उन की निश्चित प्रतिध्वनि थी।

कराँची काँग्रेस मे गान्धी जी अपनी लोकप्रियता के सर्वोच्च शिखर पर थे। वहाँ गान्धी जी के दर्शन के लिए चार आने का टिकिट खरीद कर एक विशेष समारोह मे जो दर्शक आये थे, उन की सख्या चालीस हजार थी और उस से दस हजार रुपये प्राप्त हुए थे, पर काँग्रेस के इतिहास-लेखक और काँग्रेस के एक बडे नेता श्री पट्टाभि-सीतारमैया ने लिखा है—"यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भगत सिंह का नाम भारत-भर मे उतना ही लोकप्रिय था, जितना गान्धी जी का।" फिर यह बात भी स्पष्ट है कि तब से समय की आँधियो ने इतनी धूल उडायी है कि प्रतिष्ठा के अनेक स्तूप उस मे दब गये हे, पर भगत सिह की लोकप्रियता आगे-आगे—और—आगे बढती चली गयी थी, बढती चली जा रही हे। इतिहास का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि उस प्रतिदिन पुष्ट होती हुई लोकप्रियता का रहस्य क्या है?

क्या इस का कारण यह है कि भगत सिह शहीद हुए, हँसते-हँसते फाँसी चढे? यह कारण उचित है, पर भगत सिंह से पहले, उन के साथ और उन के बाद भी बहुत से देशभक्त हँसते-हँसते फाँसी चढे है, इस लिए हमे भगत सिह की लोकप्रियता का रहस्य खोजने के लिए गहराई मे उतरना पडेगा।

हर देश का एक सामूहिक स्वभाव होता है, रुचि होती है, रुझान होता है। हमारे देश के स्वभाव, रुचि और रुझान के अनुसार हमारे मन मे पूजित होता है सन्त, आदर पाता है वीर और लोकप्रिय होता है नेता। सन्त की शक्ति उस का आचरण है, वीर की शक्ति उस का आक्रमण है और नेता की शक्ति उस का निर्देशन है। भगत सिंह मृत्यु के प्रति निर्लिप्तता मे—जिस का गहरा अर्थ है समष्टि के लिए व्यष्टि का स्वेच्छया समर्पण—सन्त सिद्ध हुए, शत्रु पर आक्रमण करने मे वीर सिद्ध हुए और शब्दो एवं कार्यो के द्वारा आक्रमण पर आक्रमण करने की योजना बनाने और उस से जनता को प्रबुद्ध एव प्रशिक्षित करने में नेता सिद्ध हुए।

उन की असाधारण लोकप्रियता का यही रहस्य है। अपनी अपनी मात्रा में, अपनी अपनी जगह और अपने-अपने ढंग पर इस तरह की लोकप्रियता जागरण और संघर्ष की इस शताब्दी में लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, भगत सिंह चन्द्रशेखर आजाद, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और लालबहादुर शास्त्री को प्राप्त हुई।

भगत सिंह के व्यक्तित्व को हम एक और दृष्टि से भी देखें। बूढ़े आदमी शिष्ट को पसन्द करते हैं, युवक वीर को और युवतियां सजीव हँसमुख को। भगत सिंह शिष्ट थे, वीर थे, हंसमुख थे। इसलिए उन्हें व्यापक रूप में उस श्रेणी की लोकप्रियता मिली, जिस में एक प्रकार का देवत्व आ जाता है, या जिसे हम चालू भाषा में 'हीरो' शब्द से प्रकट करते हैं।

श्री शिव वर्मा ने इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया है—"समस्त वीरों में भगत सिंह को बलिदान का प्रतीक क्यों माना जाता है? महान् वीरों की पंक्ति में वे ही क्यों सब से अधिक सम्मान, सब से अधिक स्नेह और सब से अधिक प्रेम के पात्र समझे जाते हैं?"

भारत में समाजवादी आन्दोलन के महान नेता स्वर्गीय आचार्य नरेन्द्र देव ने इस का उत्तर इन शब्दों में दिया है—

"भगत सिंह और दूसरे क्रान्तिकारियों में यह एक बड़ा अन्तर है कि उन्हों ने असाधारण रीति से इस बात की घोषणा की कि भारत को गुलामी के विरुद्ध विद्रोह करने का अधिकार प्राप्त है। उन का शौर्य एक विशेष वस्तु है, जो हमारे लिए सदा एक प्रेरक उदाहरण रहेगा। जो राष्ट्र दीर्घकाल से पराधीन था, जिस में राष्ट्रीय सत्त्व शेष नहीं रह गया था, जो यह सोचता था कि विदेशी सरकार का मुकाबला करने का साहस मुझ में नहीं है और जो राष्ट्र अंगरेजों का चेहरा देख कर भयभीत हो जाता था, उस राष्ट्र के लिए शूर वीरता के एक विरले उदाहरण प्रिय क्यों न हों? भगत सिंह का नाम सुनते ही हृदय में बिजली-सी कौंध जाती है। थोड़ी देर के लिए मानवीय दुर्बलताएँ दूर हो जाती हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को भावुकता के एक नये संसार में पाता है।'

सचमुच देशवासियों का हर हृदय ऐसा मन्दिर हो गया है, जिस में भगत सिंह की मूर्ति प्रतिष्ठित है, क्यों कि वे एक वीर पुरुष थे और नयी समाज-व्यवस्था के स्वप्न द्रष्टा थे, दूसरे शब्दों में युगद्रष्टा थे।

■ ■

भगत सिंह

विराट् व्यक्तित्व : विविध कोण

भगत सिंह : जन्मजात क्रान्तिकारी

क्या भगत सिंह जन्मजात क्रान्तिकारी थे ? क्या वे पैदायशी नेता थे ?

यह जन्मजात क्या चीज है ? क्या सचमुच इस का कुछ अर्थ है ? या यह बोल-चाल का एक मुहावरा ही है ?

अमुक आदमी जन्मजात कवि है, अमुक आदमी जन्मजात लेखक है, अमुक आदमी जन्मजात वैज्ञानिक है, इस तरह के वाक्य बहुतो के साथ जोडे गये है, पर इन का सार क्या है ?

यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। इस महत्त्व को हम इस प्रश्न से साफ-साफ अनुभव कर सकते है कि क्या कोई व्यक्ति अपने जन्म मे पहले भी कुछ सीख सकता है ? किसी प्रकार की मनोवृत्ति अपने नन्हे-से मानस मे ग्रहण कर सकता है ?

भारत के दर्शन ने इस का एक उत्तर दिया है—पुनर्जन्म। जब हम जन्म लेते है तो नया शरीर धारण करते है, पर हमारी आत्मा, हमारे जीवन की चैतन्य-शक्ति नयी नही होती। वह पहले भी अनेक बार शरीर धारण कर जीवन भोग चुकी होती है। उन जीवनो के कर्म-सस्कार उस के साथ होते है, जो इस जीवन मे उसे प्रभावित-प्रेरित करते है।

यह दर्शन की बात है, विश्वास की बात है। जिन का विश्वास इस पर टिक जाये, उन के लिए सब-कुछ है, जिन का विश्वास न टिके उन के लिए कुछ नही है।

भारतीय साहित्य मे इस का एक और भी समाधान है। वह है अभिमन्यु। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु जब अपनी माता के गर्भ में था, तो अर्जुन ने एक दिन द्रौपदी को चक्रव्यूह तोड़ने की विधि सुनायी-समझायी। चक्रव्यूह को तोड़ कर उस मे घुसने की बात द्रौपदी ने ध्यान मे सुनी, पर जब उस से बाहर निकलने की बात वे सुना रहे थे, तो द्रौपदी सो गयी। इसी कारण महाभारत के युद्ध मे अभिमन्यु कौरवो के बनाये चक्रव्यूह में घुस तो गया, पर निकल नही सका, वही मारा गया। महान् काव्य महाभारत की यह कथा कहती है कि जन्म से पहले भी मनुष्य वातावरण का प्रभाव ग्रहण करता है।

पाकिस्तान के संस्थापक और भारत के बँटवारे के विधाता श्री मुहम्मदअली जिन्ना की मनोवृत्तियों का एक चमत्कारी विश्लेषण हुआ था। जिन्ना काठियावाड़ की खोजा जाति में जन्मे थे। यह जाति हिन्दुओं की एक उपजाति थी। इस की श्रद्धा एक मुसलमान संत में हो गयी। हिन्दू इसे गैर मानने लगे पर इस जाति के लोगों का मानसिक स्तर हिन्दू ही रहा। हिन्दुओं जैसा नाम, आपस में मिलने पर हिन्दुओं जैसा ही अभिवादन सलामों के त्योहार पर घर के द्वारों पर 'राम राम' लिखना, गोबर से घर लीपना और हिन्दू पण्डित को बुला कर विवाह कराना। गुरु मुसलमान जीवन-आचार हिन्दू, यही रूप था—इन लोगों की सामाजिक ज़िन्दगी का।

उन्नीसवीं सदी में खोजा जाति में कुछ ऐसे बुजुर्ग थे जिन्हों ने अपने सामाजिक जीवन के इस द्वैत को समझा और प्रयत्न किया कि पूरी तरह हिन्दू बन कर रहा जाये। उन्हों ने अपनी जाति में बात चलायी तो उसे सभी तरफ से समर्थन मिला। तब हिन्दू समाज के कर्णधारों से कहा गया कि वे हमें ग्रहण करें, हम उन के ही हैं। बात शास्त्रों पर पहुँची। शास्त्रों के सर्वेसर्वा थे पण्डित लोग। पण्डितों की राजधानी थी काशी। काशी के पण्डितों से इस पर व्यवस्था माँगी गयी। उन्हों ने व्यवस्था दी खोजा लोग हिन्दुओं में स्वीकार नहीं किये जा सकते।

खोजा जाति में इस की बहुत उग्र प्रतिक्रिया हुई। हिन्दू मत के जो चिह्न जाति में थे, उन्हें तेज़ी से हटाया गया। नाम बदले गये। दरवाज़ों से राम-नाम मिटाये गये। पण्डित की जगह मौलवी ने ली। जाति ने हिन्दुओं से पूर्ण विच्छेद की नीति अपना ली। जब यह प्रतिक्रिया अपने पूरे उग्र रूप में काम कर रही थी तब जिन्ना का जन्म हुआ और इस प्रकार जिन्ना जन्मजात पृथक्तावादी हिन्दू विरोधी बने।

अभिमन्यु और जिन्ना के उदाहरण कहते हैं कि मनुष्य अपने जन्म से पहले भी मनोवृत्तियाँ और प्रवृत्तियाँ ग्रहण करता है। अनुभवों और लोककथाओं में इस के और भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। यही पृष्ठभूमि है इन प्रश्नों की कि क्या भगत सिंह जन्मजात क्रान्तिकारी थे? क्या भगत सिंह पैदायशी नेता थे?

हाँ भगत सिंह जन्मजात क्रान्तिकारी थे और पैदायशी नेता भी। उन्हें किसी ने क्रान्तिकारी बनाया नहीं, वे पैदा ही हुए थे क्रान्ति का नेतृत्व करने के लिए।

राजभक्ति की नरम राजनीति ने जब गरम राजद्रोह की ओर लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में पहली अँगड़ाई ली, तो सरदार किशन सिंह और सरदार अजीत सिंह उन से सीधे सम्पर्क में आये। महाराष्ट्र से लौट कर वे दोनों अपने छोटे भाई सरदार स्वर्ण सिंह से मिले और अन्य बहुत से मित्रों की एक गोष्ठी में तीनों ने देश-व्यापी क्रान्ति की योजना पर विचार विमर्श किया। दो बातें सामने आयीं—क्रान्तिकारी संस्था का संगठन और ऐसे युवा का जन्म जो आगे चल कर क्रान्ति का नेतृत्व करे। सरदार अजीत सिंह का यह वाक्य हमारे वंश की धरोहर है—"संस्था का काम हम सब करेंगे, पर दूसरा काम हमारे खानदान में तो भाई साहब (सरदार किशन सिंह) ही कर सकते हैं।"—

क्या भगत सिंह के जन्म से बहुत पहले ही यह उन के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का शिलान्यास न था ?

सरदार किशन सिंह के पिता (भगत सिंह के दादा) सरदार अर्जुन सिंह राष्ट्रीय आर्य-समाजी क्रान्ति (उस युग के वातावरण मे हम देखें, बाद के नही) के उग्र नेता थे। वे हवन के बाद वीरपुत्रो के लिए भगवान् से नित्य प्रार्थना किया करते थे। कौन नही मानेगा कि इस से घर मे विशेष वातावरण बनता था।

भारतमाता सोसायटी की स्थापना हुई। उस के जलते-दहकते कार्यक्रम चालू हो गये। अँगरेज सरकार काँपी और तीनो भाइयो पर खड्गहस्त हुई। सरदार अजीत सिंह माण्डले मे जलावतन किये गये। सरदार किशन सिंह और सरदार स्वर्ण सिंह जेल भेजे गये। यह घर श्री सूफी अम्बाप्रसाद, श्री लाला हरदयाल और श्री लाला लालचन्द फलक-जैसे प्रतिभा-पुत्रो और क्रान्तिवीरो के लिए चौपाल बन गया। जिन दिनो घर मे हर समय क्रान्ति की चर्चा होती थी बलिदान के ही गीत गाये जाते थे, उन्ही दिनों भगत सिंह अपनी माता के गर्भ मे थे जो चिनगारियाँ चारो ओर बोयी जा रही थी, क्या उन के अंकुर भगत सिंह के मानस-क्षेत्र मे अकुरित नही हुए होगे ?

भाग्य का कैसा सकेत है, इतिहास का कैसा चमत्कार है कि जिस दिन भगत सिंह का जन्म हुआ ठीक उसी दिन, सरदार अजीत सिंह का निर्वासन समाप्त हुआ। सरदार किशन सिंह और सरदार स्वर्ण सिह जेल से छूटे। क्या भाग्य की यह स्पष्ट घोषणा न थी कि आज विद्रोह प्रणेताओ के घर गुलामी का विजेता और क्रान्ति का महान् नेता जन्मा है ? इसी पृष्ठभूमि मे हम कह सकते है कि भगत सिंह जन्मजात नेता थे।

■ ■

भगत सिंह स्वभाव के शीशे मे

किसी के व्यक्तित्व को सही-सही परखने के लिए स्वभाव भी एक महत्व पूर्ण साधन है। एक आदमी परिस्थितियों के प्रभाव से या आवेश में आ कर कोई अद्भुत काम कर सकता है पर इस काम को हम उस का व्यक्तित्व नहीं कह सकते। मैं एक ऐसे आदमी को जानती हूँ जो बेहद कंजूस था। एक बार उस का एकलौता बेटा बीमार पड़ा पर उस ने डॉक्टर को नहीं बुलाया। धर्मार्थ औषधालयों से ला कर वह उसे दवा पिलाता रहा पर एक बार उस ने प्रतिक्रिया का शिकार हो कर एक मंदिर बनवाने में कई हजार रुपये खर्च कर दिए। बात साफ है कि यह मंदिर उस के व्यक्तित्व को दानी नहीं बना सकता क्यों कि उस का स्वभाव तो कंजूसी ही है।

भगत सिंह के साहसी क्रांतिकारी व्यक्तित्व को एक तरफ रख कर हम उन के व्यक्तित्व को स्वभाव के शीशे में देखें तो वे एक सरस सजीव मसखरे सहृदय सन्तुलित और उदार मानव थे। स्वभाव को परखने के लिए प्रतिदिन के जीवन को परखना ही सब से अच्छा तरीका है क्या कि वह बनावटीपन से बचा हुआ अपने मूलरूप में हमारे सामने होता है।

पैत्रिक संस्कार गम्भीर अध्ययन और निरन्तर चिन्तन ने उन्हें सुलझे हुए विचारों का राजकुमार बना दिया था। उन की निर्णय-शक्ति बहुत शानदार था। वे बात की तह तक पहली नजर में ही पहुँच जाते थे। आने वाली परिस्थितियों को इतने विस्तार से आँक लेते थे कि उठने वाले प्रश्नों का समाधान पहले में ही उन के पास रहता था। इस के होते हुए भी वे जिद्दी या कट्टर नहीं थे। किसी भी बात पर वे किसी के साथ भी बातचीत करने को अपना दृष्टिकोण समझाने को और दूसरे का समझने को सदा तैयार रहते थे। उन को बात हो उन की दृष्टि में सही हो पर बहुमत में उस के विरुद्ध निर्णय हो जाये तो बहुमत के उस निर्णय को वे अपने ही निर्णय का तरह अमल में लाते थे। उस की सफलता के लिए भरपूर प्रयत्न करते थे। इस के बाद वह गलत हो जाये तो अपनी भूल मान लेते थे। उन के इस स्वभाव ने उन्हें आतंकवादी गतिविधि में भी

प्रजातान्त्रिक वातावरण वनाने में असाधारण सफलता दी थी। सफलता का वाहरी रूप यह था कि दल का हर आदमी अपने को समान महत्त्वपूर्ण समझते हुए भी उन के प्रति आदरपूर्ण प्यार रखता था। वे दूसरो की भावना को दवा कर ऊपर उठने मे विश्वास नही रखते थे, दूसरो मे सद्भाव जगा कर प्रभाव जमा लेते थे। इसी लिए उन का प्रभाव कृत्रिम नही, सहज था, हार्दिक था।

निश्चयो के प्रति उन मे ऐसी ही अटलता थी, जैसी धार्मिक दृष्टि के मनुष्यो मे धर्म के प्रति होती है। जो निश्चय हो गया, उस मे न वे ढील करते थे, न ढील सहते थे। कोई ढील करे, तो उन्हे गुस्सा आ जाता था। वहुत-कुछ कहते-सुनते थे। इस स्थिति मे भी यह ध्यान रखते थे कि किसी के आत्माभिमान को ठेस न लगे, किसी के हृदय को दु ख न पहुँचे। यदि उन्हे यह महसूस होता कि उन की वात से किसी को चोट लगी है, तो वे हँसी-खुशी का वातावरण बना कर उसे प्रसन्न करने की कोशिश करते थे। इस से काम न चले, तो गले मे हाथ डाल कर माफी माँग लेते थे और यह मानते हुए भी कि मेरी ही वात ठीक थी, उसे खुश करना अपनी जिम्मेदारी समझते थे। इस का परिणाम यह होता था कि गुस्से मे जिसे वे डाँटते थे, वाद मे वह उन का पहले से अधिक आदर करने लगता था। उन के स्वभाव मे सचाई और सद्भावना का वहुत सलोना सगम था। यह सगम इतना गहरा था कि जो भी उन से मिलता था, उन का हो जाता था, उन्हे प्यार करने लगता था। मोटे तौर पर वे अँगरेजो के दुश्मन थे, पर साण्डर्स-वध और असेम्वली वम-काण्ड के सिलसिले मे फाँसी का हुक्म होने के वाद भी वहुत से अँगरेज स्त्री-पुरुष उन की काल-कोठरी मे उन से मिलने आते थे। भगत सिंह उन से दिल खोल कर मिलते थे, प्यार से वाते करते थे, खूव हँसते थे और उन्हे हँसाते थे। आने वाले अँगरेज उन से वातें करते समय भूल जाते थे कि वे अपनी जाति के शत्रु से मिल रहे है। उन्हे लगता था, वे अपने किसी मित्र से मिल रहे है। उन के द्वारा किये गये मजाक इतने शिष्ट और मन को भाने वाले होते थे कि उन से मिलने वाले हर व्यक्ति की यह इच्छा होती थी कि भगत सिह उस से मजाक करे।

जेल के जो अफसर उन की देख-रेख करते थे, उन्हे जेलो का अँगरेज इन्सपेक्टर जनरल हुक्म देता था कि वे भगत सिंह को जरा भी लिफ्ट न दे, महत्त्व न दे, रियायत न दे। आरम्भ मे वे उन से तने-तने से रहते थे, पर भगत सिह के स्वभाव की गम्भीरता और सरलता उन्हे पहले सम्पर्क मे ही ढीला, सहानुभूतिशील और सहायक वना देती थी। वे खतरा उठा कर भी उन्हे सुविधाएँ देते थे, उन का आदर करते थे, उन्हें अपना आदरणीय मित्र मानने लगते थे। लाहौर जेल के वडे जेलर खान वहादुर मुहम्मद अकवर कहा करते थे कि उन्हो ने अपने पूरे जीवन मे भगत सिह-जैसा श्रेष्ठ मनुष्य नही देखा। अँगरेज़ अफसरो की पत्नियाँ भी उन्हे देखने आती थी। इस का साफ अर्थ यही है कि अँगरेज अफसर भी घर जा कर उन की विशिष्टता स्वीकार करते थे। उन के स्वभाव मे शालीनता इतने ऊँचे दरजे की थी, उन का वात करने का ढग

राजी से नही दे रहा हूँ, तुम मुझ से जबर्दस्ती छीन रहे हो।

भगवानदास की इस अदा पर भगत सिह निहाल हो गये और हँस कर बोले—"जबर्दस्ती पैसे ही नही छीन रहा हूँ, यह भी समझ लो कि तुम्हे पीट कर चवन्नी वाली तीन टिकिट लाने भी भेज रहा हूँ।" भगवानदास जी की भलमनसाहत के क्या कहने, यह भी मान लिया उन्हो ने, पर सिनेमा की खिडकी पर जो लम्बे-चौडे पंजाबी भाई जूझ रहे थे, उन पर इस भलमनसाहत का कोई असर नही पडा और वे बारह आने मुट्ठी मे दबाये लौट आये। अब भगत सिह का नम्बर था। उन्हो ने कोट उतारा, कमीज की आस्तीनें चढायी, एक रुपये का नोट और अठन्नी मुट्ठी मे दबाये धक्का-मुक्की की उस भीड मे घुस पडे। लौटे, तो तीन टिकिट उन के हाथ मे थे, पर पैसा एक नही। बात यह हुई कि चवन्नी के टिकिट खत्म हो जाने के कारण वे अठन्नी के टिकिट ले आये थे। अब तसवीर भी उन के सामने थी और दो दिन का उपवास भी।

सिनेमा से बाहर निकले, तो पेट के भीतर भूख उभरी, पर उस पर ध्यान देने का अर्थ ही कुछ न था, क्यो कि यह पैना यथार्थ सामने था कि भूखे तो कल भी रहना है, पर आजाद जी से अब क्या कहेगे ?

भगत सिह वार्तालाप की कला मे पण्डित थे। उन की सजीवता और हँसमुख-पन बातो को ऐसी रसमलाई बना देते थे कि अनायास ही गले उतर जाये। निवास पर पहुँचते ही बिना कोई और बात किये भगत सिह ने फिल्म की कहानी आजाद को सुनानी आरम्भ की। गुलामो का सघर्ष और धनपतियो के अत्याचार दोनो ही मार्मिक थे, पर भगत सिह की शैली ने तो उन मे रोमाच के सितारे ही जड दिये। तब सक्षेप मे उपसहार आया—असल मे इस कहानी की फिल्म हरेक क्रान्तिकारी को देखनी चाहिए। इसी लिए हम इसे देख कर आ रहे है।" आजाद मुसकराये। नाराजगी का खतरा भी टला और खाने के पैसे भी दुबारा मिल गये।

सोचती हूँ, जब भगत सिह अपने साथियो के साथ फिल्म देख रहे थे, तो उन्हे क्या मालूम था कि आगे चल कर उन पर भी कई फिल्मे बनेगी और भावी पीढियाँ उन के कामो की चर्चा करते हुए इसी तरह उन्हे देखेगी, जिस तरह वे आज टॉम काका की कुटिया देख रहे है ? और उन्ही के कहे वाक्य को दोहरायेगी—"असल मे हरेक नागरिक को यह फिल्म देखनी चाहिए।" जो हो, इतना स्पष्ट है कि भगत सिह मे अद्‌भुत सजीवता थी, वे आनन्द-मूर्ति थे।

उन की बातचीत के प्रभावशाली होने का एक और भी कारण था। वे स्वयं बहुत अच्छे अभिनेता थे। अनेक नाटको मे उन्हो ने सफल भूमिकाएँ निभायी थी। उन का प्रसिद्ध पगडी वाला चित्र नेशनल कॉलेज लाहौर के ड्रामा क्लब के मेम्बरो के ग्रुप-फ़ोटो मे से लिया गया है। 'भारत दुर्दशा' नाटक मे तो उन्हो ने अपने अभिनय से दर्शको को मुग्ध ही कर लिया था। स्वर के उतार-चढाव और साधारण अग-विन्यास मे भी उन की नाटकीयता झलकती थी। इन सब से बातचीत का प्रभाव बहुत बढ

जाता था, पर उन के प्रभाव का सब से गहरा रहस्य था उन की हार्दिकता। वे जो महसूस करते थे, वही कहते थे। इसी लिए उन की बात उन के दिल की गहराइयों से उठती थी और दूसरे के दिल की गहराइयों में उतर जाती थी।

साहस उन के स्वभाव का अभिन्न साथी था। जब वे गाँव के स्कूल में पढ़ते थे, तब भी यदि लड़कों को आपस में लड़ता देखते, तो फौरन बीच-बचाव कर के लड़ाई समाप्त करा देते। उन के बचपन के साथ-साथ उन का यह साहस भी बढ़ता गया। १९२५ में वे दिल्ली के 'वीर अर्जुन' के सम्पादन विभाग में काम करते थे और श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार के साथ एक चौबारे में रहते थे। उन्हीं के शब्दों में—'वे मितभाषी और बड़े अध्ययनशील थे। खाली समय में और रात को प्रायः राजनीतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक पुस्तकें पढ़ते थे। सिनेमा, खेल-तमाशा देखने का शौक नहीं था। विवाद कभी नहीं करते थे। समाचार तैयार करने के काम में चुस्त थे। जीवन अत्यन्त सादा और संयमपूर्ण था। निजी आवश्यकताएँ बहुत साधारण थीं। साम्प्रदायिक दंगे के दिनों उन में मैंने अद्भुत स्फूर्ति देखी। वे चाँदनी चौक की दोनों पटरियों पर आमने-सामने, मरने-मारने को उद्यत भीड़ को समभाते-बुझाते निर्भयता-पूर्वक चले जाते थे। मैं उन्हें रोकता, तो कहते—देशवासियों की सेवा में अगर मेरी जान भी चली जाये, तब भी चिन्ता की कोई बात नहीं। दंगे के दिनों में मैं कई बार कार्यालय जाने का साहस नहीं कर सका, पर वे पूरी निश्चिन्तता और निर्भयता के साथ चले जाते थे और अपने साथ मेरा काम भी कर आते थे।"

श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार के ही शब्दों में—"रात में वे अक्सर चौबारे की छत पर अकेले बैठे रोते रहते थे। बहुत दिनों में इस रुदन की घरेलू परिस्थिति का फल समझता रहा। एक दिन रात में कोई बारह बजे मेरी आँख खुली तो वे सिसकियाँ भर-भर कर रो रहे थे। मैंने उन्हें धीरज बँधाया। तब रोने का कारण पूछा तो बहुत देर तक चुप रहने के बाद बोले—मातृभूमि की इस दुर्दशा को देख कर मेरा दिल छलनी हो रहा है। एक ओर विदेशियों के अत्याचार हैं, दूसरी ओर भाई भाई का गला काटने को तैयार है। इस हालत में मातृभूमि के ये बन्धन कैसे कटेंगे?"

जो आदमी एकान्त में इस तरह फूट-फूट कर रोता था, वही दिन भर हँसी के फव्वारे उगलता था। सुना है स्वाति नक्षत्र में आकाश से गिरी बूंद सीप में मोती बन कर और साँप में मूल्यवान् मणि का जन्म देती है। शायद रोना भी ऐसा ही था, जो आँखों में आँसू बन कर बह निकलता था और होठों पर हँसी बन कर बिखर जाता था। श्री भगवानदास माहौर का नाम और ठाठ जरा भारी है। आगरा में पहली बार जब भगत सिंह ने उन्हें देखा तो कहा—"इस डार्विन साहब ने छू कर के...। हिम्मत का देखिए सिर्फ ही डार्विन का कहना ठीक मालूम होता है, बन्दर और आदमी के बाप को खोजो हुए कड़ी का पता बगल वाले मद हो सकता है।" सुन कर सब हँस पड़े। फिर वहीं से माहौर जी को दाँत काटा कर मूँछ प्यार से बाँधे का। माहौर जी के साथ इस

तरह की छेड़-छाड वे अकसर करते थे, पर इस हार्दिक छेड़-छाड का जो प्रभाव माहौर जी पर पडा, वह उन्हो के शब्दो में इस प्रकार है—"मेरी अनुभूति तो यही है कि जैसे-जैसे भगत सिह मुझे चिढाते, वैसे-ही-वैसे उन के प्रेम के पोते-से अनजाने मे उन के समाजवाद का रग मेरे हृदय पर चढता जाता था।"

साफ-सुथरे कपड़े पहनना और अच्छा खाना उन का स्वभाव था, पर जिन दिनो काकोरी केस के अभियुक्तो को जेल से छुडाने की योजना मे दल के लोग आगरा में इकट्ठे हो रहे थे, पैसे की वेहद तंगी थी। वरतन की जगह मिट्टी के ठीकरे ही काम देते थे, तो खाना कैसा होगा ? फिर खाने का स्वाद तो पकाने से आता है, पर वहाँ ऐसे पाकशास्त्री थे जिन्हे यह भी पता न था कि दाल मे नमक के साथ हल्दी भी पडती है, दाल भी मिट्टी के एक वडे ठीकरे मे ही रहती थी, उसी मे सव खाते थे।

भगत सिंह खाने वैठे, तो खाना उन के गले न उतरा। वे खाने को खराव वतायें, तो उन्हे वुरा लगे, जो उसे शौक से खा रहे है। फिर यह शान छौंकने-जैसी वात हो। समता और अभिन्नता का वातावरण वनाये रखना भगत सिंह का स्वभाव था, इसी लिए वे खाना छोड़ कर उठ भी न सकते थे। खाना वन्द कर चुप वैठे रहे, तव भी सव कारण पूछे। सूझ भगत सिंह के स्वभाव की सदा सगिनी थी। उन्हो ने पूर्ण प्रसन्नता की मुद्रा मे पूछा—"आप लोग जानते है लखनऊ के नवाव किस तरह खाना खाते थे ?" आप ही वोले—"लीजिए, मै आप को दिखाता हूँ।" तीन उँगलियाँ खडी कर के उन्हो ने अँगूठे और पास की उँगली से मोटी रोटी का एक छोटा-सा टुकडा इस तरह नजाकत से तोडा, जैसे रोटी से उँगली का छूना गुनाह हो। फिर उस टुकडे को इस नफासत से मुँह मे रखा, जैसे हीरे की अँगूठी को मखमली डिविया मे रख रहे हो। तव धीमे-धीमे मुँह चलाते रहे, आँखो के इशारे करते रहे और इसी तरह की दूसरी वहुत-सी वातें भी। नवावी का यह नाटक तव तक चला, जव तक दूसरे लोगो ने पूरा खाना खाया। वाद में अदा के साथ उन्हो ने कुल्हड उठाया और पानी की घूँट से उस टुकडे को पेट में पहुँचा दिया। तव भरे पेट की डकार-सी लेते हुए उठे और ठेठ लखनवी टोन मे वोले—"वल्लाह, क्या लजीज खाना है।" सव लोग खूव हँसे। दूसरे ही दिन भगत सिंह ने कही से रुपयो का प्रवन्ध कर के भोजन की नयी व्यवस्था कर दी।

गरीवी का अनुभव भगत सिंह को पुराना था और गरीवो के साथ उन की हमदर्दी जन्मजात थी। उन के खेतो मे जो (मजदूर) काम करते थे, वे उन मे इस तरह घुल-मिल जाते थे, जैसे वे उन मे से ही एक हो। उन के लिए सव से वोझिल घडी वह होती थी, जव वे मजदूर खाना खाते थे। वे उठ कर उन का खाना देखते थे, उस के रूखेपन से दु खी होते थे और उसे अपने खाने से चिकना और स्वादिष्ट भोजन वनाने की कोशिश करते थे। रुपये-पैसे से भी इन की मदद करते रहते थे। मंगल सिंह नामक एक मजदूर पर धीरे-धीरे तीन हजार रुपये ऋण हो गया था। इस में से ज्यादा हिस्सा उस ने शादियो में लिया था। भगत सिंह ने वह सव रुपया माफ कर दिया और

उस ने कहा—"आइन्दा कभी ऐसे घर वालों से मिलाने की कोशिश मत करना।" यही आदमी सच-मुच होते हुए भी अब स्वयं घोर अभावों का जीवन जी रहा था, फिर भी कितना प्रसन्न था?

भगत सिंह के जीवन का हम जिस पहलू से देखें, जिस कोण से भी परखें, वह परख की हर कसौटी पर कुन्दन ही सिद्ध होते हैं। इस सिलसिले में डॉक्टर गयाप्रसाद के शब्द हैं— मुझे कौंसिल और नौजवान भारत सभा में प्रण के पक्के और अच्छे विश्वासी भगत सिंह के साथ काम करने का मौका मिला है। अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन में मुझे उन जैसा उपयोगी, आज्ञाकारी, चतुर, साहसी और ईमानदार युवक शायद ही मिला हो। इश्तहार चिपकाने हों तो वे तैयार, दरियाँ बिछानी हों तो वे तैयार, भाषण करवाना हो तो आगे रहते हैं। मतलब यह है कि प्रत्येक काम वे योग्यता और लगन से करते थे। जनता पर उन के असीम प्रभाव का कारण यह था कि वे स्वार्थ, ईर्ष्या या लोभ से सदा दूर रहते थे। उन के चरित्र में इतने गुण थे कि मैं ने उन में शालीन पुत्र, प्रिय साथी और आदरणीय नेता का एक साथ पाया।'

उन का काम करने का अपना ही तरीका था। एक बार वे दीवारों पर इश्तहार चिपकाते फिर रहे थे। दीवार से लगा कर साइकिल खड़ी करते सँभल कर उस पर चढ़ते और खूब ऊँचाई पर इश्तहार चिपकाते। उन के छोटे भाई कुलतार सिंह भी साथ थे। उन्हों ने पूछा—"नीचे काफी जगह है, फिर आप ऊपर क्यों चढ़ते हैं?" उत्तर मिला—"इस लिए कि एक भी इश्तहार जाया न जाए और उस का पूरा फायदा मिले। नीचे लगे इश्तहारों को अक्सर बच्चे फाड़ देते हैं।"

उन की सतर्कता बहुत गहरी थी। दूसरों का ध्यान वे पूरा-पूरा रखते थे। साथियों के प्रति उन की भावना इतनी गहरी थी कि छोटी-से छोटी बात में भी साथी का पूरा ध्यान उन्हें रहता था। सेण्ट्रल जेल लाहौर से ३ जून १९३० को उन्हों ने अपने घर के पते पर श्री जयदेव गुप्ता को यह मार्मिक पत्र लिखा था—

सेण्ट्रल जेल लाहौर
३-६-३०

मेरे प्यारे श्री जयदेव,

कृपा कर मेरा हार्दिक धन्यवाद स्वीकार कीजिए, कपड़े के उन जूतों और सफेद पॉलिश की शीशी के लिए जो आप ने भेजे हैं। आप के शब्दों में, (जैसा कि श्री कुलबीर ने कहा) मैं आप को कुछ और चीजें लाने को यह पत्र लिख रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि आप इसे महसूस नहीं करेंगे। कृपया देख लें कि क्या आप श्री बी० के० दत्त के लिए कपड़े का एक और जूता भेजने की व्यवस्था कर सकते हैं, (साइज नम्बर सात) लेकिन दुकानदार से वापसी की शर्त पर लेना, यदि इन के पैर में फिट न आये। यह बात मैं ने अपने लिए लिखते समय ही लिखी होती पर श्री दत्त उस दिन सरल भाव (इजीमूड) में नहीं थे। लेकिन मेरे लिए इसे अकेले

पहनना बहुत मुश्किल है। इस लिए मैं आशा करता हूँ कि अगली मुलाकात के समय एक और जूता यहाँ होगा।

साथ ही कृपया एक ट्वैल शर्ट (कमीज) जिस का साइज छाती ३४ हो और कमर २९, भेज दे। उस पर शेक्सपीरियन कॉलर हो और आधी आस्तीन हो। यह भी श्री दत्त के लिए चाहिए। क्या आप यह सोचेंगे कि हम जेल मे भी अपने रहन-सहन के खर्चीले ढंग पर रोक नही लगा सके? अन्तत. यह आवश्यकताएँ है, विलासिताएँ नही। नहाने और व्यायाम करने के लिए किसी मुलायम कपड़े के बने दो लँगोट भी भेज दें और कपडे धोने के साबुन की कुछ टिकियाएँ भी। साथ ही कुछ बादाम और स्वान इंक की एक शीशी भी।

सरदार जी के बारे में क्या खबर है? क्या वे लुधयाना से वापस आ गये है? इन दिनों में कचहरी बन्द रहेगी और मुकदमा आगे नही बढ़ेगा। यदि वे नही आये, तो उन्हें लाने के लिए किसी को भेज दे। जो हो, उन के और मेरे मुकदमे का अन्त करीब ही है। कह नही सकता कि हमें एक-दूसरे को मिलने का और अवसर मिलेगा या नहीं, इस लिए उन्हे तुरन्त बुला ले, ताकि वे इस सप्ताह में मुझ से दो बार मिल सके। यदि वे जल्दी ही नही आ रहे हैं, तो कृपा कर कुलबीर और बहन जी को मुझ से मुलाकात के लिए कल या परसो भेज दे। मेरे मित्रो को मेरी याद दिलाना। क्या आप फारसी का एक 'कायदा' उर्दू अनुवाद सहित भेजने की व्यवस्था कर सकेंगे? चार आने की सूजी भी भेज दे।

—तुम्हारा भगत सिंह

एक पोस्टकार्ड मे कितने चित्र है, उन के व्यक्तित्व के? मानवीयता तो है ही, जो साथियो के साथ उन्हे एकात्म करती है, पर स्वभाव की सरसता और व्यक्तित्व की रगीनी, जिसे मै सजीवता कहना पसन्द करूँगी, भी है, पर इन सब से बढ कर भी है कि वे हर बात की गहराई मे बहुत दूर तक जाते थे। आश्चर्य होता है कि जो आदमी स्वय दौड कर मौत के द्वार पर जा बैठा है, वह फारसी का कायदा (पहली पुस्तक) भी मँगा रहा है और चार आने की सूजी भी। सच तो यह है कि अपने स्वभाव की विशेषताओ से वे व्यक्तित्व की विभिन्न और विविध धाराओ के जीवित सग्रहालय थे।

इसी की पूर्ति करता है एक दूसरा सस्मरण। भगत सिंह और उन के साथियो को फाँसी का हुक्म होने पर बचाव कॅमिटी की अपील पर बहुत-सा धन एकत्र हुआ। भगत सिंह ने कॅमिटी की सेक्रेटरी कु० लज्जावती जी को लिखा कि—"फाँसी लगने वालो की चिन्ता छोड कर वह रुपया उन लोगो के नाम जमा कर दिया जाये, जिन्हे उम्र-कैद की सजा हुई है।" दुनिया से जाने वाला एक इनसान उन की सुख-सुविधा की चिन्ता कर रहा था, जिन्हे दुनिया मे जीना है, तभी तो वह मर कर भी अमर हो गया और जीवन की कला का हमेशा-हमेशा के लिए एक महान् पाठ बन गया।

उन के जीवन का चाव था, जीवन का चार्म था, शौक थे। वे चाँदनी रातो मे

फूल के ख्वाल में एक सन्तोष हो जाते थे कि समय का कुछ-कुछ हाल में रहता था। घोड़े से जाते क्या थे कि गरा के पल्ला उस दरा रूप में और जाने क्या गाता रहते थे। गाने का तो उन में भारी शौक था। खुद भी गाते थे और गाना सुनने का भी शौक रखते थे। श्री भगवान दास माहौर लिखते हैं— अपने गाने के शौक के कारण मेरी भगत सिंह से अच्छी पटने लगी थी। यही तो एक बात थी, जिस में मैं अपने-आप को भगत सिंह से अधिक जानकार समझ सकता था और भगत सिंह बड़े आग्रह से मेरा गाना सुन कर मेरे इस अभिमान को मानो गुदगुदाया करते थे। इसी में वे मुझ और मेरी मार्फत पण्डित जी को भी छेड़ने का अवसर निकाल लेते थे। पण्डित जी के डर के मारे मैं गज़ल-अगा गाना इच्छा होते हुए भी गा न पाता था। भगत सिंह धीरे से कहते— हाँ भाई कैलाश (मेरा नाम) वह गज़ल तो सुना, जब कफ़स से लाश निकली और मैं भगत सिंह के अनुरोध का बल पा कर पहले धीरे धीरे गुन गुना कर फिर बड़े मज़े में आ कर पूरी उमंग से गाने लगता—

"जब कफ़स से लाश निकली बुलबुल नाशाद का
इस कदर रोया कि हिचकी बँध गया सैयाद का

कमसिला में रख कर नाम लेकर कर तेरे
हाथ से तुरबत बनाया पैर से बरबाद का।

इस पर पण्डित जी माहौर को झिड़की देते तो भगत सिंह व्यंग्य से कहते पण्डित जी बेचारा भारतमाता पर बलिदान होने आया तो क्या दिल पर रख आया है? उस का कोई हो तो उसे अपने साथ लाने की इजाज़त तो आप उसे देंगे नहीं? ऐसी हालत में बेचारा उस का नाम ले कर हाथ से अपना तुरबत बनाये और फिर पाँव से उसे मिटा दे, ताकि आप उसे देख न सकें, यह न करे तो और क्या करे?' और पण्डित जी भगत सिंह से उलझ पड़ते— देखो रणजीत, तुम इस की कमज़ोरी नहीं समझते मैं समझता हूँ इस से ऐसा-वैसी बात मत किया करो। मौका देख कर मैं अपना निर्लोपिता का भाव बना कर कहता— पण्डित जी इन्हों ने ही तो मुझ से इसी गज़ल को गाने के लिए कहा था। पण्डित जी खिन्न हो कर कहते—यह अच्छी बात नहीं है। और भगत सिंह मुँह फेर कर मुसकराने लगते।'

आश्चर्य यह कि वे एक ही साथ दोनों बातों की पूर्ति करते थे, उन के शौक और विनोद साथ ही साथ चलते थे। यह शौक और यह छेड़-छाड़ एक दिन तो यहाँ तक बढ़ गया कि एक बार उन्हों ने माहौर जी से साथियों के बीच गाने को कहा। कहने का ढंग मज़ाकिया था माहौर जी बोले मूड नहीं है। इस पर भगत सिंह ने उन्हें बहुत चिढ़ाया तो उन्हों ने भगत सिंह को एक घूँसा जड़ दिया। भगत सिंह उन के मुकाबले भीम थे। उन्हों ने माहौर जी को धो दिया। सब साथियों ने बीच-बचाव किया। भगत सिंह ने कहा— आक्रमण इन्हों ने किया है मैं तो आत्मरक्षा में लड़ा हूँ।

मुझे सन्धि स्वीकार है, पर मेरी शर्त यह है कि ये महाशय गाना गाये। माहौर जी अपना प्रसिद्ध मराठी गीत 'कुठे गुन्तला' गाने बैठ गये और भगत सिंह लेटे-लेटे सुनने लगे।

क्रान्तिकारी दल मे अपने गाने के लिए भी भगत सिह प्रसिद्ध थे। यह गाना उन का एक शौक ही न था, मै ने बहुत वार सोचा है और मुझे लगा है कि सगीत के द्वारा वे अपने से अपना साक्षात्कार करते थे। असेम्बली बम-काण्ड मे भगत सिंह को आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया जा चुका था। श्री आसफअली एक वकील के रूप मे दिल्ली जेल की काल-कोठरी मे उन से मिलने जा रहे थे। श्रीमती अरुणा आसफअली भी उन के साथ थी। जब वे काल-कोठरी के पास पहुँचे, तो उन्हे गाने की आवाज सुनाई पडी। अरुणा जी ने कहा—"कितना सुरीला कण्ठ और मधुर स्वर है। कोई बहुत प्रसन्नता मे गा रहा है।" वे दोनो आगे बढे, तो वह गायक उन्हे दिखाई दिया। यह गायक और कोई नही, स्वय भगत सिह थे, जो अपने गाने पर, अपनी ही बेडियो से ताल दे रहे थे। कितना दिव्य था वह दृश्य!

सिनेमा देखने का खूब शौक था उन्हे, यदि हाथ मे कोई जिम्मेदारी का काम न हो। और जब सिनेमा न जाना हो, न जा सकते हो, तब जहॉ हो, जिन के साथ हो, वही महफिल जम जाती थी, और अट्टहासो, सवादो, सूक्तियो, शेरो और गजलो से भरी बातचीत की फिल्म चल पडती थी। ऐसी ही एक फिल्म का रेखा-चित्र प्रस्तुत करते है श्री भगवान दास माहौर—

"आगरे के एक मकान मे आजाद, भगत सिह, सुखदेव, राजगुरु, बटुकेश्वर दत्त, शिव वर्मा, विजय कुमार सिनहा, जयदेव कपूर, डॉ० गयाप्रसाद, वैशम्पायन सदाशिव आदि दल के सक्रिय सदस्य बैठे है। विनोद चल रहा है। विनोद का विषय है कि कौन कैसे पकडा जायेगा और पकडे जाने पर कौन क्या करेगा?

ये हजरत (राजगुरु) तो सोते हुए ही पकडे जायेंगे। हद हो गयी, जनाब चलते-चलते भी सोते जाते है। इन की ऑख पुलिस लॉक-अप मे खुलेगी और तब ये पहरे वालो से पूछेंगे मै सचमुच पकडा गया हूँ या स्वप्न देख रहा हूँ।

मोहन (बटुकेश्वर दत्त) चॉदनी रात मे पार्क मे चाँद देखते हुए पकडे जायेंगे। पकडे जाने पर पुलिस वालो से आप कहेंगे—कोई बात नही, मगर चाँद है कितना सुन्दर!

बच्चू (विजय कुमार सिनहा) और रणजीत (भगत सिह) किसी सिनेमा-हाल मे पकडे जायेंगे और तब पुलिस से कहेंगे—जी हाँ, पकड लिया, तो क्या गजब हो गया। अब खेल तो पूरा देख लेने दो।

और पण्डित जी (चन्द्रशेखर आजाद) बुन्देलखण्ड की किसी पहाडी में शिकार खेलते हुए किसी मित्र बने सरकार-परस्त के विश्वासघात मे घायल हो कर बेहोशी की अवस्था मे पकडे जायेंगे। आजाद ने झिडकी की हँसी हँसी। भगत सिंह ने विनोद करते

हुए कहा—पण्डित जी आप के लिए दो रसगुल्ले की जरूरत क्या । एक आप के गले के लिए और दूसरा इस भारी भरकम पेट के लिए। आजाद तुरत हँस कर बोले—दग फाँसी जाने का शौक मुझ नहीं है वह तुम्हें मुबारक हो। रस्सा-फन्दा तुम्हारे गले के लिए है। जब तक यह बमतुल बुखारा (पिस्तौल) मेरे पास है किस ने माँ का दूध पिया है जो मुझे जीवित पकड़ ले जाय।

सोचती हूँ मृत्यु की ज्वालामुखी के द्वार पर खड़े वाले भगत सिंह और उन के साथी कितने सजीव थे? जीवन के प्रति वे कितने सतत व कम निर्लिप्त थे?

रसगुल्ला उन्हें बहुत प्रिय था। लाहौर षड्यन्त्र मुकदमे के दिनों की बात है। ९ अप्रैल १९३० को जतीन्द्र सान्याल ने अदालत से दरख्वास्त की कि रसगुल्ला का एक पार्सल बंगाल से आया है पर जेल-अधिकारियों ने हम यह कह कर उसे नहीं लेने दिया कि यह लेने लायक चीज नहीं है।

रसगुल्ले का नाम सुनते ही भगत सिंह का रोम रोम खिल उठा। वे न्यायाधीश की ओर मुखातिब हुए और बोले— द रसगुल्लाज आर लाइंग आउट साइड विल यू टेक द टेबल ऑव एक्जामिनिंग देम? इट इज ए ब्यूटीफुल सीन। यू मे जस्ट लुक ऐट देम। रसगुल्लाज आर मोर इम्पॉर्टेण्ट फॉर अस दैन दीज विटनेसेज।—यानी रसगुल्ले बाहर पड़े हैं। क्या आप उन का निरीक्षण करने का कष्ट उठायेंगे? यह एक सुंदर दृश्य है। आप उन्हें जरा देखें तो। इन गवाहियों की अपेक्षा रसगुल्ले हमारे लिए अधिक महत्वपूर्ण हैं। रसगुल्लों की बात और भगत सिंह का बात कहने का अभिनय पूर्ण सरस ढंग सब इतने जोर से हँसे कि फाँसी और दंड का भय सकुचा कर अपने में सिमट गया।

मुकदमे के दिनों का ही एक और संस्मरण प्रस्तुत करते हैं श्री सत्यदेव विद्यालंकार— अदालत की छुट्टी के समय मुलाकात के लिए सबको एक ही कमरे में बचों या जमीन पर बिठाया जाता था जिस से एक-दूसरे से मिलने का अवसर बिना कठिनाई के मिल जाता था। एक दिन एक पुलिस इन्स्पेक्टर ने मुझे भगत सिंह से बातचीत करने से रोका तो वह बड़े ही लहजे में बोल उठे कि अरे भाई कल तो फाँसी पर लटका दोगे और आज दो बात भी नहीं करने देते। वह इंस्पेक्टर शरमा कर रह गया। अपने मुकदमे के लम्बे दौर में कभी एक बार भी सरदार उदास नहीं देखे गये और वह इतने प्रसन्नचित रहते थे कि किसी दूसरे को भी उदास न होने देते थे। मुकदमे की कार्यवाही में भी जब तब पुलिस पुलिस के गवाहों पुलिस के अधिकारियों और मजिस्ट्रेट पर भी चुटकियाँ भरते रहते थे। कभी-कभी तो उन के व्यंग्य भरे विनोद पर सारी अदालत हँसी से गूँज उठती थी। अपनी जिन्दादिली से अदालत के वातावरण को वह जिन्दा बनाये रखते थे।

उदासी नामक कोई चीज उन के जीवन में थी ही नहीं। कैसी भी परिस्थितियाँ क्यों न हों, वे सदा-सदा प्रसन्नचित्त ही रहते थे।

भगवान दास माहौर को 'फिलॉसफी' मे सब से अधिक अक प्राप्त करने पर पुरस्कार के रूप मे एक पुस्तक मिली। भगत सिंह ने यह बात सुनी तो पूछा—"जनाब को यह इनाम डण्ड-बैठक मारने मे मिला है या फिलसफा मे?" दल के एक नये सदस्य ने उन का मजाक न समझ कर गम्भीरता से कहा—"इन्होने क्लास मे इस विषय मे सब से अधिक अक प्राप्त किये है, इसी लिए इन्हे पुरस्कार मिला है।" उस की गम्भीरता पर भगत सिंह निराली अदा से मुसकराये। तब कहा—"ये कक्षा मे नीचे से सर्वप्रथम होते, तो मैं अधिक प्रसन्न होता।"

उन्ही दिनो कॉलिज के एक नाटक मे खलनायक का अभिनय करने पर भी माहौर जी को प्रथम पुरस्कार मिला। भगत सिंह ने सुना, उन से बोले—"हनुमान् जी, धन्य हो, आप और अभिनय! अब यही सुनना बाकी है कि ब्यूटी कॅम्पिटीशन मे भी आप को प्रथम पुरस्कार मिला है।" बस इसी तरह वे हँसने-हँसाने के क्षणो का निर्माण करते रहते थे।

भगत सिंह पहली फरारी के बाद कानपुर से आये तो उन की बहन (बीबी अमर कौर) महीनो बाद उन्हे देख कर रोने लगी। उन्हो ने परिवार के सब लोगो को जल्दी आओ कह कर बुलाया और बोले,—"देखो, अमरो मेरे आने की खुशी मे रो रही है।" सुन कर सब हँस पडे, तो रोती हुई अमरो भी खिलखिला कर हँस पडी।

उन दिनो डेरी का काम चल रहा था। एक दिन बेबे जी ने कहा—"भगत, तू जाने कहाँ फिरता रहता है, घर नही रहता। नौकर दूध पी जाते है।" चुटकी बजा-बजा कर वे नाचते हुए गाने लगे—"वण्ड दे गरीबाँ नूँ, बेबे, वण्ड दे गरीबा नूँ, इह घर कम नही औणा।" बेबे जी ने बडी चिन्ता-भरी गम्भीर मुद्रा मे बात आरम्भ की थी। पर भगत सिंह के इस अभिनय को देख कर वे खिलखिला पडी।

दादी श्रीमती जय कौर ने जन्म के समय उन्हे भागो वाला कहा था। वे भगत सिंह को इसी सम्बोधन से पुकारती रही। मुकदमे के दिनो उन्हे हथकडी पहने देख कर दादी ने दु ख से कहा—"हाय, भागो वाले ये गहने पहने हुए है।" वे ताल के साथ हथकडियाँ बजाते हुए हँस कर बोले—"ये सरकार के पहनाये हुए बहुत कीमती गहने है, हरेक को यह कहाँ मिलते है?"

वे दु ख के अँधेरे को दूर करने के लिए हँसी की रोशनी तो फेंकते ही थे, दूसरो के हृदय जीतने के लिए यह उन का जादुई अस्त्र भी था। श्री भगवानदास माहौर के शब्द है—"जब मैं उन की सोशलिस्ट फिलासफी की तीखे ढग से कही गयी बातो के विरोध मे उन की भारतीय दर्शन या वेदान्त की दुहाई दे कर सस्कृत के श्लोक सुनाने लगता था, तब वे मेरे सामने हाथ जोड कर 'जय हनुमान ज्ञान गुणसागर' का पाठ करते हुए कुछ ऐसी मार्मिकता मे हँसते थे कि उन के तर्क मे नही, मैं उन की उस सद्भावना और हार्दिक अपनेपन से सराबोर हँसी मे अपने-आप को परास्त हुआ ही नही, वशीभूत और मन्त्रमुग्ध हुआ-सा अनुभव करने लगता था।"

भगत सिंह के स्वभाव की एक अनुकरणीय बात यह थी कि उन के निर्णय पूर्वाग्रहों से मुक्त और समग्रता की दृष्टि से युक्त होते थे। मुकदमे के दिनों में एक बार कुमारी लज्जावती जी ने उन से पूछा था— लाला लाजपत राय की नीति से आप सहमत नहीं थे, उन्हें नरम कह कर आलोचना किया करते थे। फिर उन के ही अपमान का बदला लेने के लिए आप ने पार्टी के योग्यतम नेताओं के जीवन का और एक तरह से पार्टी के अस्तित्व का ही खतरे में क्यों डाल दिया?

उन का उत्तर था— उन से मतभेद तो जरूर था, पर थे तो वे हमारे बापू ही।" इस के बाद उन्हों ने अपने ओजस्वी स्वर में जो कुछ कहा था उस का सार था— 'जवान बेटा भी मौजूदगी में बूढ़े बाप पर दुश्मन प्रहार करे उस की चोट से बाप मर जाये, तब भी बेटा का खून न उबले और वह बाप की मौत का बदला लेने का निश्चय न करे तो उन बच्चे के लिए लानत के सिवा और कोई क्या कह सकता है?' सोचती हूँ, उन के क्रांतिकारी नेतृत्व का सर्वश्रेष्ठ प्रदान यदि असेम्बली बम-काण्ड और उस के बाद की घटनाएं हैं तो उन के मानवीय व्यक्तित्व का सर्वश्रेष्ठ प्रदान साण्डर्स-वध की इस भूमिका में है।

भावुक हो कर भी वे कितने यथार्थवादी थे इस का पता चार क्रांतिकारिणी सुशीला दीदी की छोटी बहन श्रीमती शान्ता बल्लव के इस संस्मरण से चलता है— साण्डर्स-वध के बाद भगत सिंह कलकत्ता में सुशीला दीदी के पास ठहरे हुए थे, तभी की बात है— 'एक दिन पार्क स्ट्रीट के अन्त में भैया एक मकान दिखाया और पूछा— "अगर अकेली आओगी, तो यह मकान भूल तो न जाओगी?" मैं ने दृढ़ता से कहा, कभी नहीं। दो दिन बाद डॉक्टरों-जैसा एक बैग मुझे दिया गया और समझाया कि सावधानी से खोलना नहीं। वहाँ जाओ मधु दा का कह कर पूछना इसे उन्हीं के हाथ में देना और किसी के नहीं। मैं सुबह सात बजे से लगभग सेण्ट्रल एवेन्यू से चली। मेडीकल कालेज का अहाता पार किया। कालेज स्ट्रीट से बस पकड़ी। बस पार्क स्ट्रीट की ओर भागने लगी परन्तु जहां बस-स्टॉप होता कण्डक्टर ऊँची आवाज़ देता—'आँधे के!' ड्राइवर पूरे धक्के के साथ ठहरा देता। मैं मनाती अब और कोई बस स्टॉप न आये तो अच्छा परन्तु यह कैसे होता। बस अपना एक एक स्टॉप पार करती पार्क स्ट्रीट पहुँची। मैं वहाँ उतरी और अपनी ड्यूटी पूरी कर लौट आयी। आती बार मन रह रह कर सिहरन हो उठती। अपनी कल्पना से सोचती अगर कोई बम बस के धक्के से बैग के अन्दर फट जाता तो क्या होता? फिर कल्पना करती मेरी बोटी-बोटी उड़ जाती, बस का निशा बिशा हो जाता। न जाने कितने अभागे मुसाफिर बिना मौत मरते। चारों ओर खून मांस के लोथड़े सड़क पर बिखरे होते और घिर जाने अमरत्व दृश्य।"

घर आने के बाद— भगत सिंह खाना खाने ही वाले थे। बहन जी टमाटर [illegible] बनाकर रख रही थी। मैं ने गिला के तरीके से कहा—"भैया, आप

लोगों ने क्या सोच कर मुझे यह काम सुपुर्द किया था ? कभी-कभी आप लोगो को खबर मिलती है कि अमुक साथी सरकारी गवाह बन गया। अगर कोई बम फट जाता, तो शायद मैं भी सरकारी गवाह बन जाती।

बहन जी, जो अभी पास ही खडी थी, तमक पडी पूरे ज़ोर से। मेरे सिर पर हाथ मार कर बोली, जानती हो शान्त, तब मेरा ही तमचा तुम्हारा यह सिर उडाता। मैं भौचक्की-सी रह गयी और वहाँ से हट बाहर टहलने लगी। भाई भगत सिंह ने खाना तो खाया, परन्तु कुछ सोचता रहा। कुछ देर बाद मुझे उन के ये शब्द सुनाई पडे—दीदी, शान्त आप से छोटी है, क्या इसी लिए उस की बात की कोई कीमत नही ? आप ने उस की बात सुनी-भर जरूर हैं, परन्तु समझी नही। जो व्यक्ति हमारी पार्टी का नही, केवल सहानुभूति-भर रखता है, उस से समय पर जैसे-तैसे काम निकालने की हठधर्मी करना ही हमे जोखिम मे डालने का कारण बन जाता है। पार्टी का आदमी ही ऐसा काम करे, तो इस मे पार्टी के लिए अधिक कल्याण है। इसे तो मैं ने बहुत गम्भीरता से समझा है और जहाँ तक मेरा बस चलेगा, इसे दृढता से पालन करूँगा। दीदी पर उन की बात का असर पडा और रात मे उन्हो ने आँखो मे आँसू भर कर मुझ से बात की।"

सोचती हूँ भगत सिंह को जिन तत्त्वो ने लोकप्रिय बनाया, उन मे उन के स्वभाव की ये विशेषताएँ प्रमुख थी। उन के साथी श्री विजय कुमार सिनहा के शब्दो मे—"सरदार भगत सिंह का जीवन ऐसी घटनाओ से भरा पडा है, जिन से उन की नैतिक ऊँचाई प्रकट होती है। वह एक स्वाभाविक योग्यता थी, जो क्रान्ति के रूप मे परिवर्तित हो गयी। स्वभाव की दृष्टि से वे एक कलाकार थे।"

उन की इस कला का प्रदर्शन अपने चरमोत्कर्ष (क्लाइमेक्स) पर पहुँचा ४ अक्टूबर, १९३० को, जब सन्त रणधीर सिंह उन की काल-कोठरी मे उन से मिले। सन्त जी अपनी सजा पूरी कर जेल से छूट रहे थे। उन के अनुरोध पर जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट ने भगत सिंह से मिलने की उन्हे इजाजत दे दी थी। सन्त जी बडी उम्र के आदमी थे। भगत सिंह बहुत आदर के साथ उन से मिले। पहले इधर-उधर की बातें हुई, तब सन्त जी अपनी बात पर आये। सन्त जी स्वयं एक धर्मात्मा आदमी थे। ईश्वर-भक्ति ही उन के जीवन का बल थी। उन्हो ने सुना था कि भगत सिंह नास्तिक हो गये है। वे इस बात से दुःखी थे और चाहते थे कि भगत सिंह को इन घडियो में आस्तिक बनाने का श्रेय उन्हे प्राप्त हो। भगत सिंह की दृढता के बारे मे उन्हो ने सुन रखा था, इस लिए सीधे ईश्वर की बात न कर उन्हो ने आत्मा की अमरता पर बात-चीत आरम्भ की—आत्मा अमर है भगत सिंह, शरीर मर जाता है, यह नही मरती। देह के मिट्टी में मिलने पर आत्मा फिर जन्म लेती है और इस तरह बार-बार दुनिया में आती है। तुम यह समझ लो कि मरने के बाद भी तुम ख़त्म नही होगे।

सन्त जी की बात सुन कर भगत सिंह ने ऐसा भाव प्रदर्शित किया कि जैसे वे

उन के धार्मिक विचारों से एकदम प्रभावित हो गये हों। उन्हों ने सन्त जी से कहा कि मेरे मन का एक बहुत बड़ा अँधेरा आज दूर हो गया है। मैं अब तक यह सोचता था कि फांसी लगने के बाद मैं खतम हो जाऊँगा। इस बात से मेरा मन बहुत दुखी रहता था पर अब आप की बातों से मेरा मन खुशी से भर गया है कि मैं खत्म नहीं हूँगा।

इस के बाद तो वह नाटक आरम्भ हुआ कि आनन्द हो आ गया। सन्त जी रोज़ ही बाद एक धर्म का उपदेश करते गये और भगत सिंह हाथ जोड़ कर उसे मानते चले गये। नास्तिकता काफूर हो गयी और आस्तिकता जम गयी। ईश्वर को भगत सिंह के हृदय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ और भगत सिंह पूरे रहस्य भगत बन गये। ऐसा मालूम होने लगा कि स्वामी विवेकानन्द पर महात्मा रामकृष्ण का जैसा प्रभाव पड़ा था सन्त रणधीर सिंह का भगत सिंह पर उस से भी ज्यादा प्रभाव पड़ा है और उन का एकदम कायाकल्प हो गया है। भगत सिंह के लिए यह सब एक मज़ाक था, जिस में एक भारी बुज़ुर्ग के मन रंजन की निष्ठा भी समायी हुई थी पर सन्त जी के लिए तो यह एक बड़ा करिश्मा हो गया। उसे उन्हों ने जेल से बाहर जा कर बड़ी मौज के साथ खर्च किया। यही नहीं कि अपनी सामर्थ्य का खूब बखान किया बल्कि उसे छपा छपा कर भी खूब बाँटा।

धर्मभाग भाले अशिक्षित और अबोध लोगों ने तो इसे सन्त जी का चमत्कार माना ही पर यह देख कर मुझ बहुत दया आती है कि बहुत से विद्वान लोग भी भगत सिंह के मज़ाकिया स्वभाव को न पहचान कर इस धर्म की पताका के रूप में फहराते फिरते हैं।

बातें और भी सौ हैं पर लगता है कि उन के स्वभाव की सब विशेषताएँ उन की माता के इन शब्दों में समा गयी हैं— उन का स्वभाव ऐसा था कि इनसान तो इनसान उन्हें तो जानवरों से भी बेहद प्यार करते थे। मैं भैंस का दूध निकाल कर आ जाती तो अन्त बार ऐसा होता कि अपने आनन्द के मूड में वे भैंस के पास जा कर कहते मौसी दूध दे दे और थन पकड़ कर बैठ जाते। मैं देख कर भौंचक रह जाती कि दूध निकाल लेने पर भी भैंस और दूध उतार देती और वे बच्चों की तरह उस का थन मुँह में ले कर चूसने लगते।

■ ■

भगत सिंह : एक मानव

"हम से बढ़ कर जिन्दगी को कौन कर सकता है प्यार।
और अगर मरने पे आ जाये तो मर जाते है हम।
जाग उठते है तो सूली पर भी नींद आती नही।
वक़्त पड़ जाये तो अंगारो पे सो जाते है हम।
मर के भी इस खाक में हम दफन रह सकते नही।
लाला-ओ-गुल बन के वीरानों पे छा जाते हैं हम।"
— सरदार जाफरी

शहीद-शिरोमणि भगत सिंह जेल मे थे। दिल्ली की अदालत से असेम्बली बम-काण्ड मे उन्हे काले पानी की सज़ा हो चुकी थी। अब उन पर लाहौर षड्यन्त्र केस का मुकदमा चल रहा था। सभी जानते थे कि उन्हे फाँसी होगी। तभी की बात है—एक बार उन से मुलाकात करने को परिवार के लोग गये तो चाची हरनाम कौर उन्हे देखते ही फफक पडी। भगत-सिंह को उन्हो ने अपने हाथो नहलाया, सुलाया, खिलाया था। उन्हे बेडियो मे कसा और मौत के जाल मे फँसा देखा तो कलेजा ही बह पडा आँखो से आँसुओ के बहाने।

भगत सिंह ने उन्हे रोते देखा। वे पानी-पानी हो गये। स्मृतियाँ उन के रोम-रोम मे उभर आयी। फिर अपने को सँभालते कुछ हलकी कडक के स्वर मे बोले—"चाची जी आप रोती है, रो सकती है, कोई बात नही। मैं भी एक इनसान हूँ और रो सकता हूँ, पर मेरी आँख से एक बूँद आँसू भी गिर पडा, तो जानती है, क्या होगा ?"

यह क्या कह दिया उन्हो ने ? सोचती हूँ, तो सोचती रह जाती हूँ। कुम्हार मिट्टी खोद कर लाता है। फिर उसे कूटता, छानता, भिगोता, सानता और तैयार करता है। तब बनती है मूर्त्ति, पर कच्ची होती है वह मूर्त्ति। पानी गिरे तो बह जाये, फिर ज्यो की त्यो मिट्टी बन जाये। कुम्हार आवाँ तैयार करता है, मूर्त्ति उस मे रखता है, आग सुलगाता है। मूर्त्ति आग मे तप कर पक्की हो जाती है, कुम्हार उसे समाज के सामने प्रस्तुत कर देता है। भगत सिंह ने भी साण्डर्स-वध और असेम्बली बम-काण्ड के रूप मे एक मूर्त्ति बनायी थी। मुकदमे के आवें मे तपा कर वे उसे पक्की कर

रहे थे। आँसुओं का पानी उस गम्भ गरता था।

यह मूर्ति किस की थी? यह मूर्ति किस रूप में थी? यह मूर्ति क्रांति की थी और क्रान्ति-ध्यान अपनी निष्ठा और तल्लीनता में भगत सिंह ही क्रांति की मूर्ति बन गये थे। संसार के इतिहास में यह एक चमत्कार था। तुलसीदास ने महाकवि वाल्मीकि के महापुरुष राम को भक्ति के तल्लीन चिन्तन में डूब कर भगवान ईश्वर राम की मूर्ति में ढाल लिया था। कृष्ण आत्मा के अनन्तर ध्यान की उड़ान देते-देते आत्म लीनता में स्वयं चैतन्य-स्वरूप हो अपने विराट् का ध्यान दे व्यक्ति और समूह की एकता के प्रतीक हो गये थे। दोनों ही महान हैं, महान से महान हैं, पर इस बात का कोई दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करने में इतिहास बेबस के साथ लाचार है कि कोई भगत सिंह की तरह अपने लक्ष्य का चिन्तन करते, अपने लक्ष्य का चित्र प्रस्तुत करते स्वयं लक्ष्य हो गया हो।

भगत सिंह क्रान्तिकारी से क्रान्ति का प्रतीक हो गये—स्वयं साक्षात क्रान्ति मूर्ति। विख्यात अमेरिकी पत्रकार लुई फिशर ने रूस के विधाता स्टालिन की क्रूरताओं का एक यह महत्वपूर्ण विश्लेषण किया था कि वे साम्यवाद का मूर्तरूप देने में इतनी तल्लीनता से डूबे कि मनुष्य होते हुए भी मनुष्य नहीं रहे, साम्यवाद का एक जड़यंत्र हो गये।

क्या भगत सिंह साम्यवाद के उस जड़यन्त्र की तरह क्रांति का जड़ प्रतीक हो गये थे जिस में मानवीय सहृदय अनुभूति के लिए स्थान नहीं होता? नहीं, अदालत के बीच बहे उन के आँसू इस का प्रतिवाद करते हैं।

अदालत के मंच पर न्यायाधीश बैठे थे। सामने सब अभियुक्त थे। सरकारी मुखबिर हंसराज वोहरा कटघरे में खड़े बयान दे रहे थे। बयान क्या था, अभियुक्तों के लिए मौत का फन्दा था। क्रान्तिकारी दल के रहस्य खोले जा रहे थे, षड्यन्त्रों की कहानी कही जा रही थी। भगत सिंह टकटकी बाँध हंसराज को देख रहे थे। यह देखना इतना तल्लीन था, इतना भावपूर्ण था कि लग रहा था जैसे भगत सिंह देख तो रहे हैं पर सुन नहीं रहे हैं। उन का पूरा चेतनायन्त्र उन की आँखों में समा गया था। उन की खूबसूरत आँखें इस तल्लीनता से और भी खूबसूरत हो उठी थीं।

अचानक उन के चेहरे पर भावों का उतार चढ़ाव एक तेज़ बवंडर की तरह घूम गया। पहले उस में तनाव आया। फिर गुस्से की गरमी में तमतमाहट आयी। तब व्यथा की हल्की रेखा खिंची। फिर क्षण भर में यह रेखा गहरी, गहरी और भी गहरी होती गयी। आँखें पहले चपचपायीं, फिर नम हुईं, फिर टपकीं और तब बरसने लगीं।

भगत सिंह क्यों रो पड़े? क्या इस लिए कि मुखबिर का बयान उन्हें फाँसी के तख्ते की ओर बढ़ा रहा है? इस पर कौन हँसे कहेगा, क्या कि दुनिया जानती है कि मृत्यु को एक वरदान के रूप में प्राप्त करने के लिए भगत सिंह ने स्वयं एक लम्बी योजना बनायी थी। मृत्यु के प्रति उन में भय कहाँ था, जो मुखबिर का बयान सुन कर

वे रो पडते ? फिर वे क्यो रोये ?

मानवीयता के इतिहास मे, एक अद्भुत घटना घटी कि इस प्रश्न को ठीक-ठीक समझा मुखबिर हसराज ने और इस का ठीक-ठीक उत्तर भी दिया हसराज ने—उस की भी आँखें, बरस पडी, वह भी रो पडा। चार आँखें एक साथ रो रही थी। दो आखें, करुणा से आप्लावित हो कर रो रही थी, हाय, साथी हसराज पर कितने अत्याचार हुए जो वह इस तरह टूट गया। मुखबिर बनने को मजबूर हुआ। भगत सिह लाहौर के किले मे यह सब अत्याचार स्वय सह चुके थे और इस समय उन्हे अपनी देह मे अनुभव कर रहे थे। दो आँखें पश्चात्ताप से विह्वल हो कर रो रही थी। उन के लिए भगत सिह के आँसुओ मे क्रोध एव घृणा नही, बन्धुता का कोमल विश्वास ही सत्य था। मेरा प्यारा और आदरणीय साथी मेरे कारण दु खी है और मेरे पतन के बाद भी मेरे प्रति क्रुद्ध नही करुण ही है। यह अहसास तो पत्थर को भी पिघला सकता है फिर हसराज तो एक मनुष्य ही था। ये आँसू भगत सिह के मानव रूप का जो भावचित्र खीचते है, वैसा चित्र क्या कोई रगो का चित्रकार खीच सकता है ?

भगत सिह हिमालय की ऐसी चट्टान थे, जिस पर हथौडे की चोट काम नही करती, व्यर्थ होती है, हाँ भगत सिह हिमालय की ऐसी चट्टान थे, जिस पर हथौडे की चोट काम नही करती, पर जिस से निर्मल शीतल जल अवश्य बहता है, उन के जीवन का गहन विश्लेषण कर ऐसा लगता है, कि वे ज्वाला, आँसू और मुसकान के तीर्थराज प्रयाग थे। जो आदमी भरी अदालत मे रो पडा, उस ने ही दिल्ली जेल से २६ अप्रैल १९२९ को अपने पिता के नाम यह पत्र लिखा था कि "अगर आप मिलने के लिए आयें, तो अकेले ही आ जायें। वालदा साहिबा (माता जी) को साथ न लाइएगा। ख्वामखाह वो रो देंगी और मुझे भी कुछ तकलीफ जरूर होगी।" जो आदमी मृत्यु के प्रति निर्लिप्त है और निर्लिप्त भी क्या, उस के आगमन की योजनापूर्वक व्यवस्था कर रहा है, वह माँ के आँसुओ के प्रति निर्लिप्त तो है ही नही, उन के प्रति आशका से प्रभावित है। यह मृत्युजय भगत सिह का मानवीय रूप है। वे तरल प्रवाही भी है, गरलपायी भी है, अनल-दाही भी है। वे स्वय आँसुओ की तरह कोमल है, गरल की तरह घातक है, अनल की तरह दाहक है। वे किसी श्रेष्ठ राष्ट्र के, श्रेष्ठ नागरिको मे श्रेष्ठ स्थान पर बैठने योग्य है, श्रेष्ठ मनुष्य है, तो विश्व के श्रेष्ठ क्रान्तिकारियो मे श्रेष्ठ क्रान्तिकारी कहलाने योग्य भी है।

वे स्वय हर क्षण हर कष्ट सहने को तैयार थे, पर दूसरे मनुष्य के मन को कोई हल्की-सी भी ठेस लगे, इसे वे सहन नही कर सकते थे। उस दिन कुछ क्रान्तिकारियो के बीच गम्भीर बात हो रही थी। सम्भवत असेम्बली बम-काण्ड की योजना को अन्तिम रूप दिया जा रहा था। एक-एक बात की गहराई मे उतर रहे थे नेता और सफलता के बीच मे आने वाली बाधाओ का निराकरण सोच रहे थे। श्री भगवतीचरण बोहरा का नन्हा पुत्र शची इन बातो के बीच सन्तरा लेने की जिद कर रहा था। जीवन-मरण की

को वना लेगा, लेकिन आधुनिक समय में यह कोई बुराई नही है। वल्कि मनुष्य के लिए अच्छा और लाभदायक है। मै ने एक आदमी के एक आदमी से प्यार की निन्दा की है, पर वह भी एक आदर्श स्तर पर। इस के होते हुए भी मनुष्य मे प्यार की गहरी से गहरी भावना होनी चाहिए। जिसे कि वह एक ही आदमी मे सीमित न कर दे वल्कि विश्वमय रखे।"

असेम्वली मे वम फेकने का पार्टी मे फैसला हो चुका था। वम फेंक कर भगत सिंह भागेंगे नही, पकडे जायेंगे, फाँसी चढेगे या आजीवन कारावास का दण्ड भोगेंगे, यह भी तय था। पाँच-छह दिन शेष थे उस महान् घटना के घटित होने मे। भगत सिंह अपने साथी श्री विजय कुमार सिनहा के साथ दिल्ली के एक पार्क मे खडे थे। पास के लॉन पर लडके-लडकियाँ खेल रहे थे। भगत सिंह वहुत देर तक उन्हे देखते रहे। तव एक गहरी साँस ले कर वोले—"यह कितने दु.ख की वात है कि जिन्हे जिन्दगी की कीमते मालूम हैं, वे मरने पर मजवूर हैं, और जिन्हे वे मालूम नही, वे जीते है। हम युवक-जीवन की सुन्दरता से पूर्ण परिचित हैं, पर समाज की अन्यायपूर्ण प्रथाओं मे रहने की अपेक्षा मृत्यु को चुनना पड़ेगा।"

एक जगह उन्हो ने लिखा था—"जिन्दगी वहुत खूवसूरत है, पर उसे और भी खूवसूरत वनाया जाना चाहिए।" वे स्वयं वहुत खूवसूरत थे, और खूवसूरती के प्रशंसक भी थे। उन के वैठने-उठने, पहनने-खाने और वातचीत मे एक करीना था। वाहरी सुन्दरता-स्वच्छता ही नही, आन्तरिक सुन्दरता-स्वच्छता का भाव भी उन मे वहुत गहरा था। वाहरी गन्दगी से ही उन्हे चिढ न थी, भीतरी गन्दगी भी उन के लिए असह्य थी। डकैती को, भले ही उस का उद्देश्य देश-सेवा हो, वे पसन्द नही करते थे, उस से परेशान होते थे। वे जीवन के हर क्षेत्र मे कलाकार थे। कलाकार का कल्पनाशील होना स्वाभाविक ही है, अत जिन के घर डाका पडता है, उन के निर्दोप मन की विह्वलता को वे अनुभव कर सकते थे। जव पहली वार श्री योगेशचन्द्र चटर्जी उन्हे अपने साथ डकैती मे ले गये तो मन के अन्तर्द्वन्द्व ने इतना उद्वेलित किया कि उन्हे कै हो गयी।

उन्हे जव अदालत ने फाँसी का हुक्म दिया, तो 'प्रताप' के सम्पादक, राष्ट्र-कर्मी और भावुक कवि पण्डित वालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने (जिन के साथ भगत सिंह ने कई महीने काम किया था) लिखा—"किसी भी देश का युवक जितना सच्चा, चरित्रवान्, और वीर, सन्तोपी, आदर्शवादी, उत्सुक, निखरा हुआ तप्त स्वर्ण हो सकता है वह भगत सिंह है। यदि भगत सिंह लॉर्ड इरविन का पुत्र होता, तो हमे विश्वास है कि वे उसे प्यार करते। वह वड़ा सुसंस्कृत, भोला-भाला पगला-सा नौजवान है। वह हमारी वत्सलता, स्नेह, आदर और प्यार का व्यक्त मूर्तरूप है।"

भगत सिंह और वटुकेश्वर दत्त ने भूख-हड़ताल की, तो दूसरे राजनैतिक कैदी भी भूख-हडताल करने को तैयार हो गये। गदर-पार्टी के अध्यक्ष वावा सोहन सिंह भकना भी उन दिनो उसी जेल में थे। वे १९१५-१६ से जेल काट रहे थे। अव उन की

वद पूरी हान को थी। व भी भूख हडताल करन का तयार हा गय। वडी उम्र थी उन की। फिर भूख-हडताल करन स जल की मियाद का वढ जाना निश्चित था क्या कि महीन में जो चार दिन छूट के मिलत ह वे भूख हडताल करन से काट लिय जात हैं। भगत सिंह उन का निश्चय सुन कर विह्वल हो गय और स्वय उन क पास आग्रह करन गय कि व भूख-हडताल न करें। दोनो वहादुरा म खूब बातें हुई। भगत सिंह बहुद गम्भीर थे और बाबा जी को खुशामद कर रह थ कि व मान जायें। यह क्रांति की दो पीढ़िया का मिलन था। नयी पीढी पुराना पाढी स विश्राम करन को कह रही थी पर पुरानो पीढी मोरच पर जूझन की घोषणा कर रही थी। बाबा जी न मान। भगत सिंह उन क पास स चले तो उन की आखा स टप-टप आँसू गिर रह थ।

यह चित्र सब स अधिक स्पष्ट होता ह भगत सिंह और उन क पिता सरदार किशन सिंह क मतभद म। अपन समय में सरदार किशन सिंह उत्तर भारत म क्रांति क मुख्य सगठक थे। सरदार अजीत सिंह न भारतमाता सासायटा क रूप म जा ज्वाला भडकायी उस क इधन का प्रबन्ध सदा सरदार किशन सिंह न किया। भगत सिंह म जो सगठन शक्ति दिखाई दी वह उन के पिता की ही शिक्षा का फल थी। उन का घर सदा क्रान्तिकारियो की धमशाला बना रहा और उन क सरक्षण पोषण और गोपन का काम व प्रसन्नतापूवक करत रह। उन का सारा जीवन घोर सघष म ही बीता। पूरी सचाई क साथ कहा जा सकता ह कि व जन्म स मृत्यु तक सघष म ही रह। हर आत्मा जीवन क ढलाव म शान्ति और सवा चाहता ह। कुटुम्ब बडा था। मुकदमा न घर की बगिया उधड दी था। एक छोटे भाई की जल क कष्टा स मृत्यु हा चुकी थी दूसर निर्वासित थ। वडा पुत्र मर गया था। भगत सिंह हा उन की आशा क केन्द्र थ पर गुप्त आन्दोलन का नहीं मृत्यु की योजना बना रह थ। इस स्थिति में सरदार किशन सिंह का क्रुद्ध होना सहज था। एक बार सिर म भयकर चोट लगन क कारण व बहुत कमजार हो गय थ। उन्हें बहुत गुस्सा आन लगा था। गुस्से में व गूढ गालियाँ दन और मारन भी लगन थ। भगत सिंह की सम्मानियता का यह पहलू कितना मार्मिक ह कि व पिता-श्री की गालिया पर उस पर ध्यान न दत थ उस क कारणा पर, उन की शारीरिक-मानसिक दशा पर ही और करत थ। व सोचत थ—इस समय जो निश्चिन्तता उन्ह मिलना चाहिए वह नहीं मिल रहा ह। व स्वय अपन आदर्श क प्रति समर्पित थ। अपन सकल्प स बदल थ। उन क आदर्श और सकल्प महान थ य उन पर सब कर सकत थ करत थ पर पिता की वदना की भी समझत थे सहयोग करत थ और इस लिए मतभद म भी उन क प्रति मधुर रहत थ आदर्श म स्थिर रहत थ। सचमुच अपन चट्टान थ सचमुच व सहृदय आद्य बिन्दु थ।

भगत सिंह न अपन बाबा श्री अर्जुन सिंह स कहा था— म इस बार मकान क लिए जा रहा हूँ फिर भी क्रान्तिकारी परिवार क लोगा का ध्यान भी रखना ह।

यह व्यान क्या यो ही ऊपरी था या इस मे हार्दिक गहराई थी ? इस मार्मिक न का उत्तर ३ मार्च १९३१ को फाँसी-कोठरी से अपने छोटे भाई कुलवीर सिंह के म लिखा पत्र देता है। परिवार के लोगो से उस दिन उन की आखिरी मुलाकात ई थी। मुलाकात के बाद ही यह पत्र उन्हो ने लिखा था। इस मे उन के अन्तर का त्यन्त कोमल चित्र है—

जीजम कुलवीर सिंह,

तुम ने मेरे लिए बहुत कुछ किया। मुलाकात के वक्त अपने खत के जवाब कुछ लिख देने के लिए कहा। कुछ अलफाज लिख दूँ और बस—देखो मैं ने किसी के लिए कुछ न किया—तुम्हारे लिए भी कुछ नही। आ-कल बिलकुल मुसीबत में छोड कर जा रहा हूँ। तुम्हारी जिन्दगी मे क्या होगा, गुजारा कैसे करोगे ? यही सब सोच कर कॉप जाता हूँ, मगर भाई, हौसला रखना, मुसीबत में भी कभी मत घबराना। इस के सिवा और क्या कह सकता हूँ। अमेरिका जा सकते तो बहुत अच्छा होता, मगर अब तो वह भी नामुमकिन मालूम होता है। आहिस्ता-आहिस्ता मेहनत से पढते जाना। अगर कोई काम सीख सको तो बेहतर होगा, मगर सब-कुछ पिता जी के मशवरे से करना। जहाँ तक हो सके मुहब्बत से सब लोग गुजारा करना। स के सिवाय क्या कहूँ ?

जानता हूँ आज तुम्हारे दिल के अन्दर गम का समुद्र ठाठे मार रहा है। भाई, तुम्हारी बात सोच कर मेरी आँखो में आँसू आ रहे है, मगर क्या किया जाये, हौसला करना। मेरे अज़ीज, मेरे बहुत प्यार भाई, जिन्दगी बडी सख्त है और दुनिया बडी बे-मुरव्वत। सब लोग बड़े बेरहम हैं। सिर्फ मुहब्बत और हौसला से ही गुजारा हो सकेगा। कुलतार की तालीम की फिकर भी तुम ही करना। बड़ी शर्म आती है और अफसोस के सिवा मै कर ही क्या सकता हूँ। साथ वाला ख़त हिन्दी में लिखा हुआ है। खत केकी बहन को दे देना। अच्छा प्यार। अजीज भाई अलविदा ...... रुख़सत।

तुम्हारा खैर अन्देश
भगत सिंह।

उसी दिन दूसरे छोटे भाई कुलतार सिंह को उन्हो ने दूसरा पत्र लिखा था। उस की एक पंक्ति है—"आज तुम्हारी आँखो में आँसू देख कर बहुत दुःख हुआ। आज तुम्हारी बातो में बहुत दर्द था। तुम्हारे आँसू मुझ से सहन नही होते।"

क्या उन की यह बहती करुणा परिवार के साथ सामान्य लगाव का ही एक रूप है ? नहीं, यह भगत सिंह की मानवीयता की व्यापक झांकी है। जुलाई १९३० मे जब उन के साथी श्री बटुकेश्वर दत्त को लाहौर से मुलतान जेल मे बदल दिया गया तो उन्हो ने बटुकेश्वर दत्त की बहन श्रीमती प्रमिला देवी को एक पत्र में लिखा था—"हिज सपरेशन इज निवियरेबल फॉर मी टू। इट् इज ओनली टु हैट वार फ़ील

क्वाइट परप्लक्मड एण्ड एवरी मिनिट इज बिकेम ए बडन। रियली इट इज वेरी हाड टु बि सपरेटेड बिद ए फेण्ड मोर डियर दन माई ओन ब्रदस। एनी हाऊ वि मस्ट बियर ऑल पेशेण्टली। आई वुड रिक्वेस्ट यू टु कीप करज।'

अर्थात— 'उन की जुदाई मेरे लिए भी असह्य है। आज यह पहला दिन है जब मैं अपने को पूरी तरह उद्विग्न पा रहा हूँ और मेरे लिए हर मिनिट एक बोझ बन गया है। सचमुच एक मित्र से जुदा होना जो मुझे सगे भाइयो से भी अधिक प्रिय है बहुत दुखद है। खैर हमें यह सब शान्ति से सहना है। मैं आप से धीरज रखने की प्राथना करता हूँ।'

करुण, अश्रुप्लावित, आस बिन्दु की तरह कम्पनयुक्त यह फीलिंग, यह अनुभूति यह एहसास, यह चेतना ही तो भगत सिंह है। मानवता के महान् चट्टानी साधक, पर एक सुकुमार मानव भगत सिंह यही तो उन के व्यक्तित्व का पूर्ण चित्र है।

भगत सिंह सेण्ट्रल जेल लाहौर में १५ जून, १९२९ से अनशन कर रहे थे। बोर्स्टल जेल लाहौर में उन के दूसरे साथियो ने भी ९ जुलाई १९२९ से उन की सहानुभूति में अनशन आरम्भ कर दिया था। यतीन्द्रनाथ दास १३ जुलाई १९२९ को इस अनशन में शामिल हो गये थे। कुछ कारणो से यतीन्द्रनाथ को फोसफुल फीडिंग (नाक द्वारा बलपूर्वक दूध पिलाना) असम्भव हो गया था इस लिए उन की हालत गिरती जा रही थी। अडतीसवें दिन उन की हालत बहुत गिर गयी, वे बेहोश हो गये, तो बोर्स्टल जेल के अधिकारियों ने सेण्ट्रल जेल से भगत सिंह को बुलाया। भगत सिंह आ कर यतीन्द्रनाथ की चारपाई के पैताने (पाव की तरफ) खडे हो गये। अनशन दोनो ही कर रहे थे पर यतीन्द्रनाथ तो कंकाल हो गये थे। भगत सिंह ने उन्हें इस रूप में देखा तो उन की आखें बरस पडी। मानवता के हिमालय का एक शिखर चारपाई पर शान्त था, दूसरा चारपाई के पास खडा झर रहा था जैसे प्राकृतिक हिमालय की एक चट्टान से निकलते निझर के आनन्द की अनुभूति पास की दूसरी चट्टान कर रही हो।

४९वें दिन तो चट्टान ही निझर हो गयी। सरकार ने जेलो में सुधार का सुझाव देने के लिए एक कमिटी नियुक्त कर दी। यह अनशनकारियो की नैतिक विजय थी। कमिटी के भारतीय सदस्य बातचीत करने के लिए बोर्स्टल जेल आये तो भगत सिंह को भी सेण्ट्रल जेल से वहाँ लाया गया। भगत सिंह व्यथित थे। क्यों? क्या कि अनशन उन्हो ने आरम्भ किया था और उन के प्यारे साथी यतीन्द्रनाथ उस अनशन में आहुति दे रहे थे। वे इस बात पर सहमत हो गये कि यतीन्द्रनाथ को छोड दिया जाय तो वे अनशन छोड देंगे। यह तो स्पष्ट ही था कि उन के अनशन छोडने पर दूसरे सब अनशन छोड देंगे। बाद में सरकार अपने वचन से हट गयी और अनशन आगे बढा, पर भगत सिंह जहाँ तक और जिस कारण से बढ़ आये थे, वह तो उन की मानवता का मील का पत्थर ही हो गया था।

मील के इस पत्थर की सब से अधिक ऊँचाई यह है कि भगत सिंह की इन्द्र-धनुषी कल्पनाओ और विराट् कामनाओं का आधार 'मनुष्य' इतने गहरे रूप मे हो गया था कि उन के विश्वास-केन्द्र मे ईश्वर की कोई आवश्यकता और कोई अनुभूति शेष ही न रही थी। वे ईश्वर से दूर और दूर होते चले गये थे और उसी मात्रा मे मनुष्य के पास और पास आते चले गये थे।

मानवीय घटनाएँ उन्हे साक्षात् अनुभव के द्वारा ही सुख या दु ख न देती थी, किसी मानवीय स्पर्श का साहित्य मे चित्रण पढ कर भी वे भाव-विभोर हो जाते थे।

उन के कर्मसखा और प्रथम जीवनी लेखक श्री जतीन्द्रनाथ सान्याल के शब्दो में—"जब स्पेशल मैजिस्ट्रेट की अदालत मे मुकदमा चल रहा था, वे लीनियो आन्द्रियो के सुन्दर उपन्यास 'सात-जिन्हे फाँसी दी गयी' (सेविन, दैट वर हैंग्ड) को पढ कर हम लोगो को सुनाया करते थे। उस मे एक पात्र है, जो फाँसी के विचार से घबराता रहता है और कहता रहता है—'मुझे फाँसी नही दी जायेगी।' वह इसी बात में विश्वास करने लगता है। उपन्यास के अन्तिम अध्याय मे उसे फाँसी देने के लिए जब फाँसी घर ले जाया जाता है, तब भी वह कहता है कि मुझे फाँसी नही दी जायेगी। भगत सिंह जब यह प्रसग सुना रहे थे, उन्हे हँसी आ गयी और आँखें आँसुओ से भर गयी। हम सब श्रोता सहानुभूति के इन आँसुओ से प्रभावित हुए बिना न रह सके। ये उस वीर के आँसू थे, जो मृत्यु के विचार पर विजय पा चुका है और उस के लिए बह रहे थे, जो मृत्यु से भयभीत है।"

जाने कितने संस्मरण है, जिन मे उन की मानवीयता के फूल महक रहे हैं। वे सदा महकते रहेगे। क्यो कि वे इतिहास के फूल बन गये है।

◘ ◘

भगत सिंह
क्रान्ति के दार्शनिक

भगत सिंह के जीवन का वास्तविक महत्व यह नहीं कि व क्रांतिकारी थे उन्हों ने यहा यह किया था वहा वह किया था वे एसे थे व वस थे। यह सब कुछ था, पर उन के जीवन का वास्तविक और एतिहासिक महत्व यह ह कि व भारत की सशस्त्र क्रांति के दार्शनिक थे। उसे उन्हों ने परिपूर्ण जीवन दान दिया था।

साहित्य की भाषा में व क्रान्तदर्शी थे अंगरेजी क शब्दों में वे विजनरी थे राजनीति की भाषा में व युगद्रष्टा थे धर्म की भाषा म व ऋषि थे और चालू लोक भाषा में वे भारत म समाजवाद क प्रथम उदबोधक थे।

म उन के काय को सक्षेप म कहना चाहूँ तो कहूँगी—भावुकता में बधी, ऊपर तैरती आखो को उन्हा ने यथार्थ की डोर में बांध कर नीच कर दिया था। दूसर शब्दों म क्रांतिकारियो की आकाश उन्मुख दष्टि को भूमि अभिमुख कर दिया था। इस से भी आग और इस से भी स्पष्ट यह कि *उन के समय तक सशस्त्र क्रांति का जो लक्ष्य अंगरेजों को भगा कर भारत* को स्वतन्त्र करने की बात तक सीमित था उसे स्वतन्त्रता के बाद स्थापित होने वाली समाज-व्यवस्था तक फैला दिया था।

राजनीति की भाषा में उन्हो ने राजनतिक क्रांति को ही सब कुछ न मान कर उस के साथ आर्थिक और सामाजिक क्रांति को भी समन्वित कर दिया। विध्वस और निर्माण की यह व्यापक दष्टि १८५७ से १९४७ तक के नेताओ म अपनी दष्टि और नीति क अनुसार केवल गान्धी जी को ही प्राप्त थी। इसी पष्ठभूमि में म भगत सिंह को क्रान्ति का दार्शनिक कहती हूँ।

आश्चय ह कि नयी समाज व्यवस्था की इस प्रवृत्ति के अंकुर उन में बचपन से ही थे उन्हो ने सम्मिलित परिवारो में स्त्रिया को पुराने गुलामो की तरह दबी घुटी जिन्दगी जीते देखा था और पुरानी समाज व्यवस्था की सडाँध को अनुभव किया था। उन की उम्र तब मुश्किल स ८ ९ वष की होगी। वे गाव के प्राइमरी स्कूल म पढ़ते थे। एक दिन उन
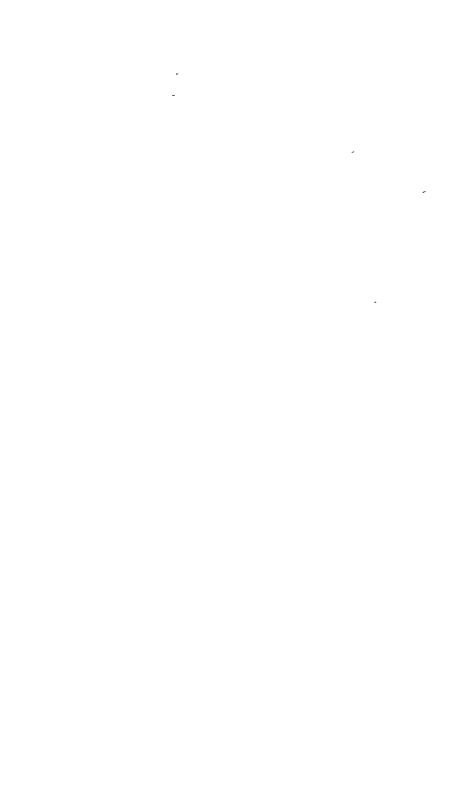
बाद में तो उन की यह राय बन गयी थी कि ईश्वर मनगढ़न्त चीज है। दुनिया के दिमाग को गुलाम बनाने के लिए यह गढ़ा गया है। ईश्वर मनुष्य का सब से बड़ा दुश्मन है। बाद में साम्प्रदायिक दंगों ने धर्म और ईश्वर के प्रति उन के रुख को और भी कड़ा कर दिया था। वे कहा करते थे यदि हम मनुष्य और मनुष्य के बीच से ईश्वर को निकाल दें, तो आदमी आदमी के बीच की दीवार ही हट जाय।

एक दिन उन्हों ने बहुत ही भावुक हो कर कहा था— 'मैं जिस संसार का स्वप्न देखता हूँ उस में देशों के बीच की दीवारें हट जायेंगी सारा संसार एक हो जायगा और हर व्यक्ति यह सोच कर काम करेगा कि दूसरों के लिए क्या अच्छा है।' कहते-कहते उन की मुट्ठी बँध गयी थी और खुशी से झूम उठे थे वे—ऐसा समय जरूर आयगा ऐसा समय ज़रूर आयगा।

नेशनल कालेज में गहरे अध्ययन की प्यास उन में जागी। कालेज का पाठ्यक्रम ही राजनैतिक पुस्तकों से भरा हुआ था। फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक विक्टर ह्यूगो का उपन्यास 'इण्टरनल सिटी' पढ़ कर भगत सिंह उत्साहित हो उठे। इस में फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का वर्णन है कि कैसे क्रान्तिकारियों ने सम्राट सोलहवें लुई और उन की घमण्डी महारानी एन्तानेत के साथ हज़ारों जागीरदारों, अमीरों और पादरियों का सिर भुट्टे की तरह काट कर रख दिया।

इस उपन्यास के बाद भगत सिंह ने फ्रांस की राज्य क्रान्ति को पूरी तरह पढ़ा। उस क्रान्ति की पृष्ठभूमि में रूसो और वाल्तेयर के धर्मविरोधी विचार काम कर रहे थे। उन से भगत सिंह बहुत प्रभावित हुए। अप्टन सिनक्लेयर की पुस्तक 'क्राई फॉर जस्टिस' ने तो उन्हें पागल ही बना दिया। लण्डन ने इस पुस्तक को संसार भर के सर्वहारा, शोषित और अत्याचार-पीड़ित वर्ग के हृदयों में नयी चेतना और नया जीवन संचार करने वाली नयी बाइबिल कहा था। भगत सिंह ने उसे इसी रूप में ग्रहण किया।

आयर्लैण्ड का स्वतन्त्रता आन्दोलन भारतीय स्वतन्त्रता के सेनानियों के लिए प्रेरणास्रोत रहा है। डान ब्रीन की पुस्तक 'माई फाइट फॉर आयरिश फ्रीडम' (आयरलैण्ड की स्वतन्त्रता के लिए मेरा संघर्ष) पढ़ कर भगत सिंह को इस संघर्ष की नयी प्रेरणा मिली। [illegible] ऑव रशिया नाम की पुस्तक ने भगत सिंह के मानस को रूसी क्रान्ति से जोड़ा और उन्हों ने गहराई से रूसी क्रान्ति का अध्ययन किया। इस प्रकार उन्हों ने पहले आयरलैण्ड फिर रूस की क्रान्तियों का गहरा अध्ययन किया और साथ ही दूसरे राजनैतिक साहित्य का भी।

इस अध्ययन ने भगत सिंह की भावुकता को यथार्थ में बदल दिया। उन्हें आतंकवाद से क्रान्तिकारिता और क्रान्तिकारिता से क्रान्ति की मानसिकता का बना दिया। अब उन के लिए भारत की स्वतन्त्रता मात्र का नहीं, नयी समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए। इस नयी समाज-व्यवस्था का आधार धन नहीं, जो धन-धान्य की विषमता का

भाग्य और ईश्वर का चमत्कार कह देता है, मनुष्य-मनुष्य की समानता ही आध
शिला थी। इस परिवर्तन को ठीक और पूर्ण रूप से समझने के लिए हमे इतिहास
लम्बी झाँकी लेनी पडेगी। १८५७ का स्वतन्त्रता-संग्राम धर्म के सहारे सगठित कि
गया था। उस की असफलता के वाद देश-व्यापी भयकर दमन हुआ, पर दमन से
जीवित जाति हमेशा तो दवी नही रह सकती। १८७२ मे गुरु राम सिह के नेतृत्व
कूका विद्रोह हुआ। उस की पृष्ठभूमि भी धार्मिक थी। उन्नीसवी सदी के अन्त मे अ
समाज, ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज आदि के जो जागरण-आन्दोलन हुए, वे सव के
धर्म की ही पृष्ठभूमि मे उगे-पनपे। स्वामी विवेकानन्द का कार्य क्रान्तिकारी होते
धर्ममय था। श्री वकिमचन्द्र चटर्जी ने अपने 'आनन्दमठ' उपन्यास मे 'वन्दे मात
का जो नारा दिया, उस का वातावरण भी धार्मिक था—'तोमार प्रतिमा गडी मन्
मन्दिरे।'

कॉंग्रेस का आन्दोलन उस समय माँग और प्रार्थना तक ही सीमित था। लं
मान्य तिलक ने उस मे राजनैतिक गरमी की चिनगारियॉ वोयी और इस तरह ग
राजनीति का युग आरम्भ हुआ। महाराष्ट्र मे श्री सावरकर और वगाल मे अर्रा
और रासविहारी वोस के नेतृत्व मे गरमी ने जो सशस्त्र विद्रोह का रूप लिया, उर
भी धर्म का गहरा पुट था। क्रान्तिकारी दल मे सदस्य को दीक्षा के समय एक हाथ
गीता और दूसरे मे पिस्तौल देने की वात वडो से सुनी है और आम है। मृत्यु के
क्रान्तिकारी को भयमुक्त होना चाहिए, इस का आधार यह दिया जाता था कि श
नश्वर है, क्षण भगुर है, आत्मा अमर है। राजपूती काल की वीरगति पाने व
परलोकवादी भावुकता का भाव भी उस मे था ही। सशस्त्र क्रान्ति और धर्म के
सगम की भावना का सर्वोत्तम रूप हमे काकोरी केस मे मिलता है। अशफाकुल्ला
जव १७ दिसम्वर १९२७ को फैजावाद जेल मे फॉसी पर चढे, तो उन की वगल
'कुरान सरीफ' की पुस्तक थी और १९ दिसम्वर १९२७ को श्री रामप्रसाद 'विस्मि
गोरखपुर मे जव फाँसी पर चढे, तो फन्दा गले मे डालने से पहले उन्हो ने वेद-म
का जोर-जोर से पाठ किया।

धर्म की इस भावुक कन्दरा मे सव से पहला और सव से तेज दीपक जल
भगत सिह ने। इतिहास का यह भी एक चमत्कार ही है कि यह दीपक भारत
राजधानी दिल्ली मे जला, पर जला खण्डहरो मे और इस तरह भगत सिह उस दी
के और वे खण्डहर परम्परावादी विचारो के प्रतीक हो गये। यह वात सितम्वर १९
की है। दिल्ली के फिरोजशाह किले के खण्डहरो मे कुछ प्रगतिशील क्रान्तिका
की एक वैठक वुलायी गयी थी। इस मे पजाव, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और वि
के प्रतिनिधि आये थे। उत्तर भारत के सशस्त्र क्रान्ति-आन्दोलन के इतिहास मे
वैठक का वहुत महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक स्थान है। उत्तर प्रदेश और पजाव
सगठन निष्क्रिय हो गया था। वंगाल का सगठन अपना सर्वाधिकार तो चाहता

नेर्णय चमत्कारी परिवर्तन उसमें पास नहीं था। ऐसी स्थिति में यह भगत सिंह और उनके कुछ साथियों के नेतृत्व का चमत्कार ही है कि उन्होंने बड़े नेताओं की नाग कुण्डली से बाहर नया संगठन खड़ा कर नया मार्ग खोज निकाला। ८–९ सितम्बर १९२८ की इस बैठक में चन्द्रशेखर आजाद भी नहीं आये थे और उन्होंने कह दिया था कि जो निर्णय साथी करेंगे, मुझे मान्य होगा। इस प्रकार इस बैठक का नेतृत्व भगत सिंह के ही हाथ में था।

उन्होंने प्रस्ताव किया कि संगठन का नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' की जगह 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (हिन्दुस्तान समाजवादी जनतन्त्र)' कर दिया जाये। इस का अर्थ है भारतीय स्वतन्त्रता का स्पष्ट लक्ष्यबोध आन्दोलन का सब प्रकार के बहमों और काल्पनिक विचारों से बाहर अपने शुद्ध राजनैतिक रूप में प्रतिष्ठित होना। इसी पृष्ठभूमि में मैं कहती हूं धर्म की भावुक कन्दरा में सब से पहला और सब से तेज दीपक जलाया भगत सिंह ने।

भगत सिंह समाजवाद का प्रस्ताव पास कर के ही नहीं रुके, वे दल के सदस्यों को समाजवाद का प्रशिक्षण देने में भी जुटे रहे। १९२८ के अक्टूबर में जब दल के सदस्य काकोरी के बंदियों को जेल से छुड़ाने की जुस्तजू में लगे हुए थे तब का एक संस्मरण श्री भगवान दास माहौर के शब्दों में— हम सभी उस समय तक गीता पाठ कर के स्फूर्ति प्राप्त करते थे। अपने अन्य साथियों की क्रान्ति भावना के सदृश मेरी भी क्रान्ति भावना में धार्मिक सूत्र अनुस्यूत चला आता था। इस सूत्र को सर्वप्रथम मेरे से प्रबल झटका भगत सिंह के द्वारा ही उन के सर्वप्रथम साक्षात्कार में लगा जब उन्होंने आगरे में एकत्र हुए दल के सभी साथियों से बातचीत की। मैं उस समय बी० ए० का विद्यार्थी था परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से भगत सिंह ने मुझे एकदम कोरा ही पाया और हैरानी प्रकट की। मेरे मन को झकझोर डालने के लिए भगत सिंह ने मुझे अराजकतावादी बाकूनिन की पुस्तक 'दि गॉड एण्ड द स्टेट (ईश्वर और राज्य)' को आग्रह से पढ़ने को दी। इस के मुखपृष्ठ पर ही लिखा था— इफ गॉड रियली एग्जिस्टेड इट वुड बि नेसेसरी टु अबालिश हिम (यदि ईश्वर का अस्तित्व वास्तव में होता, तो उसे मिटा देना आवश्यक होता)। भगत सिंह की इन नास्तिकतावादी बातों से उस समय मेरे मन पर बहुत ठेस लगी। अपने मन में गाँठ-सी बाँध ली कि क्रान्तिकारी तो मैं हूँ पर मैं नास्तिक कभी नहीं बनूँगा। इस के चार-पांच साल बाद साबरमती सेण्ट्रल जेल की अँधेरी कोठरी में बहुत दिनों गीता-पाठ, प्राणायाम आदि करने के बाद राजनीति और अर्थशास्त्र की भी बहुत-सी पुस्तकें पढ़ने के बाद जब मार्क्स की 'कैपीटल' और ऐंगिल्स की भी कुछ पुस्तकें पढ़ीं तभी वह बीज अंकुरित हुआ जो उस समय भगत सिंह ने बोया था। अतएव व्यक्तिगत रूप में भगत सिंह की स्मृति में जो बात मेरे मन में सर्वोपरि है वह यही है कि समाजवाद की ओर मुझे उन्मुख करने वाले वे मेरे सब से पहले गुरु थे।'

भगत सिंह को यह गुरुत्व प्राप्त करने के लिए घनघोर संघर्ष करना पड़ा था। ईश्वर के अस्तित्व से इनकार, इस संघर्ष का एक मोरचा था और क्रान्तिकारी दल मे एक साथी की तरह स्त्रियो को काम करने की स्वीकृति, दूसरा। इन मोर्चो के लिए भगत सिंह स्वयं भी रात-दिन अध्ययन करते रहते थे। वे जागरण, उद्बोधन और क्रान्ति के लिए अध्ययन को, साहित्य को, विचार को, कितना महत्त्व देते थे, इस का पता उस युग के क्रान्तिकारी युवको के तीर्थ द्वारकादास पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री राजाराम शास्त्री के इन शब्दो से लगता है—

"भगत सिंह को मेरे पास बहुत ज्यादा आना-जाना होता था। पुलिस को कही सन्देह न हो जाय, इसी लिए भगत सिंह को मैं ने पुस्तकालय का सदस्य बना लिया था, ताकि इन के माध्यम से क्रान्तिकारी साहित्य आसानी से बाहर भेजा जा सके। कितनी ही पुस्तको के नाम मुझे आज भी याद है, जिन्हे बहुधा युवको को पढने के लिए दिया जाता था। एक बार बैरिस्टर सावरकर की लिखी हुई प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत का प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध' मुझे भगत सिंह ने ला कर दी। मुझ पर इस पुस्तक का बहुत गहरा प्रभाव पडा। अन्त मे भगत सिंह की सलाह से यह निश्चित हुआ कि इसे गुप्त रूप से प्रकाशित किया जाये। भगत सिंह ने किसी प्रेस मे इसे छापने का प्रबन्ध कर लिया था। वह इस के प्रूफ देखने के लिए मुझे दे जाते थे और मै उन्हे रात्रि मे देख कर दूसरे दिन लौटा दिया करता था। यह पुस्तक दो भागो मे प्रकाशित की गयी थी।"

वे विचारो को पढ ही तेजी से नही रहे थे, जीवन मे उस से भी तेजी से उतार रहे थे। विचित्र बात है कि वे अपने क्रान्तिकारी जीवन के आरम्भ से ही इस बात पर तुले हुए थे कि मुझे मरना है, पर इस तरह मरना है कि समाज हमारे मरने का उद्देश्य जान ले और अँगरेजो के विरुद्ध दल की बगावत एक ऐसी क्रान्ति का रूप ले ले, जिस के साथ जनता खडी हो। १७ दिसम्बर १९२८ को लाहौर मे साण्डर्स का उन्हो ने वध किया और उसी रात मे उन्हो ने लाल पोस्टर शहर की दीवारो पर चिपकाये। इन मे कहा गया था—"हम सत्र विरोध और दमन के बावजूद क्रान्ति की पुकार को बुलन्द रखेंगे और फाँसी के तख्तों से भी पुकारते रहेंगे—इन्कलाब जिन्दाबाद। हमारा उद्देश्य ऐसी क्रान्ति है, जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त कर देगी।"

८ अप्रैल १९२९ को भगत सिंह ने असेम्बली मे बम फेंका और अपने साथी बटुकेश्वर दत्त के साथ नारे लगाये—'इन्कलाब जिन्दाबाद, साम्राज्यवाद का नाश हो।' साथ ही कुछ छोटे-छोटे पोस्टर भी फेंके। इन के अन्त मे कहा गया था—"हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य मे विश्वास रखते है, जिस मे प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का अवसर मिल सके। हम मानव रक्त बहाने के लिए अपनी विवशता पर दुःखी हैं, पर क्रान्ति द्वारा सब को समान स्वतन्त्रता देने और मनुष्य-द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त करने के लिए क्रान्ति मे कुछ-न-कुछ रक्तपात अनिवार्य है।"

भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में मैं इन नारों और दोनों पोस्टरों को बहुत महत्वपूर्ण मानती हूँ, क्योंकि ये नारे और ये पोस्टर भारत में आतंकवाद के समाप्त होने और उस के क्रांतिकारी आन्दोलन में बदल जाने की प्राथमिक सूचना देते हैं। इस दूसरे पोस्टर में एक वाक्य बहुत ही महत्वपूर्ण है—"हम जनता की जागृति की ओर से यह कदम उठा रहे हैं।" इस घटना से पहले तक जनता सशस्त्र विद्रोह की दर्शक-मात्र थी। इस घटना ने उसे विद्रोह का नेतृत्व ही सौंप दिया। विद्रोह अब कुछ जोशीले युवकों की टोली का काम नहीं रहा। वे युवक चुनाव न होने पर भी, जनता के प्रतिनिधि हो गये। इतिहास भगत सिंह की इस दूरदर्शिता के लिए सदा वन्दना करेगा कि उन्हों ने चोरों की तरह छिप कर काम करने वालों को पहली बार आंदोलन के मंच पर बैठा दिया और क्रान्तिकारी दल को, जिस के पास डकैती के सिवा साधन जुटाने का और कोई मार्ग न था, जनता के साधनों से सम्पन्न कर दिया। ये नारे भारत की जनता को भगत सिंह का दिया उपहार भी हैं और एक वैचारिक आविष्कार भी है, क्योंकि ये बताते हैं कि उन के मन में १९२८ में ही भविष्य का स्वप्न साकार हो उठा था और वे उसे साफ-साफ देख रहे थे।

भगत सिंह के मन में स्वतन्त्रता के बाद की समाज-व्यवस्था का रूप कितना स्पष्ट था, इस का पता असेम्बली बम-काण्ड के मुकद्दमे में दिये बयान से चलता है, जो भगत सिंह ने ६ जून १९२९ को दिल्ली के सेशन जज की अदालत में दिया। उस लम्बे बयान में उन्हों ने क्रांति के उद्देश्य के सम्बन्ध में कहा— क्रान्ति में हिंसात्मक संघर्षों का अनिवार्य स्थान नहीं है, न उस में व्यक्तिगत रूप से प्रतिशोध लेने की ही गुंजाइश है। क्रान्ति बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रान्ति से हमारा प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान समाज-व्यवस्था में परिवर्तन होना चाहिए। उत्पादक अथवा श्रमिक समाज के अत्यन्त आवश्यक तत्त्व हैं, तथापि शोषक लोग उन्हें उन के श्रम के फलों और मौलिक अधिकारों से वंचित कर देते हैं। एक ओर सब के लिए अन्न उगाने वाले कृषक सपरिवार भूखों मर रहे हैं, सारी दुनिया के बाजारों में कपड़े की पूर्ति करने वाले बुनकर अपने और अपने बच्चों के शरीर को ढाँपने के लिए पूरे वस्त्र प्राप्त नहीं कर पाते, भवन निर्माण, लोहारी और बढ़ईगीरी के कामों में लगे लोग शानदार महलों का निर्माण कर के भी गन्दी बस्तियों में रहते और मर जाते हैं। दूसरी ओर पूँजीपति, शोषक और समाज पर घुन की तरह लगने वाले लोग अपनी सनक पूरी करने के लिए करोड़ों रुपये पानी की तरह बहा रहे हैं। यह भयंकर विषमताएँ और विकास के अवसरों की कृत्रिम समानताएँ समाज को अराजकता की ओर ले जा रही हैं। यह परिस्थिति सदा-सदा नहीं रह सकती। यह स्पष्ट है कि वर्तमान समाज-व्यवस्था एक ज्वालामुखी के मुख पर बैठी हुई आनन्द मना रही है और शोषकों के अबोध बच्चे भी करोड़ों शोषितों के बच्चों की भाँति एक खतरनाक दरार के किनारे पर खड़े हैं। यदि सभ्यता के ढाँचे को समय रहते नहीं

बचाया गया, तो वह नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। इस लिए क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है और जो लोग इस आवश्यकता को अनुभव करते है, उन का यह कर्तव्य है कि वे समाज को समाजवादी आधारो पर पुनर्गठित करे।

जब तक यह नही होगा और एक मनुष्य के द्वारा दूसरे मनुष्य का, तथा एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण होता रहेगा, जिसे साम्राज्यवाद कहा जा सकता है, तब तक उस से उत्पन्न होने वाली पीडाओ और अपमानो से मानव-जाति को नही बचाया जा सकता एव युद्ध को मिटाने तथा शान्ति के युग का सूत्रपात करने के बारे में की जाने वाली समस्त चर्चाएँ कोरा पाखण्ड है।

क्रान्ति से हमारा प्रयोजन अन्ततः एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना है, जिस को इस प्रकार के घातक खतरों का सामना न करना पड़े और जिस में सर्वहारा वर्ग की प्रभुता को मान्यता दी जाये।"

यह वक्तव्य भारत मे समाजवाद का ऐतिहासिक घोषणा-पत्र है और मुझे लगता है कि जब कभी भारत मे राजनैतिक विचारो के विकास का सही-सही इतिहास लिखा जायेगा, तो ६ जून, १९२९ को भी ८ अगस्त सन् १९४२ (भारत छोडो की घोषणा का दिन) की तरह ही सामूहिक महत्त्व दिया जायेगा, क्यो कि भारत मे यह नयी समाज-व्यवस्था की घोषणा का दिन है।

इस घोषणा के बाद भी भगत सिह अपने विचारो के विकास मे निरन्तर लगे रहे। यह उन के व्यक्तित्व का और अपने आदर्श के प्रति उन के समर्पण का एक अद्भुत चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इस मुकदमे मे उन्हे आजन्म कारावास का दण्ड मिला और इस के तुरन्त बाद लाहौर षड्यन्त्र-केस का वह मुकदमा चल पडा, जिस मे उन्हे फाँसी की सजा हुई, पर न उन्हे आजन्म कारावास से कोई मतलब था, न फाँसी से। वे अपनी सारी शक्ति इस काम मे लगा रहे थे कि फाँसी पर झूलने से पहले समाज को नयी समाज-व्यवस्था का पूरा चित्र दे जायें। इस का पता एक सस्मरण से लगता है—वे अपनी काल-कोठरी मे बैठे-बैठे किताबो की लम्बी लिस्ट तैयार करते और बाहर भेज देते। बाहर वे किताबें लायब्रेरियो से इकट्ठी की जाती और जेल भेजी जाती। कहने को ही किताबें कह रही हूँ, पर असल मे यह किताबो की ढेरी होती। वे जल्दी ही उन्हे लौटा देते और साथ ही किताबो की एक नयी और लम्बी लिस्ट भेज देते। एक दिन जेल वालो ने उन से कहा—"आप इतनी किताबें मँगाते है कि हम उन्हे सेन्सर करते-करते थक जाते है, आप उन्हे पढते भी है या देख कर ही लौटा देते है ?"

भगत सिह ने उत्तर दिया—"मेरी मँगायी हुई पुस्तको मे से किसी का भी कोई चैप्टर खोल लीजिए, मै बताऊँगा कि उस के अन्दर क्या है ?" सुन कर जेल-अधिकारी आश्चर्य-मुग्ध रह गये थे।

भगत सिह जीवन के दूसरे क्षेत्रो की तरह ही अध्ययन मे भी अत्यन्त गतिवान्

थे। इस गति से ही उन्हों ने फाँसी-कोठरी में बैठे-बैठे वक्तव्य तो जान दिन लिखे थे पर कई पुस्तकें भी लिखी थीं। इन में महत्त्वपूर्ण पुस्तकें थीं 'आइडियल ऑव सोशलिज्म (समाजवाद का आदर्श) दूसरी थी 'द डोर टु डेथ' (मृत्यु के द्वार पर), तीसरी थी उन की 'आटोबॉयग्राफी (आत्मकथा) और चौथी थी द रिवाल्यूशनरी मूवमेण्ट ऑव इण्डिया विद शार्ट बॉयग्राफिकल स्केचज ऑव द रिवोल्यूशनरीज' (भारत में क्रांति का आन्दोलन और क्रांतिकारियों का संक्षिप्त परिचय)। पहली पुस्तक में उन्हों ने देश की समस्याओं का विवेचन और विश्लेषण किया था। समाधान के रूप में समाजवाद प्रस्तुत किया गया था और बहुत महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि समाजवाद का भारत में किस स्वरूप में ग्रहण किया जाये, इस पर भी लम्बी आलोचना की गयी थी। इसी तरह की एक-दो पुस्तकें और भी थीं जिन का सम्बन्ध नयी समाज-व्यवस्था से ही था। वे इन पुस्तकों को और खास कर 'आइडियल ऑव सोशलिज्म' को तुरन्त छाप कर समाज के सामने रखना चाहते थे। उन का कहना था कि इस पुस्तक की पोलिटिकल वैल्यू' बहुत अधिक है पर ये पुस्तकें उन के सामने हो नहीं, उन के बाद भी समाज के सामने न आ सकीं।

क्या हुआ इन पुस्तकों का? ये पुस्तकें थोड़े थोड़े कागजों के रूप में उन के छोटे भाई कुलबीर सिंह के हाथों जेल से बाहर आयीं। भगत सिंह का आदेश था कि यह सब सामग्री कुमारी लज्जावती जी को दे दी जाय। कुलबीर सिंह के ही शब्दों में—'मुझे कुछ मोह हुआ और मैं ने कुछ सामग्री अपने पास भी रख ली। 'कुलबीर, सब सामान लज्जावती जी के पास पहुँच गया?'—अपनी अन्तर्भेदी आँखों से घूरते हुए भगत सिंह ने पूछा। सब तो नहीं मैं ने सकुचाते हुए उत्तर दिया। क्यों'? गुर्रा कर भगत सिंह ने पूछा और आदेश के स्वर में कहा 'तुरन्त पहुँचाओ सब सामान। सामान उन के पास पहुँच गया और सुरक्षित रहा।"

इस के बाद की कहानी भी कुलबीर सिंह के ही शब्दों में— १९३३-३४ में मैं ने इस साहित्य की बात चाचा जी (सरदार अजीत सिंह) को लिखी जो इस समय जर्मनी में थे। उन्हों ने उत्तर दिया कि उस सब साहित्य की नकल करा कर मुझे भेज दो। मैं उन्हें यहाँ अंगरेजी और जर्मन भाषाओं में छपा दूँगा। मैं लज्जावती जी के पास गया। उन्हों ने कहा वह देश की सम्पत्ति है इस लिए मैं ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू को दे दी थी। कुछ दिन बाद पण्डित नेहरू लाहौर आये तो मैं ने उन से उस साहित्य की नकल दे देने को कहा। वे बोले तुम से किस ने कहा कि मेरे पास वह साहित्य है? मैं ने लज्जावती जी का नाम लिया। वे चुप हो गये और फिर कुछ बोले। इस के बाद मैं ने फिर लज्जावती जी से पूछा तो वे बोलीं—'मैं ने वे पुस्तकें श्री विजयकुमार सिनहा को दे दी हैं। मिलने पर श्री विजय कुमार सिनहा ने स्वीकार किया और १९४६ तक कहते रहे कि उन्हें देखभाल कर जल्दी ही छपायेंगे पर बाद में उन्हों ने कहा कि वे पुस्तकें सुरक्षा के खयाल से किसी मित्र के पास रखी थीं, वहीं

नष्ट हो गयी।"

वहुत दर्दनाक है यह सस्मरण, क्यो कि यह कुछ पुस्तको की कहानी नही है, न किसी व्यक्ति के हानि-लाभ की कहानी हैं, यह इतिहास की धरोहर के छिन जाने की कहानी है। इतिहास इस के लिए किसे दोष देगा, मैं नही जानती।

भगत सिह का साहित्य, जो उन के वाद समाज का मार्ग-दर्शन करता, नष्ट हो गया, पर वे कैसी समाज-व्यवस्था चाहते थे, मानव-मानव के वीच कैसा सम्वन्ध चाहते थे, यह एक सस्मरण मे सुरक्षित है। उन की काल-कोठरी मे जो भगी सफाई करने आता था, वे उसे वेवे कहा करते थे, जैसे कि अपनी माँ को वेवे जी कहते थे। जव वह कोठरी मे आता, तो भगत सिंह कुछ भी कर रहे हो, उस से जरूर वातचीत करते और लाड से वेवे-वेवे पुकारते रहते। उन के इस व्यवहार से जमादार का प्रभावित होना, तो स्वाभाविक ही था।

"आप इसे वेवे क्यो कहते है?" एक दिन किसी जेल-अधिकारी ने पूछा, तो वोले—"जीवन मे दो को ही मेरी गन्दगी उठाने का काम मिला है। एक मेरी वचपन की माँ और एक यह जवानी की ज़मादार माँ। इस लिए दोनो वेवे जी ही है मेरे लिए।"

फाँसी से पहले जेलर खान वहादुर मुहम्मद अकवर अली ने उन से पूछा—"आप की कोई खास इच्छा हो, तो वताइए। मै उसे पूरी करने की कोशिश करूँगा।" भगत सिह का उत्तर था—"हाँ, मेरी एक खास इच्छा है और आप उसे पूरा कर सकते है।"

"वताइए"।

"मै वेवे के हाथ की रोटी खाना चाहता हूँ।" जेलर ने इसे उन का मातृ-प्रेम समझा, पर उन की मन्शा भंगी भाई से थी। जेलर ने उसे वुला कर भगत सिह को वात कही, तो वह स्तव्ध रह गया—"सरदार जी, मेरे हाथ ऐसे नही है कि उन से वनी रोटी आप खायें।"

भगत सिह ने प्यार से उस के दोनो कन्धे थपथपाते हुए कहा—'माँ जिन हाथो से वच्चो का मल साफ करती है, उन्ही से तो खाना वनाती है। वेवे, तुम चिन्ता मत करो और मेरे लिए रोटी वनाओ।" भगी भाई ने रोटी वनायी और भगत सिह ने आनन्द से, अपने स्वभाव के अनुसार उछलते-मटकते हुए खायी। सोचती हूँ कैसा लगा होगा उस समय दर्शको को? क्या उन्हो ने सोचा होगा कि नयी समाज-व्यवस्था का स्वप्न-द्रष्टा, युग की क्रान्ति का दार्शनिक, अपने स्वप्नो मे इठलाते समाज का एक नमूना प्रस्तुत कर रहा है।

भगत सिह के लिखे एक निवन्ध के शब्द है—"मेरा उद्देश्य तो यह है कि जनता शहीदो की कुर्वानियो और जीवन-भर देश के ही काम मे लगे रहने के उन के उदाहरणों से प्रेरणा हासिल करे और समय आने पर उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए अपने कामो का स्वयं निर्णय करे।"

■ ■

भगत सिंह एक महान् नेता

लगा राग की मग्ना म प ३ हुए मनुष्य जन-साधारण कहलाने। साधा साधारण आत्मा। इसी लागा रागा म जामा पना वग हा लाघनार रमा वाला काई-नाई आत्मा ाा कहलाता है। जा क सात्र साधारण की तरह उस के साथ असाधारण नहीं रहता पर वह ि नत है कि वह असाधारण होता है असाधारण माना जाता है।

उस की असाधारणता क्या है? जिसा म सम्पन म स्तर रग म वन स लाग जन-साधारण म उन म श्रेष्ठ होता है। फिर नेता असाधारण क्या? इस विचार न स्थ प्रश्न का उत्तर दिया है कि जन-साधारण के मन म भावना होती है पर उस प्रकट करने के लिए भाषा नहीं होती। जन-साधारण के मन म आशाएं होती हैं पर किस राह जा ने मह आशा ा पूर्ण हा सकती है इस का निश्चय नहीं होता। इन्हीं दोनों मन स्थितियों के कारण जन-साधारण को मूक जनता कहा जाता है। इस मूक जनता की भावना को जो भाषा देता है वह साहित्यकार है और जो उस को आशा ा की पूर्ति की राह दिखाता है उस पर उसे चलाता है वह नेता है।

इस के लिए नेता म पहला गुण यह चाहिए कि वह जनता की आशा ा को ठीक-ठीक समझता हो। दूसरा यह कि उस की पूर्ति की सही राह जानता हो। तीसरा यह कि उस राह चलने के लिए जनता को उत्साहित कर सकता हो। चौथा यह कि चलते समय उस बिखरने से बचा सकता हो। पाँचवा यह कि उस के रास्ते म आने वाली बाधाओं को दूर कर सकता हो। छठा यह कि समय के प्रभाव से जो परिस्थितियाँ पैदा होने वाली हों उन्हें पहले ही भाप सकता हो सातवां यह कि उन परिस्थितियों का समाधान अपने पास रख सकता हो उन का उपयोग कर सकता हो।

क्या नेतत्व की इन कसौटियों पर कस कर हम कह सकते हैं कि भगत सिंह एक सफल नेता थे?

क्या यह प्रश्न भगत सिंह के जीवन में औरों से अधिक महत्वपूर्ण है। यह इस लिए कि भगत सिंह को एक महान राष्ट्रीय शहीद के रूप में स्मरण किया जाता है। उन के युग म बहुत से शहीद हुए हैं हर शहादत

वन्दनीय हैं, पवित्र है, पर अपनी शहादत से भगत सिंह को जो चमक, जो ऊँचाई, जो महत्त्व, जो व्यापकता, जो सर्वोच्चता मिली, वह दूसरे शहीदो के लिए दुर्लभ रही। शहादत की इस चमक से जहाँ भगत सिंह को अनुपम ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त हुआ, वहाँ एक नुकसान भी हुआ कि उन के व्यक्तित्व के दूसरे गुणो का अध्ययन नही हो पाया। शहादत, मृत्यु से प्राप्त होती है। उस मृत्यु का अर्थ है अपने सर्वोत्तम का वलिदान। मनुष्य के लिए उस का जीवन ही सर्वोत्तम है, सब से अधिक प्रिय है, इस लिए स्वेच्छा से किसी ऊँचे उद्देश्य के लिए जीवन का समर्पण ही शहादत है। भगत सिंह ने यह समर्पण इस शान से किया और मृत्यु के साथ इस तरह नाता जोडा कि उन की मृत्यु देशवासियो के मन पर ऐसी छा गयी कि उन के जीवन के दूसरे गुणो का अध्ययन तो क्या होता, उन की मृत्यु के चमत्कार का भी गहरा अध्ययन नही हुआ। उस की चकाचौंध मे आँखे मुँद कर रह गयी। सचाई यह है कि उन मे एक ऐसा मानवीय परिपूर्ण व्यक्तित्व प्रस्फुटित हुआ था, जो किसी को दूसरो से ऊपर उठाता है, भीड से अलग कर भीड को उसे देखने, अपने से श्रेष्ठ मानने के लिए विवश करता है। मे यहाँ कहना चाहती हूँ कि वे एक सफल नेता थे और उन के नेता के सब गुणो का ठीक-ठीक विकास हुआ था। मृत्यु की साधना तो उन के नेतृत्व-मन्दिर का कलश ही था।

कुतुब मीनार वरसो मे वनी होगी। किसी दल मे नेता का पद प्राप्त करने के लिए भी वरसो की जरूरत होती है। दल की परिस्थितियो और अपने विशिष्ट गुणो के कारण भगत सिंह थोडे ही दिनो मे दल के नेता-पद पर पहुँच गये थे।

नेतृत्व दल में भेद उत्पन्न करता हे और कुछ को आदेश देने वाले तथा कुछ को आदेश का पालन करने वालो की श्रेणी मे बाँट देता है। यह स्थिति एक मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को जन्म देती है। भगत सिंह की नेतृत्व-कला यह थी कि वे व्यवहार मे नेता-अनेता का वातावरण नही वनने देते थे और समता की गहरी मधुरता वनाये रखते थे।

श्री भगवान दास माहौर के शब्दो मे—"गुप्त दल मे गोपनीयता का नियम वहुत ही आवश्यक था। सदस्य लोग यथासम्भव एक-दूसरे का नाम भी न जान पाते थे। जिस का जिस काम से जितना सम्बन्ध होता था, उतना ही उसे वताया जाता था। ऐसी हालत मे अविश्वास की भावना और उस से चिढ, ईर्ष्या उत्पन्न होने के अवसरो का आना स्वाभाविक ही था। दल मे दादागीरी चलने का सन्देह कभी भी हो सकता था। नेता और सिपाही का भेद भी अनिवार्य रूप मे था ही। भगत सिंह नेताओ मे से तो एक थे ही, वास्तव मे क्रियात्मक रूप मे वे दल के सब से वडे नेता थे, परन्तु अपने व्यवहार मे वे सदा इस वात का ध्यान रखते थे कि उन के किसी काम मे नेतागीरी की गन्ध न आये। नेता और सिपाही के वीच की खाई वे अपने हास-परिहास से सदा पाटते रहते थे।

साधारण रहन-सहन मे वे सदैव इस वात का ध्यान रखते ही थे। नेता तकिया लगाये वैठा रहे और सिपाही झाडू लगाये, ऐसी स्थिति वे कभी आने ही न देते थे

आवश्यकता के अनुसार उन के कपड़ों का रंग कभी भी न पहचाना जाता, तो कभी आवश्यकता न होने पर भी वे दो साबुन लगाने बैठ जाते थे। यह भी इस प्रकार नहीं कि उन का यह स्वभाव प्रकट हो कि वे नेता होकर भी छोटे सिपाही के कपड़ों में साबुन लगा रहे हैं बल्कि आपस में बराबरी से तू तू मैं मैं करके और तंग करके कुछ यह कर—अब सब साबुन यहीं डालोगे तो फिर मैं क्या लगाऊंगा ? लो इधर दो।

संकट के काम में तो वे आगे रहने के जिद्दी हो कर जाया करते थे। किसी सिपाही को खतरे का काम करने भेज दिया जाय और नेता सुरक्षित बैठे हुक्म करता रहे यह उन्हें कभी पसन्द नहीं था। × × × × आजाद भी हर काम में आगे रहते थे। उन का कारण यह था कि उन्हें लगता था कि वे काम को जितना अच्छी तरह कर सकते हैं उतना अच्छी तरह और कोई न कर सकेगा और यह डर भी था पर भगत सिंह हर बड़े काम में आगे रहते थे उस का कारण यह था कि नेता के रूप में उन्हें अपने आप को सब से अधिक खतरे में डालना चाहिए नहीं तो एक गुप्त दल में दादागीरी अपने कर्तव्य से आने से न रुकेगी और सिपाहियों की नेताओं में विश्वास न रहेगा।

छोटों के साथ भगत सिंह का जब यह व्यवहार था तो बड़ों के साथ उस से भी निराला था। आज़ाद उन्हें बहुत प्यार करते थे। दल के लोगों में यह बात प्रसिद्ध थी कि आज़ाद भगत सिंह की बात नहीं टालते फिर भी यह बात भी स्पष्ट थी कि भगत सिंह को आज़ाद से जो काम कराना होता था, जो बात मनवानी होती थी उस के अधिकार के स्वर में कभी नहीं कहते थे। उन के कहने में अपनी बात को ठीक मानने का जोर या जोश भी नहीं होता था। पहले वे ऐसी बातें करते थे जिन से आज़ाद हँस पड़ें खुश हो जायें। तब धीरे से अपनी बात बहुत भोलेपन से कहते थे और आज़ाद के हाँ कहते ही उछल पड़ते थे, साथियों की तरफ आँख मटकाते थे और चुटकी बजाते थे। भगत सिंह के नेतृत्व का आधार यह ज्ञान था कि जो अपने से बड़ों के अनुशासन में रह नहीं सकता, वह अपने से छोटों को अनुशासन में रख भी नहीं सकता।

उन में खतरों से खेलने की जो वृत्ति थी वह उन के रोम रोम में बसी उन की बचपन और उमंग क्रांति की ज्वाला थी। उन की सर्वोत्तम आकांक्षा थी जल उठना, जल जाना नहीं जल उठना और इस तरह जल उठना कि उन के जलने से भारत का भाग्य-पथ रोशन हो उठे वह सब को दीखने लगे। उन के निकट के साथी श्री भगवान दास माहौर के शब्द इस सम्बन्ध में इतना कह देते हैं कि फिर किसी को कुछ कहना शेष न रहे। वे कहते हैं— असेम्बली में बम फेंकने या साण्डर्स को मारने में तो कुछ यश भी था परन्तु ऐसे कामों में भी जिन में खतरा पूरा-पूरा हो और यश का तनिक भी अवसर न हो भगत सिंह आगे रहते थे। उदाहरण के लिए बम के नये खोल और मसाला तैयार हो जाने पर उसे कहीं चला कर देखने की बात थी। आज़ाद ने इस के

लिए झाँसी के पास का जंगल चुना, जहाँ ठाकुरो के शिकार खेलने के धडाके अकसर होते रहते थे। आजाद भगत सिंह और भाई सदाशिव राव इस कार्य के लिए गये। जव वम पर टोपी चढा कर उसे फेंकने का समय आया, तो भगत सिंह ने स्वय वम को हाथ मे लिया और आजाद एव सदाशिव को वहुत पीछे सुरक्षित खडा कर दिया, तव वम फेका। यहाँ (इस वात का महत्त्व समझने के लिए) यह स्मरण कर लेना चाहिए कि भाई भगवतीचरण की मृत्यु इसी प्रकार वम आजमाते समय हाथ मे ही वम फट जाने से हुई थी।

२८ मई १९३० को श्री भगवतीचरण वोहरा एक वम का परीक्षण करने के लिए रावी के किनारे गये। वम हाथ मे ही फट गया और वे वुरी तरह घायल हो गये। मरने से पहले उन्हो ने अपने साथियो से कहा—" 'जे तुसी सारे वी मर जाओ ताँ कुछ नही विगडदा। जट नूँ वचा लवो ताँ पार्टी ते आन्दोलन दोनो वच जाणगे।' मतलव यह कि तुम सारे भी मर जाओ, तो कुछ विगडेगा नही, क्यो कि जट (भगत सिंह) वचा रहा, तो पार्टी और आन्दोलन दोनो वच जायेंगे।"

सोचती हूँ भगत सिंह के नेतृत्व का यह सर्वोत्तम परिचय है। वे सिपाही भी थे, संस्था भी थे, नेता भी थे। ससार के दूसरे देशो की तरह भारत मे भी क्रान्तिकारी आन्दोलन आतंकवाद के रूप मे जन्मा था। जोरदार धडाका कर देना ही वडी सफलता मानी जाती थी और उन परिस्थितियो मे थी भी। वीरवर राणा प्रताप का अन्तिम सन्देश था कि हम इज्जतदार आदमी की तरह जी नही सकते, तो इज्जतदार आदमी की तरह मर तो सकते हैं। यह क्रान्ति का नही विद्रोह का चरित्र है। विद्रोह है अत्याचार को वर्दाश्त न करना और विना दोनो पक्षो की शक्ति का सन्तुलन वनाये, अत्याचार की शिला से टकरा जाना। इस के विरुद्ध क्रान्ति है उस शिला को हटाना और यह निर्णय करना कि शिला के हटने से जो स्थान खाली होगा, वहाँ फुलवारी लगायी जायेगी या कोई मकान वनेगा। विद्रोह व्यक्तिगत है। उसे एक आदमी या कुछ आदमियो की टोली सफलतापूर्वक कर सकती है, पर क्रान्ति समष्टिगत है। उस मे समूह को, समूहो को हिस्सा लेना पडता है। विद्रोह और क्रान्ति के वीच है आन्दोलन। यह विद्रोह को क्रान्ति मे वदलने की प्रक्रिया है। यह व्यक्ति के विरोध को समाज का विरोध और व्यक्ति की वलिदान-भावना को समाज की वलिदान-भावना वनाने का मानसिक यन्त्र है।

भगत सिंह के नेतृत्व की विशिष्टता यह है कि उन्हो ने आतकवादी विद्रोह को पहले आन्दोलन का रूप दिया और फिर उस आन्दोलन को क्रान्ति का दिशावोध। अपनी १६ वर्ष की आयु मे २३ वर्ष की उम्र तक के सात वर्षो में वे क्रान्ति की तीनो धाराओ मे तैर गये, यह उन के नेतृत्व का एक जादू-भरा चमत्कार ही है। नेतृत्व के इस जादू-भरे चमत्कार के इतने चित्र मेरे सामने फैले हुए है कि उन्हे सन्-संवत् के सिलसिले से किसी एल्वम मे लगाना सम्भव नही है। वे चित्र एक विराट् व्यक्तित्व के खण्ड है, पर निश्चय ही ऐसे खण्ड कि हर खण्ड अपने मे परिपूर्ण है, यानी हर खण्ड मे

१९२५ मे उन के मन मे एक सार्वजनिक संगठन की वात उथल-पुथल मचा रही थी और वे वहुत तेजी से उस के विधान पर विचार कर रहे थे। स्टूडेण्ट्स यूनियन की स्थापना उन्हो ने की थी, पर यह सगठन उस से भिन्न था, जिस की वह वात सोच रहे थे। उस का छायापट (कैनवास) भी इस से विशाल था, विस्तृत था। उन के छोटे भाई कुलवीर सिंह के शब्दो मे–"उस संगठन के नाम के लिए कई साथियो का सुझाव था, तरुण भारत सघ। पहले तो यही नाम स्वीकार कर लिया गया, पर वाद मे भगत सिंह की राय हुई कि यह ठेठ हिन्दी है और इधर उर्दू अधिक है। तव उन्हो ने नौजवान भारत सभा नाम रखा।" कुछ ही दिनो मे यह नाम जनता के मुँह चढ गया और इस तरह पार्टी को एक मंच भी मिल गया। इस काम के महत्त्व को समझने के लिए यह आवश्यक है कि १९२५ की सार्वजनिक परिस्थितियाँ साफ-साफ हमारे सामने हो।

१९२० मे उठा देशव्यापी अहिंसात्मक आन्दोलन सफल हो चुका था। नागपुर मे झण्डा-सत्याग्रह से जो चमक पैदा हुई थी, वह भी सत्याग्रह के साथ समाप्त हो चुकी थी। उस के वाद सिखो के गुरुद्वारा आन्दोलन ने देश के वातावरण को धार्मिक आवरण मे नयी राजनैतिक चेतना दे दी थी। वह आन्दोलन भी सफलता के साथ पूर्ण हो गया था और पंजाव कौन्सिल मे गुरुद्वारा विल कानून वन चुका था। चारो ओर राजनैतिक उदासी छा चली थी। अँगरेज सरकार की पूरी मशीनरी देश में साम्प्रदायिक दंगो का ज्वालामुखी जाल विछा कर वदला लेने मे जुट पडी थी।

सहारनपुर, दिल्ली, गुलवर्ग, नागपुर, लखनऊ, शाहजहाँपुर, इलाहावाद, जवलपुर, कलकत्ता और हुस्नावाद मे खूनी दगे तो हो ही चुके थे, पर कोहाट के दगे ने तो दगो के सारे रेकॉर्ड ही तोड दिये थे। हेडमास्टर लाला नन्दलाल की रिपोर्ट के अनुसार—९–१० सितम्वर १९२४ को वहाँ हिन्दुओ का कत्ले-आम हुआ था और एक स्पेशल ट्रेन से ४००० पीडित हिन्दू होटल से वाहर लेजाये गये थे। ये लोग दो महीने तक रावलपिण्डी और दूसरे नगरो मे वहाँ के हिन्दुओ की सहायता से चलने वाले कैम्पो मे पडे रहे थे। परिस्थितियाँ कितनी दर्दनाक थी, इस का पता १ मई १९२५ को कलकत्ता के मिर्जापुर पार्क मे कहे महात्मा गान्धी के इन शब्दो से चलता है—

'मै ने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है। मै ने स्वीकार कर लिया है कि इस रोग की औपधि वताने वाले वैद्य की विशेपता मुझ मे नही है। मै तो नही देखता कि हिन्दू अथवा मुसलमान मेरी औपधि को स्वीकार करने के लिए तैयार है। इस लिए मैं ने आजकल इस समस्या को यो ही उडती-सी चर्चा कर के सन्तोप करना आरम्भ कर दिया है। मै यह कह कर सन्तोप कर लेता हूँ कि यदि हम अपने देश का उद्धार करना चाहते है, तो एक-न-एक दिन हम हिन्दू और मुसलमानो को एक होना पडेगा और यदि हमारे भाग्य मे यही वदा है कि एक होने से पहले हमे एक-दूसरे का खून वहाना चाहिए, तो मेरा कहना यह है कि जितनी जल्दी हम यह कर डालें, हमारे लिए उतना ही

नेशनल कॉलेज के लिए छह लाख रुपये दिये। दो साल बाद भीतर-भीतर जाने क्या दवाव पडा, लाला जी ने वे रुपये वापस कर दिये। पंजाव प्रान्तीय कॉंग्रेस और लाला जी मे इस वात पर झगटा हुआ और भगत सिंह ने इस झगडे मे जम कर हिस्सा लिया।

यह झगडा १९२४ मे खुल कर सामने आया। लाला लाजपत राय ने महामना मालवीय जी के साथ मिल कर इण्डिपेडेण्ट कॉंग्रेस पार्टी के नाम से कॉंग्रेस के विरुद्ध चुनाव लडने के लिए अलग पार्टी वना ली।

कॉंग्रेस को चुनाव के लिए अपने उम्मीदवार चुनने थे। इस के लिए ब्रैडला हाल (लाहौर) मे एक वैठक वुलायी गयी। निश्चय था कि लाला जी का ग्रुप इस मे गडवड करेगा। इस लिए सरदार किशन सिंह दरवाज़े पर खडे हो गये और मंच सँभाल लिया भगत सिंह ने। नोटिस वॉंट दिया गया था कि जो खद्दर पहने होगे और कॉंग्रेस की सदस्यता प्रमाणित करने वाली चवन्नी की रसीद लिये होगे, उन्हे ही प्रवेश करने दिया जायेगा। डॉ० गोपीचन्द भार्गव आये, तो उन के पास रसीद नही थी। खूव हाथापाई हुई वाद मे वन्द दरवाजो के भीतर वैठक आरम्भ हुई। घोपित सभापति महता नन्द-किशोर अपने आसन पर वैठे, पर तभी लाला जी ग्रुप के लाला विशनदास भी एक कुरसी रख कर मच पर वैठ गये। सभा एक, वुलाने वाला एक, पर अध्यक्ष दो। सव ने कहा, पर लाला विशनदास उठे ही नही। तव सरदार किशन सिंह को वुलाया गया और उन के कहने से वे उठे।

उम्मीदवारो के जो नाम चुने गये, उन मे सरदार भगत सिंह का भी नाम था। वाद मे सर्वसम्मति से लाला दुनीचन्द वैरिस्टर कॉंग्रेस के उम्मीदवार रहे। मुकावला लाला जी की पार्टी के उम्मीदवार वख्शी टेकचन्द से था। सरदार किशन के साथ भगत सिंह ने रात-दिन काम किया। एक दिन कॉंग्रेस-विरोधी जलसे मे लाला लाजपत राय, महामना मालवीय जी और भाई परमानन्द के भापण होने थे। वहुत वडी भीड जमा थी। भगत सिंह ने इस जलसे मे एक पैम्फलेट वॉंटा, जो इस तरह के अवसरो पर रोज-रोज़ वँटने वाले पैम्फलेटो मे अपनी जगह निराला था। वह अवसर के विलकुल उपयुक्त था, पर अपनी शैली के कारण भगत सिंह की लेखन-कला का एक उत्तम उदाहरण था। उस का शीर्पक था—'द लॉस्ट लीडर' (खोया हुआ नेता)। उस मे अँगरेजी के श्रेष्ठ कवि व्राऊनिंग की इसी शीर्पक की एक कविता छापी गयी थी। उस का भाव कुछ इस तरह था कि चाँदी के चन्द टुकडो के वदले, तू ने अपना मान खो दिया और इस तरह अपने प्रशसको की दृष्टि मे तू स्वय ही खोया गया। इस पैम्फलेट की एक खास वात यह थी कि मोटे अक्षरो मे छपे —'द लॉस्ट लीडर'—के ठीक वीच लाला लाजपत राय का चित्र छपा हुआ था।

भगत सिह ने एक पैम्फलेट स्वय भाई परमानन्द के हाथ मे दिया। उन्हो ने गुस्से से उसे फाड दिया। भगत सिंह ने दूसरा उन के हाथ पर रख दिया और मुसकराये। भाई जी ने उसे भी फाड दिया। वहुत देर तक पैम्फलेट दिये गये और फाडे गये।

लाला जी तमतमा उठे। उन्हों ने अपने भाषण में भगत सिंह को रूसी एजण्ट कहा और गरजे—"ये मुझे लेनिन बनाना चाहते हैं पर मैं उस तरह का आदमी नहीं हूँ।" साप्ताहिक 'वन्दे मातरम' में भी लाला जी ने अपनी बात दोहरायी और इस तरह लाला जी और भगत सिंह में राजनीतिक दुश्मनी हो गयी।

साइमन कमीशन के लाहौर आने पर जो विरोधी प्रदर्शन हुआ, उस में नौजवान भारत सभा प्रमुख संगठन शक्ति थी, पर उस ने प्रदर्शन के आगे स्थापित किया लाला लाजपतराय को और वहाँ साण्डर्स के डण्डों की चोट खा कर जब कुछ दिन बाद लाला जी की मृत्यु हो गयी तो उस का बदला साण्डर्स-वध के रूप में लिया भगत सिंह ने। उन की दुश्मनी थी लाला जी से एक सिद्धान्त के कारण, पर लाला जी का अपमान देश का अपमान था। वे दुश्मनी को भूल गये और जान की बाजी लड़ गये। इसे मैं उन के नेतृत्व की लक्ष्य-बेधी दृष्टि कहता हूँ—न इधर देखना, न उधर, हमेशा लक्ष्य पर दृष्टि रखना।

इस लक्ष्य-भेदी दृष्टि से भगत सिंह को नेतृत्व के दो सब से बड़े गुण प्राप्त हुए थे। पहला आने वाली परिस्थितियों को दूर से भाँप लेना, किस काम के क्या परिणाम होंगे इस को सही सही आँक लेना और अपने काम के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण करना। एक राजनीतिक विचारक ने महात्मा गान्धी और पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व की तुलना करते हुए लिखा था कि गान्धी जी के नेतृत्व की यह सब से बड़ी कमजोरी थी कि वे अपने सिद्धान्तों की पाबन्दी के कारण अपने काम के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण नहीं कर सकते थे पर उन के नेतृत्व की यह सब से बड़ी विशेषता थी कि वे समय के प्रभाव से स्वाभाविक रूप में उभरती परिस्थितियों को बहुत दूर से भाँप लेते थे और उन के आगे हो कर उन्हें अपने हाथ में ले लेते थे। इस के विरुद्ध पण्डित जवाहरलाल नेहरू में न परिस्थितियों के निर्माण की शक्ति थी, न उभरती परिस्थितियों को भाँपने की योग्यता। मैं गहरे चिन्तन और विश्लेषण के बाद कहना चाहता हूँ कि *भगत सिंह में उभरती परिस्थितियों को भाँपने और नयी परिस्थितियों को* जन्म देने की समान क्षमता थी। वे उन के थे जिन के सम्बन्ध में कवि की सूक्ति है—

> लोग कहते हैं बदलता है जमाना हरदम,
>
> मर्द वो हैं जो जमाने को बदल देते हैं।

साण्डर्स-वध और असेम्बली बम-काण्ड भगत सिंह के नेतृत्व-वेल के सर्वोत्तम पुष्प हैं क्यों कि इन में उन के नेतृत्व के दोनों गुण-परिस्थितियों को भाँपना और परिस्थितियों को पैदा करना पूर्ण रूप में सामने आते हैं। १९२१-२२ में असहयोग की असफलता के बाद साम्प्रदायिक दंगों से वातावरण एकदम अन्धकारमय हो गया था और ऐसा लगता था कि अब राष्ट्रीय आन्दोलन कभी नहीं उठेगा। काकोरी काण्ड ने एक आवाज अवश्य लगायी पर कुएँ की आवाज थी जो कुएँ में गूँज कर रह गयी। जरूरी थी नहीं देश को जगाने की जरूरत था पर यह जरूरत कैसे पूरी हो?

अँगरेज ने मजाक उड़ाया, अट्टहास किया। साइमन कॅमीशन को भारत भेजना, भारत की गुलामी का मजाक ही तो था। कांग्रेस ने उस के बहिष्कार की घोषणा की। जिस शहर मे वह जाता, उसे काले झण्डे दिखाये जाते। ये झण्डे थोडे से हाथो मे होते, पर इन के पीछे हजारो हाथ होते। अपमान के धक्के से जनता जाग उठी थी। वह जाग्रति लाला जी की हत्या-जैसी मृत्यु से आग हो उठी थी। अगार को लकडियो से जोड दें तो लपट बन जाता है, नही तो राख उसे धीरे-धीरे ढँकने लगती है, भगत सिंह ने इस सहज परिस्थितियो को भाँप लिया और पार्टी की केन्द्रीय समिति के सामने साण्डर्स की हत्या रखने का प्रस्ताव रखा। हत्या दिन-दहाडे हो गयी और सब क्रान्तिकारी सुरक्षित लौट आये। लाला जी की मृत्यु का बदला ले लिया गया पर भगत सिह का नेतृत्व परिस्थितियो को भाँप कर उन का उपयोग कर रुका नही, वह अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करने मे जुट गया। बिना एक क्षण आराम किये भगत सिह रात-भर वे पोस्टर तैयार करते रहे जिन मे हत्या का उद्देश्य बताया गया था और सुबह होने से पहले उन्हे जगह-जगह चिपका भी आये। यह ऐतिहासिक सचाई है कि गुप्त काण्डो को पहली बार इसी पोस्टर ने आन्दोलन का रूप देने की शुरूआत की थी। अब छुटपुट काण्ड एक देशव्यापी क्रान्तिमाला के मनके बन गये थे। उन के पीछे धडकते-जोशीले दिल अब एक उफान नही रहे थे, तूफान हो गये थे।

असेम्बली बम-काण्ड के रूप मे भगत सिह ने इस तूफान का एक सविधान दे दिया। साइमन कॅमीशन यह जाँच करने के लिए इग्लैण्ड की सरकार-द्वारा नियुक्त हुआ था कि भारत को जो शासन-सुधार दिये गये थे, उन का ठीक उपयोग हुआ या नही और भविष्य मे उसे और क्या सुधार दिये जाये ? जो सुधार अभी तक भारत को मिले थे उन मे सर्वोत्तम और सर्वोच्च थी केन्द्रीय असेम्बली। उस मे जनता-द्वारा निर्वाचित सदस्य सरकार के किसी भी काम की आलोचना कर सकते थे, सरकार के प्रस्ताव को पास-फेल कर सकते थे, पर जब साइमन भारत मे थे, तो एक ऐसा सयोग था कि इस असेम्बली का खोखलापन सिद्ध किया जा सकता था। असेम्बली मे सरकार ने दो बिल पेश किये थे। पहला पब्लिक सेफ्टी बिल और दूसरे ट्रेड्स डिस्प्यूट्स बिल। पहले का उद्देश्य था सार्वजनिक उग्र नेतृत्व का दमन और दूसरे का मजदूरो को हडताल के एकमात्र अधिकार से वंचित करना।

भगत सिह ने अपनी दूरदर्शी दृष्टि से यह भाँप लिया कि असेम्बली मे काँग्रेस और दूसरे राष्ट्रीय दलो के सदस्य मिल कर इन बिलो को फेल कर देंगे और कानून के रूप मे पास नही होने देंगे। तब यह निश्चित है कि वायसराय अपने विशेषाधिकार से उन्हे पास कर देंगे। इस स्थिति मे सरकार का सर्वोत्तम सुधार अपने ही कामो से जनता के सामने निकम्मा हो कर आयेगा। भगत सिह ने असेम्बली मे उसी समय बम फेकने का निश्चय किया और पार्टी के सामने असेम्बली मे बम फेकने का अपना प्रस्ताव रखा।

गया।" यह सव से ऊँचा स्थान उन्हे उन के नेतृत्व की चहुमुँखी प्रतिभा का उपहार था।

भगत सिंह उस नेतृत्व मे विश्वास नही रखते थे, जो सामयिक परिस्थितियो से मिल जाता है और जिसे वनाये रखने के लिए वरावर नये-नये जोड-तोड मिलाने पडते है। वे उस नेतृत्व मे भी विश्वास नही रखते थे, जिस मे साथी लोग किसी विशेप क्षण की भावुकता में उचक कर किसी के सिर पर मुकुट रख देते है, और दूसरे ही क्षण से उस मुकुट को गिराने के काम मे जुट जाते है।

भगत सिंह उस नेतृत्व मे विश्वास रखते थे, जो उन कामो को, उस तरह करने से अनायास मिलता था, जिन कामो को, उस तरह दूसरे लोग नही कर पाते।

भगत सिंह उस नेतृत्व मे विश्वास रखते थे, जो मिल जाता है, सँभालना नही पडता, जिस की घोपणा नही होती, जो महसूस नही होता, और मानसिक होता है, सामाजिक नही होता।

भगत सिंह उस नेतृत्व मे विश्वास रखते थे, जिस मे अधिकार नही वढते, उत्तरदायित्व ही वढते है और जिस मे ऊँचे आसन पर वैठने की होड नही होती, होड होती है इस वात की कि कौन दौड कर सव से पहले मौत का हाथ चूमेगा और किस की दौड इतनी शानदार होगी कि मौत जिन्दगी की एक अमर कहानी वन जाये।

नश्वर जीवन को मृत्यु के हाथो उमग के साथ सौप, मृत्यु को अनश्वर जीवन वना देना ही भगत सिंह का सफल नेतृत्व था—वे जवानी को मौत से खेलना सिखा गये और खतरो से दोस्ती करना। अपने इसी अनुपम नेतृत्व के कारण भगत सिंह राष्ट्र के एक व्यक्ति से राष्ट्रपुरुप हो गये है। सोचती हूँ, उन के नेतृत्व और व्यक्तित्व का सक्षिप्त रेखाचित्र है—किरण का सूर्य वन जाना, फूल का उपवन वन जाना और घटना का इतिहास वन जाना।

जालिम फलक ने लाख मिटाने की फिक्र की,
हर दिल मे अक्स रह गया, तस्वीर रह गयी।

▪ ▪

म पर जोर से कहता हूँ कि म आकांक्षाओं और आशाओं से भरपूर हूँ और जीवन की आनन्दमय रंगीनियों से ओत प्रोत हूँ पर आवश्यकता के समय सब कुछ कुर्बान कर सकता हूँ और यही वास्तविक बलिदान है।'

असेम्बली में बम फेंकने से कुछ ही पहले भगत सिंह ने अपने साथी सुखदेव को जो लम्बा पत्र लिखा उसी की ये पंक्तियाँ हैं। भगत सिंह पर जो कुछ लिखा गया है वह इतना है कि उसके कागज कई एकड़ भूमि पर फैल सकते हैं पर इन इकतीस शब्दों में उन्होंने अपने व्यक्तित्व का जो चित्र दिया है क्या वह उन सब कागजों से अधिक परिपूर्ण नहीं है ? और जो इतने बड़े व्यक्तित्व को इतने थोड़े शब्दों में इतनी सुन्दरता के साथ चित्रित कर सकता है उसे एक श्रेष्ठ लेखक मानने में किसे भी झिझक होगी ? सचमुच अद्भुत व्यक्तित्व है उनका। वे श्रेष्ठ पुत्र थे, श्रेष्ठ नागरिक थे श्रेष्ठ क्रान्तिकारी थे श्रेष्ठ दार्शनिक थे, श्रेष्ठ सिपाही थे श्रेष्ठ नेता थे, श्रेष्ठ वार्ताकार और श्रेष्ठ लेखक थे।

इसी पत्र में किसी साथी के बारे में उन्होंने लिखा है— श्री शास्त्री मुझे पहले से ज्यादा अच्छे लग रहे हैं। मैं उन्हें मैदान में लाने की कोशिश करूँगा बशर्ते कि वे स्वेच्छा से निश्चित रूप से एक अंधेरे भविष्य के प्रति समर्पित होने को तैयार हों। उन्हें दूसरे लोगों के साथ मिलने दो और उनके हाव भाव का अध्ययन करने दो। यदि वे ठीक भावना से काम करेंगे तो उपयोगी और बहुत मूल्यवान सिद्ध होंगे लेकिन जल्दी न करना। एक चतुर पुलिस अफसर एक निपुण अध्यापक और एक प्रवीण व्यवसायी क्या किसी की सर्वांगीण रिपोर्ट इससे कम शब्दों में और इससे अधिक परिपूर्ण रूप में लिख सकते हैं ? विस्तार में देखना और संक्षेप में कहना भगत सिंह के लेखक का प्रमुख गुण था।

भगत सिंह उद्देश्यवादी लेखक थे। साफ-साफ बात यह है कि उनका हर कदम, हर काम एक उद्देश्य के लिए समर्पित था। वह उद्देश्य था जनता को क्रान्ति के लिए तैयार करना। उनके लेखन का उद्देश्य भी यही था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने समय की विभिन्न भाषाओं में कौन-सा भाषा माध्यम उनके लेखों को पढ़ने से मालूम होता है। पहली भाषा था,

जनता के सोये दिमागों पर हलकी चोट दे कर उन्हे जगाना, दूसरा भाग था, जनता को जानकारी देना और तीसरा भाग था, जनता को प्रेरणा देना कि जो कुछ दूसरों ने किया, वह तुम भी कर सकते हो।

कूका-विद्रोह १८५७ के महान् विप्लव के वाद सशस्त्र विद्रोह की पहली प्रमुख घटना है। उस पर लिखे लेख का आरम्भ उन्हो ने इस प्रकार किया—"देखते-देखते पंजाव-केशरी रणजीत सिंह अपने प्यारे पंजाव को छोड कर महायात्रा कर गये। उन के आँख मूँदते ही अँगरेजो की वन आयी। दस ही वर्ष के भीतर पंजाव का नक्शा भी लाल रंग मे रग दिया गया। अलीपुर और मुवराओ तथा गुजरात और चेलियाँ-वाला मे वीर सिक्ख सैनिको ने जिस वीरता का परिचय दिया था, उस की याद आज भी रोमांचित किये विना नही रहती; परन्तु देश का दुर्भाग्य! नेताओ ने सदा धोखा दिया और आखिर पंजाव भी पराधीनता की वेडियो मे जकड़ दिया गया।"

"१८५७ के दिन आये। समस्त भारत को संगठित किया गया। पंजाव की ओर किसी ने विशेप ध्यान नही दिया। अभी कल तो अपनी स्वतन्त्रता कायम रखने मे वीर-योद्धाओ ने वढ-वढ कर आत्म वलिदान किये थे, अभी कल ही तो उन्हो ने वह वहादुरी दिखाई थी कि जिसे देख कर शत्रु भी दंग रह गये थे। अपने प्यारे महाराजा की प्रेयसी की दुर्दशा और छोटे महाराजा दिलीप सिंह के साथ घोर अन्याय देख कर वे तडप उठे थे। कौन आशा कर सकता था कि उसी पजाव मे दस वर्ष के भीतर ही इतना परिवर्तन हो जायेगा कि वह स्वतन्त्रता संग्राम के विभीपण का काम करेगा, परन्तु वही हुआ जो नही सोचा था। पंजावी वीरो (!) ने अपने ही भाइयो के उस विराट् आन्दोलन को वुरी तरह तहस-नहस कर डाला और सदा-सर्वदा के लिए पंजाव के उज्ज्वल ललाट पर कलंक-कालिमा पोत दी।"

"परन्तु उस कालिमा को धोने के लिए पजाव ने अपना रक्त भी खूव भेंट किया। अनेक वीरो ने रणांगण में, फाँसी के तख्तो पर या जेल मे तिल-तिल कर आत्म-वलि दे दी और आज तक वह वलि-शृंखला चल रही है। पंजाव में सव से पहले जो वलिदान हुआ, वह कूका-विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध है।"

महाराजा रणजीत सिंह के समय की वीरता, वाद की उदासी उपेक्षा, उस के वाद की गद्दारी और तव पुनर्जागरण, पजावी जन-जीवन के इन चार परिवर्तनो को भगत सिंह ने अपने लेख की भूमिका मे चाँद के फाँसी अंक की ३१ पंक्तियो मे जिस खूवसूरती और करीने से पिरो दिया है, वह मनोमुग्धकारी है। ये पंक्तियाँ पाठक को झँझोडती भी है, थपथपाती भी है। कौन सहमत न होगा कि एक सफल लेखक ही ऐसा कर सकता है। वे जीते तो अपनी कलम को और भी माँजते, क्यो कि किसी काम मे पूरी तरह डूवना उन का स्वभाव था। तव एक शैलीकार लेखक के रूप में अमरता प्राप्त करते, पर नियति ने उन्हें लेखक हो कर जीने के लिए नही, मर कर लेखो और लेखको का चिन्तन विपय वनने के लिए वनाया था।

भ्रम दीखने लगा। आज वह पकडा गया, कल वह फूट पडा । ऐसी ही दशा में रासू बाबू हताश हो कर मुरदे की नाई लाहौर के एक मकान मे पडे थे । करतार सिंह भी आ कर एक ओर चारपाई पर दूसरी ओर मुँह कर के लेट गये । वे एक-दूसरे से कुछ वोले नही परन्तु चुप-ही-चुप मे एक-दूसरे के हृदय मे घुस कर वे सव समझ गये थे । उन की उस समय की वेदना का अनुमान हम लोग क्या लगा सकेंगे ?

दरे तदवीर पर सर फोडना शेवा रहा अपना
वसीले हाथ ही आये न क़िस्मत आजमाई के ।"

पढ कर फिर पढने को मन चाहता है और पढ कर लगता है, जैसे किसी वहुत कीमती चित्र को एक वहुत सुन्दर चौखटे मे जड दिया गया है । भगत सिंह के दिल मे देशभक्ति की देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करने की जो छलक थी, वही तो झलक आती थी उन की कलम मे ।

'स्वाधीनता की लडाई मे पजाव का पहला उभार' का एक टुकडा है—गरम दल के नेता जानते थे कि जव जनता मे जागृति होती है, तो उस के अन्दर जोश और वेचैनी होना भी अवश्यंभावी है । वे यह भी जानते थे कि फूँक-फूँक कर कदम रखने वाले महानुभाव स्वतन्त्रता के संघर्ष मे अधिक समय तक नही टिक सकते । राष्ट्र के निर्माता तो नवयुवक ही हुआ करते है। किसी ने सच कहा है—"सुधार वूढे आदमी नही कर सकते । वे तो वहुत ही वुद्धिमान् और समझदार होते हैं । सुधार तो होते है—युवको के परिश्रम, साहस, वलिदान और निष्ठा से । जिन को भयभीत होना आता ही नही है और जो विचार कम और अनुभव अधिक करते है ।"

भगत सिंह सूक्तियो के भण्डार थे । उन्हे आदत थी कि पढते समय जो विचार उन्हे पसन्द आते थे, वे उन्हे कण्ठ कर लेते थे और स्मृति के सहारे ही जगह-जगह उन्हे जडते रहते थे । ये सूक्तियाँ उन के लेखो को भी सौन्दर्य देती थी और वातचीत को भी । ये सूक्तियाँ गद्य की भी होती थी और पद्य की भी । उन की स्मृति एक और रूप मे भी उन के लेखक को वल देती थी । वे अपने विषय की दूर-दूर फैली सामग्री को ध्यान मे रखते थे और समय पर उसे परख कर प्रयोग कर लेते थे । इस दृष्टि से उन का हाईकोर्ट मे दिया हुआ वयान सर्वोत्तम उदाहरण है ।

डॉक्टर मथुरा सिंह पर लिखा लेख उन्हो ने इस तरह समाप्त किया है—"फिर २७ मार्च १९१७ का दिन आ पहुँचा । उस दिन फिर वही नाटक प्रारम्भ हुआ । उस दिन के नाटक मे एक ही दृश्य हुआ करता है, और वह भी कुछेक मिनट का । ये पगले लोग न जाने कहाँ से आ गये, जिन्हे न मृत्यु का भय था, न जीने की चाह, कार्यक्षेत्र मे हँसे, युद्ध क्षेत्र मे हँसे, फाँसी के तख्ते पर भी मुसकरा दिये । उन की महिमा अपरम्पार है ।

हो फरिश्ते भी फिदा जिन पर ये वो इनसान हैं ।"

डॉक्टर अरुण सिंह का परिचय उन्हो ने आरम्भ ही इस तरह किया था—"देश

प्रेम में मतवाले हो कर जलती हुई शमा की पहली ही लपट पर एक मस्त परवाने की भांति वे अपना सब कुछ स्वाहा कर गये।

उन के लिए तो—

> जिन्दगी नाकिस थी आखिर,
> कर लिया मदफन पसन्द,
> सुना था यह राहत कामिल,
> इसी मंजिल में है।"

जनता की जड़ता उन्हें बेहद नापसन्द थी, जनता में जागरण उन का मिशन था। इस के लिए वे जन मन को किस तेजी से और किस गहराई तक झकझोर रहे थे, इस का उदाहरण हैं ये पंक्तियाँ—"बावजूद सब से अधिक विपत्तियाँ सहन करने के सब से अधिक गणना में अपने नर रत्नों के स्वतन्त्रता बलिवेदी पर बलिदान देने के आज पंजाब राजनैतिक क्षेत्र में पिछड़ी (पॉलिटिकली बैकवर्ड) प्रान्त कहलाता है। बंगाल में श्री खुदी राम बसु फांसी पर लटके। उन्हें इतना उठाया गया कि आज उन का नाम प्रान्त के कोने-कोने में सुनाई देता है। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में उन का नाम सुविख्यात है, परन्तु पंजाब में कितने कितने रत्न देश के लिए जीवन-दान दे गये, कितने ही हँसते हँसते फांसी पर चढ़ गये, कितने ही खड़े-खड़े छाती में गोली खा कर शहीद हो गये, परन्तु उन्हें कौन जानता है? और कहीं की तो बात ही क्या कहें पंजाब प्रान्त में ही उन्हें कितने लोग जानते हैं? कोई साधारण क्लर्क या हो फांसी पर लटक गया हो और उसे लोग याद हों भूल गये हों सो भी तो नहीं, जिन लोगों ने अपार उत्साह से तथा अतुल साहस से भारतोत्थान के यत्न कर दिये थे कि आज उन्हें सुन सुन कर अवाक् रह जाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।

यदि ऐसे रत्न किसी और देश में जन्म धारण किये होते तो आज उन की वाशिंगटन, गैरीबाल्डी तथा विलियम वालेस की भांति पूजा होती, परन्तु उन्हों ने एक अक्षम्य अपराध यह किया था कि वे भारत में पैदा हुए थे। इसी का दण्ड यह है कि आज उन को विस्मृति के अन्धकार में फेंक दिया गया है। न उन के कार्य की चर्चा है, न उन के त्याग की, न उन के बलिदान की ख्याति है, न उन के साहस की, परन्तु ऐसी कृतघ्नता दिखाने वाले देश की उन्नति कब होगी।

गम्भीरता और सक्रियता उन के व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण गुण थे। उन के व्यक्तित्व का तीसरा गुण था गहराई। खूब पढ़ कर, उस पर मनन कर, सोच विचार कर वे राय बनाते थे। उन का चौथा गुण था स्पष्टता। न वे उलझन थे, न गोलमोल या अस्पष्ट बात कह कर उलझाते थे। उन का लेखन तथा उन के इन गुणों—गम्भीरता, गहराई और स्पष्टता में पूरी तरह मिश्रित है। असेम्बली बमकाण्ड के बाद अदालत में उन्हों ने जो बयान दिया और गवर्नर जनरल के नाम लिखा उन का पत्र (हमें फांसी न दे कर गोली से उड़ा दिया जाय) उन की स्पष्टवादिता के सर्वोत्तम प्रतिनिधि हैं।

२ फरवरी १९३१ को उन्हो ने नयी पीढी के नाम जो सन्देश दिया, वह विचारो की दृष्टि से इतना प्रौढ हैं कि भगत सिंह एक आचार्य के रूप मे हमारे सामने आ खडे होते है। इस मे उन की अभिव्यक्ति इतनी सुन्दर है कि पढते ही मन उन के लेखक रूपकी प्रशंसा से भर उठता है। क्रान्तिकारी साहित्य के निष्ठावान् लेखक श्री रतनलाल वसल के शब्दो मे—"यह सन्देश उन की राजनैतिक दूरदर्शिता और बुद्धि की प्रखरता का ऐसा अमर प्रतीक है, जो वलिदान वेला मे लिखे जाने के कारण अत्यन्त ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। × × × भारत की राजनीति जब भी किसी चौराहे पर पहुँच कर दिशा-भ्रम से शकित होगी और आगे का मार्ग खोजने के लिए चिन्तातुर होगी, तभी अमर शहीद का यह सन्देश उसे उचित पथ-निर्देशन करेगा और भावी इतिहासकारो को उन के भ्रमो से बचायेगा। × × × भगत सिंह केवल युद्धक्षेत्र के एक वीर सैनिक ही नही थे, बल्कि उस के साथ ही एक गम्भीर राजनीतिज्ञ और अपनी भावनाओं को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त कर देने वाले कलाकर भी थे।" वसल जी ने जो कुछ कहा, उसे पारिभाषिक शब्दो मे इस तरह भी तो कह सकते है कि भगत सिंह एक क्लासिकल लेखक थे।

घोर खतरो से भरी भाग-दौड मे भी लेखन-कला का अभ्यास उन्हो ने कब किया था? इस कला का विकास उन मे कब-कैसे हुआ? ये प्रश्न स्वाभाविक है, पर इन का उत्तर उस भाषा मे नही दिया जा सकता, जिस भाषा मे साधारण लेखको के सम्बन्ध मे दिया जाता है। बात यह है कि एक क्रान्तिकारी के रूप मे ही नही एक लेखक के रूप मे भी भगत सिंह प्रकृति का, युग का एक विशिष्ट निर्माण थे। हाँ, यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि नेशनल कॉलेज मे पढते समय भगत सिंह का लेखक रूप सम्भावनाओ से भरपूर रूप में सामने आ गया था। 'पजाब हिन्दी साहित्य सम्मेलन' ने पजाब की भाषा तथा लिपि-समस्या पर लेख निमन्त्रित किये और सर्वश्रेष्ठ लेख पर पचास रुपये पुरस्कार देने की भी घोषणा की। यह निमन्त्रण खुला था और इस मे कोई भी भाग ले सकता था। भगत सिंह ने भी इस स्पर्धा मे भाग लिया और एक लम्बा लेख लिखा। यह लेख (स्व०) श्री भीमसेन विद्यालकार प्रधान मन्त्री पजाब हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की कृपा से सुरक्षित रह गया। बाद मे २८ फरवरी १९३३ के हिन्दी-सन्देश मे (पृ० ८५) पर इसे इन्हो ने प्रकाशित भी कर दिया।

भगत सिंह के लेखक रूप को समझने के लिए यह लेख बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। इतना अधिक महत्त्वपूर्ण कि यदि उन की लिखी और कोई भी पक्ति सुलभ न होती और यही लेख बच रहता, तब भी भविष्य के समीक्षक उन के सम्बन्ध मे यह लिखने को विवश होते—एक ऐसा लेखक हमारे बीच मे पैदा हुआ था, जो जीवित रह पाता, तो समाज के पुनर्जागरण और पुनरुत्थान मे तो महत्त्वपूर्ण भाग लेता ही, ऐसी कृतियाँ भी अपने पीछे छोड जाता, जिन्हे भावी पीढियाँ सम्मान और प्यार के साथ पढती और प्रेरणा पाती।

इस लेख से पता चलता है कि उन का अध्ययन कितना विस्तृत था, कितना गहरा था। वह अध्ययन एक बोझ की तरह उन पर लदा न था। इस अध्ययन के प्रकाश में वे अपने राष्ट्र को देखते थे। उस से उसे अनुप्राणित करते थे। बहुत-बहुत देखना उस में से काम की चीज चुनना और फिर अपने आदर्श के कार्य में उस का उपयोग करना उन का स्वभाव था। यह स्वभाव उन के लेखन में भी झलकता है।

उन्हें लेख लिखना था पंजाब की भाषा और लिपि की समस्या पर पर भूमिका में उन्हों ने साहित्य के महत्त्व की स्थापना की और वह भी गहरी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में— देशभक्त चाहे वे निरे समाज सुधारक हों अथवा राजनैतिक नेता सब से अधिक ध्यान देश के साहित्य की ओर दिया करते हैं। यदि वे सामयिक समस्याओं तथा परिस्थितियों के अनुसार नवीन साहित्य की सृष्टि न करें तो उन के सब प्रयत्न निष्फल हो जायें और उन के कार्य स्थायी न हो पायें। शायद गैरीबाल्डी को इतनी जल्दी सेनाएं न मिल पातीं यदि मैजिनी ने तीस वर्ष देश में साहित्य तथा साहित्यिक जागृति पैदा करने में ही न लगा दिये होते। आयरलैण्ड के पुनरुत्थान के साथ गैलिक भाषा के पुनरुत्थान का प्रयत्न भी उसी वेग से किया गया शासक लोग उन्हें दबाये रखने के लिए उन की भाषा का दमन इतना आवश्यक समझते थे कि गैलिक भाषा की एक आध कविता रखने के कारण छोटे-छोटे बच्चों तक को दण्डित किया जाता था। रूसो, वाल्टेयर के साहित्य के बिना फ्रांस की राज्य क्रान्ति घटित न हो पाती। यदि टाल्स्टाय कार्ल मार्क्स तथा मैक्सिम गोर्की इत्यादि ने नवीन साहित्य पैदा करने में वर्षों व्यतीत न कर दिये होते तो रूस की क्रान्ति न हो पाती साम्यवाद का प्रचार तथा व्यवहार तो दूर रहा। पंजाब में उस समय तीन भाषाएँ प्रमुखता के लिए टकरा रही थीं—हिन्दी पंजाबी और उर्दू। बाद में इन भाषाओं के नाम पर जो दुर्घटनाएँ हुईं, उन्हें भगत सिंह ने स्थितियों पहले ही भाँप लिया था। यह देख कर उन की दूरदर्शिता के लिए सिर झुकता है कि उन्हों ने उसी समय तीनों भाषाओं के लिए हिन्दी लिपि मान लेने की बात साफ-साफ कही थी। भारत की राष्ट्रीय जन में उर्दू की पंयत्ता पर उन्हों ने इस रूप में गहरी चोट की और फारसी लिपि की अपूर्णता के सम्बन्ध में उन्हों ने लिखा— जब साधारण न्याय और स्वराज्य आदि शब्दों को आया और स्वर्गीय लिखा और पढ़ा जाता है तो गूढ़ तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी विषयों की चर्चा ही क्या? अभी उस दिन था लाला हरदयाल जी एम० ए० की एक उर्दू-पुस्तक कौमें किस तरह जिन्दा रह सकती हैं का अनुवाद करते हुए सरदार अनुवादक ने ऋषि नचिकेता को उर्दू में लिखा होने से 'नाच' कुनिया समझ कर एक विचित्र सा आयोजित अनुवाद किया था।

स्वतन्त्र भारत में पंजाबी भाषा के नाम पर पंजाब का पंजाब और हरियाणा इन दो भागों में बंटवारा हुआ पर इस बँटवारे से ४१ साल पहले भगत सिंह ने पंजाब के लिए पंजाबी भाषा का दृढ-स्वर समर्थन किया था। यह जानने की बात है

जो भगत सिंह के लेखक रूप को सिर न झुकाये ? यह झुका हुआ सिर श्रद्धा से और भी अभिभूत हो जाता है, जब हम यह सोचते हैं कि इस लेख को लिखते समय भगत सिंह कुल १६–१७ वर्ष के नवयुवक ही थे।

लेखक के साथ उन मे पत्रकारिता के भी शानदार गुण थे। वीर-अर्जुन के सम्पादन मे उन के साथी श्री दीनानाथ सिद्धान्तालकार ने लिखा है कि उन मे समाचार उत्पादन की अपूर्व क्षमता थी। वे समाचार को आत्मा को पहचानते थे और उसे इस तरह प्रस्तुत करते थे कि वह आत्मा सामने आ जाये। यदि उस समाचार के पीछे कोई इतिहास होता, तो वे उसे लेख का रूप दे देते। 'होली के दिन रक्त के छीटे' इस का श्रेष्ठतम उदाहरण है।

संक्षेप मे कहूँ, भगत सिंह सफल लेखक थे, समृद्ध लेखक थे, पर अपने वलिदान से वे स्वयं एक ऐसा लेख हो गये, जो सदा पठनीय है, सदा स्मरणीय है।

भगत सिंह का नेतत्व यह ह कि उन्हा न क्रान्तिकारिया क इस सपने के भीतर पहली बार सत्य की खोज की थी। अपनी इस खोज की धुन को वे अपनी मीठी गुन गुनाहट में भर कर अक्सर गाया करत थे—

"तुझ उन स ख्वाहिश दुश्मनी, तरी आरजू की अजाब है ?
वे है अर्श पर, तू है खाक पर, व अमीर हैं तू गरीब है"।

जिज्ञासा उभरती ह—क्या ऐसे दुश्मन को जीतना सम्भव ह ? बुद्धि कहता ह नही, यह असम्भव ह। तव फिर हमारे सपने की साधना म सिद्धि कहाँ ह ? क्या सिर्फ यही कि हम दुश्मन को कभी उस की और कभी अपनी आहुति से चौंकाते रहें ? दीखता ता एसा ही ह, पर यह ता कोइ सफलता नही ह। इसा पष्ठभूमि में प्रश्न ह—जीवन की सफलता नापने का तुम्हारा मापदण्ड क्या ह ? भगत सिंह अपने में स्पष्ट हो गय ह। उन का उत्तर है—'अपना जावन दे कर यदि मै देश के कोने-कोने में क्रान्ति की आवाज उठा सका, तो म समझूँगा कि मुझ अपने जीवन का पूरा-पूरा मूल्य प्राप्त हो गया।" क्या अथ ह इस उत्तर का ? इस उत्तर का साफ अथ ह मत्यु की अनुपम साधना—जिस ने सशस्त्र क्रांतिकारी कायक्रम म पहली बार मृत्यु के भावुक चाव को एक यथार्थवादी याजना का रूप दिया।

असम्बली में बम फेंकने के बाद जो लाल परचे फेंके गये थे, उन में उन्हों न कहा था—"वि वाण्ट टू एम्फसाइज द लैसन ऑन रिपीटड बाई द हिस्ट्री दट इट इज इजि टू किल इण्डिविजुअलस वट यू कन नाट किल आइडियाज। ग्रेट एम्पायस क्रम्बल्ड वाइल आइडियाज सर्वाइव।' हम उस पाठ पर जोर देना चाहते ह, जिसे इतिहास ने बार-बार दोहराया ह कि व्यक्तियों को मार डालना आसान है, लकिन तुम विचारो को नही मार सकते। बड-बडे साम्राज्य लडखडा कर गिर गये जब कि विचार अमर रहे। क्रान्ति के अमर बीज को विचार-वृक्ष का विकासशील रूप देना ही उन की मृत्यु-साधना थी।

जीवन का यह एक अध्ययन योग्य चमत्कार ह कि अपनी मृत्यु का पूरा उपयोग करने का निश्चित धारणा भगत सिंह के मन में थोडी उम्र म ही स्पष्ट हो गयी था। एक बार उन के पिता जी बहुत बीमार हुए तो उन्हा ने बेहद तल्लीनता से दवादारू की। एक दिन अपनी छोटी बहन अमर कौर स कहा—अगर पिता जी को कुछ हो गया तो मै घर नहीं सँभालूँगा यह काम मेरे लिए नहा है।

इस के आसपास ही एक बार उन की माता जी बहुत बीमार हुइ तो उन्हा ने बहन से कहा—'अगर बेबे जी की मृत्यु हो गयी, तो म शादी नही करूँगा पिता जी की ही दुबारा शादी कर देंगे।"

दशहरा बम केस में गिरफ्तारी के बाद हवालात में रह कर भगत सिंह लौटे तो बहन अमर कौर उन के बालों में तेल लगाने लगीं। बहुत भारी बाल थे। अमर कौर ने कहा—'वीरा जी आप के बाल बहुत भारी हैं बीच-बीच में से कुछ बाल

कटवा दीजिए। किसी को दीखेंगे भी नही और सिर का बोझ भी हलका हो जायेगा।"
अपनी सहज हास्य मुद्रा मे बोले—"चुप-चुप अभी ऐसा मत कह। मैं थोडे नही, सारे
बाल कटा दूँगा, पर ऐसे समय जब सारी सिख कौम इस पर फख़्र करेगी।"

१९२६ के आसपास की बात है। उन के सहपाठी और मित्र श्री जयदेव गुप्ता
डैन ब्रीन की लिखी 'माई फाइट फॉर आयरिश फ्रीडम' (आयरलैण्ड की स्वतन्त्रता के
लिए मेरा सघर्ष) नामक पुस्तक पढ रहे थे। उस मे लिखा था—अगर हम ने गवर्नर-
जनरल की गाडी पर बम फेंका और हम पास के गाँव मे जा छिपे तो वहाँ का बच्चा-
बच्चा कट जायेगा, पर हमारा पता नही देगा। तभी भगत सिह आ गये। जयदेव जी
ने उन से कहा—"वहाँ की जनता ऐसी है, पर यहाँ तो गैरो की बात छोड़ो, तुम्हारा
कोई साथी ही पुलिस को सारा भेद बता देगा और तुम गाजर-मूली की तरह कट
जाओगे।"

सुन कर बहुत गम्भीर हो गये भगत सिंह। कुछ देर बाद बोले—"जैसे पुराना
कपडा उतार कर नया बदला जाता है, वैसे ही मृत्यु है। मै उस से डरूँगा नही,
भागूँगा भी नही। कोशिश करूँगा कि पकडा जाऊँ, पर यो ही नही कि पुलिस आयी
और पकड ले गयी। मेरे पास एक तरीका है कि कैसे पकडा जाऊँ? मौत आयेगी,
आयेगी ही, पर मैं अपनी मौत को इतनी मँहगी और भारी बना दूँगा कि ब्रिटिश सर-
कार रेत के ढेर की तरह उस के बोझ से ढँक जाये।"

निडर भाव से ही नही, शौक और योजना के साथ मृत्यु की ओर बढते हुए
क्षण-क्षण मृत्यु को महँगी और भारी बनाने की योजना का ही दूसरा नाम भगत सिह
है। दल के नेता चन्द्रशेखर आजाद और अन्य प्रमुख सदस्य चाहते थे कि भगत सिंह
असेम्बली मे बम फेकने न जाये। केन्द्रीय समिति की एक बैठक मे वे चुप भी रह गये
थे अनुशासन के भाव से, पर सुखदेव के साथ की बातचीत के बाद स्वय आग्रह कर
बुलवायी गयी केन्द्रीय समिति की दूसरी बैठक मे जिद कर के भगत सिंह ने अपना ही
नाम रखाया। तब सब ने चाहा कि बम फेंक कर वे सुरक्षित लौट आयें, गिरफ्तार न
हो। सब सहमत थे कि ऐसा सम्भव है। स्वय चन्द्रशेखर आज़ाद असेम्बली मे जा कर
देख आये थे और गिरफ्तारी को बेकार समझते थे, पर भगत सिह की राय थी कि बम
फेक कर वही गिरफ्तार होना। मुकदमे को माध्यम बना कर दल के सिद्धान्तो का
प्रचार करना और इस प्रकार देश-भर मे क्रान्ति का वातावरण तैयार करना ही
सही नीति है।

चन्द्रशेखर आज़ाद के शब्द थे—"मै ने बहुत मना किया, मगर भगत सिह किसी
प्रकार भी नही माना। सच तो यह है कि वहाँ खडे रह कर पकडे जाने को बात मेरी
समझ में कभी नही आयी और न मैं आज भी उसे समझ पा रहा हूँ। अपनी पार्टी को
सैद्धान्तिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए खुद-ब-खुद पकडे जाने की क्या आवश्यकता है?
जब कभी पकड लिये जाओ तो अपनी सैद्धान्तिक स्थिति स्पष्ट करो और शान से फांसी

पर चढ जाओ, मगर जान-बूझ कर अपने हाथ से फाँसी का फन्दा अपने गले में डालने का तर्क मेरी समझ में नही आया। फिर भी भगत सिंह की जिद मान कर केन्द्रीय समिति ने स्वीकार कर लिया, उस में ने भी मजूर कर लिया। भाई, सिद्धान्त विद्धान्त ये लोग ज्यादा समझते है, हम तो कुछ करना ही आता है।'

कुछ करना और उस के परिणामो को दूर तक समझ कर करना दो अलग-अलग काम है। पहला काम योद्धा का है दूसरा नेता का। भगत सिंह में सैनिक योद्धा और दूरदर्शी नेता दोनो के समान गुण थे। बम की उस घटना के जो परिणाम निकले, जो भगत सिंह ने सोचे थे और जिन के सम्बन्ध में अपने अखण्ड विश्वास के कारण केन्द्रीय समिति में जिद की थी। ये परिणाम भी अपने-आप नही निकले। भगत सिंह ने उन्हे निमन्त्रण दिया था। पग पग पर उन का नियन्त्रण किया था। हर क्षण पर उन की निगाह थी और उस का उन्हो ने बहुत कौशल से उपयोग किया था। यह कौशल विश्व इतिहास के राजनैतिक कौशलो में इतना गहरा, इतना अद्भुत है कि उस पर कोई भी मेहनती विद्वान् अपना शोध प्रबन्ध लिख सकता है।

उन्हो ने मृत्यु को सहा—यह झूठ है उन्हो ने मृत्यु से भय नही माना यह सत्य का एक धुंधला चित्र है उन्हो ने मृत्यु को निमन्त्रण दिया यह सत्य का कुछ साफ चित्र है किन्तु पूर्ण सत्य यह है कि उन्हो ने मृत्यु का सौदा किया। उस की पूरी कीमत वसूल की और वे उस से इस तरह खेले जैसे खिलाड़ी फील्ड में गेंद से खेलता है। यह खेल इतना शानदार जानदार और रसीला है कि इस में नौका विहार की रसमयता और शिकार की उत्तेजना एक साथ आ मिली है। इस के द्वारा जैसे वे कवि आर० एल० स्टीवेन्सन के शब्दों में ससार से कह रहे हों—

> "इस विस्तृत और तारों भरे नभ के नीचे,
> खोद कर मेरी कब्र मुझे दफना देना।
> मैं ने हँसते हँसते अपना सारा जीवन बिता लिया
> और स्वेच्छा से ढूँढ लिया मृत्यु का सहारा।
> मेरी मृत्यु के बाद, मेरी समाधि पर लिख देना यह
> यहा पड़ा सोता है वह, जैसा कि उस ने स्वयं चाहा
> जैसे जीवन-नौका में कर मौजों समुद्र से लौट आया हो,
> जैसे सिंह का कर शिकार, शिकारी घर लौटा हो।'

ट्रिब्यूनल फाँसी का हुक्म सुना चुका था। भगत सिंह अपील के लिए तैयार नही थे। उन का अखण्ड विश्वास था कि पत्रों में हम लोगो को छोड देने के लिए जो शोर मचाया जा रहा है उसे सरकार नही सुनेगी। भगत सिंह जानते थे कि केन्द्रीय सरकार झुक भी जाय, परिस्थितियो के कारण थोडा बहुत मुलायम पड भी जाय तो भी पजाब सरकार नहीं मान सकती क्यो कि उस के अफसरो ने हम लोगो की फाँसी को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया है, पर उन की फिक्र यह थी कि मुकदमे में सारा काम एक-तरफा

हुआ है, अर्थात् न अभियुक्त अदालत मे उपस्थित हुए न उन के गवाह पेश हुए, न उन के वकीलो ने बहस या सरकारी गवाहों पर जिरह ही की। यह बात ससार-भर के न्याय-शास्त्रियो की दृष्टि मे हलकी थी। अँगरेजो का कानून से शासन करने का दावा भी इस से छोटा होता था। इस के साथ हां सरकारी गवाहियाँ बेहद कमजोर थी और न्याय की तराजू पर टिक न सकती थी। यह एक ऐसा कोना था, जहाँ सरकार का पक्ष बेहद कमजोर था और अपील मे यदि प्रिवि-कौन्सिल के जज जरा भी स्वतन्त्र विचार रखते हो, तो सरकार हार सकती थी—सजा खत्म हो सकती थी।

भगत सिंह यह नही चाहते थे, पर पण्डित मोतीलाल नेहरू ने शिमला मे अपनी रोग-शय्या पर पड़े-पडे अनुरोध किया कि अपील जरूर की जाये, जिस से सभी राजनैतिक कैदियो की मुक्ति के लिए प्रयत्न किया जा सके।

भगत सिंह की दिलचस्पी मुक्ति मे नही थी, पर कुछ समय मिले, तो उस का उपयोग क्रान्ति के विचारो का जनता मे प्रचार करने के लिए किया जाये, इस मे उन की पूरी दिलचस्पी थी। बाहर से भी अपील करने का पूरा जोर पड रहा था। तभी एक दिन श्री विजय कुमार सिनहा को, जो इसी मुकदमे मे कालेपानी की सजा भोग रहे थे, भगत सिंह की काल-कोठरी मे ले जाया गया, जिस से वे दोनो अपील के सम्बन्ध मे सलाह कर सकें। विजय बाबू को जीना था, भगत सिंह को मरना था। यह दोनो की आखिरी मुलाकात हैं, इस विचार से ही विजय बाबू विभोर हो रहे थे। उन्ही के शब्दो में—"एक प्यारी आवाज ने मेरी इस अचेतन अवस्था को तोडा। 'विजय तुम आ गये।' भगत सिंह मेरे सामने खडे थे। उन के चेहरे पर एक स्वाभाविक मुसकराहट अब भी विराजमान थी। मुझे समझ नही आता था कि क्या कहूँ ? एक अनोखा वातावरण छा गया था। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मेरा वह मित्र, जिस के साथ मैं ने कई वर्ष मिल कर काम किया और दु ख झेले थे, आशा-निराशा का इकट्ठे आनन्द लूटा था और जो मेरे इतना समीप खडा था अनजाना-सा, मुझ से सदा के लिए दूर हो रहा है। वे अर्थ-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखते रहे। ऐसी आँखो से देखते रहे, जिन से प्रकट था कि वे उस तूफान को समझते है जो मेरे दिल मे उमड रहा था।"

अपील के सम्बन्ध मे खूब बातें हुई। भगत सिंह के शब्द थे—"भाई, ऐसा न हो कि फाँसी रुक जाये और क्रान्ति के कार्य को आगे बढाने के लिए मुझे बलिदान होने का सौभाग्य प्राप्त न हो सके।" श्री विजय कुमार सिनहा के शब्दो मे—"भगत सिंह का विश्वास था कि क्रान्ति की सच्ची सेवा हम मर कर ही कर सकते है।"

भगत सिंह ने अपने छोटे भाई कुलतार सिंह के नाम एक पत्र मे बहुत ही भावपूर्ण शेर लिखे थे, जिन का अर्थ इस प्रकार है—"प्रात काल के प्रकाश मे भाग्य की किरणो को कौन रोक सकता है ? यदि समस्त संसार भी हमारा दुश्मन हो जाये, तो वह हमे क्या हानि पहुँचा सकता है ? मेरे जीवन के दिन समाप्त हो गये है। मैं एक शमा की तरह सवेरे के प्रकाश की गोद मे समाप्त हो रहा हूँ। हमारा विश्वास और

हमारे विचार बिजली की कड़क की भाँति ससार को प्रकाशित करेंगे। इस हालत में यह मुट्ठी भर धूल बर्बाद भी हो जाये, तो इस में डर की क्या बात ह ?"

भगत सिंह ने ऐसे घोर अँधेरे में अपनी मृत्यु-साधना आरम्भ की थी, जब उस अँधेरे के हटने की कोई सम्भावना सामने न थी। उन की साधना सफल हुई थी। अँधेरा फट चला था, प्रभात की किरणें फूटने लगी थी, व अपने जीवन का पूरा मूल्य पा चुके थे, चुपचुप आतकवादी हत्याकाण्ड समझा जाने वाला काय जनता का क्रान्ति आन्दोलन बन चुका था और इस प्रकार उन की कृतायता उन की मुट्ठी म थी।

ठीक फाँसी के दिन भगत सिंह को जेल से भगाने की बात भीतर भीतर उठी थी और उन से इस बार म पूछा गया था। उत्तर म उन्हो ने लिखा था— 'जीने की इच्छा तो प्राकृतिक ह और वह मुझ म भी होनी चाहिए। म इसे छिपाना नही चाहता। मगर म कैद हो कर या किसी पाबन्दी के अधीन हो कर जिन्दा नही रहना चाहता। मरा नाम भारतीय क्रान्ति का बिन्दु बन चुका ह। इन्क्लाब पार्टी के आदर्शों और बलिदानो ने मुझे बहुत ऊँचा कर दिया ह। जीवित रहने की दशा में म इस से अधिक ऊँचा नही जा सकता। × × × मेरे हँसते हँसते फाँसी पर चढ जाने से भारतीय माताएँ अपने बच्चो को भगत सिंह बनने की प्रेरणा दिया करेंगी। दश पर बलिदान होने वालो की सख्या इतनी बढ जायेगी कि शायद क्रान्ति की इस बाढ को रोकना साम्राज्यवादियो क लिए असम्भव हो जाये और उन की शतानी तोपो के वश की बात न रहे। × × × फाँसी से बचने की मेरे दिल म कोई लालसा नही ह। मुझ स अधिक सौभाग्यशाली कौन होगा ? मुझे आज कल अपने पर बहुत गव ह। अब तो बडी उत्सुकता से अन्तिम परीक्षा की प्रतीक्षा है। इच्छा ह कि यह और करीब हो जाये।'

सचमुच भगत सिंह मृत्यु के समय खुशी म झूम रहे थे। यह खुशी थी योजना की सफलता की। उन की मृत्यु साधना सिद्धि के द्वार पहुँच चुकी थी। साण्डर्स-वध क बाद असेम्बली में बम फेंक कर वे सिर फिर युवको के आतक-काय को जनता का आन्दोलन बना चुके थे फिर मुकदमे में बयान देकर वे उस आन्दोलन को क्रान्ति का रूप देकर नयी समाज व्यवस्था का दिशा बोध दे चुके थे उस के बाद वे अपने साहित्य द्वारा उस क्रान्ति को समाजवादी सविधान दे चुके थे और अपनी निर्भीकता मृत्युजयता स जनता का मानस उस क्रान्ति स जोड चुके थे। धम की भाषा म जीवन के जिस अन्तिम लक्ष्य को मुक्ति कहा जाता ह उस पा चुके थे। अब वे अपने परमात्मा क पास थे, उन्हें और क्या पाना शेष था ?

फाँसी स कुछ पहले उन्हो न जो पत्र श्री बटुकेश्वर दत्त को और प्रोफेसर मोती सिंह को लिखा उस को ये पक्तियाँ मृत्यु के उस महान साधक के आह्लाद को कितना स्पष्टता स अपने में समाये हुए ह ?

"नाऊ आई सी माई गॉड
इन हिज विजिएवल फार्म
आन दि गैलौज—
अर्थात्—
अब मैं देख रहा हूँ
अपने ईश्वर को
उस के दर्शनीय रूप में,
फाँसी के तख़्ते पर।"

वहुतो ने, वहुत रूपो मे, वहुत प्रकार से, ईश्वर को पाया है, पर मृत्यु की साधना से अपने महान् जीवन आदर्श के रूप मे ईश्वर को पाने वाले भगत सिंह तो अपनी जगह, अपने रूप मे अकेले ही खडे हैं।

कविवर श्री कल्याण कुमार 'शशि' के छन्दों मे इस मृत्यु-साधना का नयी पीढियो को सन्देश है—

"साहसी को वल दिया है, मृत्यु ने मारा नहीं है।
राह ही हारी सदा राही कभी हारा नहीं है।
बिजलियाँ काली घटाओं से कहाँ रोके रुकी हैं।
डूबते देखे भँवर ही डूबती धारा नहीं है।
जो व्यथाएँ प्रेरणा दें उन व्यथाओं को दुलारो,
जूझ कर कठिनाइयों से रंग जीवन का निखारो,
दीप बुझ-बुझ कर जला है, वृक्ष कट-कट कर वढ़ा है,
मृत्यु से जीवन मिले, तो आरती उस की उतारो।"

■ ■

उस दिन तीनो परिवारा वे सदस्य अन्तिम मुलाकात व लिए जेल वे द्वार पर पहुँचे थे। वहाँ पहुँच कर पता चला था कि अँगरेज सरकार ने सिफ माता पिता का ही भगत सिंह से मिलने की स्वीकृति दी ह दादा दादी और चाचिया को नही। इस के विरोध में भगत सिंह के माता पिता ने मुलाकात करने से इनकार कर दिया था। राजगुरु की माँ, बहन और सुखदेव की मा को मिलने की स्वीकृति प्राप्त थी, पर उस हालत में इन्हों ने भी अपने को भगत सिंह के माता पिता के साथ जोड दिया था और अपने बेटों स अन्तिम मुलाकात करने से इनकार कर दिया था, जिस का अथ था अपने लाडले बेटा के अन्तिम दशनो से वचित होना।

सोचती हूँ ससार का इतिहास विजयो और पराजयो की इनकारा स भरा पडा ह पर क्या इस के भण्डार म एसा कोई और भी इनकार सुरक्षित ह कि कोई माँ अपने बेटे का मृत्यु स पहले अतिम बार मुह देखने का अधिकार पा कर देखने से इनकार कर दे? कलेजा मुँह को आने लगता ह यह सोच कर की क्या बीती होगी उस घडी उन माताओ के दिल पर जब उन्हो ने अपने बेटा स मिलने के लिए इनकार किया होगा? हमारा इतिहास वीरा के बाँकपन से भरा पडा ह पर राजगुरु सुखदव और भगत सिंह की माताओ का यह बाँकपन क्या निराला नही ह?

इस जलसे के पास ही पुराने पुल के किलानुमा ऊँच द्वार के दूसरी तरफ़ एक और जलसा इसी समय हो रहा था। यह भी भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव को श्रद्धा जलि अपित करने क लिए ही किया गया था। जिस जलसे में हम बठे थ वह देश के एक राजनतिक दल-द्वारा आयोजित था, तो दूसरा जलसा इसी देश के एक दूसरे राज नतिक दल-द्वारा आयाजित था। दूसरे जलसे के कुछ लाग माता जी को लेने के लिए आये तो म सोचन लगी कि यह कसा तमाशा ह कि हम अपने शहीदा को एक साथ एक स्थान पर श्रद्धाजलि नहा दे सकते? हम ने देश को बाटा ह, प्रान्ता को बाँटा ह, जाति और धर्मों को बाँटा ह, पर क्या अब हम अपने शहीदा को भी बाँटने पर उतारू हो गये ह!

दु ख में डूबी मरी निगाहें एक आर को उठी, तो देखा भारत का तिरगा झण्डा कुछ दूरी पर फहरा रहा ह और उस के पास ही पाकिस्तान का हरा झण्डा भी लहरा रहा ह। सामने ही ह लाहौर जाने वाली सडक। यह सोच कर मर कलेजे में सुइयाँ-सी चुभने लगी कि इन शहीदो ने जिस लाहौर में हथकडियाँ-बेडियाँ पहनी भूख-हडतालें की मुकदमे लडे सोये देश को जगाया और धरती को अपनी शहादत के खून स सींचा वह लाहौर हमारे लिए गर ह और वे शहीद उस लाहौर के लिए गर हा गये ह।

जलसा समाप्त हुआ तो म अपने तिरगे झण्डे की ओर तेजी से बढी और पहुच गयी उस सीमा पर जिस ने हमारे देश का दो हिस्सा में बाँट दिया है। अब मर दायी तरफ़ शहीदा का समाधि था जा कह रहा थी कि देश ही सब-कुछ ह और उस के हित क लिए कोई भा बलिदान बडा नही ह। दूसरी तरफ़ लहरा रहे थे दोना राष्ट्रीय झण्डे,

जो कह रहे थे कि देश के टुकडे कर दिये गये हैं, उसे काट कर बाँट दिया गया है। मेरा मन अथाह दु ख से भर गया और कई मिनिट तक मै कुछ भी न सोच सकी।

तव इस विचार ने मुझे सान्त्वना दी हमारे शहीद सीमा पर आ बैठे है। एक दिन आयेगा जव यह बँटवारा टूटेगा, कटे देश के दोनो टुकडे आपस मे मिलेंगे और उस दिन इस समाधि पर जो कुछ चढाये जायेगे, उन मे दिल्ली के फूल भी होगे और रावलपिण्डी के फूल भी। १९६५ मे हमारी फौजे लाहौर की ओर वढी थी, पर उस दिन तो ये शहीद ही लाहौर मे प्रवेश करेंगे। जव नेपोलियन स्टैच्यू पेरिस मे लगाया गया तो उस की माँ ने कहा था, "मेरा नेपोलियन पेरिस मे फिर आ गया हे।" जिस दिन ये शहीद लाहौर मे प्रवेश करेंगे, तो वहाँ की माताएँ भी कह उठेंगी, "हमारा भगत सिंह फिर लाहौर मे आ गया है।" मै इस भावना से अभिभूत हो कल्पना की आँखो से लाहौर की सेण्ट्रल जेल के सामने खडे इन शहीदो के सुन्दर स्टैच्यू देखने लगी।

शहीदो का पुण्य, वह दिन हमे दिखाये।

■ ■

जो कह रहे थे कि देश के टुकडे कर दिये गये है, उसे काट कर बाँट दिया गया है। मेरा मन अथाह दु ख से भर गया और कई मिनिट तक मै कुछ भी न सोच सकी।

तब इस विचार ने मुझे सान्त्वना दी हमारे शहीद सीमा पर आ बैठे है। एक दिन आयेगा जब यह बँटवारा टूटेगा, कटे देश के दोनो टुकडे आपस मे मिलेंगे और उस दिन इस समाधि पर जो कुछ चढाये जायेंगे, उन मे दिल्ली के फूल भी होंगे और रावलपिण्डी के फूल भी। १९६५ मे हमारी फौजे लाहौर की ओर बढी थी, पर उस दिन तो ये शहीद ही लाहौर मे प्रवेश करेंगे। जब नेपोलियन स्टैच्यू पेरिस मे लगाया गया तो उस की माँ ने कहा था, "मेरा नेपोलियन पेरिस मे फिर आ गया है।" जिस दिन ये शहीद लाहौर मे प्रवेश करेंगे, तो वहाँ की माताएँ भी कह उठेंगी, "हमारा भगत सिंह फिर लाहौर मे आ गया है।" मै इस भावना से अभिभूत हो कल्पना की आँखो से लाहौर की सेण्ट्रल जेल के सामने खडे इन शहीदो के सुन्दर स्टैच्यू देखने लगी।

शहीदो का पुण्य, वह दिन हमे दिखाये।

□ □